अमी झरत, बिगसत कंवल

अनुक्रम

1. नमो नमो हरि गुरु नमो...2
2. कितना है जीवन अनमोल..27
3. बिरहिन का घर बिरह में...49
4. संसार की नींव, संन्यास के कलश..73
5. जागे में फिर जागना..93
6. अपने मांझी बनो...114
7. जो जागे सो सबसे न्यारा...136
8. सृजन की मधुर वेदना..158
9. मेरे सतगुरु कला सिखाई..179 10...यह मशाल जलेगी
.... 201
11..एक राम सारै सब काम
.... 220
12..नया मनुष्य
.... 242
13..अमी झरत, बिगसत कंवल
.... 262
14..अंतर-जगत की फाग
.... 286

1

अमी झरत, बिगसत कंवल
पहला प्रवचन

नमो नमो हरि गुरु नमो

नमो नमो हरि गुरु नमो, नमो नमो सब संत।
जन दरिया बंदन करै, नमो नमो भगवंत।।
दरिया सतगुरु सब्द सौं, मिट गई खैंचातान।
भरम अंधेरा मिट गया, परसा पद निरबान।।
सोता था बहु जनम का, सतगुरु दिया जगाए।
जन दरिया गुरु सब्द सौं, सब दुख गए बिलाए।।
राम बिना फीका लगै, सब किरिया सास्तर ग्यान।
दरिया दीपक कह करै, उदय भया निज भान।।
दरिया नर-तन पाए कर, कीया चाहै काज।
राव रंक दोनों तरैं, जो बैठें नाम-जहाज।।
मुसलमान हिंदू कहा, शट दरसन रंक राव।
जन दरिया हरिनाम बिन, सब पर जम का दाव।।
जो कोई साधु गृही में, माहिं राम भरपूर।
दरिया कह उस दास की, मैं चरनन की धूर।।
दरिया सुमिरै राम को, सहज तिमिर का नास।
घट भीतर होए चांदना, परमजोति परकास।।
सतगुरु-संग न संचरा, रामनाम उर नाहिं।
ते घट मरघट सारिखा, भूत बसै ता माहिं।।
दरिया काया कारवी, मौसर है दिन चार।
जब लग सांस शरीर में, तब लग राम संभार।।
दरिया आतम मल भरा, कैसे निर्मल होए।
साबन लागै प्रेम का, रामनाम-जल धोए।।
दरिया सुमिरन राम का, देखत भूली खेल।
धन धन हैं वे साधवा, जिन लीया मन मेल।।
फिरी दुहाई सहर में, चोर गए सब भाज।
सत्र फिर मित्र जु भया, हुआ राम का राज।।

मनुष्य-चेतना के तीन आयाम हैं। एक आयाम है--गणित का, विज्ञान का, गद्य का। दूसरा आयाम है--प्रेम का, काव्य का, संगीत का। और तीसरा आयाम है-- अनिर्वचनीय। न उसे गद्य में कहा जा सकता, न पद्य में! तर्क तो असमर्थ है ही उसे कहने में, प्रेम के भी पंख टूट जाते हैं! बुद्धि तो छू ही नहीं पाती उसे, हृदय भी पहुंचते-पहुंचते रह जाता है!
जिसे अनिर्वचनीय का बोध हो वह क्या करे? कैसे कहे? अकथ्य को कैसे कथन बनाए?
जो निकटतम संभावना है, वह है कि गाए, नाचे, गुनगुनाए। इकतारा बजाए, कि ढोलक पर थाप दे, कि पैरों में घुंघरू बांधे, कि बांसुरी पर अनिर्वचनीय को उठाने की असफल चेष्टा करे।
इसलिए संतों ने गीतों में अभिव्यक्ति की है। नहीं कि वे कवि थे, बल्कि इसलिए कि कविता करीब मालूम पड़ती है। शायद जो गद्य में न कहा जा सके, पद्य में उसकी झलक आ जाए। जो व्याकरण में न बंधता हो, वह शायद संगीत में थोड़ा सा आभास दे जाए।
इसे स्मरण रखना। संतों को कवि ही समझ लिया तो भूल हो जाएगी। संतों ने काव्य में कुछ कहा है, जो काव्य के भी अतीत है--जिसे कहा ही नहीं जा सकता। निश्चित ही, गद्य की बजाय पद्य को संतों ने चुना, क्योंकि गद्य और भी दूर पड़ जाता है, गणित और भी दूर पड़ जाता है। काव्य चुना, क्योंकि काव्य मध्य में है। एक तरफ व्याख्य विज्ञान का लोक है, दूसरी तरफ अव्याख्य धर्म का जगत है; और काव्य दोनों के मध्य की कड़ी है। शायद इस मध्य की कड़ी से किसी के हृदय की वीणा बज उठे, इसलिए संतों ने गीत गाए। गीत गाने को नहीं गाए; तुम्हारे भीतर सोए गीत को जगाने को गाए। उनकी भाषा पर मत जाना, उनके भाव पर

जाना। भाषा तो उनकी अटपटी होगी। जरूरी भी नहीं कि संत सभी पढ़े-लिखे थे।
बहुत तो उनमें गैर-पढ़े-लिखे थे।
लेकिन पढ़े-लिखे होने से सत्य का कोई संबंध भी नहीं है; गैर-पढ़े-लिखे होने से कोई बाधा भी नहीं है। परमात्मा दोनों को समान रूप से उपलब्ध है। सच तो यह है, पढ़े-लिखे को शायद थोड़ी बाधा हो, उसका पढ़ा-लिखापन ही अवरोध बन जाए। गैर-पढ़ा-लिखा थोड़ा ज्यादा भोला, थोड़ा ज्यादा निर्दोष। उसके निर्दोष चित्त में, उसके भोले हृदय में सरलता से प्रतिबिंब बन सकता है। कम होगा विकृत प्रतिबिंब, क्योंकि विकृत करने वाला तर्क मौजूद न होगा। झलक ज्यादा अनुकूल होगी सत्य के, क्योंकि विचारों का जाल न होगा जो झलक को अस्तव्यस्त करे। सीधा-सीधा सत्य झलकेगा, क्योंकि दर्पण पर कोई शिक्षा की धूल नहीं होगी।
तो भाषा की चिंता मत करना, व्याकरण का हिसाब मत बिठाना। छंद भी उनके ठीक हैं या नहीं, इस विवेचना में भी न पड़ना। क्योंकि यह तो चूकना हो जाएगा। यह तो व्यर्थ में उलझना हो जाएगा। यह तो गए फूल को देखने--और फूल के रंग, और फूल के रसायन, और फूल किस जाति का है और किस देश से आया है--इस सारे इतिहास में उलझ गए; और भूल ही गए कि फूल तो उसके सौंदर्य में है।
गुलाब कहां से आया, क्या फर्क पड़ता है? ऐतिहासिक चित्त इसी चिंता में
पड़ जाता है--कि गुलाब कहां से आया? आया तो बाहर से है; उसका नाम ही कह रहा है। नाम संस्कृत का नहीं है, हिंदी का नहीं है। गुल का अर्थ होता हैः फूल; आब का अर्थ होता हैः शान। फूल की शान! आया तो ईरान से है, बहुत लंबी यात्रा की है। लेकिन यह भी पता हो कि ईरान से आया है गुलाब, तो गुलाब के सौंदर्य का थोड़े ही इससे कुछ अनुभव होगा! गुलाब शब्द की व्याख्या भी हो गई तो भी गुलाब से तो वंचित ही रह जाओगे। गुलाब की पंखुड़ियां तोड़ लीं, पंखुड़ियां गिन लीं, वजन नाप लिया, तोड़-फोड़ करके सारे रसायन खोज लिए--किन-किन से मिल कर बना है, कितनी मिट्टी, कितना पानी, कितना सूरज--तो भी तो गुलाब के सौंदर्य से वंचित रह जाओगे। ये गुलाब को जानने के ढंग नहीं हैं।
गुलाब की पहचान तो उन आंखों में होती है, जो गुलाब के इतिहास में नहीं उलझतीं, गुलाब की भाषा में नहीं उलझतीं, गुलाब के विज्ञान में नहीं उलझतीं--जो सीधे-सीधे, नाचते हुए गुलाब के साथ नाच सकता है; जो सूरज में उठे गुलाब के साथ उसके सौंदर्य को पी सकता है; जो भूल ही सकता है अपने को गुलाब में, डुबा सकता है अपने को गुलाब में और गुलाब को अपने में डूब जाने दे सकता है--वही जानेगा।
संतों के वचन गुलाब के फूल हैं। विज्ञान, गणित, तर्क और भाषा की कसौटी
पर उन्हें मत कसना, नहीं तो अन्याय होगा। वे तो वंदनाएं हैं, अर्चनाएं हैं, प्रार्थनाएं हैं। वे तो आकाश की तरफ उठी हुई आंखें हैं। वे तो पृथ्वी की आकांक्षाएं हैं--चांद-तारों को छू लेने के लिए। उस अभीप्सा को पहचानना। वह अभीप्सा समझ में आने लगे तो संतों का हृदय तुम्हारे सामने खुलेगा।
और संतों के हृदय में द्वार है परमात्मा का। तुम्हारे सब मंदिर-मस्जिद, तुम्हारे गुरुद्वारे, तुम्हारे गिरजे परमात्मा के द्वार नहीं हैं। लेकिन संतों के हृदय में निश्चित द्वार है। जीसस के हृदय को समझो तो द्वार मिल जाएगा; चर्च में नहीं। मोहम्मद के प्राणों को पहचान लो तो द्वार मिल जाएगा; मस्जिद में नहीं।
ऐसे ही एक अदभुत संत दरिया के वचनों में हम आज उतरते हैं। फूलों की तरह लेना। सम्हाल कर! नाजुक बात है। ख्याल रखना, फूलों को, सोना जिस पत्थर पर कसते हैं, उस पर नहीं कसा जाता है। फूलों को सोने की कसने की कसौटी पर कस-कस कर मत देखना, नहीं तो सभी फूल गलत हो जाएंगे।
एक बाउल फकीर से एक बड़े शास्त्रज्ञ पंडित ने पूछा कि प्रेम, प्रेम, प्रेम... निरंतर प्रेम का जप किए जाते हो, यह प्रेम है क्या? मैं भी तो समझूं! इस प्रेम का किस शास्त्र में उल्लेख है? किन वेदों का समर्थन है? वह बाउल फकीर हंसने लगा। उसका इकतारा बजने लगा। खड़े होकर वह नाचने लगा।
पंडित ने कहाः नाचने से क्या होगा? और इकतारा बजाने से क्या होगा? व्याख्या होनी चाहिए प्रेम की। और शास्त्रों का समर्थन होना चाहिए। कहते हो कि प्रेम परमात्मा का द्वार है। मगर कहां लिखा है? और नाचो मत, बोलो!

इकतारा बंद करो, बैठो! तुम मुझे धोखे में न डाल सकोगे। औरों को धोखे में डाल देते हो इकतारा बजा कर, नाच कर। औरों को लुभा लेते हो। मुझको न लुभा सकोगे।
उस बाउल फकीर ने फिर भी एक गीत गाया। उस बाउल फकीर ने कहाः गीतों के सिवाय हमारे पास कुछ और है नहीं। यही गीत हमारे वेद, यही गीत हमारे उपनिषद, यही गीत हमारे कुरान। क्षमा करें! नाचूंगा, इकतारा बजाऊंगा, गीत गाऊंगा-- यही हमारी व्याख्या है। अगर समझ में आ जाए तो आ जाए; न समझ में आए, दुर्भाग्य तुम्हारा। पर हमसे और कोई व्याख्या न पूछो। और कोई उसकी व्याख्या है ही नहीं।
और जो गीत उसने गाया, वह बड़ा प्यारा था। गीत का अर्थ थाः एक बार एक सुनार एक माली के पास आया और कहा कि तेरे फूलों की बड़ी प्रशंसा सुनी है, तो मैं आज कसने आया हूं कि फूल सच्चे हैं, असली हैं या नकली हैं? मैं अपने सोने के कसने के पत्थर को ले आया हूं। और वह सुनार उस गरीब माली के गुलाबों को पत्थर पर कस-कस कर फेंकने लगा कि सब झूठे हैं, कोई सच्चे नहीं हैं।
उस बाउल फकीर ने कहाः जो उस गरीब माली के प्राणों पर गुजरी, वही तुम्हें देख कर मेरे प्राणों पर गुजर रही है। तुम प्रेम की व्याख्या पूछते हो--और मैं प्रेम नाच रहा हूं! अंधे हो तुम! तुम प्रेम के लिए शास्त्रीय समर्थन पूछते हो--और मैं प्रेम को संगीत दे रहा हूं! बहरे हो तुम!
मगर अधिक लोग अंधे हैं, अधिक लोग बहरे हैं।
दरिया के साथ अन्याय मत करना, यह मेरी पहली प्रार्थना। ये सीधे-सादे शब्द हैं, पर बड़े गहरे हैं। जितने सीधे-सादे हैं, उतने गहरे हैं।

नहीं पूरी पड़ीं सारी दिशाएं एक अंजलि को,
अधूरी रह गई मेरी विधा एकांत पूजन की,
बंधी ओंकार की अविराम शैलाकार बांहों में,
नहीं पूरी हुई कोई कड़ी मेरे समर्पण की,
समूचा सूर्य भी आजन्म पूजादीप की मेरे
न बन पाया अकंपित वर्तिका का शुभ्र नीराजन,
जपी, अपराह्न-रंजित, स्तब्ध मेरी आयु-गायत्री।
न कर पाई अभी तक अंश-भर उस दीप्ति का वंदन।

जीवन भर भी तुम्हारी गायत्री हो जाए तो भी उस अनिर्वचनीय की व्याख्या नहीं होती! और सूरज भी तुम्हारी आरती का दीया बन जाए तो भी पूजा पूरी नहीं होती!

नहीं पूरी पड़ीं सारी दिशाएं एक अंजलि को,
अधूरी रह गई मेरी विधा एकांत पूजन की,
बंधी ओंकार की अविराम शैलाकार बांहों में,
नहीं पूरी हुई कोई कड़ी मेरे समर्पण की,
समूचा सूर्य भी आजन्म पूजादीप की मेरे
न बन पाया अकंपित वर्तिका का शुभ्र नीराजन, जपी, अपराह्न-रंजित, स्तब्ध मेरी आयु-गायत्री। न कर पाई अभी तक अंश-भर उस दीप्ति का वंदन।

विकलता, व्यर्थता इस परिक्रमित चक्रांत जीवन की, तुम्हीं जानो, न जानो, और कोई तो न जानेगा,
किया मैंने नहीं आह्वान करुणा का तुम्हारी जब, क्षमा की पात्रता मुझमें न कोई और मानेगा,
रहा विश्वास भावातीत मन की गतिमयी लय सा,
नियति मेरी रही केवल उसी संपूर्ति में पकती, भुला कर स्वप्नगर्भा प्रेरणा की मुक्त राहों को, रही अपनी क्षुभित आराधना की दीनता तकती।

सदा टूटा किए सब अर्थ मेरे, शब्द तक मेरे, तुम्हारी भव्यता की दिव्य रेखाकृति न बन पाई, अव्यंजित ही सदा जो रह गई अभिशप्त प्राणों में,
वही असहाय मेरी भावना निस्पंद पथराई,
तुम्हारी सर्वचेतन, सर्व-आभासित असीमा का,
न कोई पारदर्शी बोध मेरी प्रार्थना पाती,
अथाही, चिरविदारक शून्यता में मूक, जड़-जैसी,
निपट असमर्थ मेरी मुग्धता अफलित रही आती।

न उसे कभी कहा गया, न कभी उसे कभी कहा जा सकेगा; फिर भी बड़ी करुणा है संतों की कि अकथ्य को कथ्य बनाने की चेष्टा की है। जानते हुए, भलीभांति जानते हुए कि नहीं यह हुआ है, नहीं यह हो सकेगा; लेकिन फिर भी शायद कोई आतुर प्राण प्यास से भर उठें, शायद कोई सोई आत्मा पुकार से जग जाए। जानते हैं भलीभांति...
सदा टूटा किए सब अर्थ मेरे, शब्द तक मेरे,
तुम्हारी भव्यता की दिव्य रेखाकृति न बन पाई,
कौन बना पाया है परमात्मा के उस रूप को? कौन बांध पाया है रंगों में, शब्दों में? कोई रेखाकृति आज तक बन नहीं पाई है।
भुला कर स्वप्नगर्भा प्रेरणा की मुक्त राहों को,
रही अपनी क्षुभित आराधना की दीनता तकती।
भक्त जानता है अपनी असमर्थता को। संत पहचानता है अपनी दीनता को।
विकलता, व्यर्थता इस परिक्रमित चक्रांत जीवन की,
तुम्हीं जानो, न जानो, और कोई तो न जानेगा,
और परमात्मा ही पहचानता है भक्त की असमर्थता। और परमात्मा ही पहचानता
है भक्त की अथक चेष्टा--नहीं जो कहा जा सकता, उसे कहने की; नहीं जो जताया जा सकता, उसे जताने की; नहीं जो बताया जा सकता, उसे बताने की।
इसलिए बड़ी सूक्ष्म प्रीति-भरी आंखें चाहिए। बड़ी सरल, निर्दोष, श्रद्धा-भरी बांहें चाहिए, तो ही आलिंगन हो सकेगा।
नमो नमो हरि गुरु नमो, नमो नमो सब संत।
जन दरिया बंदन करै, नमो नमो भगवंत।।
दरिया कहते हैंः पहला नमन गुरु को। और गुरु को हरि कहते हैं।
नमो नमो हरि गुरु नमो...
यह दोनों अर्थों में सही है। पहला अर्थ कि गुरु भगवान है और दूसरा अर्थ कि भगवान ही गुरु है। गुरु से जो बोल जाता है, वह वही है जिसे तुम खोजने चले हो। वह तुम्हारे भीतर भी बैठा है उतना ही जितना गुरु के भीतर। लेकिन तुम्हें अभी बोध नहीं, तुम्हें अभी उसकी पहचान नहीं। गुरु के दर्पण में अपनी छवि को देख कर पहचान हो जाएगी। गुरु तुमसे वही कहता है जो तुम्हारे भीतर बैठा हरि भी तुमसे कहना चाहता है। मगर तुम सुनते नहीं। भीतर की नहीं सुनते तो शायद बाहर की सुन लो; बाहर की तुम्हारी आदत है। तुम्हारे कान बाहर की सुनने से परिचित हैं। तुम्हारी आंखें बाहर को देखने में निष्णात हैं। भीतर तो क्या देखोगे? भीतर तो आंख कैसे मोड़ें, यह कला ही नहीं आती। और भीतर तो कैसे सुनोगे? इतना शोरगुल है सिर का, मस्तिष्क का कि वह धीमी-धीमी आवाज न मालूम कहां खो जाएगी!
बोलता तो तुम्हारे भीतर भी हरि है, लेकिन पहले तुम्हें बाहर के हरि को सुनना पड़े। थोड़ी पहचान होने लगे, थोड़ा संग-साथ होने लगे, थोड़ा रस उभरने लगे, तो जो बाहर तुमने सुना है, एक दिन वही भीतर तुम्हें सुनाई पड़ जाएगा। चूंकि गुरु केवल वही कहता है जो तुम्हारे भीतर की अंतरात्मा कहना चाहती है, इसलिए गुरु को हरि कहा और इसलिए हरि को गुरु कहा है।
नमो नमो हरि गुरु नमो...
दरिया कहते हैंः नमन करता हूं, बार-बार नमन करता हूं।
नमन का अर्थ इतना ही नहीं होता कि किसी के चरणों में सिर झुका देना।
नमन का अर्थ होता हैः किसी के चरणों में अपने को चढ़ा देना। यह सिर झुकाने की बात नहीं है; यह अहंकार विसर्जित कर देने की बात है।
... नमो नमो सब संत।

और जिस दिन समझ में आ जाती है बात, उस दिन बड़ी हैरानी होती है कि सभी संत यही कहते थे! कितने भेद-भाव माने थे, कितने विवाद थे, कितने वितंडा, कितने शास्त्रार्थ! पंडित जूझ रहे हैं, मल्लयुद्ध में लगे हैं। हिंदू मुसलमान से जूझ रहा है, मुसलमान ईसाई से जूझ रहा है, ईसाई जैन से जूझ रहा है, जैन बौद्ध से जूझ रहा है; सब गुत्थमगुत्था एक-दूसरे से जूझ रहे हैं-- बिना इस सीधी सी बात को जाने कि जो महावीर ने कहा है उसमें और जो मोहम्मद ने कहा है उसमें, रत्ती भर भेद नहीं है। भेद हो नहीं सकता। सत्य एक है। उस सत्य को जान लेने वाले को ही हम संत कहते हैं। जो उस सत्य से एक हो गया, उसी को संत कहते हैं।
तो जिस दिन तुम्हें समझ में आ जाएगी बात तो तुम बाहर के गुरु में भगवान को देख सकोगे, भीतर के भगवान में गुरु को देख सकोगे--और सारे संतों में, बेशर्त! फिर यह भेद न करोगे कि कौन अपना, कौन पराया। सारे संतों में भी उसी एक अनुगूंज को सुन सकोगे।
कितनी ही हों वीणाएं, संगीत एक है। और कितने ही हों दीप, प्रकाश एक है।
और कितने ही हों फूल, सौंदर्य एक है। गुलाब में भी वही और जुही में भी वही, चंपा में भी वही और चमेली में भी वही। सौंदर्य एक है, अभिव्यक्तियां भिन्न हैं।
निश्चित ही कुरान की आयतें अपना ही ढंग रखती हैं, अपनी शैली है उनकी, अपना सौंदर्य है उनका। समझो कि जुही के फूल। और उपनिषद के वचन, उनका सौंदर्य अपना है, अनूठा है। समझो कि कि चंपा के फूल। और बाइबिल के उद्धरण, समझो कि गुलाब के फूल। पर सब फूल हैं और सबमें जो फूला है वह एक है। वही सौंदर्य कहीं सफेद है और कहीं लाल है और कहीं सोना हो गया है।
नमो नमो हरि गुरु नमो, नमो नमो सब संत।
जन दरिया बंदन करै, नमो नमो भगवंत।।
और दरिया कहते हैंः जिस दिन ऐसा दिखाई पड़ा कि बाहर भी वही, भीतर भी वही, और सारे संतों में भी वही--फिर अंततः यह भी दिखाई पड़ा कि जो संत नहीं हैं, उनमें भी वही। पहचान बढ़ती गई, गहरी होती चली गई।
जन दरिया बंदन करै...
अब तो दरिया कहते हैं कि मैं इसकी चिंता नहीं करता कि किसको वंदन करना--सिर्फ वंदन करता हूं!
... नमो नमो भगवंत।
अब यह भी फिकर नहीं करता कि संत है कोई कि असंत है कोई, अच्छा है कि बुरा है कोई। पहले दिखाई पड़ा था कि फूलों में वही है, अब कांटों में भी वही दिखाई पड़ता है। हीरों में दिखाई पड़ा था, अब कंकड़-पत्थरों में भी वही दिखाई पड़ता है। अब कौन चिंता करे! अब कौन फिकर ले! अब तो सिर्फ वंदन करता हूं--सभी दिशाओं में वंदन करता हूं। सभी मंदिर-मस्जिद-गुरुद्वारे मेरे हैं। अच्छों की तो बात ही छोड़ दो, बुरों में भी वही है। उसके अतिरिक्त कोई और है ही नहीं। इसलिए अब तो वंदन ही बचा। अब तो झुक-झुक पड़ता हूं। अब तो वृक्ष हो तो, पत्थर हो तो, उसकी छवि हर जगह पहचान आ जाती है।
दरिया सतगुरु सब्द सौं, मिट गई खैंचातान।
बड़ी खींचातानी में रहा हूं कि कौन सही, कौन गलत; कौन शुभ, कौन अशुभ; किस मंदिर जाऊं, किस मूर्ति की पूजा करूं; किस शास्त्र को पकडूं, कौन सी नाव पर सवार होऊं, कैसे भवसागर पार होगा--बड़ी खींचातान थी!
दरिया सतगुरु सब्द सौं...
लेकिन एक बार सदगुरु का शब्द सुन लिया कि--
... मिट गई खैंचातान।
कि सारी खींचातान ही मिट गई; क्योंकि उस गुरु के एक शब्द में ही सारे गुरुओं के शब्द समाए हुए हैं। एक गुरु में सारे गुरु मौजूद हैं--जो हुए, जो हैं, जो होंगे। एक गुरु में सारे गुरु मौजूद हैं।
भरम अंधेरा मिट गया, परसा पद निरबान।।
एक शब्द भी कान में पड़ जाए सत्य का, एक रोशनी की किरण प्रविष्ट हो जाए तुम्हारे अंधकारपूर्ण गृह में, तुम्हारे हृदय में एक चोट पड़ जाए, तुम्हारा हृदय झंकार उठे--एक बार सिर्फ, बस काफी है।
भरम अंधेरा मिट गया...

उसी क्षण मिट जाता है सारा अंधकार--भ्रम का, माया का, मोह का।
... परसा पद निरबान।
उसी क्षण उस महत पद का छूना हो जाता है, हाथ में आ जाता है, स्पर्श हो जाता है निर्वाण का।

कल के नीरस शब्दों में करनी है बात आज की,
अभिव्यक्ति भावना अपनी, भाषा में समाज की।
है विवश किंतु कर देता कवि को उसका ही स्वर,
माना कहना है कठिन, किंतु है मौन कठिनतर।
कविता साधन ही नहीं, साधना, साध्य सभी कुछ,
मंदिर, वंदना, प्रसाद और आराध्य सभी कुछ। भ्रम है कहना निर्माण किया कविता का कवि ने, रचना की थी या जगा दिया कमलों को रवि ने?
यह दूर हटा दो शब्दकोश, है व्यर्थ खोजना--
इस मुद्रित पुस्तक में यह जाग्रत शब्द योजना। मेरी कविता का आशय तुम इस क्षण से पूछो,
सुन सको प्रतिध्वनि मन में यदि तो मन से पूछो।
मिल सकता तुमसे यदि मैं इतनी दूर न होता,
शब्दों का आश्रय लेने पर मजबूर न होता।
सांसों में साकार स्वयं बन जाती कविता,
तुम सुनते मेरी बात स्वयं बन जाती कविता।

सदगुरु के शब्द तो वे ही हैं जो समाज के शब्द हैं। और कहना है उसे कुछ, जिसका समाज को कोई पता नहीं। भाषा तो उसकी वही है, जो सदियों-सदियों से चली आई है--जराजीर्ण, धूल-धूसरित। लेकिन कहना है उसे कुछ ऐसा नित-नूतन, जैसे सुबह की अभी ताजी-ताजी ओस, कि सुबह की सूरज की पहली-पहली किरण! पुराने शब्द बासे, सड़े-गले, सदियों-सदियों चले, थके-मांदे, उनमें उसे डालना है प्राण। उनमें उसे भरना है उस सत्य को जो अभी-अभी उसने जाना है--और जो सदा नया है और जो कभी पुराना नहीं पड़ता।
कल के नीरस शब्दों में करनी है बात आज की,
अभिव्यक्ति भावना अपनी भाषा में समाज की।
है विवश किंतु कर देता कवि को उसका ही स्वर,
लेकिन कहना तो होगा ही!
है विवश किंतु कर देता कवि को उसका ही स्वर,
माना कहना है कठिन, किंतु है मौन कठिनतर।
कहना कठिन है; लेकिन मौन चुप रह जाना और भी कठिन है। जिसने जाना है उसे कहना ही होगा। सुने कोई, सुने; न सुने कोई, न सुने; उसे कहना ही होगा। उसे अंधों के सामने दीये जलाने होंगे। उसे बहरों के पास बैठ कर वीणा बजानी होगी।
मगर सौ में कोई एकाध आंख खोल लेता है और सौ में कोई एकाध पी जाता है उस संगीत को। पर उतना काफी है। उतना बहुत है। और ऐसा मत सोचना कि ये जो शब्द संतों से उतरते हैं, संतों के हैं। संत तो केवल माध्यम हैं।
कविता साधन ही नहीं, साधना, साध्य सभी कुछ,
मंदिर, वंदना, प्रसाद और आराध्य सभी कुछ।
भ्रम है कहना निर्माण किया कविता का कवि ने,
रचना की थी या जगा दिया कमलों को रवि ने?
सुबह जब सूरज उगता है तो क्या कमलों की रचना करता है? कमल तो थे ही, सिर्फ सूरज के उगने से जाग जाते हैं।
सारा अस्तित्व काव्य से भरपूर है।
कविता बहती है नदियों में।
कविता हरी है वृक्षों में।
कविता झकोरे ले रही है सागरों में।
कविता ही कविता है।

सारा अस्तित्व उपनिषद है, कुरान है; मगर सोया पड़ा है। किसी सदगुरु की चोट से कमल खिल जाता है। और धन्यभागी हैं वे जो शब्दों में नहीं उलझते और शब्दों में छिपे हुए निःशब्द को पकड़ लेते हैं; जो पंक्तियों के बीच पढ़ना जानते हैं; जो शब्दों के बीच झांकना जानते हैं। तो फिर एक शब्द भी काफी हो जाता है।
दरिया सतगुरु सब्द सौं, मिट गई खैंचातान।
भरम अंधेरा मिट गया, परसा पद निरबान।।
छू लिया परमात्मा को! स्पर्श हो गया! दूरी नहीं है तुम में और परमात्मा में--अभी छू सकते हो! यहीं छू सकते हो! पर कान खोलो, आंख खोलो।
चेतना का कमल खिलने दो।
सोता था बहु जनम का, सतगुरु दिया जगाए।
जन दरिया गुरु सब्द सौं, सब दुख गए बिलाए।।
कुछ और नहीं किया गुरु ने--सोए को जगा दिया; सोए को झकझोर दिया। छिपा
तो सबके भीतर वही है; चाहिए कि कोई तुम्हें झकझोर दे।
लेकिन तुम तो जाते भी हो मंदिर और मस्जिद, तो सांत्वना की तलाश करने जाते हो, सत्य की तलाश करने नहीं। तुम तो जाते भी हो संतों के पास तो चाहते हो थोड़ी सी मीठी-मीठी बातें, कि तुम और सफलता से सपने देख सको। तुम जाते भी हो तो आशीष मांगने जाते हो कि तुम्हारे सपने पूरे हो जाएं। और जो तुम्हें आशीष दे देते होंगे, वे तुम्हें प्रीतिकर भी लगते होंगे। और जो तुम्हारी पीठ ठोंक देते होंगे और कहते होंगेः तुम बड़े पुण्यात्मा हो! और कहते होंगे कि तुमने मंदिर बनाया, और धर्मशाला बनाई, और तुम कुंभ भी हो आए, और हज की यात्रा कर ली, अब और क्या करने को शेष है? परमात्मा तुमसे प्रसन्न है। तुम्हारा स्वर्ग निश्चित है।
जो तुमसे ऐसी झूठी बातें और व्यर्थ की बातें कह देते हों, वे तुम्हें प्रीतिकर भी लगते होंगे। झूठ अक्सर मीठे होते हैं। एक तो झूठ हैं, तो अगर कड़वे हों तो कौन स्वीकार करेगा? झूठ पर मिठास चढ़ानी पड़ती है--सांत्वना की मिठास। सत्य कड़वे होते हैं, क्योंकि सत्य तुम्हें सांत्वना नहीं देते, बल्कि तुम्हें जगाते हैं। और हो सकता है कि तुम अपनी नींद में बड़े प्यारे सपने देख रहे होओ, तो जगाने वाला दुश्मन मालूम पड़े।
सदगुरु सदा ही कठोर मालूम पड़ेगा। सदगुरु सदा ही तुम्हारी धारणाओं को तोड़ता मालूम पड़ेगा। सदगुरु सदा ही तुम्हारे मन को अस्तव्यस्त करता मालूम पड़ेगा; तुम्हारी अपेक्षाओं को छिन्न-भिन्न करता मालूम पड़ेगा। उसे करना ही होगा। उसकी अनुकंपा है कि करता है, क्योंकि तभी तुम जागोगे। भंग हों तुम्हारे स्वप्न, तो ही तुम जागोगे। नींद प्यारी लगती है, विश्राम मालूम होता है। जो भी जगाएगा वह दुश्मन मालूम होगा। पर बिना जगाए तुम्हें पता भी न चलेगा कि तुम कौन हो और कैसी अपूर्व तुम्हारी संपदा है!

यह रुपहली छांहवाली बेल,
कसमसाते पाश में बांधे हुए आकाश।
तिमिर तरु की स्याह शाखों पर पसर कर,
हर नखत की कुसुम कोमल झिलमिलाहट से रही है खेल।
यह रुपहली छांहवाली बेल।

लहराता गगन से भूमि तक जिनके रजत आलोक का विस्तार, रश्मियों के वे सुकोमल तार,
उलझे रात के हर पात से सुकुमार।
इस धवल आकाश लतिका में,
झूलता सोलह पंखुरियों का अमृतमय फूल,
गंध से जिसकी दिशाएं अंध
खोजती फिरतीं अजाने मूल से संबंध।

वल्लरी निर्मूल--
फिर भी विकसता है फूल
विधि ने की नहीं है भूल।

है रहस्य भरा हृदय से हर हृदय का मेल।
हर जगह छाई हुई है,
यह रुपहली छांहवाली बेल।

हर हृदय में अपूर्व सुगंध भरी है; जरा संबंध जोड़ने की बात है। तुम कस्तूरी मृग हो--कस्तूरा हो! भागते फिरते, खोजते फिरते दूर-दूर। और जिस गंध की तलाश कर रहे हो, वह गंध तुम्हारे भीतर से ही उठ रही है। उस कस्तूरी के तुम मालिक हो। कस्तूरी कुंडल बसै! तुम्हारे भीतर बसी है। कोई जगाए, कोई हिलाए, कोई तुम्हें सचेत करे। और जो भी तुम्हें सचेत करेगा वह तुम्हें नाराज करेगा। इतना स्मरण रहे तो सदगुरु मिल जाएगा। इतना बोध रहे कि जो तुम्हें जगाएगा वह तुम्हें जरूर नाराज करेगा, तो सदगुरु को खोजना कठिन नहीं होगा।
जो तुम्हें सांत्वना देते हों और तुम्हारे घावों को मलहम-पट्टी करते हों और तुम्हारे अंधेरे को छिपाते हों और तुम्हारे ऊपर रंग पोत देते हों, उनसे सावधान रहना। सांत्वना जहां से मिलती हो, समझ लेना कि वहां सदगुरु नहीं है। सदगुरु तो झकझोरेगा; उखाड़ देगा वहां से जहां तुम हो, क्योंकि नई तुम्हें भूमि देनी है और नया तुम्हें आकाश देना है।
सोता था बहु जनम का, सतगुरु दिया जगाए।
जन दरिया गुरु सब्द सौं, सब दुख गए बिलाए।।
और दरिया कहते हैंः मैं चमत्कृत हूं कि जागते ही सारे दुख विलीन हो गए! मैं तो सोचता था कि एक-एक दुख का इलाज करना होगा। क्रोध है तो इलाज करना होगा। लोभ है तो इलाज करना होगा। मोह है तो इलाज करना होगा। अहंकार है, यह है, वह है... हजार रोग हैं, व्याधियां ही व्याधियां हैं। इतनी व्याधियों के लिए इतनी ही औषधियां खोजनी होंगी। लेकिन बस एक औषधि, और सारी व्याधियां मिट गईं! क्योंकि जितने रोग हैं, वे सिर्फ हमारे स्वप्न हैं; उनकी कोई सचाई नहीं है।
पापी पाप का स्वप्न देख रहा है, पुण्यात्मा पुण्य का स्वप्न देख रहा है। जागा हुआ न तो पापी होता है, न पुण्यात्मा होता है। जागा हुआ तो सिर्फ जागा हुआ होता है; उसका कोई स्वप्न नहीं होता। चोर चोर होने का स्वप्न देख रहा है और तुम्हारे तथाकथित साधु साधु होने का सपना देख रहे हैं। जागा हुआ न तो असाधु होता, न साधु होता, बस जागा हुआ होता है। और जागते ही सारे रोग मिट जाते हैं। एक समाधि सारी व्याधियों को ले जाती है।

पंख मेरे,
तू कृती हर बार,
नभ केवल प्रतीक्षा।

तू उमड़ बढ़ वक्र में अपने गगन को घेर,
उस अनियमित काल गति में सत्य अपने हेर,
फूंक अपनी तीव्र गति से उस मरण में प्राण, दे निरर्थक कल्पनोपरि को धरा के मान।
तू कृती सौंदर्य का,
कर शून्य भी स्वीकारः
तू रचा आकार, नभ केवल प्रतीक्षा।

उठ, नये विश्वास से बंजर धरा को गोड़,
बधिर नभ के मौन को किलकारियों से फोड़, ज्योति के निःशब्द तारों में गुंजा दे गान, जिस तरफ उड़ जाए तू खिल जाए वह वीरान।
तू कृती है गीत का,
कर मौन भी स्वीकारः
गा बहा रसधार, नभ केवल प्रतीक्षा।

ये तुले डैने अप्रतिहत व्योम में छा जाएं,

मर्म लघु के संतुलन में बृहत के पा जाएं, उधर विघ्नों की चुनौती इधर हठ निर्माण, फहर अंबर चीर कर ओ धरा के अभिमान।
तू कृती है राह का,
कर अगम भी स्वीकारः
फैल पारावार, नभ केवल प्रतीक्षा।

कोई जगाए, झकझोरे, कोई कहे--
उठ, नये विश्वास से बंजर धरा को गोड़,
बधिर नभ के मौन को किलकारियों से फोड़,
ज्योति के निःशब्द तारों में गुंजा दे गान,
जिस तरफ उड़ जाए तू खिल जाए वह वीरान।
तू कृती है गीत का,
कर मौन भी स्वीकारः
गा बहा रसधार, नभ केवल प्रतीक्षा।
हम वही हो सकते हैं जो हम हैं। हम वही हो सकते हैं जो हमारा स्वभाव है।
पर हमें पता ही नहीं। अपना स्वभाव ही भूल गया, अपना स्वरूप ही भूल गया--कि हमारी बड़ी क्षमता है, कि हमारे भीतर स्रष्टा का आवास है, कि परमात्मा ने हमें अपने रहने के लिए आवास चुना है।
तू कृती है गीत का,
कर मौन भी स्वीकारः
गा बहा रसधार, नभ केवल प्रतीक्षा।
कोरे आकाश को बैठे हुए मत देखते रहो; आकाश कुछ भी न करेगा। हाथ जोड़े हुए मंदिरों में प्रार्थनाएं मत करते रहो; इससे कुछ भी न होगा।
नभ केवल प्रतीक्षा।
आकाश तो शून्य है; इसमें तुम्हें जागना होगा; निर्माण करना होगा; स्वयं को निखारना होगा; स्वयं की धूल झाड़नी होगी।
ये तुले डैने अप्रतिहत व्योम में छा जाएं,
मर्म लघु के संतुलन में बृहत के पा जाएं,
उधर विघ्नों की चुनौती इधर हठ निर्माण,
फहर अंबर चीर कर ओ धरा के अभिमान।
तू कृती है राह का,
कर अगम भी स्वीकारः
फैल पारावार, नभ केवल प्रतीक्षा।
कौन होगा जो ऐसा तुमसे कहे? वही--जिसने फैलाए हों अपने पंख और जिसने आकाश की ऊंचाइयां जानी हों। वही--जिसने डुबकी मारी हो प्रशांतों में और गहराइयां पहचानी हों। वही--जिसके भीतर फूल खिले हों; जिसके भीतर मौन जगा हो। जिसने अपने भीतर परमात्मा को आलिंगन किया हो। वही तुम्हें भी जगा सकता है।
लेकिन तुम पंडितों और पुरोहितों के पास चक्कर लगा रहे हो। न वे जगे हैं, न वे जगा सकते हैं।
राम बिना फीका लगै, सब किरिया सास्तर ग्यान।
दरिया कहते हैंः तुम किनके पास भटक रहे हो? राम जिन्हें मिला नहीं, राम जो अभी हो नहीं गए, राम जिनके भीतर अभी जागा नहीं।
राम बिना फीका लगै...
पंडित-पुरोहित, उनकी जरा आंखों में झांको! उनके जरा हृदय में टटोलो! अक्सर तो तुम उन्हें अपने से भी ज्यादा अंधकार में पड़ा हुआ पाओगे।
... सब किरिया सास्तर ग्यान।
जरूर क्रियाकांड वे जानते हैं और शास्त्र भी बहुत उनके पास हैं और शास्त्रों से सीखा हुआ तोतों जैसा ज्ञान भी उनके पास बहुत है। मगर उसका कोई मूल्य नहीं है। उनके जीवन पर उसकी कोई छाप नहीं है।
मैं मुल्ला नसरुद्दीन के गांव गया था। मुल्ला मुझे नगर का दर्शन कराने ले गया। विश्वविद्यालय की भव्य इमारत को देख कर मैंने मुल्ला से कहाः नसरुद्दीन, क्या यही विश्वविद्यालय है? सुंदर है, भव्य है!

हऔ--मुल्ला ने उत्तर दिया।
फिर गांधी मैदान आया, विशाल मैदान! तो मैंने कहाः यही है गांधी मैदान? मुल्ला ने कहाः हऔ!
हर बात के उत्तर में ‘हऔ’ शब्द सुन कर मैंने पूछाः यह हऔ क्या होता है? हऔ--मुल्ला ने कहाः यहां का आंचलिक शब्द है। बिना पढ़े-लिखे लोग हां को
हऔ बोलते हैं।
तो मैंने कहाः लेकिन नसरुद्दीन, तुम तो पढ़े-लिखे हो।
उसने कहाः हऔ!
पढ़े-लिखे होने से क्या होगा? शास्त्र ऊपर ही ऊपर रह जाते हैं; तुम्हारे अंतर को नहीं छू पाते। क्रियाकांड जड़ होते हैं। तुम रोज दोहरा लो गायत्री, मगर तोतों जैसी होती है।
एक नव-रईस ने, नये-नये हुए रईस ने अपने मेहमानों का स्वागत करने के लिए अपने नौकर मुल्ला नसरुद्दीन को सिखाया कि वे जब भी कोई चीज मंगाएं तो वह पहले पूछ ले कि किस किस्म की चीज लाए। जैसे अगर वे कहें कि पान लाओ, तो नौकर को तुरंत मेहमानों के सामने पूछना चाहिएः हुजूर, कौन सा पान? मगही या बनारसी? महोबा या कपूरी? ताकि रोब बंध जाए मेहमान पर कि कोई साधारण रईस नहीं है; सब तरह के पान उपलब्ध हैं घर में।
एक दिन मेहमानों के लिए उन्होंने शरबत मंगाया, तो हुक्म के मुताबिक मुल्ला नसरुद्दीन ने तुरंत लिस्ट दोहराईः कौन सा शरबत लाऊं हुजूर? खस का या अनार का? केवड़े का या बादाम का?
शरबत पीकर जब मेहमान विदा लेने लगे तो सौजन्यवश बोलेः आपके पिताजी के दर्शन किए बहुत दिन हो गए हैं, क्या हम उनके दर्शन कर सकते हैं?
नव-रईस ने मुल्ला से कहाः जा, मुल्ला, पिताजी को बुला ला।
आज्ञाकारी नसरुद्दीन तुरंत बोलाः कौन से पिताजी? इंग्लैंड वाले या फ्रांस वाले या अमरीका वाले?
क्रियाकांड में उलझा हुआ आदमी इससे ज्यादा ऊपर नहीं उठ पाता--सब थोथा- थोथा! समझ नहीं होती, क्या कर रहा है। जैसा बताया है वैसा कर रहा है। कितनी आरती उतारनी, उतनी आरती उतार देता है। कितने चक्कर लगाने मूर्ति के, उतने चक्कर लगा लेता है। कितने फूल चढ़ाने, उतने फूल चढ़ा देता है। कितने मंत्र जपने, उतने मंत्र जप लेता है। कितनी माला फेरनी, उतनी माला फेर देता है। लेकिन हृदय का कहीं भी संस्पर्श नहीं है। और न कहीं कोई बोध है।
राम बिना फीका लगै...
दरिया ठीक कहते हैंः जब तक भीतर का राम न जगे या किसी जागे हुए राम के साथ संग-साथ न हो जाए, तब तक सब फीका है।
... सब किरिया सास्तर ग्यान।
दरिया दीपक कह करै, उदय भया निज भान।।
और जब अपने भीतर ही सूरज उग आता है तो फिर बाहर के दीयों की कोई जरूरत नहीं रह जाती। न शास्त्र की जरूरत रह जाती है, न क्रियाकांडों की जरूरत रह जाती है। जब अपना ही बोध हो जाता है तो फिर आवश्यक नहीं होता कि हम दूसरों के उधार बोध को ढोते फिरें।
दरिया दीपक कह करै, उदय भया निज भान।
दरिया कहता हैः अब तो कोई जरूरत नहीं है। अब उपनिषद कुछ कहते हों तो कहते रहें; ठीक ही कहते हैं। कुरान कुछ कहती हो तो कहती रहे; ठीक ही कहती है। अपना ही कुरान जग गया। अपने ही भीतर आयतें खिलने लगीं। अपने भीतर ही उपनिषद पैदा होने लगे।
सदगुरु सिद्धांत नहीं देता; सदगुरु जागरण देता है। सदगुरु शास्त्र नहीं देता; स्वबोध देता है। सदगुरु क्रियाकांड नहीं देता; स्वानुभूति देता है, समाधि देता है।
दरिया नर-तन पाए कर, कीया चाहै काज।
राव रंक दोनों तरैं, जो बैठें नाम-जहाज।।
दरिया कहते हैंः जिंदगी मिली है तो कुछ कर लो। असली काम कर लो!
... कीया चाहै काज।
ऐसे ही व्यर्थ के कामों में मत उलझे रहना। कोई धन इकट्ठा कर रहा है, कोई बड़े पद पर चढ़ा जा रहा है। सब व्यर्थ हो जाएगा। मौत आती ही होगी। मौत

आएगी, सब पानी फेर देगी तुम्हारे किए पर। जिस काम पर मौत पानी फेर दे, उसको असली काज मत समझना।
दरिया नर-तन पाए कर, कीया चाहै काज।
यह मनुष्य का अदभुत जीवन मिला है। असली काम कर लो। असली काम क्या है?
राव रंक दोनों तरैं, जो बैठें नाम-जहाज।
प्रभु का स्मरण कर लो। प्रभु के स्मरण की नाव पर सवार हो जाओ। इसके पहले कि मौत तुम्हें ले जाए, प्रभु की नाव पर सवार हो जाओ।
मुसलमान हिंदू कहा, शट दरसन रंक राव।
जन दरिया हरिनाम बिन, सब पर जम का दाव।।
और ख्याल रखना, मौत फिकर नहीं करती कि तुम हिंदू हो कि मुसलमान कि ईसाई कि जैन। और मौत फिकर नहीं करती कि गरीब हो कि अमीर। और मौत फिकर नहीं करती कि चपरासी हो कि राष्ट्रपति। कोई फर्क नहीं पड़ता।
मुसलमान हिंदू कहा, शट दरसन रंक राव।
इससे भी फर्क नहीं पड़ता कि तुम्हें छहों दर्शन कंठस्थ हैं, कि तुम चारों वेद के पाठी हो, कि तुम पूरी कुरान स्मृति से दोहरा सकते हो। मौत इन सब बातों की चिंता नहीं करेगी।
जन दरिया हरिनाम बिन...
सिर्फ एक चीज पर मौत का वश नहीं चलता--वह है राम का तुम्हारे भीतर जग जाना, राम की सुरति पैदा हो जाना। अन्यथा--
... सब पर जम का दाव।
सब पर मौत का कब्जा है। सिर्फ राम अमृत है, बाकी सब मरणधर्मा है।
और कितना ही धन मिल जाए, कहां होती पूरी वासना! लगता है और-और। और कितना ही बड़ा पद हो, सीढ़ियों पर आगे और सोपान होते हैं। और कहीं भी पहुंच जाओ, दौड़ जारी रहती है, आपाधापी मिटती ही नहीं।

कहो जागरण से जरा सांस ले ले,
अभी स्वप्न मेरा अधूरा-अधूरा।
इससे आदमी जागने तक से डरता है, क्योंकि न मालूम कितने स्वप्न अभी अधूरे-अधूरे हैं।
कहो जागरण से जरा सांस ले ले,
अभी स्वप्न मेरा अधूरा-अधूरा।

लकीरें बनी हैं न तस्वीर पूरी
अभी ध्यान है साधना है अधूरी
हुआ कल्पना का अभी तक उदय ही
रहा साथ मेरे अभी तक मलय ही मुझे देवता मत पुरस्कार देना। अभी यत्न मेरा अधूरा-अधूरा।

अभी चांद का रथ हुआ है रवाना कली को न आया अभी मुस्कुराना अभी तारकों पर उदासी न छाई
दीये ने न मांगी अभी तक बिदाई प्रभाती न गाओ, सुबह मत बुलाओ, अभी प्रश्न मेरा अधूरा-अधूरा।

अभी आग है आरती कब बनी है
अभी भावना भारती कब बनी है
मुखर प्रार्थना, मौन अर्चन नहीं है निवेदन बहुत है समर्पण नहीं है अभी से कसौटी न मुझको चढ़ाओ,
खरा स्वर्ण मेरा अधूरा-अधूरा।

पवन डाल की पायलों को बजाए

किरण फूल के कुंतलों को खिलाए
भ्रमर जब चमन को मुरलिया सुनाए
मुझे जब तुम्हारी कभी याद आए
तभी द्वार आकर तभी लौट जाना,
हृदय भग्न मेरा अधूरा-अधूरा।

आदमी डरा-डरा रहता है, क्योंकि सभी तो अधूरा-अधूरा है। इस संसार में कभी कुछ पकता ही नहीं और मौत आ जाती है; कभी कुछ पूरा नहीं होता और मौत आ जाती है। इसलिए सब आपाधापी व्यर्थ है, सारा श्रम निरर्थक है। करना हो कुछ तो असली काज, असली काम कर लो।
... जो बैठें नाम-जहाज।
उसने कर लिया असली काज।
मुसलमान हिंदू कहा, शट दरसन रंक राव।
जन दरिया हरिनाम बिन, सब पर जम का दाव।।
जो कोई साधु गृही में, माहिं राम भरपूर।
दरिया कह उस दास की, मैं चरनन की धूर।।
जिसको साधु में, असाधु में राम दिखाई पड़ने लगे, बस जानना कि वही पहुंचा है।
जो कोई साधु गृही में, माहिं राम भरपूर।
जो संसारी में भी राम को ही देखता है, गृही में भी राम को ही देखता है, अगृही में भी; संन्यासी और संसारी में जिसे भेद ही नहीं है; जिसे दोनों में एक ही राम दिखाई पड़ता है; जिसे बस राम ही दिखाई पड़ता है।
दरिया कह उस दास की, मैं चरनन की धूर।
बस मैं उसके ही चरणों की धूल हो जाऊं, इतना ही काफी है। बस इतनी आकांक्षा काफी है। जिसने राम को जाना हो, उसके चरण तुम्हारे हाथ में आ जाएं तो राम तुम्हारे हाथ आ गए। जिसने राम को जाना हो, उसकी बात तुम्हारे कान में पड़ जाए तो राम की बात तुम्हारे कान में पड़ गई।
दरिया सुमिरै राम को, सहज तिमिर का नास।
घट भीतर होए चांदना, परमजोति परकास।।
दरिया सुमिरै राम को...
बस एक राम की स्मृति, और सारा अंधकार मिट जाता है--ऐसे जैसे कोई दीया जलाए और अंधकार मिट जाए!
इस बात को खूब ध्यान में रख लेना। तुम्हें बार-बार उलटी ही बात समझाई जाती रही है। तुम्हें निरंतर नीति की शिक्षा दी गई है और धर्म से तुम्हें वंचित रखा गया है। नीति की इतनी शिक्षा दी गई है कि धीरे-धीरे तुम नीति को ही धर्म समझने लगे हो।
नीति और धर्म बड़े विपरीत आयाम हैं। नीति का अर्थ होता हैः एक-एक बीमारी से लड़ो। नीति का अर्थ होता हैः क्रोध है तो अक्रोध साधो; और लोभ है तो अलोभ साधो; और आसक्ति है तो अनासक्ति साधो। हर बीमारी का इलाज अलग-अलग। और धर्म का अर्थ होता हैः सारी बीमारियों की जड़ को काट दो। जड़ है तुम्हारी सोई अवस्था, तुम्हारी मूर्च्छित अवस्था। उस जड़ को काट दो, जाग जाओ--और सारी बीमारियां तिरोहित हो जाती हैं।
नीति है अंधेरे से लड़ना। इधर से धकाओ, उधर से धकाओ। लेकिन अंधेरा कहीं धकाने से मिटता है? दीये को जलाओ! धर्म का अर्थ हैः दीये को जलाओ! अंधेरे की बात ही छोड़ो।
मुझसे लोग आकर पूछते हैंः क्रोध कैसे मिटे? लोभ कैसे मिटे? कामवासना
का क्या करें? और मैं उन सभी को एक ही उत्तर देता हूंः ध्यान करो।
एक दिन एक व्यक्ति ने पूछाः क्रोध कैसे मिटे?
मैंने कहाः ध्यान करो।
वह बैठा ही था, तभी दूसरे ने पूछा कि लोभ कैसे मिटे?
मैंने कहाः ध्यान करो।
पहला वाला बोला कि रुकें! यही तो आपने मुझे भी कहा है। और मेरी बीमारी क्रोध है और इसकी बीमारी लोभ है। इलाज एक कैसे हो सकता है?

नीति प्रत्येक बीमारी की अलग-अलग व्यवस्था करती है। इसलिए नीति बड़ी तर्कयुक्त मालूम होती है।
नीति कितनी ही तर्कयुक्त मालूम हो, व्यर्थ है। नीति को साध कर कोई कभी नैतिक नहीं हो पाता। हां, धर्म को जान कर लोग नैतिक हो जाते हैं। नैतिक व्यक्ति धार्मिक नहीं होता; धार्मिक व्यक्ति अनिवार्य रूप से नैतिक हो जाता है, स्वाभाविक रूप से नैतिक हो जाता है।
एक ही चीज करनी है--जागना है।
नींद क्या है? और जागना क्या है?

एक वस्तु है, एक बिंब है, मैं दोनों के बीच--
मेरे दृग दोनों के बीच!

कितना भी मैं चितवन फेरूं,
चाहे एक किसी को हेरूं,
उभय बने रहते हैं दृग में--
सर में पंकज-कीच!
एक रूप है, एक चित्र है, मैं दोनों के बीच-- मेरे दृग दोनों के बीच!

मींच भले लूं लोचन अपने
दोनों बन आते हैं सपने,
मैं क्या खींचूं, वे ही खिंच कर
लेते हैं मन खींच!
एक सत्य है, एक स्वप्न है, मैं दोनों के बीच-- मेरे दृग दोनों के बीच!

प्यासा थल, जल की आशा में,
रटता है जब खग-भाषा में,
रवि-कर ही तब, घन-गागर भर
जाते हैं बन सींच!
एक ब्रह्म है, एक प्रकृति है, मैं दोनों के बीच--
मेरे दृग दोनों के बीच!

यह मैं-भाव, बस यह मैं-भाव हमारी निद्रा है, हमारी तंद्रा है, हमारी मूर्च्छा है। जिसने मैं-भाव छोड़ा वह जागा। इस मैं के कारण दो हो गए हैं जगत--प्रकृति और परमात्मा भिन्न मालूम हो रहे हैं, क्योंकि मैं बीच में खड़ा हूं।
मिट्टी के घड़े को ले जाओ और नदी में डुबा दो। मिट्टी के घड़े में पानी
भर जाएगा। बाहर भी वही पानी है, भीतर भी वही पानी है; बीच में एक मिट्टी की दीवाल खड़ी हो गई। अब घड़े का पानी अलग मालूम होता है, नदी का पानी अलग मालूम होता है। अभी-अभी एक थे, अब भी एक हैं; बस जरा सी घड़े की दीवाल, पतली सी मिट्टी की दीवाल।
बस ऐसी ही क्षीण सी अहंकार की एक भाव-दशा है जो हमें परमात्मा से अलग किए है। और हम बीच में खड़े हैं, इसलिए प्रकृति और परमात्मा अलग मालूम हो रहे हैं। जहां मैं गया वहां प्रकृति और परमात्मा भी एक हो जाते हैं।
दरिया सुमिरै राम को, सहज तिमिर का नास।
घट भीतर होए चांदना, परमजोति परकास।।
याद आने लगे परमात्मा की... अहंकार खोए तो ही याद आए। या तो मैं या तू, याद रखना। दोनों साथ नहीं रह सकते।
सूफी फकीर जलालुद्दीन की कविता तुम्हें याद दिलाऊं। प्रेमी ने अपनी प्रेयसी के द्वार पर दस्तक दी है। भीतर से आवाज आईः कौन है? प्रेमी ने कहाः मैं हूं, तेरा प्रेमी! पहचाना नहीं? लेकिन प्रेयसी ने भीतर से कहाः यह घर छोटा है। प्रेम का घर छोटा है। इसमें दो न समा सकेंगे। लौट जाओ अभी।

तैयारी करके आना, प्रेम के घर में दो नहीं समा सकते। एक म्यान में दो तलवारें न रह सकेंगी।
प्रेमी लौट गया। चांद आए और गए। सूरज उगे और डूबे। वर्ष, माह बीते। धीरे-धीरे, धीरे-धीरे-धीरे मैं-भाव को मिटाया, मिटाया, मिटाया। और जब मैं- भाव मिट गया, फिर द्वार पर दस्तक दी। वही प्रश्नः कौन है? लेकिन प्रेमी ने इस बार कहाः तू ही है। तू ही बाहर, तू ही भीतर!
और रूमी की कविता कहती हैः द्वार खुल गए! जहां एक बचा वहां द्वार खुल जाएंगे। जब तक दो हैं, तब तक अड़चन है। दुई ही हमारी दुविधा है। दुई गई कि सुविधा हुई।
घट भीतर होए चांदना...
जरा यह मैं मिटे, यह अहंकार का अंधकार मिटे तो चांद भीतर उग आता है।
घट भीतर होए चांदना...
चांदनी ही चांदनी हो जाती है। चांद की चांदी ही चांदी बिखर जाती है।
... परमजोति परकास।
और उस ज्योति का अनुभव होता है जो शाश्वत है। बिन बाती बिन तेल! न तो उसकी कोई बाती है और न कोई तेल है; इसलिए चुकने का कोई सवाल नहीं है, बुझने का कोई सवाल नहीं है।
सतगुरु-संग न संचरा, रामनाम उर नाहिं।
ते घट मरघट सारिखा, भूत बसै ता माहिं।।
जो व्यक्ति सदगुरु के संग न उठा-बैठा, जिस व्यक्ति ने सदगुरु न खोजा,
जो व्यक्ति सदगुरु की हवा में श्वास न लिया--
सतगुरु-संग न संचरा, रामनाम उर नाहिं।
और जिसके हृदय में राम का नाम न जगा, राम का भाव न उठा, राम का संगीत न गूंजा--वह मरघट की भांति है।
ते घट मरघट सारिखा...
वह जिंदा नहीं है, मरा ही हुआ है। उसके पास जिंदगी जैसा क्या है? बस चलती-फिरती एक लाश है।
ते घट मरघट सारिखा, भूत बसै ता माहिं।
उसके भीतर आत्मा नहीं बसती, सिर्फ भूत समझो।
भूत बड़ा प्यारा शब्द है। इसका अर्थ होता हैः अतीत। इसीलिए तो कहते हैंः भूतपूर्व मंत्री! इस देश में बहुत भूत हैं--कोई भूतपूर्व मंत्री हैं, कोई भूतपूर्व प्रधानमंत्री हैं, कोई भूतपूर्व कुछ हैं, कोई कुछ हैं! भूतपूर्व राष्ट्रपति! भूत ही भूत!
भूत का अर्थ होता हैः अतीत। जो बीत गया। जिस मनुष्य के भीतर सिर्फ अतीत ही अतीत है और वर्तमान का कोई संस्पर्श नहीं है, वह भूत है। बस वह लग रहा है कि जी रहा है। उससे जरा दूर-दूर रहना और सावधान! कहीं लग-लगा न जाए। और मन का ढंग ही एक है--अतीत। मन भूत है। मन जीता ही अतीत में है। जो बीत गया, उसी को इकट्ठा करता रहता है। सारे कल जो बीत गए हैं, उनको इकट्ठा करता रहता है। मन है ही क्या सिवाय स्मृति के? और स्मृति यानी भूत।
अतीत से छोड़ो नाता, वर्तमान से जोड़ो। काश, एक क्षण को भी तुम्हारे भीतर भूत न रह जाए! भूत नहीं रहेगा तो उसकी छाया जो पड़ती है, भविष्य, वह भी नहीं रहेगी। भविष्य भूत की छाया है। भूत गया, भविष्य गया। तब रह जाता है शुद्ध वर्तमान। हीरे जैसा दमकता और चमकता यह क्षण! और इसी क्षण में से द्वार है परमात्मा का।
सत्संग का और कोई अर्थ नहीं होता है। सदगुरु के पास बैठने का और कोई अर्थ नहीं होता है। सदगुरु के भीतर अब न भूत है, न भविष्य। सदगुरु अब सिर्फ अभी और यहीं है। सदगुरु शुद्ध वर्तमान है; न पीछे की तरफ देखता है, न आगे की तरफ, बस यहीं ठहरा हुआ है। इस क्षण के अतिरिक्त उसकी कोई और चिंतना नहीं है।
और तुम जानते हो, अगर यही क्षण हो तो विचार नहीं हो सकते। विचार या तो अतीत के होते हैं या भविष्य के होते हैं। वर्तमान का कोई विचार ही नहीं होता। इस महत्वपूर्ण बात को कुंजी की तरह सम्हाल कर रखना। वर्तमान का कोई विचार नहीं होता। वर्तमान में कोई विचार नहीं होता। विचार ही बनता है, जब कोई चीज बीत जाती है। विचार बीते का होता है, व्यतीत का होता है, अतीत का

होता है; जा चुका, उसकी रेखा छूट जाती है, लीक छूट जाती है, पद-चिह्न छूट जाते हैं। या विचार भविष्य का होता है--जो होना चाहिए, जिसकी आकांक्षा है, अभीप्सा है, जिसकी वासना है। लेकिन वर्तमान का क्या विचार? वर्तमान निर्विचार होता है। और निर्विचार हो जाना ही सत्संग है। ऐसे किसी व्यक्ति के पास अगर बैठते रहे, बैठते रहे--जो निर्विचार है, जिसके भीतर सन्नाटा है और शून्य है--तो शून्य संक्रामक है। उसके पास बैठते-बैठते शून्य की बीमारी लग जाएगी। तुम्हारे भीतर भी सन्नाटा छाने लगेगा। तुम्हारे भीतर भी धीरे- धीरे शून्य की तरंगें उतरने लगेंगी। जिसके साथ रहोगे वैसे हो जाओगे। बगीचे से गुजरोगे, फूल न भी छुए, तो भी वस्त्रों में फूलों की गंध आ जाएगी। मेंहदी पीसोगे, मेंहदी हाथ में लगानी भी न थी, तो भी हाथ रंग जाएंगे।
सत्संग में बैठना, जहां फूल खिले हैं वहां बैठना है। थोड़ी-बहुत गंध पकड़ ही जाएगी। तुम्हारे बावजूद पकड़ जाएगी। और वही गंध तुम्हें अपने भीतर की गंध के मूलस्रोत की स्मृति दिलाएगी।
सतगुरु-संग न संचरा, रामनाम उर नाहिं।
ते घट मरघट सारिखा, भूत बसै ता माहिं।
दरिया काया कारवी, मौसर है दिन चार।
जब लग सांस शरीर में, तब लग राम संभार।।
कहते हैंः सुनो, समझो। यह शरीर तो मिथ्या है, मिट्टी का है। यह तो अब गया, तब गया। यह तो जाने ही वाला है।
दरिया काया कारवी...
यह तो बस माया का खेल है। यह तो जैसे किसी जादूगर ने धोखा दे दिया हो, ऐसा धोखा है।
... मौसर है दिन चार।
और बहुत ही छोटा अवसर है--दिन चार का। बस चार दिन का अवसर है।
जब लग सांस शरीर में, तब लग राम संभार।
इन छोटे से दिनों में, इन थोड़े से समय में, इन चार दिनों में राम को सम्हाल लो।
जब लग सांस शरीर में...
और अंत क्षण तक स्मरण रखनाः जब तक श्वास रहे शरीर में, तब तक राम को भूलना मत। राम को याद करते-करते ही जो विदा होता है, उसे फिर दुबारा वापस देह में नहीं आना पड़ता। राम में डूबा-डूबा ही जो जाता है, वह राम में डूब ही जाता है, फिर उसे लौटना नहीं पड़ता। फिर उसे वापस संकीर्ण नहीं होना पड़ता। इस छोटी सी देह के भीतर आबद्ध नहीं होना पड़ता।
दरिया आतम मल भरा, कैसे निर्मल होए।
साबन लागै प्रेम का, रामनाम-जल धोए।।
बहुत गंदगी है, माना। निर्मल करना है इसे, दरिया कहते हैं, तो दो काम करना। प्रेम का साबुन! जितना बन सके उतना प्रेम करो। जितना दे सको उतना प्रेम दो। प्रेम तुम्हारी जीवन-चर्या हो।
साबन लागै प्रेम का, रामनाम-जल धोए।
तो प्रेम से तो लगाओ साबुन और राम-नाम के जल से धोते रहो। प्रेम और ध्यान, बस दो बातें हैं। ध्यान भीतर, प्रेम बाहर। प्रेम बांटो और ध्यान सम्हालो। ध्यान की ज्योति जले और प्रेम का प्रकाश फैले, बस पर्याप्त है।
इतना सध गया, सब सध गया। इतना न सधा, तो चूके अवसर।
दरिया सुमिरन राम का, देखत भूली खेल।
धन धन हैं वे साधवा, जिन लीया मन मेल।।
दरिया कहते हैंः जब से राम का स्मरण आया, और सब खेल भूल गए। और सब खेल
ही हैं। छोटे बच्चे मॉनोपाली का खेल खेलते हैं, बड़े बच्चे भी मॉनोपाली का खेल खेलते हैं। छोटे बच्चों का बोर्ड होता है मॉनोपाली का, नकली नोट होते हैं। मगर तुम्हारे नोट असली हैं? उतने ही नकली हैं। मान्यता के नोट हैं। मान लिया है तो धन मालूम होता है। आदमी न रहे जमीन पर, सोना यहीं रहेगा, चांदी यहीं रहेगी; लेकिन फिर उसे कोई धन न कहेगा। हीरे भी पड़े रहेंगे; कंकड़-पत्थरों में, हीरों में कोई भेद न रहेगा। कोहिनूर और कोहिनूर के पास

पड़ा हुआ कंकड़, दोनों में कोई मूल्य-भेद नहीं होगा। आदमी मूल्य-भेद खड़ा करता है। सब मूल्य-भेद आदमी के निर्मित हैं, बनाए हुए हैं, कल्पित हैं। दरिया सुमिरन राम का, देखत भूली खेल।
और कैसे-कैसे खेल चल रहे हैं! किसी तरह प्रसिद्ध हो जाऊं, लोग मुझे जान लें, लोगों में नाम हो, प्रतिष्ठा हो--सब खेल हैं! तुम ही न रहोगे, तुम्हारा नाम रहा न रहा, क्या फर्क पड़ता है? तुम न रहोगे, दस-पांच जो तुम्हें याद करते थे, कल वे भी न रहेंगे। पहले तुम मिट जाओगे, फिर उन दस-पांच के मिटने के साथ तुम्हारी स्मृति भी मिट जाएगी।
कितने लोग इस जमीन पर रह चुके हैं तुमसे पहले, जरा उनकी याद करो। वैज्ञानिक कहते हैंः जिस जगह तुम बैठे हो वहां कम से कम दस आदमियों की लाशें गड़ी हैं। इतने लोग जमीन पर रह चुके हैं कि अब तो हर जगह मरघट है! बस्तियां कई बार बस चुकीं और उजड़ चुकीं। कई बार मरघट बस्तियां बन गए और बस्तियां मरघट बन गईं। मोहनजोदड़ो की खुदाई में सात पर्तें मिलीं। मोहनजोदड़ो सात बार बसा और सात बार उजड़ा। हजारों साल में ऐसा हुआ होगा। मगर कितनी बार मरघट बन गया और कितनी बार फिर बस गया! तुम मरघट जाने से डरते हो, डरने की कोई जरूरत नहीं है; जहां तुम रह रहे हो वहां कई दफा मरघट रह चुका है। छोड़ो भय।
सारी पृथ्वी लाशों से भरी है। फिर भी खेल नहीं छूटते। खेल छूटेंगे भी नहीं, जब तक कि राम-नाम का स्मरण न आ जाए। जब तक प्रभु की तलाश तुम्हारे प्राणों को न पकड़ ले, जब तक उसकी प्यास ही एकमात्र प्यास न हो जाए, तब तक खेल छूटेंगे भी नहीं। हां, उसकी प्यास पकड़े कि खेल अपने आप छूट जाते हैं। फिर ख्याल करना फर्क! दरिया यह नहीं कह रहे हैं कि खेल छोड़ दो। दरिया
कह रहे हैंः राम याद कर लो, खेल अपने से छूट जाते हैं। छूट जाएं ठीक, न छूटें ठीक। मगर इतना पक्का हो जाता है कि खेल खेल हैं, इतना मालूम हो जाता है। इतना मालूम हो गया, बात खत्म हो गई।
रामलीला में तुम राम बने हो तो कोई ऐसा थोड़े ही कि घर जाकर रोओगे कि अब सीता का क्या हो रहा होगा अशोक-वाटिका में! रामलीला में रोते फिरोगे, झाड़-झाड़ से पूछोगे कि हे झाड़, मेरी सीता कहां है? और जैसे ही पर्दा गिरा कि भागे घर की तरफ, क्योंकि वहां दूसरी सीता प्रतीक्षा कर रही है। और रात जब नींद लग जाएगी तो दूसरी सीता को भी भूल जाओगे, क्योंकि नींद में और हजार सीताएं हैं, जिनसे मिलना है। पर्दे पर पर्दे हैं, खेल पर खेल हैं।
नाटक में एक अभिनय कर लेते हो, ऐसा ही सारे जीवन को समझता है संन्यासी। जो अभिनय परमात्मा दे दे, कर लेता है। अगर उसने कहा कि चलो दुकानदार बनो, तो दुकानदार बन गए। और उसने कहा कि शिक्षक बनो, तो शिक्षक बन गए। उसने कहा कि स्टेशन मास्टर बन जाओ, तो स्टेशन मास्टर बन गए; ले ली झंडी और बताने लगे। मगर अगर एक बात याद बनी रहे कि खेल उसका, हम सिर्फ खेल खेल रहे हैं। जब उसका बुलावा आ जाएगा कि अब लौट आओ घर, पर्दा गिर जाएगा, घंटी बज जाएगी, घर वापस लौट जाएंगे।
खेल छोड़ने की ही बात नहीं है; खेल को खेल जानने में ही उसका छूट जाना है। जानना मुक्ति है।
इसलिए मैं तुमसे यह नहीं कहता कि तुम जहां हो वहां से भाग जाओ। क्योंकि अगर तुम भाग गए वहां से तो तुम भागने का खेल खेलोगे। तुम्हारे साथ बड़ी मुसीबत है। कुछ लोग गृहस्थी का खेल खेल रहे हैं, कुछ लोग संन्यास का खेल खेलने लगते हैं। अब जो पत्नी को छोड़ कर भागा है, उसे एक बात तो पक्की है कि वह यह नहीं मानता कि पत्नी के पास रहना खेल था। खेल था तो भागना क्या था? खेल होता तो भागना क्या था? खेल ही है तो जाना कहां है? तो बच्चे थे, पत्नी थी, द्वार, घर, सब ठीक था; खेल था, चुपचाप खेलता रहता। छोड़ कर भागा, तो एक बात तो पक्की है कि उसने खेल को खेल न माना, बहुत असली मान लिया। अब यह भाग कर जाएगा कहां? वह जो असली मानने वाली बुद्धि है, वह तो साथ ही जाएगी न! मन तो छूट नहीं जाएगा। घर छूट जाएगा, पत्नी छूट जाएगी; मगर पत्नी और घर को असली मानने वाला मन--यह कहीं जाकर आश्रम बना लेगा तो आश्रम का खेल खेलेगा। मेरे एक मित्र हैं। उनको मकान बनाने का शौक है। अपना मकान तो उन्होंने सुंदर बनाया ही बनाया; यह उनकी हॉबी है। किसी मित्र का भी मकान बनता हो तो वे उसमें भी दिन-रात लगाते। एक दिन मुझे खबर आई कि वे संन्यासी

हो गए। मैंने कहाः यह तो बड़ा मुश्किल पड़ेगा उनको। हॉबी का क्या होगा? संन्यासी होकर क्या करेंगे? कोई दस साल बीत गए, तब मैं उस जगह से गुजरा जहां वे रहते थे पहाड़ी पर। तो मैंने कहा कि जरा मोड़ तो होगा, दस-बारह मील का चक्कर लगेगा, लेकिन जरा देखता चलूं कि वे कर क्या रहे हैं? हॉबी का क्या हुआ?
हॉबी जारी थी। छाता लगाए भर दोपहरी में खड़े थे। मैंने पूछाः क्या कर रहे हो?
उन्होंने कहाः आश्रम बनवा रहे हैं!
अब आश्रम बन रहा है। वही का वही आदमी है, वही का वही खेल। तो मैंने कहाः तुम वहीं से क्यों आए? यह काम तो तुम वहीं करते थे। और सच पूछो तो जब तुम मित्रों के मकान बनवाते थे तो उसमें कम आसक्ति थी; यह तुम अपना आश्रम बनवा रहे हो, इसमें आसक्ति और ज्यादा हो जाएगी।
वे कहने लगेः बात तो ठीक है। मगर यह मकान बनाने की बात मुझसे छूटती ही नहीं। बस इसके ही सपने उठते हैं--ऐसा मकान बनाओ, वैसा मकान बनाओ... ।
तुम भाग जाओगे, लेकिन तुम अपने को तो छोड़ कर नहीं भाग सकोगे। तुम तो साथ ही चले जाओगे। तुम्हारी सारी भूल-भ्रांति साथ चली जाएगी।
नाटक समझ में आ जाए कि नाटक है, बस बात खत्म हो गई। फिर जहां हो वहीं विश्राम हो गया। फिर जैसे हो वहीं संन्यस्त हो गए। यह बात ऊपर-ऊपर न रहे; यह बात भीतर बैठ जाए; यह रोएं-रोएं में समा जाए।
एक गांव में रामलीला हुई। लक्ष्मण जी बेहोश पड़े हैं, हनुमान जी गए हैं संजीवनी बूटी लेने। मिली नहीं तो पूरा पहाड़ लेकर आए। रामलीला का पहाड़! एक रस्सी पर सारा खेल बनाया गया था, क्योंकि उड़ते हुए आना है। तो रस्सी पर एक नकली पहाड़ लिए हनुमान जी आए। गांव की रामलीला! जिस चरखी पर रस्सी घूम रही थी, रस्सी और चरखी कहीं उलझ गई। गांठ न खुले। जनता अलग बेचैन। लक्ष्मण जी भी बीच-बीच में आंख खोल कर देख लें कि बड़ी देर हुई जा रही है। रामचंद्र जी भी ऊपर की तरफ आंख उठा कर देखें और कहें कि हे हनुमान जी, कहां हो? जल्दी आओ। लक्ष्मण जी के प्राण संकट में पड़े हैं। हनुमान जी सब सुन रहे हैं, मगर बोलें तो क्या बोलें, क्योंकि वे अटके हैं। किसी को कुछ न सूझा; मैनेजर घबड़ाहट में आ गया, उसने रस्सी काट दी। रस्सी काट दी तो हनुमान जी धड़ाम से पहाड़ सहित नीचे गिरे। गिरे तो भूल ही गए।
रामचंद्र जी ने पूछा कि जड़ी-बूटी ले आए? लक्ष्मण जी मर रहे हैं।
हनुमान जी ने कहा कि ऐसी की तैसी लक्ष्मण जी की! और भाड़ में गई जड़ी- बूटी। पहले यह बताओ रस्सी किसने काटी?
ऊपर-ऊपर हो तो यही हालत होगी। ऊपर-ऊपर नहीं, रोम-रोम भिद जाए। नहीं तो जरा सा खरोंच दिया किसी ने कि फिर भूल जाओगे। यह अंतर्तम में बैठ जाए बात कि यह जगत एक नाटक, एक लीला, एक खेल। फिर होशपूर्वक खेलते रहो खेल।
दरिया सुमिरन राम का, देखत भूली खेल।
धन धन हैं वे साधवा, जिन लीया मन मेल।।
और जिन्होंने इस तरह राम के साथ अपने मन को एक कर लिया है कि अब अपना भेद ही नहीं मानते; उसका खेल है, खिलवाता है तो खेलते हैं; बुला लेगा तो चले जाएंगे; न अपना कुछ यहां है, न लाए, न कुछ ले जाना है--धन्य हैं वे लोग।

सखि! मुझमें अब अपना क्या है!
घिसते घिसते मेरी गागर,
आज घाट पर फूट गई है;
बिथर गया है अहं विवश हो,
मुझसे सीमा छूट गई है,
अब तरना क्या, बहना क्या है! सखि! मुझमें अब अपना क्या है! पाप पुण्य औ’ प्यार-ईर्ष्या, मैंने अपना सब दे डाला;
अर्पण करते ही मेरा सब,
चमक उठा अब उजला-काला;
अब सच क्या और सपना क्या है!

सखि! मुझमें अब अपना क्या है!

अपनी पीड़ाएं सखि! तेरे
स्वर्णिम अंचल पर सब लख कर, मेरी वाणी मौन हो गई,
एक बार अविराम मचल कर;
अब प्रिय से कुछ कहना क्या है! सखि! मुझमें अब अपना क्या है!

इच्छाओं के अगम सिंधु में, जीवन कारज लहर बन गए;
सुधि का यान चला जाता है,
भय तिर-तिर कर प्यार हो गए; पास-दूर अब रहना क्या है! सखि! मुझमें अब अपना क्या है!

ओ, पीड़ा की दिव्य पुजारिन!
तूने जो वरदान दिया है,
तेरा ही तो मधुमय बोझा,
बस क्षण भर को टेक लिया है,
मुझको इसमें सहना क्या है!
सखि! मुझमें अब अपना क्या है!

एक बार राम के साथ मन का मेल हो जाए, फिर अपना क्या है? फिर छोड़ना भी नहीं, फिर पकड़ना भी नहीं। फिर न कुछ त्याग है, न कुछ भोग है।
फिरी दुहाई सहर में, चोर गए सब भाज।
और जैसे ही यह पता चल जाता है कि मन राम में रम गया, कि सारे चोर भाग जाते हैं। भीतर के नगर में डुंडी पिट जाती है--कि अब भाग जाओ! अब यहां रहने में सार नहीं, मालिक आ गया! रोशनी आ गई। अंधेरा भाग जाता है।
फिरी दुहाई सहर में, चोर गए सब भाज।
सत्र फिर मित्र जु भया, हुआ राम का राज।।
फिर क्रोध करुणा हो जाती है; वासना प्रार्थना हो जाती है; काम राम हो जाता है; जो शत्रु थे वे मित्र हो जाते हैं। खूब प्यारी परिभाषा की है राम-राज्य की! इससे बाहर का कोई संबंध नहीं है।
सत्र फिर मित्र जु भया, हुआ राम का राज।
भीतर मन राम के साथ एक हो गया... एक तो है ही, बस जान लिया, प्रत्यभिज्ञा
हो गई कि एक ही है--कि राम-राज्य हो गया! कि जीवन में फिर आनंद ही आनंद की वर्षा है! कि आ गया वसंत!

कसमसाई है लता की देह, फागुन आ गया

पारदर्शी दृष्टियों के पार सरसों का उमगना
गंध-वन में निर्वसन होते पलाशों का बहकना
अंजुरी भर-भर लुटाता नेह, फागुन आ गया

इंद्रधनुषी रंग का विस्तार ओढ़े दिन गुजरते अमलतासों से खिले संबंध फिर मन में उतरते पंखुरियों सा झर गया संदेह, फागुन आ गया

एक वंशी टेर तिरती छरहरी अमराइयों में ताल के संकेत बौराए चपल परछाइयों में झुके पातों से टपकता मेंह, फागुन आ गया

नम अबीरी धूप पर छाने लगा लालिम कुहासा

पुर गया रांगोलियों से व्योम भी कुमकुम छुआ सा
पुलक भरते द्वार, आंगन, गेह, फागुन आ गया

इसी फागुन की प्रतीक्षा है, इसी फागुन की तलाश है--कि बरस जाएं रंग ही रंग, कि प्राण भर जाएं इंद्रधनुषों से, कि सुगंध उठे, कि दीया जले, कि राम-राज्य आए। और आने की कुंजी सीधी-साफ है--मैं-तू का भेद मिट जाए। इधर मिटा मैं-तू का भेद, उधर राम-राज्य का पदार्पण हुआ।
यह तुम्हारा हक है, अधिकार है। गंवाओ तो तुम जिम्मेवार। अवसर को चूको मत। जागो!
अमी झरत, बिगसत कंवल!
दरिया कहते हैंः अमृत बरसता है और कमल खिलते हैं!
आज इतना ही।

अमी झरत, बिगसत कंवल
दूसरा प्रवचन

कितना है जीवन अनमोल

पहला प्रश्नः णमो णमो! फिर-फिर भूले को, चक्र में पड़े को--शब्द की गूंज से, जागृति की चोट से, ज्ञानियों की व्याख्या से; विवेक, स्मृति, सुरति, आत्म-स्मरण और जागृति की गूंज से, फिर चौंका दिया! णमो णमो!

मोहन भारती! चौंकना शुभ है, लेकिन चौंकना काफी नहीं है। चौंक कर फिर
सो जा सकते हो। चौंक कर फिर करवट ले सकते हो! फिर गहरी नींद, फिर अंधेरे की लंबी स्वप्न-यात्रा शुरू हो सकती है।
चौंकना शुभ जरूर है, अगर चौंकने के पीछे जागरण आए। लेकिन सिर्फ चौंकने से राजी मत हो जाना; मत सोच लेना कि चौंक गए तो सब हो गया। ऐसा जिसने सोचा, फिर सो जाएगा। जिसने सोचा कि चौंक गया तो बस सब हो गया, अब करने को क्या बचा--उसकी नींद सुनिश्चित है।
और ध्यान रखना, जो बार-बार चौंक कर सो जाए, फिर धीरे-धीरे चौंकना भी उसके लिए व्यर्थ हो जाता है। यह उसकी आदत हो जाती है। चौंकता है, सो जाता है। चौंकता है, सो जाता है।
तुम कुछ नये नहीं हो, कोई भी नया नहीं है। न मालूम कितने बुद्धों, न मालूम कितने जिनों के पास से तुम गुजरे होओगे। और न मालूम कितनी बार तुमने कहा होगाः "णमो णमो! फिर-फिर भूले को, चक्र में पड़े को चौंका दिया!" और फिर तुम सो गए और चल पड़ा वही... फिर वही स्वप्न, फिर वही आपाधापी, फिर वही मन का विक्षिप्त व्यापार।
चौंकने का उपयोग करो। चौंकना तो केवल शुरुआत है, अंत नहीं। हां, सौभाग्य है, क्योंकि बहुत हैं जो चौंकते भी नहीं। ऐसे जड़ हैं, ऐसे बधिर हैं, उनके कान तक आवाज भी नहीं पहुंचती। और अगर पहुंच भी जाए तो वे उसकी अपने मन के अनुसार व्याख्या कर लेने में बड़े कुशल हैं। अगर ईश्वर भी उनके द्वार पर दस्तक दे, तो वे अपने को समझा लेते हैंः हवा का झोंका होगा, कि कोई राहगीर भटक गया होगा, कि कोई अनजान-अपरिचित राह पूछने के लिए द्वार खटखटाता होगा। हजार मन की व्याख्याएं हैं अपने को समझा लेने की। और जिसने व्याख्या की, उसने सुना नहीं।
सुनो, व्याख्या न करना। सुनो और चोट को पचा मत जाना। चोट का उपयोग करो। चोट सृजनात्मक है। शुभ है कि ऐसी प्रतीति हुई। पर कितनी देर टिकेगी यह प्रतीति? हवा के झोंके की तरह आती हैं प्रतीतियां और चली जाती हैं, और तुम वैसे ही धूल-धूसरित, उन्हीं गड्ढों में, उन्हीं कीचड़ों में पड़े रह जाते हो। कमल कब बनोगे? कीचड़ के चौंकने मात्र से कमल नहीं बन जाएगा। कीचड़ को गुजरना पड़ेगा एक रूपांतरण से, तो कमल जन्मेगा। चौंकी कीचड़ चौंकी कीचड़ है, लेकिन कीचड़ ही है। बेहतर उनसे, जिनके कान पर जूं भी नहीं रेंगती; लेकिन बहुत भेद नहीं है।
ऐसा बहुत मित्रों को होता है। कोई बात सुन कर एक झंकार हो जाती है। कोई बात गुन कर मन की वीणा का कोई तार छिड़ जाता है। कोई गीत जग जाता है। आया झोंका, गया झोंका। उतरी एक किरण और फिर खो गई। मुट्ठी नहीं बंधती, हाथ कुछ नहीं लगता। और बार-बार ऐसा होता रहा तो फिर चौंकना भी व्यर्थ हो जाएगा; वह भी तुम्हारी आदत हो जाएगी।
तो पहली बात तो यह, मोहन भारती, कि शुभ हुआ, स्वागत करो। स्वयं को धन्यवाद दो कि तुमने बाधा न डाली।

बरस भर पर फिर से सब ओर
घटा सावन की घिर आई!

नाचता है मयूर वन में
मुग्ध हो सतरंगे पर खोल
कूक कोकिल ने की सब ओर

मृदुल स्वर में मधुमय रस घोल
सुभग जीवन का पा संदेश धरा सुकुमारी सकुचाई! घटा सावन की घिर आई!

पल्लवों के घूंघट से झांक
पलक-दोलों में कलियां झूल
झकोरों से मीठा अनुराग
मांगतीं घन-अलकों में भूल
झरोखों से अंबर के मूक किसी की आंखें मुसकाईं! घटा सावन की घिर आई!

खुले कुंतल से काले नाग
बादलों के छितराए आज
तड़ित चपला की उज्ज्वल रेख
तिमिर-घन-मुख का हीरक ताज
उड़े भावों के मृदुल चकोर बरस भर पर बदली आई!
घटा सावन की घिर आई!

लेकिन घटा बीत न जाए, हवा उसे उड़ा न ले जाए। बरसे! घटा के आ जाने भर से सावन नहीं आता। घटा के बिना आए भी सावन नहीं आता। लेकिन घटा के आ जाने भर से सावन नहीं आता। बरसे! जी भर कर बरसे! नहा जाओ तुम। सब धूल बह जाए तुम्हारे चित्त के दर्पण की।
प्रीतिकर लगती हैं बातें विवेक की, स्मृति की, सुरति की, आत्म-स्मरण की, जागृति की। लेकिन बातों से क्या होगा? बातें तो फिर बातें ही हैं। कितनी ही प्रीतिकर हों। नहीं, उनसे पेट न भरेगा, मांस-मज्जा न बनेगी। सुंदर-सुंदर शब्द तुम्हें ज्ञानी बना देंगे, ध्यानी न बनाएंगे। और जो ध्यानी नहीं है, उसका ज्ञान दो कौड़ी का है। उसका ज्ञान बासा है, उधार है। ऐसे तो शास्त्रों में ज्ञान भरा पड़ा है, पढ़ लो, संगृहीत कर लो, जितना चाहो उतना कर लो। वेद कंठस्थ कर लो। तो भी तुम तुम ही रहोगे। वेद कंठ में ही अटका रह जाएगा, तुम्हारे हृदय तक उसकी जलधार न पहुंचेगी। सिर्फ ध्यान पहुंचता है हृदय तक, ज्ञान नहीं पहुंचता। ज्ञान तो मस्तिष्क में ही बोझ बन कर रह जाता है। ज्ञान पांडित्य को तो जन्म देता है, प्रज्ञा को नहीं। और प्रज्ञा है, जो मुक्ति लाती है।
मुझे सुन कर भी ऐसी भूल मत कर लेना। मेरे शब्द तुम्हें प्यारे लगें तो तुम उन्हें संगृहीत करोगे; प्यारे लगें तो सम्हाल कर रखोगे, संजो कर रखोगे मस्तिष्क की मंजूषा में। बहुमूल्य हैं, ताले डाल कर रखोगे। इससे कुछ भी न होगा। एक नये तरह का पांडित्य पैदा हो जाएगा। तुम जैसे थे वैसे के वैसे रह जाओगे। घटा आई, सावन न आया। घटा आई और हवाएं उड़ा ले गईं बदली को; तुम रूखे थे, रूखे रह गए।
अमृत बरसना चाहिए। और अमृत उन्हीं पर बरसता है जिनके हृदय ध्यान की पात्रता को पैदा कर लेते हैं।
शब्दों से मत तृप्त होना। "ईश्वर" शब्द ईश्वर नहीं है और न "ध्यान" शब्द ध्यान है, न "प्रेम" शब्द प्रेम है। मगर शब्द बड़ी भ्रांति पैदा करवा देते हैं। हम शब्दों में जीते हैं।
मनुष्यता की सबसे बड़ी खोज शब्द है, भाषा है। और चूंकि मनुष्य की सबसे बड़ी खोज भाषा है, इसलिए मनुष्य भाषा में जीता है। प्रेम की बात करते-करते भूल ही जाती है यह बात कि प्रेम हुआ नहीं अभी। बात करते-करते भरोसा आने लगता है, बहुत बार दोहरा लेने से आत्म-सम्मोहन हो जाता है।
लेकिन प्रेम कुछ बात और है। स्वाद उसका कुछ और है। पीयोगे तो जानोगे। प्रेम शराब है। मदमस्त होओगे तो जानोगे। और ध्यान दूसरा पहलू है प्रेम का। एक ही सिक्का है--एक तरफ ध्यान, एक तरफ प्रेम। और दो ही तरह के लोग हैं इस दुनिया में। या तो ध्यान से जाना जाएगा सत्य। तब जागो। तब ये शब्द जो तुमने सुने और तुम्हें प्रीतिकर लगे--विवेक, स्मृति, सुरति, आत्म-स्मरण, जागृति--इन सारे शब्दों में एक ही बात हैः जागो! जो भी करो, जागरूकता से

करो! उठो, बैठो, चलो--लेकिन स्मरण न खोए, बोध न खोए। यंत्रवत मत चलो, मत उठो, मत बैठो।
महावीर ने कहा हैः विवेक से चले, विवेक से उठे, विवेक से बैठे।
एक-एक कृत्य जागृति के रस से भर जाए। तो धीरे-धीरे शब्द तो खो जाएंगे, लेकिन शब्द के भीतर जो छिपा हुआ अनुभव है वह तुम्हारा हो जाएगा। एक तो रास्ता है ऐसा और एक रास्ता है कि डूबो प्रेम में, मस्ती में, प्रार्थना में, पूजा में, अर्चना में।
उलटी दिखाई पड़ती हैं बातें। एक में जागना है, दूसरे में डूबना है। लेकिन दोनों एक ही जगह ले आती हैं, क्योंकि दोनों में एक ही घटना मूलतः घटती है।
जैसे ही तुम पूरी तरह जागते हो, अहंकार नहीं पाया जाता। जाग्रत चैतन्य में अहंकार की कहीं छाया भी नहीं मिलती, कहीं पदचिह्न भी नहीं मिलते। अहंकार तो अंधेरे में जीता है, रोशनी होते ही खो जाता है। अहंकार अंधेरे का अंग है। अंधकार ही अहंकार है। जैसे ही तुमने जागरण का दीया जलाया, ज्योति उमगी--पाओगे कि भीतर कोई अहंकार नहीं है। तुम तो हो, लेकिन कोई मैं-भाव नहीं है। अस्तित्व है, लेकिन अस्मिता नहीं है।
और अगर प्रेम में डूबे, भक्ति में डूबे, भाव में डूबे, प्रार्थना में डूबे--तो भी अहंकार गया। डूबने से गया। जिसने जाकर चढ़ा दिया परमात्मा के चरणों में अपने को, चढ़ाते ही वह नहीं बचा।
यद्यपि विपरीत दिखाई पड़ती हैं दोनों बातें--ध्यान और प्रेम। और आज तक मनुष्य-जाति के इतिहास में कोई चेष्टा नहीं हुई कि ध्यान और प्रेम को एक साथ जोड़ा जा सके। बुद्ध ध्यान की बात करते हैं, मीरा प्रेम की बात करती है। महावीर ध्यान की बात करते हैं, चैतन्य प्रेम की बात करते हैं। दोनों के बीच कोई तालमेल नहीं बैठ सका, कोई सेतु नहीं बन सका। बनना चाहिए सेतु, क्योंकि दोनों में कुछ विरोध नहीं है; दोनों का परिणाम एक है। यात्रा-पथ भिन्न हों भला, मंजिल एक है, गंतव्य एक है। कोई अपने को डुबा कर खो देता है, कोई अपने को जगा कर खो देता है। दोनों हालत में अहंकार खो जाता है। और अहंकार खो जाए तो परमात्मा ही शेष रह जाता है।
यद्यपि ध्यानियों और प्रेमियों की भाषा भी अलग-अलग होगी। स्वभावतः जिसने ध्यान से सत्य को पाया है, वह परमात्मा की बात ही नहीं करेगा। क्योंकि जिसने ध्यान से सत्य को पाया है, वह आत्मा की बात करेगा। वह कहेगाः अप्पा सो परमप्पा! वह कहेगाः आत्मा ही परमात्मा है। इसलिए महावीर और बुद्ध ईश्वर को स्वीकार नहीं करते। इसलिए नहीं कि नहीं जानते, मगर उनके लिए ईश्वर ध्यान के मार्ग से उपलब्ध हुआ है। ध्यान के मार्ग पर ईश्वर का नाम आत्मा है, स्वरूप है। और जिसने भक्ति से जाना है--मीरा ने या चैतन्य ने, जिन्होंने प्रेम के मार्ग से जाना है--उनके मार्ग पर अनुभूति तो वही है निर-अहंकारिता की, लेकिन अनुभूति को अभिव्यक्ति देने का शब्द अलग है। वे परमात्मा की बात करेंगे।
इन शब्दों से बड़ा विवाद पैदा हुआ है। मैं अपने संन्यासियों को चाहता हूं कि इस विवाद में मत पड़ना। सब विवाद अधार्मिक हैं। विवाद में शक्ति मत गंवाना। तुम्हें जो रुचिकर लगे--अगर ध्यान रुचिकर लगे, ध्यान; अगर भक्ति रुचिकर लगे, भक्ति। मुझे दोनों अंगीकार हैं। और कुछ लोग ऐसे भी होंगे जिन्हें दोनों एक साथ रुचिकर लगेंगे; वे भी घबड़ाएं न। बहुत से प्रश्न मेरे पास आते हैं कि हमें प्रार्थना भी अच्छी लगती है, ध्यान भी अच्छा लगता है! क्या चुनें?
दोनों अच्छे लगते हों तो फिर तो कहना ही क्या! सोने में सुगंध! फिर तो तुम्हारे ऊपर ऐसा रस बरसेगा जैसा अकेले ध्यानी पर भी नहीं बरसता और अकेले भक्त पर भी नहीं बरसता। तुम्हारे भीतर तो दोनों फूल एक साथ खिलेंगे। तुम्हारे भीतर तो दोनों दीये एक साथ जलेंगे। तुम्हारी अनुभूति तो परम अनुभूति होगी। मेरी चेष्टा यही है कि प्रेम और ध्यान संयुक्त हो जाएं और धीरे-धीरे अधिकतम लोग दोनों पंखों को फैलाएं और आकाश में उड़ें। जब एक पंख को फैला कर लोग पहुंच गए सूरज तक, तो जिसके पास दोनों पंख होंगे उसका तो कहना ही क्या!

मगर बात नहीं, मोहन भारती! अपनी पीठ थपथपा कर प्रसन्न मत हो लेना कि मेरी बातों से चोट पड़ी। चोट खो न जाए, चोट पड़ती ही रहे, और गहन होती जाए।
चोट को झेलते ही जाना। लगते-लगते ही तीर लग पाएगा। होते-होते ही बात हो पाएगी। बहुत बार चूकोगे, स्वाभाविक है; उससे पश्चात्ताप भी मत करना।
जन्मों-जन्मों से चूके हो, चूकना तुम्हारी आदत का हिस्सा हो गया है। घबड़ाना भी मत; क्योंकि जो पहुंचे हैं, वे भी बहुत चूक-चूक कर पहुंचे हैं। कोई महावीर तुमसे कम नहीं चूके थे। कोई दरिया तुमसे कम नहीं चूके थे। अनंत-अनंत काल तक चूकते रहे। पर फिर एक दिन पहुंचना हुआ। तुम भी अनंतकाल से चूकते रहे हो, एक दिन पहुंचना हो सकता है। और चूकने वाले पहुंच गए, तुम भी पहुंच सकते हो। मगर जीवन बदलता है अनुभव से, अनुभूति से।
एक मित्र ने पूछा है कि आपने कहा कि जड़वत गायत्री का पाठ करते रहने से कुछ सार नहीं। तो उन्होंने कहा है कि मैं तो यहां आपके आश्रम में भी लोगों को जड़वत ध्यान करते देख रहा हूं, इससे क्या सार है?
भाई मेरे, तुमने ध्यान किया? तुम कैसे देखोगे दूसरों को कि वे जड़वत ध्यान कर रहे हैं या आत्मवत? न तो तुमने गायत्री पढ़ी है, और पढ़ी होगी तो जड़वत ही पढ़ी होगी, अन्यथा यहां क्यों आते? अगर गायत्री का फूल तुम्हारे भीतर खिल गया होता तो यहां क्यों आते? बात खत्म हो गई! इलाज हो गया, फिर चिकित्सक की तलाश नहीं होती। यहां आए हो तो गायत्री अगर पढ़ी होगी तो जड़वत पढ़ी होगी। और यहां तुम दूसरों को देखते हो ध्यान करते!
दूसरों को देखने से कुछ भी न होगा। कैसे तुम जानोगे? अगर दो प्रेमी एक-दूसरे को गले लगा रहे हों तो कैसे तुम जानोगे कि वस्तुतः गले लगाने का अभिनय कर रहे हैं या सच में ही हृदय में उमंग उठी है, प्रीति जगी है, गीत बहा है? कैसे जानोगे बाहर से? बाहर से जानने का कोई उपाय नहीं है। यह भी हो सकता है कि अभिनय ही कर रहे हों; औपचारिक हो, क्रियाकांड हो। यह भी हो सकता है कि वस्तुतः भीतर आनंद जगा हो। मगर बाहर से जानने का कोई उपाय नहीं है। तुम भी थोड़ा नाचो, गाओ, गुनगुनाओ। इतने दूर आ ही गए हो तो ऐसे थोथे प्रश्न पूछ कर वापस मत लौट जाना। ये प्रश्न तो तुम वहीं पूछ सकते थे। यहां आ गए हो तो थोड़ी यहां की शराब पीओ, चखो। और फिर इससे क्या फर्क पड़ता है कि और दूसरे जड़वत कर रहे हैं? तुमने कोई ठेका नहीं लिया किसी के मोक्ष का। तुम अपना मोक्ष सम्हाल लो, इतना काफी है। अगर तुम्हारे भीतर ध्यान जग जाए तो सारी दुनिया जड़वत करती हो ध्यान तो करने दो, चिंता न लो। तुम्हारे भीतर जग जाए ध्यान, तुम पा लोगे। इतना ही तुम्हारा दायित्व है। इतनी ही परमात्मा की तुमसे अपेक्षा है कि तुम खिल जाओ, कि तुम्हारी सुगंध बिखर जाए हवाओं में, कि तुम ऐसे बीज की तरह बंद ही बंद न मर जाना।
देखा होगा लोगों को नाचते, ध्यान करते। सोचा होगाः यह भी सब जड़वत हो रहा है। कैसे पहचानोगे? बुद्ध भी ऐसे ही चलते हैं जैसे कोई और आदमी चलता है। ऐसे ही तो पैर उठाएंगे, ऐसे ही तो हाथ हिलाएंगे, ऐसे ही तो उठेंगे, ऐसे ही तो बैठेंगे। मगर भीतर एक भेद है। और भेद इतना बारीक, इतना नाजुक, कि जो भेद को अनुभव करेगा वही जानेगा। भेद बहुत नाजुक है, बहुत सूक्ष्म है। तुम भी उठते हो, बुद्ध भी उठते हैं; पर फर्क है। क्या फर्क है? बुद्ध होशपूर्वक उठते हैं; तुम उठ जाते हो मशीन की तरह। बुद्ध होशपूर्वक सोते हैं; नींद में भी होश की एक धारा बहती रहती है।
कृष्ण ने कहा हैः जो सबके लिए गहन रात्रि है, तब भी योगी जागा हुआ है।
या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी!
लेकिन तुम योगी को सोया हुआ देखोगे तो भेद न कर पाओगे योगी में और भोगी में, कि कर पाओगे भेद? दोनों एक से मालूम पड़ेंगे, दोनों सोए हैं। भेद भीतर है, बहुत भीतर है। भेद इतना आंतरिक और निजी है कि कोई दूसरा वहां निमंत्रित नहीं किया जा सकता। उस अंतर्तम में तो तुम अपने ही भीतर डुबकी मारोगे तो उतर पाओगे।
आनंद ने बुद्ध से पूछा है कि मैं आपको सोते देखता हूं।... वर्षों आनंद बुद्ध के साथ रहा, तब उसे यह धीरे-धीरे अनुभव हुआ कि कुछ भेद है। चालीस साल बुद्ध के साथ रहा। चालीस साल बुद्ध की सेवा में रत रहा, सुबह से लेकर रात तक। जब तक बुद्ध सो न जाएं, तब तक बिस्तर पर न जाए। जिस कक्ष में बुद्ध सोएं वहीं सोता था--रात कब जरूरत पड़ जाए! कभी नींद न आती होगी। कभी नींद देर से

आती होगी। तो बुद्ध को सोया हुआ देखता रहता था। वर्षों बाद यह ख्याल आया कि थोड़ा सा कुछ भेद मालूम पड़ता है। मगर वह भी धुंधला-धुंधला। बुद्ध से पूछा उसनेः मेरे सोने में और आपके सोने में भी क्या कुछ भेद है? खैर जागने में तो मेरे और आपके भेद है। मुझे कोई गाली दे तो दुख होता है, क्रोध होता है; आपको कोई गाली दे तो क्रोध नहीं होता, दुख नहीं होता।
एक बार एक आदमी ने आपके ऊपर आकर थूक दिया था तो मैं आगबबूला हो गया था। थूका आप पर था, लेकिन मैं भभक उठा था। मेरा पुराना क्षत्रिय जाग उठा था। अगर मेरे हाथ में तलवार होती तो मैंने उसकी गर्दन काट दी होती। लेकिन गर्दन काटने का विचार तो मेरे भीतर तलवार की तरह कौंध गया था। वह तो आपकी तरफ देख कर चुप रहा। किस तरह अपने को चुप रख सका, यह भी आज कहना कठिन है। एक क्षण को तो आप भी भूल गए थे। मगर फिर ख्याल आया था, संकोच आया था कि आपसे आज्ञा ले लूं, फिर इसे जवाब दूं। लेकिन आपने सिर्फ चादर से थूक को पोंछ लिया था और उस आदमी से कहा थाः भाई, कुछ और कहना है? तब तो मैं बहुत चौंका था। तब मुझे भेद दिखाई पड़ा था। मैं तो आग से जल उठा। मैं तो भूल ही गया संन्यास। मैं तो भूल ही गया ध्यान। मैं तो भूल ही गया सब ज्ञान। एक क्षण में वर्ष-वर्ष पुंछ गए। मैं वही का वही था। और आपसे पूछा था कि क्या इस आदमी को सजा दूं? यह आदमी सजा का हकदार है। इसको दंड मिलना ही चाहिए।
तो आप हंसे थे और आपने कहा थाः उसके थूकने से मैं इतना परेशान नहीं, जितना तेरे दुखी और परेशान होने से परेशान हूं। यह तो अज्ञानी है, क्षम्य है; मगर तू तो कितने दिन से ध्यान की चेष्टा में लगा है! अभी तेरा ध्यान इतना भी नहीं पका? यह मनुष्य कुछ कहना चाहता है। तू थूकने को देख रहा है। यह कुछ ऐसी बात कहना चाहता है जो शब्दों से नहीं कही जा सकती।
ऐसा अक्सर प्रेम में और घृणा में हो जाता है--इतने गहरे भाव कि शब्द में नहीं आते। किसी से प्रेम होता है तो तुम गले लगा लेते हो। क्यों? क्योंकि भाषा में कहने से काम नहीं चलेगा। भाषा छोटी पड़ जाती है। गले लगा कर तुम यही तो कहते हो कि भाषा असमर्थ है। कुछ कृत्य करते हो। ऐसे ही यह आदमी क्रोध से जल रहा है। मेरी मौजूदगी से इसे पीड़ा है। मेरे शब्दों से इसे चोट लगी है। मेरे वक्तव्य ने इसकी धारणाओं को खंडित किया है। यह प्रज्वलित है। यह इतना प्रज्वलित है कि कोई गाली काम नहीं करेगी। इसलिए इस बेचारे को थूकना पड़ा है। इस पर दया करो। इसलिए मैं इससे पूछता हूं कि भाई, कुछ और कहना है? यह तो मैं समझ गया, अब और भी कुछ कहना है या बस इतना ही कहना है? यह वक्तव्य है इसका। थूकने को मत देखो।
तो आनंद ने कहाः मैंने वह दिन तो देखा। ऐसे बहुत दिन देखे। जागने में
तो भेद है, पर यह मैंने न सोचा था कि सोने में भी भेद होगा। लेकिन कल रात देर तक नींद न आई, बैठ कर मैं आपको देखता रहा। पूरा चांद आकाश में था, वृक्ष के नीचे आप सोए थे। उस चांद की रोशनी में आप अदभुत सुंदर मालूम होते थे। तब अचानक बिजली जैसे कौंध गई, ऐसा मुझे ख्याल आयाः कितने वर्ष हो गए आपको सोते देख कर, यह बात मुझे कभी पहले क्यों न याद आई कि आप जिस आसन में सोते हैं, रात भर उसी आसन में सोए रहते हैं, बदलते नहीं! जहां रखते हैं पैर सोते समय, वहीं रहता है रात भर पैर। जहां रखते हैं हाथ, वहीं रहता है रात भर हाथ। करवट भी नहीं बदलते। सुबह उसी आसन में उठते हैं। तो सोते हैं कि रात भर अपने को सम्हाले रखते हैं? क्योंकि जो आदमी सोएगा, करवट भी बदलेगा। बुद्ध ने कहाः शरीर सोता है, मैं तो जाग गया हूं। मैं जागा ही हुआ हूं। मगर इस जागने को तुम कैसे जानोगे? आनंद ने सुन लिया; श्रद्धा थी तो मान
भी लिया। लेकिन जानोगे कैसे? पता नहीं बुद्ध झूठ कहते हों! पता नहीं सिर्फ अभ्यास कर लिया हो एक ही करवट सोने का! आखिर सर्कस में लोग क्या-क्या अभ्यास नहीं कर लेते! तुम भी कर सकते हो एक ही करवट सोने का अभ्यास। बड़ी आसानी से कर सकते हो।
मैं यही बात एक मित्र से कह रहा था। वे कहने लगेः कैसे अभ्यास हो जाएगा एक ही करवट सोने का?
मैंने उनसे कहा कि पीठ में एक पत्थर बांध कर सो जाओ। जब भी करवट बदलोगे तभी तकलीफ होगी। तकलीफ से बचने में अपने आप अभ्यास हो जाएगा। जिद्दी थे, अभ्यास किया। कोई चालीस दिन बाद मुझे आकर कहा कि आप ठीक कहते हैं। अब एक ही करवट सोता हूं; क्योंकि वह पत्थर जो बंधा है पीठ से, जब

भी करवट बदलो, तब तकलीफ होती है और नींद टूट जाती है। अब तो धीरे-धीरे नींद में भी उस पत्थर की मौजूदगी जरूर अचेतन में छाया डालने लगी होगी।
तो कौन जाने बुद्ध ने अभ्यास ही किया हो! बाहर से कैसे जानोगे?
उतरो, ध्यान का थोड़ा स्वाद लो।
यहां जो भी हो रहा है, जड़वत नहीं हो रहा है। जड़वत ही करना हो तो दुनिया में बहुत स्थान हैं करने को; यहां आने की जरूरत नहीं है। जो जड़वत प्रक्रियाओं से ऊब गए हैं, परेशान हो गए हैं, कर-कर थक गए हैं और कुछ भी नहीं पाया है, सिर्फ विषाद हाथ लगा है--वे ही यहां आए हैं। नहीं तो मेरे साथ जुड़ने की बदनामी कौन ले! मेरे साथ जुड़ने का उपद्रव कौन सहे! उतनी कीमत वही चुकाता है जो बहुत-बहुत द्वार खटखटा चुका है और जिसे अपना मंदिर अभी नहीं मिला है। लेकिन खड़े होकर दूर से मत देखते रहना। नहीं तो तुम यही ख्याल लेकर जाओगेः कहीं गायत्री हो रही है, यहां ध्यान हो रहा है; मगर सब जड़वत। कैसे तुमने यह निर्णय ले लिया कि यह जड़वत हो रहा है? जरा लोगों की आंखों में देखो। जरा लोगों के आनंद में झांको। उनकी मस्ती को थोड़ा पहचानो।
मगर वह पहचान भी तभी होगी जब भीतर तुम्हारे भी थोड़ी नई हवाएं बहें, सूरज की नई किरणें उतरें, तुम्हारा मन-मयूर नाचे--तब।
मोहन भारती! चौंक गए, शुभ है। घटा घिर आई, शुभ है। मंगल-गान करो। पर घटा बरसे! बहुत हो चुकी देर ऐसे भी, अब घटा बिना बरसे न जाए। यह अमी-रस बरसे। तुम इसमें भीगो। और भीगने लगोगे तो पाओगेः अंत नहीं है। जितने भीगोगे उतने ही पाओगेः और भी भीगने को शेष है। जैसे-जैसे सावन आएगा, लगेगाः और भी सावन आने को शेष है।
एक फूल क्या खिला तो वसंत थोड़े ही आ गया। वसंत एक फूल के खिलने से नहीं। एक फूल तो खबर देता है कि आ रहा वसंत, आ रहा वसंत। हजार-हजार फूल खिलेंगे, लाख-लाख फूल खिलेंगे। एक-एक व्यक्ति के भीतर इतनी क्षमता है कि सारे वेद, सारे कुरान, सारी गीताएं, सारे धम्मपद एक-एक व्यक्ति के भीतर खिल सकते हैं।

दूसरा प्रश्नः मानव-जीवन की संतों ने इतनी महिमा क्यों गाई है?

चैतन्य प्रेम! पहली बात, जीवन ही महिमावान है। जीवन परमात्मा की अपूर्व भेंट है। जीवन प्रसाद है। तुमने कमाया नहीं। तुम गंवा भले रहे होओ, मगर कमाया तुमने नहीं। उतरा है, तुम पर किसी अज्ञात लोक से बरसा है। तुमसे किसी ने पूछा तो न था कि होना चाहते हो या नहीं? पूछता भी कैसे? जब तुम थे ही नहीं तो तुमसे पूछता कोई कैसे?
जीवन अपने आप में महिमावान है। जीवन से फिर सारे द्वार खुलते हैं--फिर ध्यान के और प्रेम के और मोक्ष के और निर्वाण के सारे द्वार जीवन से खुलते हैं। जीवन अवसर है, महत अवसर है! चाहे बना लो, चाहे तो मिटा दो। चाहे गा लो गीत, चाहे तोड़ दो बांसुरी। जीवन महान अवसर है।
तो पहली तो बात, जीवन ही अपने आप में अपूर्व है। फिर मनुष्य-जीवन तो और
भी अपूर्व है। क्योंकि वृक्ष यद्यपि जीवित हैं, पर बड़े संकीर्ण अर्थों में। और पक्षी भी जीवित हैं, थोड़े वृक्ष से ज्यादा; लेकिन फिर भी बड़ी सीमा है। पशु भी जीवित हैं, पक्षियों से शायद थोड़े ज्यादा; लेकिन फिर भी बड़ी सीमा है। मनुष्य इस पृथ्वी पर सबसे ज्यादा संभावनाओं को लेकर पैदा होता है। मनुष्य इस जगत में सबसे बड़े फूलों के बीज लेकर पैदा होता है। इसलिए मनुष्य-जीवन की महिमा गाई है।
चौराहा है मनुष्य का जीवन। वहां से रास्ते चुने जा सकते हैं। वहां से नरक का रास्ता भी चुना जा सकता है और स्वर्ग का भी। और रास्ते पास-पास हैं। एक झेन फकीर के पास जापान का सम्राट मिलने गया था। सम्राट, सम्राट की अकड़! झुका भी तो भी झुका नहीं। औपचारिक था झुकना। फकीर से कहाः मिलने आया हूं, सिर्फ एक ही प्रश्न पूछना चाहता हूं। वही प्रश्न मुझे मथे डालता है। बहुतों से पूछा है; उत्तर संतुष्ट करे कोई, ऐसा मिला नहीं। आपकी बड़ी खबर सुनी है कि आपके भीतर का दीया जल गया है। आप, निश्चित ही, आशा लेकर आया हूं कि मुझे तृप्त कर देंगे।

फकीर ने कहाः व्यर्थ की बातें छोड़ो, प्रश्न को सीधा रखो। दरबारी औपचारिकता छोड़ो, सीधी-सीधी बात करो, नगद!
सम्राट थोड़ा चौंका। ऐसा तो कोई उससे कभी बोला नहीं था। थोड़ा अपमानित
भी हुआ। लेकिन बात तो सच थी। फकीर ठीक ही कह रहा था कि व्यर्थ की लंबाई में क्यों जाते हो? कान को इतना उलटा क्यों पकड़ना? बात करो सीधी, क्या है प्रश्न तुम्हारा?
सम्राट ने कहाः प्रश्न मेरा यह है कि स्वर्ग क्या है और नरक क्या है? मैं बूढ़ा हो रहा हूं और यह प्रश्न मेरे ऊपर छाया रहता है कि मृत्यु के बाद क्या होगा--स्वर्ग या नरक?
फकीर के पास उसके शिष्य बैठे थे, उनसे उसने कहाः सुनो, इस बुद्धू की बातें सुनो!
बुद्धू--सम्राट को! ... और सम्राट से कहा कि कभी आईने में अपनी शक्ल देखी? यह शक्ल लेकर और ऐसे प्रश्न पूछे जाते हैं? और तुम अपने को सम्राट समझते हो? तुम्हारी हैसियत भिखमंगा होने की भी नहीं है!
यह भी कोई उत्तर था! सम्राट तो एकदम आगबबूला हो गया। म्यान से उसने तलवार निकाल ली। नंगी तलवार, एक क्षण और कि फकीर की गर्दन धड़ से अलग हो जाएगी।
फकीर हंसने लगा और उसने कहाः यह खुला नरक का द्वार!
एक गहरी चोट, एक अस्तित्वगत उत्तर--यह खुला नरक का द्वार! समझा सम्राट। तत्क्षण तलवार म्यान में भीतर चली गई। फकीर के चरणों पर सिर रख दिया। उत्तर तो बहुतों ने दिए थे--शास्त्रीय उत्तर--मगर अस्तित्वगत उत्तर, ऐसा उत्तर कि प्राणों में चुभ जाए तीर की तरह, ऐसा स्पष्ट कर दे कोई कि कुछ और पूछने को शेष न रह जाए--यह खुला नरक का द्वार! झुक गया फकीर के चरणों में। अब इस झुकने में औपचारिकता न थी, दरबारीपन न था। अब यह झुकना हार्दिक था।
फकीर ने कहाः और यह खुला स्वर्ग का द्वार! पूछना है कुछ और? और ध्यान रखो, स्वर्ग और नरक मरने के बाद नहीं हैं; स्वर्ग और नरक जीने के ढंग हैं, शैलियां हैं। कोई चाहे यहीं स्वर्ग में रहे, कोई चाहे यहीं नरक में रहे। कोई चाहे सुबह स्वर्ग में रहे, सांझ नरक में रहे; कोई चाहे क्षण भर पहले स्वर्ग और क्षण भर बाद नरक।
और ऐसा ही तुम्हारी जिंदगी में रोज घट रहा है।
मनुष्य-जीवन की महिमा है। इस सम्राट में क्या खूबी थी? बोध! यह बात किसी पशु और पक्षी को नहीं समझाई जा सकती थी। और जिन मनुष्यों को न समझाई जा सके, जानना कि वे केवल नाममात्र को मनुष्य हैं; होंगे पशु-पक्षी ही। यह सम्राट निश्चित मनुष्य रहा होगा।
मनुष्य शब्द देखते हो! मनन से बना है। जिसमें मनन की क्षमता है। अंग्रेजी का शब्द मैन भी मनन से ही बना है। उर्दू का शब्द आदमी बहुत साधारण है; वह अदम से बना है। अदम का अर्थ होता है मिट्टी; मिट्टी का पुतला। वह आदमी की असलियत नहीं है। आदमी शब्द में आदमी की असलियत नहीं है; केवल खोल है। मिट्टी का पुतला है, यह तो सच है; लेकिन मिट्टी के पुतले के भीतर कौन छिपा है? मृण्मय में चिन्मय छिपा है! मिट्टी का दीया है, माना; लेकिन जो ज्योति जल रही है वह मिट्टी नहीं है। आदमी शब्द में खोल की चर्चा है; मनुष्य शब्द में उस खोल के भीतर छिपे हुए गूदे की चर्चा है, आत्मा की चर्चा है। मनुष्य वह है जो मनन कर सके; जिसके सामने विकल्प खड़े हों तो मननपूर्वक चुन सके! यंत्रवत नहीं--मननपूर्वक चुन सके! ध्यानपूर्वक चुन सके! जागरूकता से एक विकल्प को चुने। ऐसे जाग-जाग कर जो कदम रखता है वही मनुष्य है; शेष सबको तो हमें आदमी कहना चाहिए, मनुष्य नहीं। आदमी सभी हैं, मनुष्य बहुत कम हैं।
मनुष्य-जीवन की महिमा है, क्योंकि मनन की क्षमता है। दृष्टि है मनुष्य के पास एक--जो दृश्य को ही नहीं, अदृश्य को भी देखने में समर्थ है। यह उसकी महिमा है। पशु भी देखते हैं, मगर दृश्य ही देखते हैं; अदृश्य की उनके पास कोई प्रतीति नहीं होती। मनुष्य के कान ध्वनि को तो सुनते ही हैं, शून्य को भी सुन लेते हैं। और मनुष्य के हाथ पार्थिव को तो पकड़ ही लेते हैं, अपार्थिव को भी पकड़ लेते हैं।

मनुष्य अपूर्व है, अद्वितीय है। इसे तुम अपने अहंकार की घोषणा मत बना लेना। यह तुम्हारे अहंकार की घोषणा नहीं है। सच पूछो तो यह जो मैं मनुष्य की परिभाषा कर रहा हूं, यह परिभाषा तभी तुम्हारे जीवन का अनुभव बनेगी जब अहंकार छूटेगा। ऐसा मत सोच लेना कि अहा, मैं मनुष्य हूं, तो मेरी बड़ी महिमा है! यह तुम्हारी महिमा नहीं कह रहा हूं मैं--यह मनुष्यत्व की महिमा कह रहा हूं। यह तुम्हारे भीतर जो संभावना छिपी है, उसकी महिमा का गीत गा रहा हूं-- तुम जो हो सकते हो; जो तुम्हें होना ही चाहिए; जो तुममें जरा बोध हो तो तुम जरूर हो ही जाओगे; जो अपरिहार्य है, अगर तुममें जरा सोच हो, जरा समझ हो। पूछते हो तुम कि मानव-जीवन की संतों ने इतनी महिमा क्यों गाई है?
एक तो जीवन महिमावान, फिर वह भी मानव का जीवन। और संत ही गा सकते हैं महिमा, क्योंकि उन्होंने ही मनुष्य को उसकी परिपूर्णता में देखा है। वैज्ञानिक मनुष्य को उसकी परिपूर्णता में नहीं देखता; उसके लिए तो मांस-मज्जा-हड्डी, यहीं मनुष्य समाप्त हो जाता है। मनुष्य उसके लिए देह से ज्यादा नहीं है। उसे कोई आत्मा मनुष्य में नहीं मिलती। मनुष्य एक बहुत जटिल यंत्र है, बस इतना; इससे ज्यादा नहीं। क्योंकि चीर-फाड़ करके वैज्ञानिक देखता है, कहीं आत्मा पकड़ में आती नहीं। और जो पकड़ में न आए, विज्ञान उसे इनकार कर देता है। इसलिए विज्ञान मनुष्य की बहुत महिमा नहीं गा सकता। अगर विज्ञान का प्रभाव बढ़ता चला गया तो मनुष्य की महिमा कम होती जाएगी--कम होती गई है।
प्राचीन समय में जानने वाले कहते थेः मनुष्य देवताओं से जरा नीचे है।
और वैज्ञानिक से पूछो तो वह कहता हैः मनुष्य बंदर से जरा ऊपर। बहुत फर्क हो गया--देवताओं से जरा नीचे, और बंदर से जरा ऊपर! यह भी शायद वैज्ञानिक बिना बंदरों से पूछे कह रहा है। नहीं तो बंदर कहेंगे कि मनुष्य और हमसे जरा ऊपर? कहां हम वृक्षों पर और कहां तुम जमीन पर! हमसे भी नीचे।
यह तो डार्विन का मनुष्य है, जो कह रहा है कि मनुष्य बंदरों से विकसित हुआ है। बंदर कुछ और कहते हैं। वे मानते हैंः मनुष्य बंदरों का पतन है। है भी पतन। जरा किसी बंदर से टक्कर लेकर देखो, तो पता चल जाएगा। न उतनी शक्ति है, न उस तरह की छलांग भर सकते हो, न एक वृक्ष से दूसरे वृक्षों पर कूद सकते हो, न वृक्षों पर रह सकते हो। क्या पा लिया है? बंदर से बहुत कमजोर हो गए हो। बंदरों से पूछा जाए तो वे कुछ और कहेंगे। वे हंसेंगे, खिलखिलाएंगे। मैंने एक कहानी सुनी है। एक टोपियों को बेचने वाला सौदागर लौट रहा था मेले से टोपियां बेच कर। चुनाव करीब आते थे और गांधी टोपियां खूब बिक रही थीं। सौदागर खूब कमाई कर रहा था। दिन भर गांधी टोपियां बिकी थीं। थका था, राह में एक वृक्ष के नीचे, बरगद के एक वृक्ष के नीचे थोड़ी देर विश्राम को रुका। थकान ऐसी थी, ठंडी हवा, वृक्ष की छाया, झपकी लग गई। जब आंख खुली तो जिस पिटारी में टोपियां कुछ और बच गई थीं, वह खुली पड़ी थी, टोपियां सब नदारद थीं। घबड़ाया, चारों तरफ देखा। ऊपर देखा तो वृक्ष पर बंदर बैठे हैं। होंगे कोई सौ-पचास बंदर। सब गांधीवादी टोपियां लगाए हैं! वे ले गए पिटारे से निकाल कर टोपियां। बड़े जंच रहे हैं। बिल्कुल भारतीय संसद के सदस्य मालूम होते हैं। घबड़ाया सौदागर कि अब इनसे टोपियां कैसे वापस लेनी? तब उसे याद आई कभी सुनी बात कि बंदर नकलची होते हैं। तो उसके अपने सिर पर एक ही टोपी बची थी, वह उसने निकाल कर फेंक दी। उसका फेंकना टोपी का, कि सारे बंदरों ने टोपियां निकाल कर फेंक दीं। टोपियां बटोर कर बड़ा प्रसन्न सौदागर घर लौट आया। अपने बेटे से कहा कि देख, याद रखना, कभी ऐसी हालत आ जाए तो अपनी टोपी निकाल कर फेंक देना।
फिर ऐसी हालत आई। समय बीता। सौदागर बहुत बूढ़ा हो गया, फिर बेटा उसकी जगह गांधी टोपी बेचने लगा। लौटता था एक दिन। वही वृक्ष, थका-मांदा, विश्राम को लेटा, झपकी खा गया। और वही हुआ जो होना था। आंख खुली, टोकरी खाली पड़ी थी। याद आया, ऊपर देखा। बंदर बड़े मस्ती से टोपी लगाए बैठे थे। याद आई बाप की सलाह, अपनी टोपी निकाल कर फेंक दी। लेकिन जो हुआ वह नहीं सोचा था। एक बंदर को टोपी नहीं मिली थी, वह नीचे उतरा और यह टोपी भी ले गया। आखिर बंदर भी अपने बेटों को समझा गए होंगे कि दुबारा धोखा न खाना। एक दफा हम खा गए हैं धोखा, अब तुम जरा सावधान रहना। यह सौदागर का बेटा कभी न

कभी इस झाड़ के नीचे विश्राम करेगा और टोपी फेंकेगा, तब तुम जल्दी से उस टोपी को भी उठा लेना। जो गलती हमने की है, वह मत करना।
वैज्ञानिक से पूछो तो ज्यादा से ज्यादा कहेगा कि बंदर से थोड़ा सा विकसित। जो देवताओं से थोड़ा नीचे हुआ करता था, वह बंदरों से थोड़ा ऊपर होकर रह गया है। मनुष्य की गरिमा, महिमा बुरी तरह खंडित हुई है। वैज्ञानिक करे भी तो क्या करे? उसकी जो विधि है, उस विधि के कारण ही आत्मा से उसका कोई संस्पर्श नहीं हो सकता; मनुष्य के भीतर छिपे हुए जीवन से उसका कोई नाता नहीं बन सकता। तो जीवन के बिना, आत्मा के बिना, आदमी सिर्फ एक मशीन रह जाता है। कुशल मशीन, पर मशीन! और इसीलिए फिर आदमियों को काटना हो तो कोई अड़चन नहीं होती।
जोसेफ स्टैलिन ने रूस में लाखों लोग काट डाले, जरा भी अड़चन नहीं हुई। अड़चन का कोई कारण न रहा। क्योंकि कम्युनिज्म मानता है कि आदमी में कोई आत्मा है ही नहीं। अगर आत्मा नहीं है तो मारने में हर्ज क्या है? कोई अपनी कुर्सी तोड़ डाले तो इसमें कोई पाप थोड़े ही हो जाएगा। कोई अपना बिजली का पंखा तोड़ दे, इसमें कोई पाप थोड़े ही हो जाएगा। कोई कितनी ही बहुमूल्य मशीन को नष्ट-भ्रष्ट कर दे, कितनी ही बारीक और नाजुक घड़ी हो, कोई पत्थर पर पटक दे, तो भी तुम यह नहीं कह सकते कि तुमने पाप किया।
जोसेफ स्टैलिन बड़ी सरलता से लाखों लोगों को मार सका, काट सका। कारण? कारण था कम्युनिज्म का सिद्धांत, कि आदमी में कोई आत्मा नहीं है। जब आत्मा नहीं है तो बात खत्म हो गई। मिट्टी के पुतलों को गिराने में क्या अड़चन है? काटो! जो हमारे साथ राजी न हो उसे मिटाओ।
और अगर मनुष्य में आत्मा नहीं है तो स्वतंत्रता की क्या आवश्यकता है? स्वतंत्रता किसकी? स्व ही नहीं है तो स्वतंत्रता किसकी? अगर आदमी मशीनें हैं तो उनको भोजन दो, कपड़े दो, छप्पर दो और काम लो। इससे ज्यादा की न उन्हें जरूरत है, न इससे ज्यादा की चिंता करने का कोई कारण है।
जीसस ने कहा हैः मनुष्य केवल रोटी के सहारे नहीं जी सकता।
लेकिन कम्युनिज्म यही कहता है कि रोटी के अतिरिक्त आदमी को और चाहिए
भी क्या? और बाकी सब बुर्जुआ बकवास है। रोटी मिले, छप्पर मिले, कपड़ा मिले-- बात खत्म हो गई। लोकतंत्र, स्वतंत्रता... यह सब बातचीत है, व्यर्थ की बातचीत है।
नहीं; संत ही मनुष्य की महिमा का गीत गा सकते हैं, वैज्ञानिक नहीं गा सकता। क्योंकि संत को ही अनुभव होता है अपने भीतर छिपे हुए परमात्मा का, अपने भीतर छिपे हुए खजानों का--प्रभु के राज्य का! और जिसने अपने भीतर उस परम ज्योति को जगमगाते देखा है, वह कैसे न गीत गाए मनुष्य की महिमा के? क्योंकि वह जानता है कि तुम्हारे भीतर भी वैसी ही ज्योति जगमगा रही है। चाहे तुम पीठ किए खड़े हो, नहीं देखते, कोई हर्जा नहीं; मगर ज्योति तो जगमगा रही है।
जिसने अपने भीतर का संगीत सुना है, अनाहत नाद सुना है, ओंकार सुना है,
वह कैसे मनुष्य की महिमा के गीत न गाए? जिसने अपने भीतर मिट्टी ही नहीं, कमल पाया है, अपूर्व सुगंध उड़ती पाई है, वह कैसे मनुष्य की महिमा के गीत न गाए? जिसने अपने भीतर मृत्यु पाई ही नहीं, अमृत पाया है, वह कैसे मनुष्य की महिमा के गीत न गाए?
तुम पूछते हो चैतन्य प्रेमः "मानव-जीवन की संतों ने इतनी महिमा क्यों गाई है?"
तुम्हारे अहंकार को सजाने के लिए नहीं। तुम्हारे अहंकार को और बलिष्ठ, और पुष्ट करने के लिए नहीं। सत्य है यह कि मनुष्य के भीतर एक विराट आकाश छिपा है। जो अपने भीतर उतर जाए, वह जगत के रहस्यों के रहस्य के द्वार पर खड़ा हो जाता है। उसके लिए मंदिर के द्वार खुल जाते हैं। जो अपने भीतर की सीढ़ियां उतरने लगता है, वह जीवन के मंदिर की सीढ़ियां उतरने लगता है। जो अपने भीतर जितना गहरा जाता है, उतना ही परमात्मा का अपूर्व अद्वितीय रूप, सौंदर्य, सुगंध, संगीत, सब बरस उठता है।

कितना है जीवन अनमोल!

रजत रश्मियों सी मुस्कान, सौरभमय कलियों सा गान,
मधु स्मृतियों की दीप-शिखा सा घटता-बढ़ता प्रतिदिन डोल!

अकथित आहों का विश्वास,
अनुरंजित भावों का श्वास, तुहिन-बिंदु सा निर्निमेष इस ढलता दुख-सुख दृग में खोल!

शिथिल पवन का मर्मर गीत,
भ्रमर-कुसुम का मधुमय प्रीत, मृदुस्मित बन बहलाती है
सुरभि मलय में प्रतिदिन घोल!

मृदु आकांक्षाओं का व्यापार,
इच्छाओं का पल-पल भार,
रोम-रोम कंपित कर जाता
स्वर संगम को भ्रम वश तोल!

कितना है जीवन अनमोल!

थोड़ा देखो अपने जीवन को। यह मुफ्त मिला है, इसलिए ऐसा मत समझ लेना कि मुफ्त है। इसकी कीमत तो कोई भी नहीं, इसलिए यह मत समझ लेना कि इसका मूल्य कुछ नहीं है। कीमत और मूल्य बड़े अलग-अलग शब्द हैं। भाषाकोश में तो उनका एक ही अर्थ होता है--कीमत और मूल्य। लेकिन जीवन के कोश में एक ही अर्थ नहीं होता। कीमत होती है चीजों की जो बाजार में बिकती हैं, बिक सकती हैं, खरीदी जा सकती हैं। लेकिन कुछ ऐसी चीजें हैं, जो बाजार में न बिकती हैं, न बेची जा सकती हैं; उनको मूल्यवान कहते हैं। मूल्यवान वे चीजें हैं जो कीमत से नहीं मिलतीं। तुम लाख कीमत चुकाओ तो भी नहीं मिलतीं।
एक सम्राट ने महावीर को जाकर कहा कि मैंने सब जीत लिया, बड़े से बड़े हीरे-जवाहरात मेरे खजाने में हैं। ऐसा कुछ इस संसार में नहीं है जो मैंने न पा लिया हो। इधर कुछ दिन से लोग आ-आ कर खबर देते हैं कि असली मूल्य की चीज तो ध्यान है।
जैनों का शब्द है "सामायिक"--ध्यान के लिए। ठीक शब्द है, प्यारा शब्द है। उसके अपने मूल्य हैं। सम हो जाना, समता को उपलब्ध हो जाना, समभाव को उपलब्ध हो जाना, सम्यकत्व को उपलब्ध हो जाना।
तो उस सम्राट ने कहाः यह सामायिक क्या बला है? अनेक लोग मुझसे आकर कहते हैं, मैं कुछ जवाब ही नहीं दे पाता। यह किस हीरे का नाम है? यह कहां खरीदूं? कहां मिलेगा?
महावीर हंसे होंगे। सामायिक कहीं खरीदी जा सकती है! ध्यान कहीं खरीदा
जा सकता है! कि ध्यान कहीं बाजार में बिक सकता है! महावीर को हंसते देख कर उसने कहाः आप हंसें मत, मैं कोई भी कीमत चुकाने को राजी हूं। मैं जिद्दी आदमी हूं। मैं पूरा राज्य भी देने को राजी हूं। मगर यह मामला क्या है? यह है क्या चीज? इसे मैं खरीद कर रहूंगा। यह मुझे बड़ा कष्ट दे रही है बात कि मेरे पास एक चीज नहीं है--यह सामायिक।
महावीर ने कहाः ऐसा कर, मैं तो सब छोड़ चुका हूं, इसलिए तेरे राज्य में मेरी कोई उत्सुकता नहीं है। मेरा राज्य था, वह भी छोड़ चुका हूं। तेरे हीरे- जवाहरात भी मेरे लिए कंकड़-पत्थर हैं। मेरे अपने ही बहुत बोझिल हो गए थे, बांट आया हूं। तेरे गांव में एक गरीब आदमी रहता है, तेरी राजधानी में, मैं उसका नाम तुझे दे देता हूं, पता तुझे दे देता हूं। बहुत गरीब है। एक जून रोटी भी जुड़ नहीं पाती। उसको सामायिक उपलब्ध हो गई है। वह अगर बेचे तो शायद बेच दे।

यह मजाक ही थी। और जब महावीर जैसा व्यक्ति मजाक करता है तो उसके बड़े मूल्य होते हैं। सम्राट तत्क्षण रथ मुड़वा लिया। उस गरीब आदमी के घर के झोपड़े के सामने जाकर रथ रुका। आंखों पर भरोसा ही नहीं आया उस मोहल्ले के लोगों को। गरीबों का मोहल्ला। झोपड़े थे टूटे-फूटे। वह गरीब आदमी तो एकदम आकर सम्राट के चरणों में सिर झुकाया और उसने कहा कि आज्ञा हो महाराज! आपको यहां तक आने की क्या जरूरत थी? खबर भेज दी होती, मैं महल हाजिर हो जाता। सम्राट ने कहा कि मैं आया हूं सामायिक खरीदने। महावीर ने कहा है कि तुझे सामायिक उपलब्ध हो गई है। बेच दे! और जो भी तू मूल्य मांगे, मुंह-मांगा मूल्य देने को राजी हूं।
जैसे महावीर हंसे थे, वैसे ही वह गरीब आदमी भी हंसा। उसने कहाः महावीर
ने आपसे खूब मजाक किया। कुछ चीजें हैं जो कीमत से मिलती हैं; कुछ चीजें हैं जिनका कीमत से कोई संबंध नहीं। सामायिक कुछ वस्तु थोड़े ही है कि मैं तुम्हें दे दूं। अनुभव है। जैसे प्रेम अनुभव है, कैसे दे सकते हो? यह तो आंतरिकतम अनुभव है; इसे बाहर लाया ही नहीं जा सकता। मेरी गर्दन चाहिए तो ले लें। मुझे खरीदना हो तो खरीद लें। मैं चल पड़ता हूं, आपका सेवक, पैर दबाता रहूंगा। लेकिन ध्यान नहीं बेचा जा सकता। नहीं कि मैं बेचना नहीं चाहता हूं, बल्कि स्वभावतः ध्यान हस्तांतरित नहीं हो सकता।
मूल्यवान वे चीजें हैं जो बेची नहीं जा सकतीं। प्रेम, ध्यान, प्रार्थना, भक्ति, श्रद्धा--ये बेचने वाली, बिकने वाली चीजें नहीं हैं। ये चीजें ही नहीं हैं। ये अनुभूतियां हैं। और केवल मनुष्य ही इन अमोलक अनुभूतियों को पाने में समर्थ है।
संतों ने मनुष्य की महिमा गाई है ताकि तुम्हें याद दिलाया जा सके कि तुम कितनी बड़ी संपदा के मालिक हो सकते हो और हुए नहीं अब तक। अब और कितनी देर करनी है?

है किसका यह मौन निमंत्रण?

दीर्घ श्वास की पीड़ाओं का
है साम्राज्य छिपा अंतर में,
मूक मिलन की मूक पिपासा
का खग नित उड़ता अंबर में,
भरो व्यथा में आज प्रलोभन, है किसका यह मौन निमंत्रण?

उस अतीत की कथा कहानी
ही सुधियों का नीड़ बन गई, अर्थहीन शैशव की बातें
मेरे उर की पीर बन गईं,
सुधि-सपनों पर करो नियंत्रण, है किसका यह मौन निमंत्रण?

टूट नयन का निर्मम दर्पण
चिर बिछोह की आघातों से,
पूछ रहा पथ प्रेम-गांव का
तारक-दल की हर पांतों से,
स्निग्ध-प्राण भी कर दो अर्पण,
है किसका यह मौन निमंत्रण?

तुम्हें निमंत्रण दिया है संतों ने मनुष्य की महिमा गाकर! टूट नयन का निर्मम दर्पण
चिर बिछोह की आघातों से,
पूछ रहा पथ प्रेम-गांव का
तारक-दल की हर पांतों से,
स्निग्ध-प्राण भी कर दो अर्पण,

है किसका यह मौन निमंत्रण?
सदियों-सदियों में संतों ने मनुष्य के गौरव और गरिमा के गीत गाए हैं-- इसलिए कि तुम्हें चेताया जा सके कि तुम क्या हो सकते हो; तुम्हारे भीतर छिपी पड़ी संभावनाओं को पुकारा जा सके; तुम्हें झकझोर कर जगाया जा सके। जैसे बीज भूल गया हो कि उसे फूल होना है, ऐसी तुम्हारी दशा है; कि नदी भूल गई हो कि उसे सागर तक पहुंचना है, ऐसी तुम्हारी दशा है; कि नदी किसी घाट पर ही अटक गई हो और सागर तक जाने का स्मरण न रहा हो, ऐसी तुम्हारी दशा है। सागर होना है तुम्हें। सागर होना तुम्हारा स्वरूपसिद्ध अधिकार है। परमात्मा होना है तुम्हें। परमात्मा से कम हुए बिना राजी मत होना।
इसलिए तुम्हारी महिमा के गीत संतों ने गाए हैं--तुम्हारे अहंकार कोशृंगार करने के लिए नहीं।

तीसरा प्रश्नः जीवन सत्य है या असत्य?

कृष्णतीर्थ! जीवन अपने में न तो सत्य है और न असत्य। जीवन अपने में तो सिर्फ एक अवसर है, कोरा अवसर; सत्य भी बन सकता है, असत्य भी बन सकता है। जीवन तो एक कोरा कैनवास है; उस पर तुम कैसे रंग डालोगे, उस पर तुम अपनी तूलिका लेकर क्या उभारोगे, तुम पर निर्भर है। तुम मालिक हो। जीवन अपने आप में बनी-बनाई कोई चीज नहीं है, कोई रेडीमेड जन्म के साथ तुम्हारे हाथ में जीवन नहीं दे दिया गया है। जन्म जीवन नहीं है, जन्म तो केवल सिर्फ तुम्हें एक अवसर है। अब तुम जीवन को बनाओ।
जीवन एक सृजन है। जीवन न तो सत्य है और न असत्य।
बुद्ध ने भी एक जीवन बनाया--कबीर ने, नानक ने, मोहम्मद ने, दरिया ने। एक जीवन तैमूरलंग ने भी बनाया--नादिरशाह ने, हिटलर ने। एक जीवन है जिसमें सिर्फ धूल ही धूल; और एक जीवन है जहां फूल ही फूल। एक जीवन है जहां गालियां ही गालियां; और एक जीवन है जहां गीत ही गीत। और यह एक ही जीवन है। यह सब तुम पर निर्भर है। उसी वर्णमाला से गालियां बनती हैं, उसी वर्णमाला से भगवद्गीता का जन्म हो जाता है; जरा शब्दों को जमाने की बात है। वे ही शब्द गंदे हो जाते हैं, वे ही शब्द पुण्य की गंध ले आते हैं। तुम पर निर्भर है। अक्सर लोग ऐसे प्रश्न पूछते हैं, जैसे कि जीवन अपने आप में कोई सुनिश्चित चीज है!
पूछते तुमः "जीवन सत्य है या असत्य?"
अगर धन के पीछे ही दौड़ते रहे और पद के पीछे ही दौड़ते रहे, तो जीवन असत्य है, यह सिद्ध हो जाएगा। मौत जब आएगी तब सिद्ध हो जाएगा कि जीवन असत्य था, क्योंकि मौत सब छीन लेगी जो तुमने कमाया। और अगर जरा ध्यान में जगे, जरा भक्ति को उकसाया, तो मौत आएगी और आरती उतारेगी तुम्हारी, क्योंकि जीवन को तुमने सत्य कर लिया।
तो मैं सीधा वक्तव्य नहीं दे सकता कि जीवन क्या है। इतना ही कह सकता हूंः जीवन वही हो जाएगा जैसा तुम करना चाहते हो। तुम स्रष्टा हो। यह महिमा है तुम्हारी। इतनी महिमा किसी पशु की नहीं है। एक कुत्ता कुत्ते की तरह पैदा होगा, कुत्ते की तरह मरेगा। लेकिन बहुत से मनुष्यों को भी हम कहते हैं कि कुत्ते की तरह मरते हैं। पैदा हुए थे मनुष्य की तरह, मरते कुत्ते की तरह हैं।
यह तो बड़ी अजीब बात हो गई! कुत्ता तो क्षम्य है; कुत्ते की तरह पैदा हुआ था, कुत्ते की तरह मरा। भाषा में कहावत है न--कुत्ते की मौत! वह कुत्ते के संबंध में नहीं है, क्योंकि कुत्ते का क्या कसूर? कुत्ता था और कुत्ते की तरह मरा! वह आदमी के संबंध में है कहावत--कुत्ते की मौत! कुत्ता पूरा का पूरा पैदा होता है। अवसर नहीं है कुत्ते के जीवन में--न तो बुद्ध हो सकता है, न चंगीजखान हो सकता है। न स्वर्ग, न नरक। कुत्ता पूरा का पूरा पैदा होता है। इसलिए तुम किसी कुत्ते से यह नहीं कह सकते कि तुम थोड़े कम कुत्ते हो, या कि कह सकते हो?
हां, आदमी से कह सकते हो कि तुम जरा थोड़े कम आदमी मालूम होते हो। किसी
से कह सकते हो कि तुम आदमी कब होओगे? कि तुम्हें आदमी होना है या नहीं होना है? आदमी के संबंध में यह सार्थक वचन है कि तुम जरा कम आदमी हो, अपूर्ण

आदमी हो, आदमी हो जाओ। मगर जानवरों के संबंध में ये शब्द सत्य नहीं हो सकते। सिंह सिंह है, कुत्ता कुत्ता है। पीपल पीपल है, बरगद बरगद है। जो जो है वैसा है। रूपांतरण का कोई उपाय नहीं है, क्रांति की कोई संभावना नहीं है।
मनुष्य क्रांति की संभावना है। मनुष्य मनुष्य की तरह पैदा नहीं होता--सिर्फ एक कोरे कागज की भांति पैदा होता है; फिर तुम जो उस पर लिखोगे वही तुम्हारी दास्तान हो जाएगी। एक-एक कदम होश से चलो, तो जीवन सत्य हो जाएगा। और ऐसे ही धक्के खाते रहे बेहोशी के, ऐसे ही चलते रहे जैसे कोई शराबी रास्ते पर चलता रहता है, तो जीवन असत्य हो जाएगा।
एक शराबी रास्ते पर चल रहा है। एक पैर तो उसने सड़क पर रखा हुआ है और एक सड़क के किनारे की पटरी पर। अब बड़ी मुश्किल में है, चलना बड़ा मुश्किल है। एक तो शराब पीए है; एक पैर ऊपर, एक पैर नीचे, बड़ी अड़चन हो रही है, बड़ा कष्ट पा रहा है। एक आदमी ने पूछा कि भाई, तुम बड़े कष्ट में मालूम पड़ते हो।
उसने कहाः कष्ट में मालूम न पडूं तो क्या पडूं? कोई भूकंप हो गया या क्या हुआ? क्योंकि यह रास्ता आधा ऊंचा और आधा नीचा कैसे हो गया है? रास्ता वही है, लेकिन अभी होश नहीं है।
एक और शराबी है, वह बाएं तरफ से दाएं तरफ जाता है, दाएं तरफ से बाएं तरफ आता है। घर पहुंचने का तो सवाल ही नहीं रहा अब। रास्ते के एक किनारे से दूसरे किनारे, इस किनारे से उस किनारे। फिर किसी ने पूछा कि तुम कर क्या रहे हो?
तो उसने कहा कि मुझे उस तरफ जाना है। उस तरफ जाता हूं और लोगों से पूछता हूं कि मुझे उस तरफ जाना है, तो वे इस तरफ भेज देते हैं। इस तरफ आता हूं और लोगों से पूछता हूं कि मुझे उस तरफ जाना है, वे दूसरी तरफ भेज देते हैं। मगर मैं उस तरफ पहुंच ही नहीं पाता। जहां पहुंचता हूं वह हमेशा इस तरफ। और मुझे जाना है उस तरफ।
एक और शराबी है, सांझ घर पहुंचा है। चाबी ताले में डालने की कोशिश करता है, मगर हाथ कंप रहे हैं, चाबी है कि ताले में नहीं जाती। एक पुलिसवाला रास्ते पर खड़ा देख रहा है, दया खा गया। दया--और पुलिसवाले में! अक्सर होती नहीं। कुछ अपवाद रहा होगा। पास आया और कहा कि भाई, लाओ मैं तुम्हारा ताला खोल दूं, तुमसे न खुलेगा।
उसने कहाः नहीं, ताला तो मैं खोल लूंगा। तुम जरा मेरे मकान को पकड़ लो
कि हिले न।
धन की और पद की दौड़ में अगर तुम मूर्च्छित रहे, अगर व्यर्थ को संगृहीत करने में ही सारा जीवन गंवाया, अगर अंधे की भांति जीए और अंधे की भांति मरे--और ध्यान नहीं है तो समझना कि अंधे हो, आंख रहते अंधे हो। अगर कूड़ा- कर्कट को ही बीनते रहे, बीनते रहे। मौत आएगी और तुम पाओगे कि जीवन असत्य था।
लेकिन यह अपरिहार्य नहीं था। यह तुमने चुना। इसकी जिम्मेवारी तुम्हारी है।
थोड़ा अंतर्मुखी होओ। घड़ी दो घड़ी अपने लिए निकाल लो। घड़ी दो घड़ी भूल जाओ संसार को। घड़ी दो घड़ी आंख बंद कर लो, अपने में डूब जाओ। तो यह घड़ी दो घड़ी में जो तुम्हें रस मिलेगा, जो स्वाद अनुभव होगा, वह तुम्हारे जीवन को सत्य कर जाएगा।
ध्यान है तो जीवन सत्य है। ध्यान नहीं है तो जीवन असत्य है।

यदि सत्य नहीं जीवन में कुछ,
तो सपना भी कैसे कह दूं!

पल में होती है जीत यहां,
पल में होती है हार यहां!
असफलता और सफलता का
मिलता रहता उपहार यहां!
जीवन की मनुहारों को अब,
विधि की छलना कैसे कह दूं!

यदि सत्य नहीं जीवन में कुछ, तो सपना भी कैसे कह दूं!

बंधन जीवन का भार कभी,
बंधन से होता प्यार कभी!
बनता भी और बिगड़ता भी
आशा का लघु संसार कभी!
अपनापन आज न अपना है,
किसको कैसे अपना कह दूं!
यदि सत्य नहीं जीवन में कुछ,
तो सपना भी कैसे कह दूं!

न तो जीवन को सत्य कहा जा सकता है और न सपना कहा जा सकता है। सब तुम पर निर्भर है। ज्ञानियों ने कहा हैः संसार असत्य है, जीवन असत्य है। वह तुम्हारी वजह से कहा है। तुम्हारी ही भीड़ है, निन्यानबे प्रतिशत तो तुम हो। भीड़ तो अंधों की है; आंख वाला कभी कोई एकाध होता है। आंख वाले की बात तो अपवाद है। और अपवाद से केवल नियम सिद्ध होता है।
बुद्धों ने अगर कहा है कि जीवन असत्य है, तो तुम्हें देख कर कहा है, ख्याल रखना। यह तुम्हारे जीवन के संबंध में कहा है। बुद्ध का जीवन तो असत्य नहीं है। अगर बुद्ध का जीवन असत्य है तो फिर सत्य होगा ही क्या? बुद्ध का जीवन तो परम सत्य है। लेकिन बुद्ध ने जब कहा है, तो ख्याल रखना, तुम्हारे जीवन के संबंध में यह वक्तव्य है। तुम्हारा जीवन असत्य है, क्योंकि तुम्हारा जीवन व्यर्थ की तलाश में लगा है। तुम मृग-मरीचिकाओं के पीछे भाग रहे हो। तुम इंद्रधनुषों को पकड़ने की कोशिश में लगे हो। दूर से बड़े सुंदर... दूर के ढोल सुहावने। जब इंद्रधनुषों पर हाथ बांध लोगे मुट्ठी, तो कुछ भी न मिलेगा, भाप भी न मिलेगी; शायद पानी की कुछ दो-चार बूंदें हाथ में छूट जाएं तो छूट जाएं। न कोई रंग होगा, न कोई सौंदर्य होगा। इंद्रधनुषों के पीछे दौड़ोगे तो एक दिन बुरी तरह गिरोगे। उस गिरते क्षण में तुम पाओगे कि ठीक ही कहते थे बुद्धपुरुष कि जीवन असत्य है।
मगर मैं तुम्हें याद दिला दूंः यह तुम्हारे कारण ही जीवन असत्य हुआ है। बुद्धों का जीवन असत्य नहीं है। मगर बुद्ध अपने जीवन के संबंध में क्या कहें? कहें तो कौन समझेगा? कहें तो शायद कहीं भूल न हो जाए; कहीं दूसरे लोग गलत न समझ लें!
बुद्धों को सबसे बड़ी चिंता एक होती है कि वे जो भी कहते हैं वह गलत समझा जा सकता है, क्योंकि समझने वाला कहीं और है। बुद्ध जीते हैं शिखरों पर, गौरीशंकर पर--हिमाच्छादित, जहां सूर्य का सोना बरसता है, वहां! और तुम रहते हो अंधेरी घाटियों में, तलघरों में। वे अपने स्वर्ण-शिखरों से जो बोलते हैं, तुम्हारी अंधेरी गलियों तक आते-आते उसके अर्थ बदल जाते हैं। वे कुछ कहते हैं, तुम कुछ और सुनते हो। इसलिए बुद्धों को बहुत सावधानी से बोलना पड़ता है। एक-एक शब्द तौलना पड़ता है। वे जानते हैं भलीभांति कि जीवन सत्य है! लेकिन उनका जीवन सत्य है। उन जैसे लोग कितने हैं? और उन जैसे जो लोग हैं, उनसे कहने की कोई जरूरत नहीं है; उन्हें तो पता ही है।
बुद्ध महावीर से कहें कि जीवन सत्य है तो महावीर समझेंगे। लेकिन महावीर को तो खुद ही पता है, कहना क्या है? तुम्हें मालूम है, दोनों एक ही साथ एक ही समय में हुए। एक ही प्रदेश में--बिहार में--दोनों परिभ्रमण करते रहे। दोनों के परिभ्रमण के कारण ही तो उस प्रदेश का नाम बिहार पड़ा। बिहार का अर्थ हैः परिभ्रमण, विचरण। चूंकि दो बुद्धपुरुष--महावीर और गौतम बुद्ध--सतत विचरण करते रहे; वह प्रदेश ही उनके विहार के कारण बिहार कहलाने लगा। कभी-कभी एक ही गांव में ठहरे, मगर मिलना नहीं हुआ। और एक बार तो ऐसा भी हुआ कि एक ही धर्मशाला में ठहरे, फिर भी वार्ता न हुई। क्यों? सदियों से यह प्रश्न पूछा जाता रहा है--क्यों?
जैनों से पूछोगे तो वे कहेंगेः अगर बुद्ध को मिलना था तो आना था महावीर के पास, क्योंकि महावीर तो भगवान हैं; बुद्ध केवल महात्मा, अभी पूरे-पूरे सिद्ध नहीं हैं। और अगर बौद्धों से पूछो तो वे कहेंगेः आना था

महावीर को। बुद्ध तो भगवान हैं। महावीर संत पुरुष। अभी पूरे-पूरे नहीं; अभी बहुत कुछ अधूरा है।
मैं न तो बौद्ध हूं, न जैन, न हिंदू, न मुसलमान, न ईसाई। इसलिए मैं थोड़ी निष्पक्ष नजरों से देख सकता हूं। दोनों परिपूर्ण सिद्धपुरुष हैं। और न मिलने का कारण कोई अहंकार नहीं है। अहंकार वहां कहां? न मिलने का कारण सीधा-साफ है। मगर अंधों को नहीं दिखाई पड़ता, वे अंधे जैन हों कि बौद्ध। कारण सीधा-साफ है--मिल कर करेंगे क्या? कहेंगे क्या? दोनों की एक ही चित्तदशा है और दोनों का एक ही चैतन्य आकाश है। दोनों एक ही शिखर पर विराजमान हैं। हमें दो दिखाई पड़ते हैं, क्योंकि दो देहों में हैं। मगर उन दोनों की अनुभूति ऐसी है कि अब वे एक ही अवस्था में हैं। देह होंगी दो, लेकिन अब आत्मा दो नहीं हैं। मिलना किससे? मिलना क्यों?
दुनिया में तीन तरह की संभावनाएं हैं। दो अज्ञानियों के बीच चर्चा खूब होती है, डट कर होती है, चौबीस घंटे होती है। दो ज्ञानियों के बीच चर्चा कभी नहीं होती, कभी नहीं हुई, कभी नहीं होगी। कुछ कहने को ही नहीं बचता। यह बड़े मजे की बात है। ज्ञानियों के पास कुछ कहने को नहीं है। दो ज्ञानी मिलें तो चुप रह जाएंगे। एक तो मिलेंगे नहीं। और अगर कभी मिल भी गए--जैसे कबीर और फरीद मिले, तो दोनों चुप बैठे रहे। दो दिन साथ रहे और चुप बैठे रहे। सन्नाटा छाया रहा। कहना क्या! बोलना क्या! किससे बोलना! दो ज्ञानियों के बीच चर्चा हो नहीं सकती। दो शून्य कैसे संवाद करें? और दो अज्ञानियों के बीच खूब चर्चा होती है, क्योंकि दो विक्षिप्त, कोई किसी की सुनता नहीं, मगर चर्चा खूब होती है। अपनी-अपनी कहते हैं। और तीसरी संभावना हैः एक ज्ञानी और अज्ञानी के बीच चर्चा। वही सत्संग है--जहां कोई जानने वाला, जागा हुआ, सोए हुए को, न जानने वाले को जगाता है।
दो ज्ञानियों में चर्चा हो ही नहीं सकती। दो अज्ञानियों में खूब होती है, मगर किसी मतलब की नहीं। ज्ञानी और अज्ञानी के बीच जो चर्चा होती है, कठिन तो बहुत है, बहुत कठिन है; मगर उसमें ही से कुछ विकास, उसमें ही से कुछ जन्म होता है।
जीवन न तो सपना है, न सत्य। सपना रह जाएगा, अगर सपनों के पीछे दौड़ते रहे; सत्य हो जाएगा, अगर सत्य को खोजा। और सत्य तुम्हारे भीतर है, सपने तुम्हारे बाहर हैं।

तुम उखड़ती
सांस की अनुगूंज,
जीवन का अडिग विश्वास वाला
गीत मैं हूं!

यह नहीं, संघर्ष में
झेली व्यथा तुमने,
रहा मैं झूलता
रंगीन झूलों में!
व्यथा का भाग
पाया हम सभी ने!
किंतु विष बन
छा गया है
वह तुम्हारी चेतना पर,
जब कि मैंने झेल उसको
प्राण में पाया नया उन्मेष जीवन की प्रभा का!
इसलिए ही
तुम उखड़ती
सांस की अनुगूंज
जीवन का अडिग विश्वास वाला गीत मैं हूं!

जीवन में क्रोध है, घृणा है, वैमनस्य है, ईर्ष्या है; ये जहर हैं। अगर इन्हीं जहरों को पीते रहे तो तुम्हारा जीवन जहरीला हो जाएगा, विषाक्त हो जाएगा। लेकिन ये जहर रूपांतरित भी हो सकते हैं। ये जहर अमृत भी बन सकते हैं। उसी कला का नाम धर्म है जो तुम्हारे भीतर के जहर को अमृत बना दे। मिट्टी को छू दे और सोना हो जाए--उसी कला का नाम धर्म है। क्रोध को करुणा बनाया जा सकता है। काम को राम बनाया जा सकता है। संभोग को समाधि बनाया जा सकता है।
देखते नहीं, बाजार से खाद खरीद कर लाते हो, दुर्गंध ही दुर्गंध फैल जाती है घर में! अब इस खाद को अगर अपने बैठकखाने में ढेर लगा कर रख लो तो एक ही काम होगा कि कोई अतिथि नहीं आएगा तुम्हारे घर, इतना ही फायदा होगा। और पड़ोस में सन्नाटा हो जाएगा, धीरे-धीरे पड़ोसी भी छोड़ देंगे मोहल्ला, दूसरे मोहल्लों में चले जाएंगे। शायद पत्नी भी छोड़ कर अपने मायके की राह ले। और बच्चे भी कहें कि नमस्कार पिताजी! अब रहो आप और आपकी खाद! दुर्गंध ही दुर्गंध फैल जाएगी। लेकिन यही खाद किसी कुशल माली के हाथ में बड़ी सुगंध बन जाती है। वह इसे घर में नहीं रखता, इसे बगीचे में, जमीन पर छितराता है। यही गुलाब बन कर हंसती है, यही चमेली बन कर चमकती है। कितने रंग और कितनी गंधें इस दुर्गंध से निकल आती हैं!
दुर्गंध सुगंध हो सकती है। इसी रसायन का नाम धर्म है।
तो मैं तुमसे कहूंगाः तुम्हारे हाथ में है सारी बात। सपना चाहो तो जीवन सपना है; सत्य चाहो तो इन्हीं सपनों को निचोड़ा जा सकता है। और इन्हीं सपनों को निचोड़ कर सत्य बनाया जा सकता है। लेकिन बस दिशा का ख्याल रखना। सपने होते हैं बहिर्मुखी, सत्य होता है अंतर्मुखी। सपने होते हैं सदा वहां और सत्य होता है सदा यहां। सपने ले जाते हैं दूर-दूर की यात्रा पर और सत्य है तुम्हारे भीतर मौजूद। बैठो कि पा लो। दौड़े कि खोया; बैठे कि पाया।

मेरे जीवन की बगिया में
पतझड़ यह भेजा है तुमने ही
स्वागत है!
और क्या मांगूं तुमसे!

वृक्षों की डालों से
जीर्ण पीत पत्र जो
झर-झर-झर झर रहे
गंधहीन कांटे ये
उलझे जो लताओं में
अर्पित हैं तुमको ही
इनको स्वीकार करो
और क्या मांगूं तुमसे!

भेजोगे जब वसंत
जीवन की बगिया में
वहन करेगी वायु
मादक नव गंध भार
सुरभित कोमल पराग
गुन-गुन की मृदु गुंजार
कलरव का मधुर राग
अर्पित करूंगा देव
सब वह भी तुमको ही
और क्या मांगूं तुमसे!

अपने सारे जहरों को भी परमात्मा के चरणों में चढ़ा दो--और तुम चकित हो जाओगे कि वे जहर अमृत हो जाते हैं। सब चढ़ा दो बेशर्त, सब समर्पित कर दो। तुम शून्य हो जाओ। सब समर्पण करके शून्य हो ही जाओगे। उसी शून्य में उतरता है परमात्मा। उसी में बजती है उसकी बीन। उसी में मृदंग पर थाप पड़ती है।

तुम पहली दफा अलौकिक का अनुभव करते हो। उस अलौकिक का अनुभव सत्य है। जीवन एक अवसर है; चाहो तो व्यर्थ सपने देखते रहो और चाहो तो सत्य को जगा लो और सत्य को जी लो। व्यर्थ की सूली पर चाहो तो टंग जाओ और चाहो तो सत्य का सिंहासन तुम्हारा है।

आखिरी प्रश्नः बलिहारी प्रभु आपकी
अंतर-ध्यान दिलाए!

मंजु! आ जाए अंतर-ध्यान तो सब आ गया, तो सब पा लिया। और लगता है तेरी आंखों में देख कर कि सुबह ज्यादा दूर नहीं है, कि सुबह करीब है, कि प्राची लाल होने लगी, कि आकाश सूरज के निकलने की तैयारी करने लगा है, कि पक्षी अपने घोंसलों में पर फड़फड़ाने लगे हैं, कि वृक्ष प्रतीक्षा कर रहे हैं, कि कलियां खुलने को आतुर हैं, कि बस सुबह अब हुई, अब हुई!
आ रही है तुझे अंतर-ध्यान की स्मृति, शुभ है, सौभाग्य है! इस जगत में वे
ही धन्यभागी हैं जिन्हें अंतर-ध्यान की याद आने लगे। जिन्हें एक बात बार-बार याद आने लगे, दिन के चौबीस घंटों में बार-बार याद आने लगे--भीतर जाना है। और जो, जब मौका मिल जाए, तब भीतर सरक जाएं।
एक झेन फकीर को निमंत्रित किया था कुछ मित्रों ने भोजन के लिए। सात मंजिल मकान। जापान की कहानी है। अचानक भूकंप आ गया। जापान में भूकंप बहुत आते भी हैं। भागे लोग, गृहपति भी भागा। सातवीं मंजिल पर कौन रुकेगा जब भूकंप आया हो? सीढ़ियों पर भीड़ हो गई। बहुत मेहमान इकट्ठे थे, कोई पच्चीस मेहमान थे। गृहपति द्वार पर ही अटका है। तभी उसे ख्याल आया कि प्रमुख मेहमान का क्या हुआ? उस झेन फकीर का क्या हुआ?
लौट कर देखा, वह फकीर तो अपनी कुर्सी पर पालथी मार कर बैठ गया है! आंखें बंद। जैसे बुद्ध की प्रतिमा हो, संगमरमर की प्रतिमा हो--ऐसा शांत! ऐसा निश्चल! उसका रूप, उसकी शांति, उसका आनंद--सम्मोहित कर लिया गृहपति को! खिंचा चला आया, जैसे कोई चुंबक से खिंचा चला आता है। बैठ गया फकीर के पास। भूकंप आया और गया। फकीर ने आंख खोली। जहां से बात टूट गई थी भूकंप के कारण, वहीं से उसने बात शुरू कर दी।
गृहपति ने कहाः मुझे अब कुछ भी याद नहीं कि हम क्या बात कर रहे थे। यह बीच में इतना बड़ा भूकंप हो गया है। सारे नगर में हाहाकार है। इतना शोरगुल मचा है। इतना बड़ा धक्का लगा है। मुझे कुछ भी याद नहीं--हम कहां, क्या बात कर रहे थे। अब उस बात को आप शुरू न करें। अब तो मुझे कुछ और पूछना है। मुझे यह पूछना है कि हम सब भागे, आप क्यों नहीं भागे?
फकीर ने कहाः भागा तो मैं भी। मैं भीतर की तरफ भागा, तुम बाहर की तरफ भागे। जहां जिसकी मंजिल है, जहां जो सोचता है कि सुरक्षा है, उस तरफ भागा। और मैं तुमसे कहता हूं कि तुम्हारा भागना व्यर्थ, क्योंकि भूकंप यहां भी है, भूकंप छठवीं मंजिल पर भी है, भूकंप पांचवीं मंजिल पर भी है, भूकंप चौथी मंजिल पर भी है। भूकंप सब मंजिलों पर है, भाग कहां रहे हो? जो पांचवीं मंजिल पर हैं, वे भी भाग रहे हैं। जो तीसरी मंजिल पर हैं, वे भी भाग रहे हैं। भूकंप सड़कों पर भी है। जो सड़कों पर हैं, वे भी घरों की तरफ भाग रहे हैं। हरेक भाग रहा है। लेकिन तुम भूकंप से भूकंप में ही भाग रहे हो। मैं भी भागा; मैं भीतर की तरफ भागा। और मैं एक ऐसी जगह जानता हूं अपने भीतर, एक ऐसा स्थान, जहां कोई भूकंप कभी नहीं पहुंच सकता! जहां कोई कंप ही नहीं पहुंचता, भूकंप की बात छोड़ दो। जहां बाहर का कोई प्रभाव कभी नहीं पहुंचता, मैं उस अछूते, कुंवारे लोक की तरफ भागा। मैं भी भागा। यह न कहूंगा कि नहीं भागा। तुम्हारी समझ में न आया हो, क्योंकि तुम एक ही तरह के भागने को पहचानते हो। मैं हाथ-पैर से नहीं भागा, मैंने शरीर का उपयोग नहीं किया, क्योंकि इसका उपयोग तो बाहर की तरफ भागना हो तब करना होता है। शरीर तो मैंने शिथिल छोड़ दिया, विश्राम में छोड़ दिया--और सरक गया अपने भीतर! वहां बड़ी सुरक्षा है, क्योंकि वहां अमृत है! वहां कोई मृत्यु नहीं है। चिंता थी मुझे तो सिर्फ एक कि कहीं ऐसा न हो कि भीतर पहुंचने के पहले मर जाऊं! बस जब भीतर पहुंच गया, फिर निश्चिंत हो गया। अब कैसी मौत? अब किसकी मौत? बस चिंता थी तो एक कि

ध्यान में मरूं। भूकंप आ गया। मौत तो कभी न कभी आनी ही है, आती ही है। एक ही ख्याल था कि ध्यान में मरूं।
ध्यान में जीओ! ध्यान में मरो!
मंजु! याद आने लगी है; इस याद को गहराओ, सींचो, सम्हालो।

अनजाने चुपचाप अधखुले वातायन से
आती हुई जुन्हाई सा ही
तेरी छवि का सुधि-सम्मोहन
आज बिखर कर सिमिट चला है मेरे मन में।
छलक उठा है उर का सागर
किसी एक अज्ञात ज्वार से
किन सपनों के मदिर भार से
किन किरनों के परस-प्यार से
पल भर में यों आज अचानक।
यह किस रूप-परी विरहिन के उर की पीड़ा मेरे जी में भी चुपके से तिर आई है यों अनजाने?
गूंज उठा है अंतर-जीवन
किस फेनिल अरुणाभ राग से?
किन फूलों के मधु पराग से
पुलकित हो आया है
आकुल मधु-समीर?
जी के इस कानन में भी फूली है सरसों,
इस वन का भी कोना-कोना
है भर उठा अकथ छलकन से,
प्राणों के कन-कन से।

एक वातायन खुल रहा है, एक पर्दा सरक रहा है। सहयोग करो! साथ दो! जल्दी
ही बहुत कुछ होने को है।

किसने मेरे ख्याल में दीपक जला दिया।
ठहरे हुए तालाब का पानी हिला दिया।
तनहाइयों के बजरे किनारे पे लग गए,
ऐसा यकीन हमको किसी ने दिला दिया।
यह क्या मजाक है कि बहारों के नाम से,
पूरा चमन मिटा के नया गुल खिला दिया।
मुद्दत गुजर गई थी हमें यूं ही चुप हुए,
कल से बहक उठे हैं हमें क्या पिला दिया।

मंजु! पीओ! यह तो मधुशाला है। मैं तुम्हें कोई सिद्धांत नहीं सिखा रहा हूं--शुद्ध शराब पिला रहा हूं। अंगूरों से निचोड़ी हुई नहीं, आत्मा से निचोड़ी हुई। पीओ! जी भर के पीओ! नाचो! गाओ! गुनगुनाओ! और जितने क्षण मिल जाएं, जब मिल जाएं, तब चल पड़ो भीतर की तरफ।
भूकंपों की प्रतीक्षा मत करो, क्योंकि भूकंपों में भीतर वही पहुंच पाएगा, जो भीतर जाता ही रहा है, जाता ही रहा है; जो रोज आता-जाता रहा है। वह झेन फकीर अपने भीतर पहुंच सका, क्योंकि रास्ता परिचित था, बहुत बार आया- गया था। यह मत सोचना कि मौत जब आएगी तब अचानक ध्यान कर लेंगे। यह नहीं होगा। मौत अचानक आएगी, जीवन भर धन की चिंता की थी, मरते वक्त भी धन की ही चिंता तुम्हारे सिर पर सवार रहेगी। अगर पद की आकांक्षा की थी तो मरते वक्त भी पद की ही नसेनी चढ़ते रहोगे कल्पना में।
मृत्यु के क्षण में तुम्हारा सारा जीवन संगृहीत होकर तुम्हारे सामने खड़ा हो जाता है। तुमने यह बात तो सुनी होगी न कि जब कोई आदमी नदी में डूब कर मरता है तो एक क्षण में सारा जीवन उसके सामने दोहर जाता है! यह बात सभी के संबंध में सच है, नदी में डूब कर मरने वालों के संबंध में ही नहीं। मरती

घड़ी में तुम्हारा सारा जीवन सिकुड़ कर, जैसे हजारों-हजारों फूलों से एक बूंद इत्र निचोड़ते हैं, ऐसे तुम्हारे सारे जीवन के अनुभव से एक बूंद निचुड़ आती है। लेकिन अगर तुम्हारा सारा जीवन दुर्गंध का ही था तो बूंद दुर्गंध की होगी। अगर सारा जीवन सपना ही सपना था तो यह बूंद भी सपना होगी। और अगर जीवन में तुमने कुछ सत्य भी कमाया था, कुछ ध्यान भी कमाया था, कुछ प्रेम भी जगाया था, कुछ बांटा भी था, कुछ लुटाया भी था, छीना-झपटा ही न था, कुछ करुणा भी की थी--तो तुम्हारी अंतिम क्षण की जो प्रतीति होगी, सारा जीवन निचुड़ कर एक इत्र की बूंद बन जाएगा, उसी इत्र की बूंद पर सवार होकर तुम परमात्मा की यात्रा पर निकलोगे।
मंजु! शुभ हुआ है। अब इस घड़ी को, इस बलिहारी की घड़ी को छिटक मत जाने देना, जोर से पकड़ रखना। अब पकड़ने योग्य कुछ तुम्हारे पास है। और ध्यान रखना, जिनके पास कुछ नहीं है, उनके पास गंवाने को भी कुछ नहीं होता। और जिनके पास कुछ है, उनके पास गंवाने को भी कुछ होता है। नंगा नहाए तो निचोड़े क्या? जिनको हम साधारण जन कहते हैं, सांसारिक जन, उनको क्या फिकर, उनके पास गंवाने को कुछ है ही नहीं।
हमारे पास एक शब्द है--योग-भ्रष्ट। उसकी तौल का दूसरा शब्द नहीं है-- भोग-भ्रष्ट। तुमने कभी ऐसा शब्द सुना--भोग-भ्रष्ट? भोग-भ्रष्ट होता ही नहीं। समतल जमीन पर चलोगे तो कहीं गिरोगे? लेकिन पहाड़ों की ऊंचाइयों पर चढ़ोगे तो गिर सकते हो। योग-भ्रष्ट होता है।
मंजु! एक घड़ी करीब आ रही है सरकती हुई, जो बड़ी कीमत की होगी। अंतर-ध्यान की याद आनी शुरू हुई है, जल्दी ही अंतर-ध्यान लगेगा, तब चूक मत जाना। क्योंकि बाहर की जन्मों-जन्मों की वासनाएं खींचेंगी, बाहर की जन्मों- जन्मों की आदतें खींचेंगी। हजार बाधाएं खड़ी होंगी। मन अंतिम उपाय करेगा अपने को बचा लेने का, क्योंकि ध्यान मन की मृत्यु है। और कौन मरना चाहता है! मन भी मरना नहीं चाहता है।
लेकिन सजग होकर, खूब सजग होकर, दो-चार कदम और--और फिर मैं तुमसे कहता हूं कि सुबह करीब है! आखिरी तारे ढलने लगे। सूरज उगा, अब उगा, तब उगा! जरा प्रतीक्षा, जरा धैर्य--और वह महत्वपूर्ण घटना घट सकती है जिसकी तलाश में सारे लोग जाने-अनजाने भटक रहे हैं। उसे कहो आनंद की खोज, सत्य की खोज, परमात्मा की खोज, मोक्ष की खोज--या जो भी नाम तुम्हें देना पसंद हो।
आज इतना ही।

अमी झरत, बिगसत कंवल
तीसरा प्रवचन

बिरहिन का घर बिरह में

दरिया हरि किरपा करी, बिरहा दिया पठाए।
यह बिरहा मेरे साध को, सोता लिया जगाए।।
दरिया बिरही साध का, तन पीला मन सूख।
रैन न आवै नींदड़ी, दिवस न लागै भूख।।
बिरहिन पिउ के कारने, ढूंढ़न बनखंड जाए।
निस बीती, पिउ ना मिला, दरद रही लिपटाए।।
बिरहिन का घर बिरह में, ता घट लोहु न मांस।
अपने साहब कारने, सिसकै सांसों सांस।।
दरिया बान गुरुदेव का, कोई झेलै सूर सुधीर।
लागत ही ब्यापै सही, रोम-रोम में पीर।।
साध सूर का एक अंग, मना न भावै झूठ।
साध न छांड़ै राम को, रन में फिरै न पूठ।।
दरिया सांचा सूरमा, अरिदल घालै चूर।
राज थापिया राम का, नगर बसा भरपूर।।
रसना सेती ऊतरा, हिरदे किया बास।
दरिया बरखा प्रेम की, शट ऋतु बारह मास।।
दरिया हिरदे राम से, जो कभु लागै मन।
लहरें उट्ठें प्रेम की, ज्यों सावन बरखा घन।।
जन दरिया हिरदा बिचे, हुआ ग्यान परगास।
हौद भरा जहं प्रेम का, तहं लेत हिलोरा दास।।
अमी झरत, बिगसत कंवल, उपजत अनुभव ग्यान।
जन दरिया उस देस का, भिन-भिन करत बखान।।
कंचन का गिर देख कर, लोभी भया उदास।
जन दरिया थाके बनिज, पूरी मन की आस।।
मीठे राचैं लोग सब, मीठे उपजै रोग।
निरगुन कडुवा नीम सा, दरिया दुर्लभ जोग।।

अमी झरत, बिगसत कंवल!
अमृत की वर्षा होती है और कमल खिल रहे हैं!
दरिया किस लोक की बात कर रहे हैं? यहां न तो अमृत झरता है और न कमल खिलते हैं। यहां तो जीवन जहर ही जहर है। कमल तो दूर, कांटे भी नहीं खिलते-- या कि कांटे ही खिलते हैं। क्या दरिया किसी और लोक की बात कर रहे हैं? नहीं, किसी और लोक की नहीं। बात तो यहीं की है, लेकिन किसी और आयाम की है।
दस दिशाएं तो तुमने सुनी हैं; एक और भी दिशा है--ग्यारहवीं दिशा। दस दिशाएं बाहर हैं, ग्यारहवीं दिशा भीतर है। एक आकाश तो तुमने देखा है। एक और आकाश है--अनदेखा। जो देखा, वह बाहर है। जो अभी देखने को है, भीतर है। उस ग्यारहवीं दिशा में, उस अंतर-आकाश में अमृत झर रहा है, अभी झर रहा है; कमल खिल रहे हैं, अभी खिल रहे हैं! लेकिन तुम हो कि उस तरफ पीठ किए बैठे हो। तुम्हारी आंखें दूर अटकी हैं और तुम पास के प्रति अंधे हो गए हो। बाहर जो है, वह तो आकर्षित कर रहा है; और जिसके तुम मालिक हो, जो तुम हो, जो सदा से तुम्हारा है और सदा तुम्हारा रहेगा, उसके प्रति बिल्कुल उपेक्षा कर ली है।
शायद इसीलिए कि जो मिला ही है, जो अपना ही है, उसे भूल जाने की वृत्ति होती है। जो हमारे पास नहीं है, जिसका अभाव है, उसे पाने की आकांक्षा जगती है। जो है, जिसका भाव है, उसे धीरे-धीरे हम विस्मृत कर देते हैं। उसकी याद ही नहीं आती। जैसे दांत टूट जाए न तुम्हारा कोई, तो जीभ वहीं-वहीं जाती है। कल तक दांत था और जीभ कभी वहां न गई थी। मन के भी रास्ते बड़े बेबूझ हैं। जो नहीं है, उसमें मन की बड़ी उत्सुकता है। अब दांत टूट गया, जीभ वहीं-वहीं

जाती है। दांत था तो कभी न गई थी। जो है, मन की उसमें उत्सुकता ही नहीं। क्यों? क्योंकि मन जी ही सकता है, अगर उसमें उत्सुकता रहे जो नहीं है। तो दौड़ होगी, तो पाने की चेष्टा होगी, वासना होगी, इच्छा होगी, कामना होगी। जो नहीं है, उसके सहारे ही मन जीता है। जो है, उसको तो देखते ही मन की मृत्यु हो जाती है।
दरिया आकाश में बसे किसी दूर स्वर्ग की बात नहीं कर रहे हैं; तुम्हारे भीतर पास से भी जो पास है, जिसे पास कहना भी उचित नहीं... क्योंकि पास कहने में भी तो थोड़ी दूरी मालूम पड़ती है; जो तुम्हारी श्वासों की श्वास है; जो तुम्हारे हृदय की धड़कन है; जो तुम्हारा जीवन है; जो तुम्हारा केंद्र है-- वहां अभी इसी क्षण अमृत बरस रहा है और कमल खिल रहे हैं! और कमल ऐसे कि जो कभी मुरझाते नहीं--चैतन्य के कमल! योगियों ने जिसे सहस्रार कहा है--हजार पंखुड़ियों वाले कमल! जिनकी सुगंध का नाम स्वर्ग है। जिन पर नजर पड़ गई तो मोक्ष मिल गया। आंखों में जिनका रूप समा गया तो निर्वाण हो गया।
इस बात को सबसे पहले स्मरण रख लेना कि संत दूर की बात नहीं करते। संत
तो जो निकट से भी निकट है, उसकी बात करते हैं। संत उसकी बात नहीं करते हैं जो पाना है; संत उसकी बात करते हैं जो पाया ही हुआ है। संत स्वभाव की बात करते हैं।

उड़ चला इस सांध्य-नभ में,
मन-विहग तज निज बसेरा;
क्यों चला? किस दिशि चला?
किसने उसे यों आज टेरा?
क्यों हुए सहसा स्फुरित, अति शिथिल, संश्लथ पंख उसके? क्या हुए हैं उदित नभ में, चंद्रमा अकलंक उसके?
विकल आतुर सा उड़ा है
मन-विहंगम आज मेरा?
शून्य का आतुर निमंत्रण,
आज उसको मिल गया है;
क्षितिज की विस्तीर्णता का, पवन-अंचल हिल गया है;
प्राण पंछी ने गगन में
ललक कौतूहल बिखेरा।
स्वनित उड्डीयन ध्वनित-गति-- जनित अनहद नाद से यह
दिग्दिगंताकाश वक्षस्थल,
रहा है गूंज अहरह;
ऊर्ध्व गति ने ध्यान-मग्ना--
गीत-यति को आन घेरा!
उड़ चला इस सांध्य-नभ में,
मन-विहग तज निज बसेरा।

पुकार सुनाई पड़ जाए एक बार तुम्हें उसकी जो तुम्हारे भीतर है, तो तुम
उड़ चलो, तो तुम पंख फैला दो। तुम्हें एक बार कोई याद दिला दे उसकी जो तुम्हारी संपदा है, तुम्हारा साम्राज्य है, तुम्हें कोई एक झलक दिखा दे उसकी, जरा सा झरोखा खुल जाए और एक बार तुम देख लो अपने भीतर के सूरज को उगते हुए--फिर तुम्हारे जीवन में क्रांति घटित हो जाएगी। फिर तुम बाहर के कूड़ा- कर्कट के पीछे दौड़ोगे नहीं। और न ही इकट्ठे करते रहोगे ठीकरे। जिसे अमृत मिल जाए, मरणधर्मा में उसकी उत्सुकता अपने आप समाप्त हो जाती है। जिसे भीतर की मालकियत मिल जाए उसे सारी दुनिया का चक्रवर्ती सम्राट होना भी फीका हो जाता है। पर पुकार सुननी है। और पुकार भी आ रही है, मगर तुम हो कि वज्रबधिर बने बैठे हो।
दरिया कहते हैंः

दरिया हरि किरपा करी, बिरहा दिया पठाए।
यह बिरहा मेरे साध को, सोता लिया जगाए।।
प्रभु ने कृपा की है, दरिया कहते हैं, कि मेरे भीतर बैठी हुई आग को उकसा दिया, कि मेरे अंगारे पर से राख झाड़ दी, कि मेरे भीतर विरह की अग्नि जगा दी, कि मेरे भीतर प्यास को उकसा दिया।
क्या तुम सोचते हो कि हरि किसी पर कृपा करता है और किसी पर नहीं करता? क्या तुम सोचते हो कि भगवत्-कृपा किसी को मिलती है और किसी को नहीं मिलती? भगवत्-कृपा तो बेशर्त सब पर बरसती है। उस तरफ से तो कोई भेद-भाव नहीं है; लेकिन कोई उसे स्वीकार कर लेता है और कोई उसे इनकार कर देता है।
वर्षा तो होती है पहाड़ों पर भी और झीलों में भी, लेकिन झीलें भर जाती हैं और पहाड़ खाली के खाली रह जाते हैं। वर्षा तो होती है पत्थरों पर भी और जमीन पर भी, लेकिन जमीन में बीज फूट जाते हैं, हरियाली आ जाती है; पत्थर वैसे के वैसे, रूखे के रूखे रह जाते हैं। पहाड़ पर वर्षा होती है, पहाड़ चूक जाते हैं, क्योंकि पहाड़ खुद अपने से भरे हैं; उनकी बड़ी अस्मिता है, बड़ा अहंकार है। झीलें भर जाती हैं, क्योंकि झीलें खाली हैं, शून्य हैं, उनके द्वार खुले हैं। झीलों ने स्वागत करने की कला सीखी, बंदनवार बांधे--आओ! बादल तो बरसते हैं बेशर्त, लेकिन कहीं फूल खिल जाते हैं, कहीं पत्थर ही पड़े रह जाते हैं।
ऐसे ही परमात्मा की कृपा भी अलग-अलग नहीं है। मुझ पर भी उतनी ही बरसती
है जितनी तुम पर। दरिया पर भी उतनी ही बरसी है जितनी किसी और पर। लेकिन दरिया ने द्वार खोले हृदय के, अंगीकार किया। दरिया ने इनकारा नहीं।
इस अंगीकार करने का नाम ही आस्था है। इस स्वागत का नाम ही श्रद्धा है।
अपने भीतर द्वार पर दस्तक देते सूरज को बुला लेने का नाम ही भक्ति है। और भगवान प्रतिपल द्वार पर दस्तक दे रहा है।
दरिया हरि किरपा करी, बिरहा दिया पठाए।
भेज दी विरह की खबर, पुकार दे दी। कहना चाहिए--पुकार सुन ली! लेकिन भक्त तो ऐसा ही कहेगा--उस कहने में भी राज है--कि परमात्मा ने कृपा की। क्योंकि भक्त की यह मान्यता है--और मान्यता ही नहीं, यह जीवन का परम सत्य भी है--कि हमारे किए कुछ भी नहीं होता; जो होता है, उसके किए होता है। हम तो अगर इतना ही करने में सफल हो जाएं कि बाधा न दें, तो बस बहुत। वर्षा तो उसकी तरफ से होती है; हम अपने पात्र को उलटा न रखें, इतना ही बहुत। हम अपने पात्र को सीधा रख लें, वर्षा तो उसकी ही तरफ से होती है। पात्र के सीधे होने से वर्षा नहीं होती; वर्षा तो हो ही रही थी, लेकिन पात्र सीधा हो तो भर जाता है, तो भरपूर हो जाता है।
भक्त का अनुभव है कि मनुष्य के प्रयास से नहीं मिलता परमात्मा-- प्रसाद से मिलता है; उसकी ही अनुकंपा से मिलता है। हमारे प्रयास भी तो छोटे-छोटे हैं--हमारे हाथ ही इतने छोटे हैं! हम चांद-तारों को नहीं छू पाएंगे, तो हम परमात्मा को कैसे छू पाएंगे? हमारी मुट्ठी में समाएगा क्या? विराट पर हम मुट्ठी कैसे बांधेंगे? और हमारे इस छोटे से हृदय में हम इस अनंत आकाश को कैसे आमंत्रित करेंगे? नहीं, उसकी कृपा होगी तो ही यह चमत्कार घटित होगा। उसकी कृपा होगी तो बूंद में सागर भी समा जाएगा। दरिया हरि किरपा करी, बिरहा दिया पठाए।
कहते हैंः तुमने ही पुकारा होगा, इसलिए मैं तुम्हें खोजने निकल पड़ा।
यह भक्तों का सदियों-सदियों का अनुभव है। तुम थोड़े ही परमात्मा को खोजते हो; परमात्मा तुम्हें खोजता है। परमात्मा तुम्हें टटोल रहा है। परमात्मा अलग-अलग विधियों से तुम्हारी तरफ निमंत्रण भेज रहा है, प्रेम-पातियां लिख रहा है। लेकिन तुम न प्रेम-पातियां पढ़ते हो... तुम भाषा ही भूल गए जिससे उसकी प्रेम-पाती पढ़ी जा सके। उस प्रेम की पाती को पढ़ने की भाषा भी तो प्रेम है! तुम प्रेम ही भूल गए! वह द्वार पर दस्तक देता है, तुम्हें सुनाई नहीं पड़ता, क्योंकि उसकी दस्तक शोरगुल नहीं है, शून्य है। वह तुम्हारे हृदय को छूता है, लेकिन तुम्हारी समझ में नहीं आता, क्योंकि उसका छूना स्थूल नहीं है, सूक्ष्म है। वह बवंडर की तरह नहीं आता, शोरगुल मचाता नहीं आता--कानों में फुसफुसाता है, गुफ्तगू करता है। और तुम्हारे सिर में इतना शोरगुल है कि कैसे तुम्हें उसकी गुफ्तगू सुनाई पड़े? तुम्हारे भीतर

बाजार भरा है, मेला लगा है। तुम्हारा मन क्या है--कुंभ का मेला है! शोरगुल और उपद्रव है। भीड़-भाड़ है। वहां उसकी धीमी सी आवाज कहां खो जाएगी, पता भी नहीं चलेगा।
लेकिन जिस दिन भी तुम्हें समझ में आएगी बात, उस दिन तुम्हें यह भी ख्याल में आएगाः वह तो सदियों से खोज रहा था, हमने ही अनसुना किया। अभागे हम। दुर्भाग्य हमारा। वह तो कब से आने को आतुर था। हमने उसे बुलाया ही नहीं। वह तो कब से द्वार पर खड़ा था, हमने द्वार ही न खोले।

फिर खराद पर मुझे चढ़ा
कुशल समय के कारीगर

जुड़ा सका हूं दुर्गुण केवल
जो भी गुण हैं, गौण बहुत
मैं न सरल सीधी रेखा सा
बाकी मुझमें कोण बहुत
मैं त्रुटियों का त्रिभुज, मुझे सीधा-सादा आयत कर

मैं विकृत बेडौल खुरदरा
निश्चित कुछ आकार नहीं
मैं वह धातु कि जिस पर
शिल्पी का रचना संस्कार नहीं आकृति दे अभिरूपकार
मूर्ति बने अनगढ़ पत्थर

बाहर उजले देवपीठ पर
भीतर-भीतर तहखाने
आदि पुरुष सोया है जिसमें कुंठाएं रख सिरहाने
मन की गुह्य गुहाओं में
कोई नन्हा दीपक धर

उससे ही कहना होगा--
मन की गुह्य गुहाओं में
कोई नन्हा दीपक धर
फिर खराद पर मुझे चढ़ा
कुशल समय के कारीगर
आकृति दे अभिरूपकार
मूर्ति बने अनगढ़ पत्थर
हम तो अनगढ़ पत्थर हैं। छैनी चाहिए, हथौड़ी चाहिए, कोई कुशल कारीगर चाहिए--कि गढ़े!
और कारीगर भी है। मगर हम टूटने को राजी नहीं हैं। जरा सा हमसे छीना जाए तो हम और जोर से पकड़ लेते हैं। छैनी देख कर तो हम भाग जाते हैं। हथौड़ी से तो हम बचते हैं। हम तो चाहते हैं सांत्वनाएं, सत्य नहीं।
दरिया कहते हैंः मीठे राचैं लोग सब!
मीठा-मीठा तो सभी को रुचता है। मीठा यानी सांत्वना। अच्छी-अच्छी बातें तुम्हारे अहंकार को आभूषण दें, तुम्हें सुंदर परिधान दें, तुम्हारी कुरूपता को ढांकें, तुम्हारे घावों पर फूल रख दें।
मीठे राचैं लोग सब, मीठे उपजै रोग।
लेकिन इसी सांत्वना, इसी मिठास की खोज से तुम्हारे भीतर सारे रोग पैदा हो रहे हैं।
निरगुन कडुवा नीम सा, दरिया दुर्लभ जोग।
और जो उस निर्गुण को पाना चाहते हैं, उन्हें तो नीम पीने की तैयारी करनी होगी।

निरगुन कडुवा नीम सा, दरिया दुर्लभ जोग।
और इसीलिए तो बहुत कठिन है योग, बहुत कठिन है संयोग, क्योंकि परमात्मा
जब आएगा तो पहले तो कड़वा ही मालूम पड़ेगा। लेकिन वही नीम की कड़वाहट तुम्हारे भीतर की सारी अशुद्धियों को बहा ले जाएगी, तुम्हें निर्मल करेगी, निर्दोष करेगी। सदगुरु जब मिलेगा तो खड्ग की धार की तरह मालूम होगा। उसकी तलवार तुम्हारी गर्दन पर पड़ेगी। कबीर कहते हैं--
कबीरा खड़ा बाजार में, लिए लुकाठी हाथ।
जो घर बारै आपना, चले हमारे साथ।।
हिम्मत होनी चाहिए घर को जला देने की। कौन सा घर? वह जो तुमने मन का घर बना लिया है--वासनाओं का, आकांक्षाओं का, अभीप्साओं का। वह जो तुमने कामनाओं के बड़े गहरे सपने बना रखे हैं, सपनों के महल सजा रखे हैं। जो उन सबको जला देने को राजी हो, उसे आज और अभी और यहीं परमात्मा की आवाज सुनाई पड़ सकती है। उसके भीतर की राख झड़ सकती है और अंगारा निखर सकता है।
दरिया हरि किरपा करी, बिरहा दिया पठाए।
कि तुम्हारी बड़ी कृपा है प्रभु, कि मेरे भीतर विरह को जगा दिया। विरह
के लिए बहुत कम लोग धन्यवाद देते हैं। मिलन के लिए तो कोई भी धन्यवाद दे देगा। मिलन तो मीठा-मीठा, विरह तो बहुत कड़वा। नीम सा कड़वा! नीम भी क्या होगी कड़वी इतनी। क्योंकि विरह तो आग है। वहां सांत्वना कहां! वहां तो जलन ही जलन है। लेकिन सोना आग से गुजर कर ही शुद्ध होता है। और विरह की यात्रा में निखर कर ही कोई मिलन के योग्य होता है, पात्र बनता है।
यह बिरहा मेरे साध को, सोता लिया जगाए।
दरिया कहते हैंः मुझे पता ही न था कि मेरे भीतर ऐसा परम साधु सोया हुआ
है, कि मेरे भीतर ऐसे परम सत्य का आवास है, कि मेरे भीतर ऐसा निर्दोष, ऐसा कुंवारा स्वभाव है--जिस पर कोई मलिनता कभी नहीं पड़ी; जिस पर कोई कालिख नहीं है; जिस पर कोई दाग नहीं है। न पुण्य का दाग, न पाप का दाग; न शुभ का, न अशुभ का। जो सब तरफ से अस्पर्शित है! मेरे उस साधु को तुमने जगा दिया! एक जरा सी पुकार देकर! विरह को उकसा कर मेरे भीतर के परम कुंवारेपन को मुझे फिर से भेंट दे दिया! दिया ही हुआ था, मगर मैं अंधा कि कभी लौट कर न देखा; मैं बहरा कि कभी सुना नहीं; मैं मूढ़ कि कभी अपने भीतर न टटोला। संसार में टटोलता फिरा, दूर-दूर चांद-तारों में, नक्षत्रों में टटोलता फिरा, जन्मों-जन्मों में, योनियों-योनियों में, न मालूम कितनी देहों में, न मालूम कितने रूपों में तलाशा--और एक जगह भर तुझे खोजा नहींः अपने भीतर कभी आंख को न ले गया, कभी अंतर्दृष्टि न की।
यह बिरहा मेरे साध को, सोता लिया जगाए।
तूने बड़ी कृपा की कि यह आग मुझ पर बरसा दी।
विरह आग है, ध्यान रखना। जिस पर बरसती है, उसका रोआं-रोआं रोता है। जिस
पर बरसती है, उसके खून से आंसू बनने लगते हैं।
दरिया बिरही साध का, तन पीला मन सूख।
दरिया कहते हैंः तन सूख गया, मन सूख गया।
रैन न आवै नींदड़ी, दिवस न लागै भूख।
अब रात नींद नहीं आती, दिन भूख नहीं लगती। बस एक तेरी याद है कि सताए जाती है। बस एक तेरी याद है कि तीर की तरह चुभी जाती है--और गहरे, और गहरे, और गहरे!
टूट मत मेरे हृदय
मुख न हो मेरे मलिन
और थोड़े दिन
विरही को बड़ी धैर्य की कला सीखनी पड़ती है, क्योंकि आग ऐसा जलाती है कि भरोसा नहीं आता कि इस आग के पार कभी कमल भी खिलेंगे। कहीं आग में और कमल खिले हैं! तन सूखने लगता है, मन सूखने लगता है--कैसे भरोसा आए कि अमृत की वर्षा होगी! जो हाथ में है वह भी जाता मालूम होता है।
टूट मत मेरे हृदय
मुख न हो मेरे मलिन
और थोड़े दिन
रात का है प्रात निश्चित

अस्त का है उदय
एक जैसा ही किसी का
कब रहा है समय
रह न पाए दिन सरल
क्या रहेंगे ये कठिन
और थोड़े दिन

ढले कंधे, झुकी ग्रीवा
और खाली हाथ
किंतु चौखट पर दुखों की
टेकना मत माथ
आह अधरों पर न हो
मत पलक पर ला तुहिन
और थोड़े दिन

प्रण न हो मेरे पराजित
हार मत विश्वास
कुछ दिनों का और संकट
कुछ दिनों संत्रास
किश्त अंतिम स्वेद की
तू चुका कर हो उऋण
और थोड़े दिन

सृजन से थक कर न रचना
तोड़ना संकल्प
शेष तेरे अभावों की
आयु है अब अल्प
चौकड़ी मत भूलना
कल्पनाओं के हरिण
और थोड़े दिन

आग भयंकर है विरह की। थोड़े से ही हिम्मतवर लोग गुजर पाते हैं, अन्यथा लौट जाते हैं। धैर्य चाहिए, प्रतीक्षा चाहिए। प्रतीक्षा ही प्रार्थना का मूल है, उदगम है। और जो प्रतीक्षा नहीं कर सकता, वह प्रार्थना भी नहीं कर सकता।
सम्हालना होगा अपने को। और थोड़े दिन बांधना होगा अपने को कि लौट न पड़े, कि भाग न जाए, कि पीठ न दिखा दे।
बिरहिन पिउ के कारने, ढूंढ़न बनखंड जाए।
निस बीती, पिउ ना मिला, दरद रही लिपटाए।।
बड़ी बुरी दशा हो जाती है विरही की। खोजता फिरता है जंगल-जंगल।
निस बीती, पिउ ना मिला...
और रात बीत चली और प्यारा मिला नहीं। फिर कोई और उपाय न देख कर दर्द से
ही लिपट कर सो जाती है।
... दरद रही लिपटाए।
विरही के पास और है भी क्या? परमात्मा पता नहीं कब मिलेगा! जगा गया एक अभीप्सा को। अब अभीप्सा ही है जिसको छाती से लगा कर भक्त जीता है। यही उसकी परीक्षा है। इस परीक्षा से जो नहीं उतरता, वह कभी उस दूसरे किनारे तक न पहुंचा है, न पहुंच सकता है।
भक्त बहुत भावों से गुजरता है। स्वभावतः कई बार लगता है--यह कैसा दुर्दिन आ गया! यह मैं किस झंझट में पड़ गया! सब ठीक-ठाक चलता था, यह किन आंसुओं से जीवन घिर गया! सब भला-चंगा था, यह किस रुदन ने पकड़ लिया कि रुकता ही नहीं! हृदय है कि उंडला ही जाता है और रोआं-रोआं है कि कंप रहा है। और पता नहीं परमात्मा है भी या नहीं! पता नहीं मैं किसी कल्पना के जाल में तो नहीं उलझ गया हूं! सारी शंकाएं उठती हैं, कुशंकाएं उठती हैं। भक्त कभी

नाराज भी हो जाता है परमात्मा पर--कि यह भी दिया तो क्या दिया! मांगे थे फूल, कांटे दिए! मांगी थी सुबह, सांझ दी! मांगा था अमृत, जहर दे दिया!

तुम चाहे दानी बन जाओ, मुझे अयाचक ही रहने दो

प्रिय है मेरा मान मुझे तो
प्यासा मरा, न मांगा पानी
तन से राजकुमारी होकर
संन्यासिन बन गई जवानी
स्वाति बनो तुम चाहे, मुझको प्यासा चातक ही रहने दो

जब भी करे निवेदन तृष्णा
अधरों पर रख दो अंगारा
कत्ल करा दो स्वप्न तृप्ति के
निर्वासित कर मन बनजारा
तुम हिम बन जाओ, मुझको धुंधवाती पावक ही रहने दो

रूप-कुबेर कमी क्या तुमको
जी भर छवि के कोष लुटाओ
मेरा अलगोजा गरीब है
वीणा से फेरे न फिराओ
स्वर साम्राज्य सम्हालो, मुझको विस्मृत गायक ही रहने दो

बहुत बार मान उठ आता है, अभिमान उठ आता है। भक्त कहता हैः छोड़ो भी मुझे! मुझे प्यासा ही रहने दो। नहीं चाहिए तुम्हारी स्वाति की बूंद।
तुम चाहे दानी बन जाओ, मुझे अयाचक ही रहने दो
मांगा कब था? मैंने तुम्हें पुकारा कब था? तुम्हीं ने पुकारा। तुम्हें दानी बनने का मजा है तो बन जाओ दानी, मगर मुझे तो भिखारी न बनाओ! स्वाति बनो तुम चाहे, मुझको प्यासा चातक ही रहने दो
तुम्हें शौक चढ़ा है स्वाति बनने का, बनो! मगर मुझे क्यों सताते हो? मुझे प्यासा चातक ही रहने दो। मुझे तुम्हारी अभीप्सा नहीं है, मुझे तुम्हारी आकांक्षा नहीं है।
तुम हिम बन जाओ, मुझको धुंधवाती पावक ही रहने दो
मुझे छोड़ो भी! मेरा पीछा भी छोड़ो! मेरा आंचल पकड़े छाया की तरह दिन-रात मुझे सताओ मत!
स्वर साम्राज्य सम्हालो, मुझको विस्मृत गायक ही रहने दो
तुम स्वर सम्राट हो, भले! अपने घर तुम भले! मैं अपनी दीनता में भला।
मेरा अलगोजा गरीब है
वीणा से फेरे न फिराओ
मेरे अलगोजे को वीणा से फेरे फिराने के लिए मैंने प्रार्थना कब की थी? पुकारा तुम्हीं ने, अब जलाते क्यों हो? बहुत बार भक्त विरह की अग्नि में शंकाएं करता, कुशंकाएं करता, नाराज भी हो जाता, रूठ भी जाता, पीठ भी फेर लेता; मगर उपाय नहीं है। एक बार उसकी आवाज सुनाई पड़ी तो उससे बचने का कोई उपाय नहीं। जब तक नहीं सुनाई पड़ी है, नहीं सुनाई पड़ी है। एक बार सुनाई पड़ गई तो सारा जग फीका हो जाता है; फिर कुछ भी करो--शंका करो, मान करो, रूठो--सब व्यर्थ।
बिरहिन पिउ के कारने, ढूंढ़न बनखंड जाए।
निस बीती, पिउ ना मिला, दरद रही लिपटाए।।
और पीड़ा बड़ी सघन है भक्त की, विरही की। वृक्षों में फूल खिलते हैं--और भीतर फूलों का कोई पता नहीं, कांटे ही कांटे हैं! आकाश में बादल घिरते हैं, सावन आ जाता है--और भीतर मरुस्थल है, न वर्षा, न बादल, न सावन। बाहर सौंदर्य का इतना विस्तार--और भीतर सब रूखा-सूखा। तन भी सूख जाता, मन भी सूख जाता। भरोसा आए भी तो कैसे आए?

ये घटाएं जामुनी हैं, तुम नहीं हो आह क्या कादंबिनी है, तुम नहीं हो बूंद के घुंघरू बजा कर हंस रही है ऋतु बड़ी अनुरागिनी है, तुम नहीं हो बादलों की बाहुओं में श्लथ पड़ी है समर्पित सौदामिनी है, तुम नहीं हो भीग कर भी मैं सुलगता जा रहा हूं बूंद पावक में सनी है, तुम नहीं हो बिन तुम्हारे साध मेरी साध्वी सी सांस हर संन्यासिनी है, तुम नहीं हो गुदगुदी से अश्रु तक लाई मुझे यह
वेदना सतरंगिनी है, तुम नहीं हो
प्यार ही अपराध मुझ पर आजकल तो
उठ रही हर तर्जनी है, तुम नहीं हो
भीग कर भी मैं सुलगता जा रहा हूं
बूंद पावक में सनी है, तुम नहीं हो

सब सौंदर्य सारे जगत का, सारा काव्य, सारा संगीत एकदम व्यर्थ हो जाता है--उसकी पुकार सुनते ही! जैसे हीरा देख लिया हो तो अब कंकड़-पत्थरों में मन रमे तो कैसे रमे? और तुम लाख भुलाना चाहो कि हीरे को नहीं देखा है, तो भी कैसे भुलाओगे?
जीवन का एक शाश्वत नियम हैः जो जान लिया, जान लिया; उसे अनजाना नहीं किया जा सकता। जो पहचान लिया, पहचान लिया; उससे फिर पहचान नहीं तोड़ी जा सकती। जिसका अनुभव हो गया, हो गया; अब तुम लाख उपाय करो तो उसे अनुभव के बाहर नहीं कर सकते।
बिरहिन का घर बिरह में, ता घट लोहु न मांस।
अपने साहब कारने, सिसकै सांसों सांस।।
दरिया कहते हैंः विरह ही घर बन जाता है, वही मंदिर बन जाता है।
बिरहिन का घर बिरह में...
उठो, बैठो, चलो, कहीं भी जाओ, विरह तुम्हें घेरे रहता है। एक अदृश्य वातावरण विरह का तुम्हें पकड़े रहता है। काम करो संसार के, मगर कहीं मन रमता नहीं। मिलो मित्रों से, प्रियजनों से, मगर उस परम प्यारे की याद पकड़े ही रहती है। कोई प्रियजन मन को अब उलझा नहीं पाता। कितना ही प्यारा संगीत सुनो, उसकी आवाज के सामने सब फीका हो गया है। और कितने ही सुंदर फूल देखो, अब तो जब तक उसका फूल न खिल जाए, तब तक कोई फूल फूल नहीं मालूम होगा। बिरहिन का घर बिरह में, ता घट लोहु न मांस।
और ऐसी गहराइयों में विरह ले जाने लगता है, जहां न शरीर है, न शरीर की छाया पड़ती है।
अपने साहब कारने, सिसकै सांसों सांस।
बस वहां तो सिर्फ उस साहब की याद है और एक सिसकी है, जो किसी और को सुनाई भी शायद न पड़े। श्वास-श्वास में सिसकी भरी है। भक्त कहना भी चाहे तो शब्द काम नहीं पड़ते। भक्त गूंगा हो जाता है। बोलना चाहता है और नहीं बोल पाता। श्वास-श्वास में सिसकी होती है। सिसकी ही उसकी प्रार्थना है। आंखों से झरते आंसू ही उसकी अर्चना है।
महक रहा ऋतु का श्रृंगार
जैसे पहला-पहला प्यार!

जाग रही है गंध अकेली
सारा मधुवन सोता है!
किया नहीं जिसने क्या जाने प्यार में क्या-क्या होता है! रातें घुल जातीं आंखों में दिन उड़ जाते पंख पसार!

बार-बार कोई पुकारता
रह-रह कर अमराई से!
अपना पता पूछता हूं मैं
अपनी ही परछाईं से!
कोई नहीं बोलता कुछ भी
मौन खड़े सारे घर-द्वार!

फूलों के रंगीन शहर में
खुशबू अब तक अनब्याही!
कोई कली किसी कांटे की
बांहों में है अनचाही!
मजबूरी ने जोड़े अनगिन
इच्छाओं के बंदनवार!

राहों-राहों आग बिछी है
झुलसी-झुलसी छायाएं!
हर चौराहा धुआं-धुआं है,
घर तक हम कैसे जाएं!
कब तक खाली जेब लिए मैं
देखूं भरा-भरा बाजार!

करूं शिकायत कहां दर्द की हर दरबार यहां झूठा!
नये जमाने में कुछ भी हो
पर इन्सान बहुत टूटा!
बाहर-बाहर मुसकानें हैं
भीतर-भीतर हाहाकार!

मजबूरी ने जोड़े अनगिन
इच्छाओं के बंदनवार!
रातें घुल जातीं आंखों में
दिन उड़ जाते पंख पसार!
कोई नहीं बोलता कुछ भी
मौन खड़े सारे घर-द्वार!

महक रहा ऋतु का श्रृंगार
जैसे पहला-पहला प्यार!

चारों तरफ सब सुंदर है, सब प्रीतिकर है। और भीतर एक रिक्तता भर जाती है।
विरह का अर्थ क्या है? विरह का अर्थ हैः भीतर मैं शून्य हूं। जहां परमात्मा होना चाहिए था वहां कोई भी नहीं है, सिंहासन खाली पड़ा है। विरह का अर्थ हैः बाहर सब, भीतर कुछ भी नहीं। विरह का अर्थ हैः यह भीतर का सूनापन काटता है, यह भीतर का सन्नाटा काटता है।
लेकिन इस विरह से गुजरना होता है। इस विरह से गुजरे बिना कोई भी सिंहासन के उस मालिक तक नहीं पहुंच पाता है। यह कीमत है जो चुकानी पड़ती है। शायद इसीलिए लोग, अधिक लोग ईश्वर में उत्सुक नहीं होते। इतनी कीमत कौन चुकाए? किस भरोसे चुकाए? शायद इसीलिए अधिक लोगों ने झूठे और औपचारिक धर्म खड़े कर लिए हैं। मंदिर गए, दो फूल चढ़ा आए, घंटा बजा दिया, दीया जला आए, निपट गए, बात खत्म हो गई। न भीतर का घंटा बजा, न भीतर का दीया जला, न भीतर की आरती सजी, बाहर का इंतजाम कर लिया है। तुम्हारी दुकान भी बाहर और तुम्हारा मंदिर भी बाहर। तो तुम्हारी दुकान और तुम्हारे मंदिर में बहुत फर्क नहीं हो सकता।

दुकान बाहर, मंदिर तो भीतर होना चाहिए। मंदिर तो भीतर का ही हो सकता है। लेकिन भीतर के मंदिर को चुनने में, भीतर के मंदिर को निर्मित करने में तुम्हें बुनियाद बन जाना पड़ेगा। तुम्हीं दबोगे, बुनियाद के पत्थर बनोगे, तो भीतर का मंदिर उठेगा। तुम मिटोगे तो परमात्मा की उपलब्धि हो सकती है। विरह गलाता है, मिटाता है। विरह तुम्हें पोंछ जाता है। एक ऐसी घड़ी आती
है जब तुम नहीं होते हो। और जिस घड़ी तुम नहीं हो, उसी घड़ी परमात्मा है। मिलन घटित होता है कब? बड़ी बेबूझ शर्त है मिलन की। ऐसी बेबूझ शर्त है, ऐसी अतर्क्य शर्त है कि बहुत थोड़े से हिम्मतवर लोग पूरा कर पाते हैं। तुम भी परमात्मा से मिलना चाहोगे। लेकिन शर्त यह है कि जब तक तुम हो, तब तक मिलन न हो सकेगा। जब तक तुम हो, परमात्मा नहीं है, ऐसा गणित है। और जब तुम नहीं होओगे, तब परमात्मा है।
कौन इस शर्त को पूरा करे? कौन जुआरी इतना बड़ा दांव लगाए? किस गारंटी पर? क्या पक्का है कि मैं मिट जाऊंगा तो परमात्मा मिलेगा ही? सिवाय इसके कि दरिया जैसे मिटने वाले लोगों ने कहा है कि मिलता है। मगर कौन जाने दरिया सच कहते हों, सच न कहते हों! भ्रांति में पड़ गए हों! या कोई शड्यंत्र हो पीछे इन सारी बातों के, कोई बड़ा जाल हो लोगों को उलझाए रखने का! कैसे भरोसा आए?
एक ही उपाय है कि किसी ऐसे व्यक्ति से मिलना हो जाए जो मिट गया है--और मिट कर हो गया है, मिट कर पूर्ण हो गया है! जिसने शून्य को जाना है और शून्य में उतरते हुए पूर्ण को पहचाना है। जिसके भीतर मैं तो नहीं बचा और अब तू ही विराजमान हो गया है। जिसके भीतर भगवत्ता बोलती है, ऐसे किसी व्यक्ति से जीवंत मिलन हो जाए, उसके चरणों में बैठने का सौभाग्य मिल जाए, उसके सन्नाटे को समझने का अवसर मिल जाए, उसकी आंखों में आंखें डालने की शुभ घड़ी आ जाए, ऐसा कोई मुहूर्त बने--तो कुछ बात हो, तो भरोसा आए, तो श्रद्धा जगे। सत्संग के बिना श्रद्धा नहीं जगती है। और सदगुरु के बिना यह भरोसा आ
ही नहीं सकता कि तुम इतनी हिम्मत जुटा सको कि अपने को मिटाऊं और परमात्मा को पाऊं।
दरिया बान गुरुदेव का, कोई झेलै सूर सुधीर।
लागत ही ब्यापै सही, रोम-रोम में पीर।।
इसलिए दरिया कहते हैंः यह बात समझ में न आएगी, यह विरह की हिम्मत तुम न जुटा पाओगे। यह तो तभी जुटा पाओगे जब--
दरिया बान गुरुदेव का...
जब किसी सदगुरु का बाण तुम्हारे हृदय में लग जाएगा।
... कोई झेलै सूर सुधीर।
दो शब्द प्रयोग किए हैं--सूर और सुधीर। सूर भी हैं लोग, हिम्मतवर भी लोग हैं, बहादुर भी लोग हैं; मगर उतने से काफी नहीं है। मरने-मारने को तैयार हैं, मगर सूझ-बूझ बिल्कुल नहीं है। साहसी हैं, मगर समझ नहीं है। तो भी नहीं होगा। और ऐसा भी है कि बहुत लोग हैं जो बड़े समझदार हैं, मगर साहसी नहीं हैं। तो उनकी समझ के कारण वे और भी कायर हो जाते हैं। उनकी समझदारी के कारण वे एक कदम भी अज्ञात में नहीं उठा पाते। उनकी समझदारी उनको और जकड़ देती है किनारे से। नाव ही नहीं खोल पाते हैं सागर में। इतना विराट सागर! ऐसी उत्तंग लहरें! ऐसी छोटी सी नाव! कोई समझदार खोलेगा? न नक्शा है पास; न पक्का है कि उसका उस पार कोई किनारा होगा; कि नाव कभी पहुंचेगी, इसका कोई पक्का नहीं। उत्तंग लहरों को देख कर इतना ही पक्का है कि नाव डूबेगी, सदा को डूब जाएगी।
समझदार साहसी नहीं होते। साहसी समझदार नहीं होते। अक्सर इसीलिए साहसी होते हैं कि समझदार नहीं हैं। समझदार नहीं हैं, इसलिए उतर जाते हैं कहीं भी, जूझ जाते हैं किसी भी चीज से। इसीलिए तो सैनिकों को शिक्षण देते समय उनकी समझ नष्ट करनी पड़ती है। नहीं तो वे जूझ नहीं पाएंगे युद्ध में। अगर समझदार होंगे तो जूझ नहीं पाएंगे। समझदारी हजार बाधाएं खड़ी करेगी। इसलिए सारे सैन्य-शिक्षण में एक ही खास मुद्दा ध्यान में रखा जाता है कि तुम्हारी समझ को खत्म किया जाए। बाएं घूम, दाएं घूम; बाएं घूम, दाएं घूम-- सुबह से सांझ तक चलता रहता है। न बाएं घूमने में कोई मतलब है, न दाएं घूमने

में कोई मतलब है। तुम यह नहीं पूछ सकते कि इसका मतलब क्या? बाएं घूमने से क्या होगा?
एक दार्शनिक भर्ती हुआ सेना में। महायुद्ध में सभी लोग भर्ती हो रहे थे, वह भी भर्ती हो गया। देश को जरूरत थी सैनिकों की। और जब उसके कप्तान ने कहा कि बाएं घूम! तो सारे लोग तो बाएं घूम गए, वह अपनी जगह खड़ा रहा। उसके कप्तान ने पूछा कि आप घूमते क्यों नहीं?
उसने कहाः पहले यह पक्का हो जाना चाहिए कि घूमना किसलिए? बाएं घूमने
से क्या मिलेगा? इतने लोग बाएं घूम गए, इनको क्या मिला? और फिर ये आखिर दाएं घूमेंगे, बाएं घूमेंगे और यहीं आ जाएंगे इसी अवस्था में जिसमें मैं खड़ा ही हूं। घूम-घाम से मतलब क्या है? मैं बिना सोच-विचार के एक कदम नहीं उठा सकता।
दार्शनिक का शिक्षण यही है कि बिना सोच-विचार के कदम न उठाए। प्रसिद्ध दार्शनिक था। कोई और होता तो कप्तान ने दस-पांच गालियां सुनाई होतीं। क्योंकि भाषा ही... कप्तानों की और पुलिसवालों की भाषा में गालियां तो बिल्कुल जरूरी होती हैं। दो-चार सजाएं दी होतीं। लेकिन दार्शनिक प्रसिद्ध था, सोचा कि इस... और बेचारा ऐसे तो ठीक ही कह रहा है। कप्तान को भी बात पहली दफे समझ में आई कि बाएं घूम, दाएं घूम, इसका मतलब क्या है? प्रयोजन क्या है?
इसका प्रयोजन है। अगर कोई आदमी तीन-चार घंटे रोज बाएं घूम, दाएं घूम, दौड़ो, रुको, भागो, जाओ, आओ--ऐसा करता रहे, हर आज्ञा का पालन, तो उसकी बुद्धि धीरे-धीरे क्षीण हो जाएगी। वह यंत्रवत हो जाएगा। फिर एक दिन उससे कहो कि मारो, तो वह मारेगा--उसी आसानी से जैसे दाएं घूमता था, बाएं घूमता था। फिर यह भी नहीं सोचेगा कि जिस आदमी की छाती में मैं गोली चला रहा हूं या छुरा भोंक रहा हूं, इसकी मां होगी बूढ़ी, घर राह देखती होगी; इसके बच्चे होंगे, इसकी पत्नी होगी। और इसने मेरा कुछ भी तो नहीं बिगाड़ा है। इससे मेरी कोई पहचान ही नहीं है, बिगाड़ने का सवाल ही नहीं है। इसे मैंने कभी जाना भी नहीं है--अपरिचित, अनजान। जैसे मैं युद्ध में भर्ती हो गया हूं चार रोटी के लिए, ऐसे ही यह भी युद्ध में भर्ती हो गया है। क्यों इसे मारूं?
यह दार्शनिक जो बाएं नहीं घूम रहा है, यह गोली भी नहीं चलाएगा। जब आज्ञा होगी कि चलाओ गोली, तो यह पूछेगाः क्यों? गोली चलाने से क्या सार? और इस बेचारे ने बिगाड़ा क्या है? इससे मेरा कोई झगड़ा भी नहीं है। इससे मेरी पहचान ही नहीं है, झगड़े का सवाल ही नहीं उठता।
सोच कर कप्तान ने कि आदमी तो अच्छा है, भला है, अब भर्ती हो गया है, अब इसको निकालना भी ठीक नहीं है, कोई और काम दे देना चाहिए। तो चौके में काम दे दिया। छोटा काम, जो कर सके। मटर के दाने, बड़े एक तरफ कर, छोटे एक तरफ कर। घंटे भर बाद जब कप्तान आया तो दार्शनिक वैसा ही बैठा हुआ था। तुमने अगर रोदिन का चित्र देखा हो, मूर्ति, रोदिन की प्रसिद्ध मूर्ति है--विचारक, ऐसा ठुड्डी से हाथ लगाए हुए एक विचारक बैठा हुआ है। उसी ठीक मुद्रा में दार्शनिक बैठा हुआ था। दाने जैसे थे मटर के, वैसे के वैसे रखे थे। एक दाना भी यहां से वहां नहीं हटाया गया था। कप्तान ने पूछा कि महाराज, इतना तो कम से कम करो!
उसने कहा कि पहले सब बात साफ हो जानी चाहिए। तुमने कहा कि बड़े एक तरफ करो, छोटे एक तरफ करो। मझोल कहां जाएं? और मैं कदम नहीं उठाता जब तक कि सब साफ न हो, स्पष्ट न हो।
इतनी समझदारी होगी तो तुम अनंत सागर में अपनी नाव न छोड़ सकोगे। इसलिए सैनिकों की बुद्धि नष्ट कर देनी होती है। फिर वे यंत्रवत जूझ जाते हैं, कट जाते हैं, काट देते हैं। अब जिस आदमी ने हिरोशिमा पर एटम बम गिराया, एक लाख आदमी पांच मिनट में जल कर राख हो जाएंगे, अगर जरा भी सोचता तो क्या गिरा पाता? तो ज्यादा से ज्यादा यही हो सकता था कि जाकर कह देता कि मैं नहीं गिरा सकता हूं, चाहो तो मुझे गोली मार दो। यह ज्यादा उचित होता। कि एक आदमी, मर जाऊंगा, क्या हर्जा है! लेकिन एक लाख आदमियों को पांच मिनट में अकारण मार डालूं, जिनका कोई भी कसूर नहीं है! छोटे बच्चे हैं, स्कूल जाने की तैयारी कर रहे हैं, अपने बस्ते सजा रहे हैं। पत्नियां घर में भोजन बना रही हैं। लोग दफ्तर काम के लिए जा रहे हैं। इन निहत्थे लोगों पर, जो सैनिक

भी नहीं हैं, नागरिक हैं, जिनका कोई हाथ युद्ध में नहीं है--इन पर एटम बम गिराऊं?
लेकिन नहीं, यह सवाल ही नहीं उठा। वह जो बाएं घूम, दाएं घूम का शिक्षण है, वह सवालों को नष्ट कर देता है। वह एक अंधापन पैदा कर देता है। उसने तो बम गिरा दिया। और जब दूसरे दिन सुबह पत्रकारों ने उससे पूछा कि तुम रात सो सके? तो उसने कहाः मैं बहुत अच्छी नींद सोया। क्योंकि जो काम मुझे दिया गया था, वह पूरा कर दिया। फिर अच्छी नींद के सिवाय और क्या था? जो मेरा कर्तव्य था, वह पूरा कर आया, बहुत गहरी नींद सोया।
एक लाख आदमी जल कर राख होते रहे और उनके ऊपर बम गिराने वाला आदमी रात गहरी नींद सो सका! जरूर बुद्धि बिल्कुल पोंछ दी गई होगी। जरा भी बुद्धि का नाम-निशान न रहा होगा।
तो एक तरफ बुद्धिमान लोग हैं, उनमें साहस नहीं है। और एक तरफ साहसी लोग हैं, उनमें बुद्धि नहीं है। इनमें से दोनों में से कोई भी परमात्मा तक नहीं पहुंच सकता। इसलिए दरिया ने बड़ी ठीक बात कहीः कोई सूर सुधीर! साहसी और अति बुद्धिमान, सुधीर। सुधि जिसके भीतर हो, धी जिसके भीतर हो, प्रज्ञा जिसके भीतर हो, कोई प्रज्ञावान साहसी! ऐसा अमृत संयोग जब मिलता है, ऐसा जब सोने में सुगंध होती है, तब परमात्मा को पाया जाता है।
दरिया बान गुरुदेव का, कोई झेलै सूर सुधीर।
यहां मेरे पास दोनों तरह के लोग आ जाते हैं। कोई हैं जो बहुत पंडित हैं, बहुत सोच-विचार में हैं, वे भी बाण को नहीं झेल पाते। उनके बीच इतने शास्त्र हैं कि बाण शास्त्रों में ही छिद जाता है, उनके हृदय तक नहीं पहुंच पाता। उनकी समझदारी अतिशय है कि उनके भीतर साहस तो रह ही नहीं गया है। साहसी आ जाते हैं तो भी मेरी बात गलत समझते हैं, क्योंकि साहसी मेरी बात सुन कर ही--मैं स्वतंत्रता की बात करता हूं, वह स्वच्छंदता की बात समझ लेता है। उसके पास बुद्धि नहीं है। मैं प्रेम की बात करता हूं, वह काम की बात समझ लेता है। उसके पास बुद्धि नहीं है। मैं कुछ कहता हूं, वह कुछ का कुछ कर लेता है।
सदगुरु का बाण तो केवल वे ही झेल सकते हैं जिनमें दोनों बातें हों-- साहस हो, सुबुद्धि हो।
लागत ही ब्यापै सही...
फिर तो लग भर जाए, जरा सा भी लग जाए गुरु का बाण, फिर तो व्याप जाता है।
... रोम-रोम में पीर।
रोएं-रोएं में विरह की पीड़ा पैदा हो जाती है। परमात्मा की पुकार उठने लगती है। प्रार्थना जगने लगती है।
साध सूर का एक अंग, मना न भावै झूठ।
साध न छांड़ै राम को, रन में फिरै न पूठ।।
कहते हैं कि साधु और सूर में एक बात की समानता है कि दोनों के मन को झूठ नहीं भाता।
साध न छांड़ै राम को, रन में फिरै न पूठ।
जैसे शूरवीर युद्ध के मैदान से पीठ नहीं फेरता। चाहे कुछ भी हो जाए, बचे कि जाए जीवन, भागता नहीं, लौट नहीं पड़ता, पीठ नहीं दिखाता। वैसे ही राम की खोज में जो चला है, चाहे विरह कितना ही जलाए, अंगारों पर चलना पड़े, तो भी लौटता नहीं है। लौट ही नहीं सकता। लौटना असंभव है, क्योंकि वे अंगारे जलाते भी हैं और शीतल भी करते हैं। बड़े विरोधाभासी हैं। वे कांटे चुभते भी हैं और भीतर एक बड़ी मिठास भी भर जाते हैं। नीम कड़वी भी है और शुद्ध भी करती है।
दरिया सांचा सूरमा, अरिदल घालै चूर।
राज थापिया राम का, नगर बसा भरपूर।।
दरिया सांचा सूरमा...
वही है सच्चा योद्धा जो अपने भीतर के शत्रुओं को समाप्त कर दे।
बाहर के शत्रुओं को तो कौन कब समाप्त कर पाया है! और बाहर के शत्रुओं
को समाप्त करो तो नये शत्रु पैदा हो जाते हैं। और बाहर के शत्रुओं पर विजय भी पा लो तो भी विजय कोई ठहरने वाली नहीं है। जो आज जीता है, कल हार जाएगा।

जो आज हारा है, कल जीत जाएगा। बाहर तो जिंदगी प्रतिपल बदलती रहती है। वहां तो कुछ भी शाश्वत नहीं है, ठहरा हुआ नहीं है--जलधार है।
लेकिन भीतर एक युद्ध है--और भीतर के योद्धा बनना है! वहां शत्रु हैं, असली शत्रु वहां हैं--क्रोध है, काम है, लोभ है, मोह है... हजार शत्रु हैं। इन सबको जो जीत लेता है, इन सबका जो मालिक हो जाता है, वही उस बड़े मालिक से मिलने का हकदार है।
मालिक बनो छोटे, तो बड़े मालिक से मिल सकोगे। उतनी पात्रता अर्जित करनी चाहिए। मालिक से मिलने के लिए कुछ तो मालिक जैसे हो जाओ। साहब से मिलने के लिए कुछ तो साहब जैसे हो जाओ। कुछ तो प्रभुता तुम्हारे भीतर हो, तो प्रभु के द्वार पर तुम्हारा स्वागत हो सके।
राज थापिया राम का, नगर बसा भरपूर।
अपने भीतर तो राम का राज स्थापित करो। अभी तो काम का राज है तुम्हारे भीतर। राम का राज स्थापित करो। अभी तो तुम्हारे भीतर कामनाएं ही कामनाएं हैं, और खींचे लिए जाती हैं, और तुम बंधे कैदी की तरह घसिटते हो। काम से घिरा हुआ चित्त सारा गौरव खो देता है, सारी गरिमा खो देता है।
लेकिन ध्यान रहे कि काम हो कि क्रोध हो कि लोभ हो कि मोह हो, इन्हें मार नहीं डालना है, इन्हें रूपांतरित करना है। मार डालोगे तो तुमने अपनी ही ऊर्जा के स्रोतों को नष्ट कर दिया। क्योंकि क्रोध ही जब ध्यान से जुड़ जाता है तो करुणा बनता है। क्रोध को काट नहीं डालना है, ध्यान से जोड़ देना है। होशियार तो वही है जो जहर को भी औषधि बना ले। सच्चा सुधी तो वही है जो पत्थरों को भी सीढ़ियां बना ले, मार्ग की बाधाओं को भी जो उपयोग कर ले, उनका सहयोग ले ले।
जो बुद्धू हैं वे भीतर के शत्रुओं को मारने में लग जाते हैं। और सदियों से धर्म के नाम पर ऐसे ही बुद्धुओं का राज्य रहा है। भीतर के शत्रुओं को मार सकते हो, मगर मार कर तुम पाओगे कि तुमने अपने ही अंग काट दिए। बाइबिल कहती है कि जो हाथ तुम्हारा चोरी करे, उस हाथ को काट दो। यह तो ठीक। लेकिन यही हाथ दान दे सकता था; अब दान कैसे दोगे? और जो आंख बुरा देखे, वह आंख फोड़ दो। ठीक; लेकिन यही आंख तो इस जगत में परमात्मा को देखती है; अब परमात्मा को कैसे देखोगे? और आंख तो तटस्थ है। आंख न तो कहती है बुरा देखो, न कहती है भला देखो। आंख तो सिर्फ देखने की सुविधा है। तुम जो देखना चाहते हो वही देखो। अगर परमात्मा देखना चाहते हो तो आंख परमात्मा को देखने का साधन बन जाती है।
इसलिए मैं इस तरह की कहानियों को सहमति नहीं देता। कहानी है कि सूरदास ने अपनी आंखें फोड़ लीं। सूरदास के वचन मुझे काफी भरोसा दिलाते हैं कि इस तरह का काम सूरदास कर नहीं सकते। और किया हो तो उनका सारा जीवन व्यर्थ हो जाता है। सूरदास ने कृष्ण के सौंदर्य के ऐसे प्यारे गीत गाए हैं; यह असंभव है कि सूरदास ने अपनी आंखें फोड़ ली हों--इसलिए, क्योंकि आंखें वासना में ले जाती हैं। आंखें वासना में ले भी नहीं जातीं किसी को। सूरदास जैसे व्यक्ति को तो बात समझ में आ ही गई होगी। आंखें कहीं वासना में ले जाती हैं? वासना भीतर होती है तो आंखें वासना का साधन बन जाती हैं। और प्रार्थना भीतर हो तो आंखें प्रार्थना का साधन बन जाती हैं। तुम्हारे हाथ में तलवार है, इससे तुम चाहे किसी की जान ले लो और चाहे किसी की जान ली जा रही हो तो बचा लो। तलवार तटस्थ है।
सारी इंद्रियां तटस्थ हैं। इन्हीं कानों से उपनिषद सुने जाते हैं, इन्हीं आंखों से सुबह उगता सूरज देखा जाता है। इन्हीं आंखों से चोर खजाने खोजता है दूसरों के। इन्हीं आंखों से लोगों ने अपने भीतर के खजाने खोज लिए हैं। सब तुम पर निर्भर है।
तो भीतर के शत्रुओं को जीतना तो जरूर है, मारना नहीं है। मार ही दिया
तो फिर जीत क्या? मारे हुए पर जीत का कोई अर्थ होता है?
एक चाय-घर में लोग गपशप में लगे हैं। एक सैनिक युद्ध से लौटा है, वह बड़ी बहादुरी हांक रहा है। वह कह रहा है कि मैंने एक दिन में पचास सिर काटे, ढेर लगा दिया सिरों का।

मुल्ला नसरुद्दीन बहुत देर से सुन रहा है। उसने कहाः यह कुछ भी नहीं।
मैं भी युद्ध में गया था अपनी जवानी में। एक दिन में मैंने हजार आदमियों के पैर काट दिए थे।
सैनिक ने कहाः पैर? कभी सुना नहीं! यह भी कोई बात है? सिर काटे जाते हैं, पैर नहीं।
मुल्ला ने कहाः मैं क्या करता, सिर तो कोई पहले ही काट चुका था!
मरों के अगर तुम पैर काट भी लाए तो कोई विजेता नहीं हो। अगर तुमने मार
ही डाला अपने भीतर तो तुम कुछ बुद्धिमान नहीं हो। और तुम अपने भीतर जिनको शत्रु समझ कर मार डाले हो, उनको मारने के बाद पाओगेः तुम्हारे जीवन की सारी ऊर्जा के स्रोत सूख गए।
इसलिए तुम्हारे संतों के जीवन में न उल्लास है, न उत्सव है, न आनंद है।
एक गहन उदासी है। तुम्हारे संतों के जीवन में कोई सृजनात्मकता भी नहीं है। उनसे कोई गीत भी नहीं फूटते। उनसे कोई नृत्य भी नहीं जगता। क्योंकि जो ऊर्जा गीत बन सकती थी और नृत्य बन सकती थी, उस ऊर्जा को तो वे नष्ट करके बैठ गए। उनके जीवन में कोई करुणा भी नहीं दिखाई पड़ती। क्योंकि क्रोध को मार दिया, करुणा पैदा कहां से हो?
और मैं तुमसे कहता हूंः जिसने कामवासना को जला डाला अपने भीतर, वह ब्रह्मचर्य को उपलब्ध नहीं होता; वह सिर्फ नपुंसक हो जाता है। और नपुंसक होने में और ब्रह्मचारी होने में बहुत फर्क है, जमीन-आसमान का फर्क है। उससे ज्यादा कोई फर्क और क्या होगा?
रूस में ईसाइयों का एक संप्रदाय था जो अपनी जननेंद्रियां काट डालता था। क्या तुम उनको ब्रह्मचारी कहोगे? जननेंद्रियां काटने से क्या कामवासना चली जाएगी? आंखें फोड़ने से क्या तुम सोचते हो रूप की आकांक्षा चली जाएगी? कान फोड़ने से क्या तुम सोचते हो भीतर ध्वनि का आकर्षण समाप्त हो जाएगा? काश, इतना आसान होता, तब तो धार्मिक हो जाना बड़ी सरल बात होती। चले गए अस्पताल, करवा आए कुछ आपरेशन, हो गए धार्मिक। बस सर्जनों की जरूरत होती, सदगुरुओं की नहीं।
सदगुरु काटता नहीं, सदगुरु रूपांतरित करता है। अनगढ़ पत्थर को मिटा नहीं देना है; उसको गढ़ना है, उसमें से मूर्ति प्रकट करनी है। मूर्ति छिपी है उसमें। तुम्हारे क्रोध में करुणा की मूर्ति छिपी है; थोड़ी छानने की, छनावट की जरूरत है। और तुम्हारे काम की ऊर्जा ही तुम्हारी राम की ऊर्जा है। ये तुम्हारी संपदाएं हैं। ये शत्रु हैं अभी, क्योंकि तुम जानते नहीं कि कैसे इनका उपयोग करें। जिस दिन तुम जान लोगे कि कैसे इनका उपयोग करें, यही तुम्हारे सेवक हो जाएंगे।
आज से हजारों साल पहले, वेद के जमाने में, आकाश में बिजली ऐसी ही कौंधती थी--ऐसी ही जैसी अब कौंधती है। लेकिन तब आदमी कंपता था, थरथराता था, सोचता था कि इंद्र महाराज नाराज हो रहे हैं, कि इंद्र महाराज धमकी दे रहे हैं। स्वभावतः, समझ में आती है बात। पांच हजार साल पहले बिजली के संबंध में हमें कुछ पता नहीं था। और जब बिजली आकाश में कड़कती होगी तो जरूर छाती धड़कती होगी, घबड़ाहट होती होगी। कोई व्याख्या चाहिए। तो एक ही व्याख्या मालूम होती थी कि इंद्रधनुष... जैसे कि इंद्र ने अपने धनुष पर बाण चढ़ाया हो। नाराज है इंद्र। कुछ भूल हो गई हमसे। लोग घुटनों पर गिर पड़ते होंगे और प्रार्थना करते होंगे।
अब कोई बिजली की प्रार्थना नहीं करता। अब भी बिजली चमकती है, मगर तुम घुटनों पर गिर कर प्रार्थना नहीं करते। अब तुम भलीभांति जानते हो कि बिजली क्या है। अब तो बिजली तुम्हारे घर में सेवा कर रही है; बटन दबाओ और बिजली हाजिर और कहती हैः जी हुजूर, आज्ञा! बटन दबाओ, और पंखा चले। बटन दबाओ, और बिजली जले। बटन दबाओ, रेडियो चले। बटन दबाओ, टेलीविजन शुरू हो जाए। अब तो बिजली तुम्हारे घर की दासी है। अब आकाश की बिजली को तुम इंद्रधनुष का या इंद्र का क्रोध और कोप नहीं मानते। अब तो बात खतम हो गई। अब तो ये कहानियां बच्चों को पढ़ाने योग्य हो गई हैं। अब तो बच्चे भी इन पर भरोसा न करेंगे।
जैसे ही हम किसी बात को पूरा-पूरा जान लेते हैं, हम उसके मालिक हो जाते हैं। बाहर की बिजली तो वश में आ गई है, भीतर की बिजली अभी वश में नहीं आई

है। भीतर की बिजली का नाम कामवासना है। वह जीवंत विद्युत है। अब तक के धार्मिक लोग उससे डरे रहे, घबड़ाए रहे, कंपते रहे। उनके कंपन से कुछ फायदा नहीं हुआ है। और उनकी घबड़ाहट से बहुत नुकसान हुआ है। जो जानते हैं, वे तो कहेंगेः इस भीतर की विद्युत को भी बदला जा सकता है। यह भी तुम्हारी सेविका हो सकती है।
जब कामवासना तुम्हारी सेवा में रत हो जाती है तो ब्रह्मचर्य। जब तक तुम कामवासना की सेवा करते हो तो अब्रह्मचर्य। भेद इतना ही है--कौन मालिक? इससे सब निर्भर होता है। कामवासना को काट डालो, काटना बहुत आसान है। बहुत आसान है! तुम अजित सरस्वती के पास जा सकते हो। बड़ा आसान है कामवासना को काट डालना। तुम्हारी जननेंद्रियां काटी जा सकती हैं, तुम्हारे शरीर के भीतर हारमोन, जिनसे कि कोई पुरुष होता है, कोई स्त्री होता है, वे हारमोन निकाले जा सकते हैं, नये हारमोन डाले जा सकते हैं। तुम्हें बिल्कुल कामवासना से रिक्त किया जा सकता है।
मगर तुम यह मत सोचना कि इससे तुम महावीर हो जाओगे, कि इससे तुम बुद्ध
हो जाओगे, कि इससे तुम्हारे भीतर दरिया की तरह आनंद की लहरें उठने लगेंगी, कि मीरा की तरह तुम नाच उठोगे। कुछ भी नहीं, इससे तुम एक कोने में बिल्कुल सुस्त होकर बैठ जाओगे। तुम्हारा जीवन एक महा उदासी से घिर जाएगा। तुम्हारी जिंदगी अमावस की रात होगी, पूर्णिमा का चांद नहीं। तुम सिर्फ उदास और सुस्त हो जाओगे। तुम मुर्दा हो जाओगे।
और तुम इस बात को भलीभांति जानते हो। न जानते होओ तो गांव के किसान से पूछ लेना। आखिर सांड़ में और बैल में फर्क क्या है? क्या बैल को तुम ब्रह्मचारी समझते हो? सांड़ की रौनक! सांड़ का रंग! सांड़ की शान! और कहां दीन-दरिद्र बैल। मगर किसानों ने हजारों साल से यह तरकीब निकाल ली कि अगर सांड़ को बधिया कर दो तो ही बैलगाड़ी में जोत सकते हो, गुलाम बना सकते हो। कमजोर हो जाता है, दीन-हीन हो जाता है। सांड़ को जरा जोत कर देखो बैलगाड़ी में! न तुम बचोगे, न बैलगाड़ी बचेगी। किसी गड्ढे में पड़े, हड्डियां तुम्हारी टूट चुकी होंगी, बैलगाड़ी के अस्थिपंजर बिखर चुके होंगे--और सांड़ जाकर शंकर जी के किसी मंदिर में विश्राम कर रहा होगा! लेकिन सांड़ को बधिया कर दो, और दीन हो जाता है, दया-योग्य हो जाता है। अब बैलों की तरह उसे जोतो तुम बैलगाड़ी में, चाहे हल-बक्खर में, जो चाहो करो।
मनुष्य दीन हो जाता है अगर कामवासना को काट दिया जाए, क्रोध को अगर काट दिया जाए, लोभ को अगर काट दिया जाए, तो बहुत दीन हो जाता है। उस दीनता की तुमने बहुत पूजा की है। मैं तुम्हें याद दिलाना चाहता हूंः बंद करो अब यह पूजा! दीन मनुष्य के दिन गए। अब महिमाशाली मनुष्य के दिन आने दो! अब उस मनुष्य के दिन आने दो जो ऊर्जाओं का रूपांतरण करेगा, दमन नहीं; जो हर ऊर्जा का उपयोग करेगा।
और मैं तुमसे कहता हूंः परमात्मा ने तुम्हें जो भी दिया है, निश्चित
ही व्यर्थ नहीं दिया है। परमात्मा पागल नहीं है। अगर उसने कामवासना दी है तो जरूर उसमें छिपा कोई खजाना होगा। जरा खोदो, जरा खोजो। अगर क्रोध दिया है तो जरूर क्रोध में छिपी हुई कोई ऊर्जा होगी, उसे मुक्त करो। शत्रुता तभी तक मालूम होती है जब तक तुम गुलाम हो इनके। जिस दिन मालिक हो जाते हो, उसी दिन ये सब मित्र हो जाते हैं।
दरिया सांचा सूरमा...
वही है सच्चा सूर।
... अरिदल घालै चूर।
राज थापिया राम का, नगर बसा भरपूर।।
शत्रुओं को पछाड़ देता है। उनकी छाती पर बैठ जाता है। उन्हें चारों खाने चित्त कर देता है। राम के राज्य को अपने भीतर स्थापित कर लेता है।
लेकिन ध्यान रखना--नगर बसा भरपूर!
यह कोई रिक्त जगह नहीं है राम का राज्य--नगर भरपूर बसा है! उत्सव पैदा होता है। दिवाली है, होली है, रंग का त्यौहार उठता है। दीये जलते हैं।
राज थापिया राम का, नगर बसा भरपूर।
और जब तक तुम्हें किसी के भीतर राम का राज्य बसा हुआ दिखाई न पड़े, भरपूर, गुलाल न उड़ती हो, रंग न उड़ते हों, दीये न जलते हों, मृदंग पर थाप न

पड़ती हो, बांसुरी न बजती हो--तब तक समझना कि साधु नहीं है; सिर्फ किसी तरह अपने को दबाए, किसी तरह अपने को सम्हाले बैठा हुआ मुर्दा है, जीवंत नहीं है।
रसना सेती ऊतरा, हिरदे किया बास।
दरिया बरखा प्रेम की, शट ऋतु बारह मास।।
सुनते हो, प्यारा वचनः रसना सेती ऊतरा!
जब तक तुम्हारी जीभ पर ही राम का नाम रहेगा, तब तक कुछ न होगा। हृदय में उतर जाए।
रसना सेती ऊतरा, हिरदे किया बास।
जब तुम्हारे हृदय में उतर जाए राम। विरह की आग ऐसी जले, ऐसी जले कि जल जाए सब कुछ मन का--विचार, कल्पनाएं, स्मृतियां, शोरगुल, भीड़-भाड़--और तुम्हारे भीतर शांति हो जाए। और शब्द राम का सवाल नहीं है, भाव का सवाल है। राम शब्द तो जीभ पर ही रहेगा। राम शब्द को तुम हृदय में नहीं ले जा सकते; हृदय में शब्द जाने का कोई उपाय ही नहीं है। वहां तो केवल भाव होते हैं। लेकिन तुम समझते हो। भाव को तुम पहचानते हो। कोई भी शब्द शब्द बनने के पहले भाव होता है। भाव शब्द की आत्मा है; शब्द भाव का शरीर है। शब्द की खोल तो जाने दो, भाव में डोलो, भाव की मस्ती में उतरो।
रसना सेती ऊतरा, हिरदे किया बास।
और जब भी तुम्हारे हृदय में भाव की तरंग उठने लगेगी, वह चमत्कार घटेगा।
दरिया बरखा प्रेम की...
प्रेम की वर्षा हो जाएगी तुम्हारे ऊपर। होती ही रहेगी। फिर बंद नहीं होने वाली है।
... षट ऋतु बारह मास।
छहों ऋतुओं में, बारह महीने वर्षा होती ही रहेगी। फिर ऐसा नहीं कि वर्षाकाल आया और गया, कि आषाढ़ में बादल घिरे और फिर खो गए। फिर आषाढ़ ही आषाढ़ है। फिर यह प्रेम की वर्षा होती ही रहती है।
लेकिन क्या तुम्हें तुम्हारे संतों में प्रेम की ऐसी वर्षा होती हुई मालूम पड़ती है? क्या तुम्हारे मंदिरों में तुम्हें प्रेम भरपूर बहता हुआ मालूम पड़ता है? प्रेम से रिक्त तुम्हारे मंदिर हैं। प्रेम से शून्य तुम्हारे चर्च, तुम्हारे गिरजे, तुम्हारी मस्जिदें, तुम्हारे गुरुद्वारे हैं। प्रेम से रिक्त तुम्हारे साधु-संत हैं। हां, उदासी जरूर है। एक हताशा है। एक अंधेरा जरूर उनकी आत्मा पर छाया है, मगर रोशनी नहीं मालूम होती। और यही धर्म का रूप समझा जाने लगा है। सदियों-सदियों से चूंकि यही चलता रहा है, अब धीरे-धीरे हम सोचने लगे कि यही धर्म है।
यह धर्म नहीं है; यह अधर्म से भी बदतर है। यह आस्तिकता नहीं है; यह नास्तिकता से भी गिरी हुई अवस्था है। नास्तिक तो कभी आस्तिक हो भी जाए; ये तुम्हारे तथाकथित धार्मिक लोग कभी आस्तिक न हो पाएंगे। इन्होंने तो जीवन को बिल्कुल गलत दृष्टि से ही पकड़ लिया है। इनका परमात्मा जीवन के विरोध में है। परमात्मा कहीं जीवन के विरोध में हो सकता है? परमात्मा तो जीवन का रचनाकार है। यह तो उसी का गीत है, उसी की कविता है। यह तो उसी ने रंगा है चित्र। चित्रकार कहीं अपने चित्र के विरोध में हो सकता है? मूर्तिकार कहीं अपनी मूर्ति के विरोध में हो सकता है? नर्तक अपने नृत्य के विरोध में, तो फिर नाचे ही क्यों?
दरिया बरखा प्रेम की, शट ऋतु बारह मास।
फिर तो प्रेम की वर्षा होगी, उत्सव होगा, सावन घिरेगा और जाएगा नहीं।

झर-झर-झर बरसे करुणा-घन;
सर-सर-सर सिहरे तृण-तरु-तन;
झर-झर-झर बरसे करुणा-घन!
नाद-निरत, अति ध्वनित गगन मन;
अवनि मृदंग-घोर सुन उन्मन;
हरित भरित नित चिन्मय चेतन; सिहर-सिहर हरषे मृण्मय कण;

झर-झर-झर बरसे करुणा-घन;
सर-सर-सर सिहरे तृण-तरु-तन। सन-सन-सनन समीरण-रिंगण,
झींगुर-झंकृति किंकिणि-सिंजन, करवन-उपवन-राजि प्रमंथन, हहरा हर-हर-हहर-प्रभंजन
झर-झर-झर बरसे करुणा-घन;
सर-सर-सर सिहरे तृण-तरु-तन। तरणि-ज्वालमय धरणि-काल-क्षण शांत, तृप्त पाकर घन-तर्पण;
ले अंबर का अर्घ्य समर्पण--
थर-थर-थर वसुधा-हिल आंगण
कंपित भू-प्रांगण;
झर-झर-झर बरसे करुणा-घन;
सर-सर-सर सिहरे तृण-तरु-तन।

बरसने दो! खोलो हृदय को! प्रेम के मेघ को बरसने दो! तो ही तुम जानोगे
कि परमात्मा है। नाचो, गाओ, गुनगुनाओ, डोलो! मस्ती के पाठ सीखो। मस्ताने ही, दीवाने ही केवल उसको जान पाते हैं। बाकी उसकी बातें करते रहें भला, लेकिन उनकी बातें तोतारटंत हैं। उनकी बातों का कोई भी मूल्य नहीं है।
उनकी बातों में कोई अर्थ नहीं है।
दरिया हिरदे राम से, जो कभु लागै मन।
लहरें उट्ठें प्रेम की, ज्यों सावन बरखा घन।।
अगर एक बार मन जुड़ जाए, एक बार तुम्हारा हृदय और राम से जुड़ जाए।
लहरें उट्ठें प्रेम की...
तो तुमसे प्रेम बहेगा।
... ज्यों सावन बरखा घन।
जैसे सावन में वर्षा होती है ऐसे।
लेकिन धर्म के नाम पर एक से एक झूठ चल रहे हैं। धर्म के नाम पर प्रेम
का विरोध चलता है। धर्म के नाम पर जीवन में कुछ भी हरा न रह जाए, इसकी चेष्टा चलती है, सब सूख-साख जाए! धर्म के नाम पर बगियों की प्रशंसा नहीं है, मरुस्थलों के गीत गाए जा रहे हैं।
जन दरिया हिरदा बिचे, हुआ ग्यान परगास।
जैसे ही उसका तीर तुम्हारे हृदय के बीच पहुंच जाता है, उसका भाव तुम्हारे हृदय में आ जाता है।
... हुआ ग्यान परगास।
वैसे ही ज्ञान का प्रकाश हो उठता है।
हौद भरा जहं प्रेम का...
और जहां प्रेम का सरोवर भरा है--
... तहं लेत हिलोरा दास।
फिर तो हिलोर ही हिलोर है। फिर तो मस्ती ही मस्ती है।
परमात्मा जब आता है तो तुम्हें शराबी की तरह मदमस्त कर जाता है। अमी झरत, बिगसत कंवल! उस परम दशा में, उस अंतर्दशा में अमृत झरता है और कमल खिलते हैं।
अमी झरत, बिगसत कंवल, उपजत अनुभव ग्यान।
और तभी तुम जानना कि ज्ञान का जन्म हुआ, जब तुम्हारा कमल खिले और जब तुम्हारे भीतर अमृत की वर्षा का अनुभव हो। जब तक ऐसा न हो, तब तक शास्त्रीय शब्दों को अपना ज्ञान मत समझ लेना। पांडित्य को प्रज्ञा मत समझ लेना।
जन दरिया उस देस का, भिन-भिन करत बखान।
यद्यपि उस परम देश की बात अलग-अलग लोगों ने अलग-अलग ढंग से कही है; मगर
वह देश एक ही है। बुद्ध अपने ढंग से कहते हैं, और जरथुस्त्र अपने ढंग से कहते हैं, और चैतन्य अपने ढंग से कहते हैं। मैं उसे अपने ढंग से कह रहा हूं। और तुम्हें जिस दिन अनुभव होगा तुम उसे अपने ढंग से कहोगे। ये ढंगों के भेद हैं। मगर वह अनुभव एक है। अभिव्यक्तियां अनेक हैं।

तुम्हें निमंत्रण देता हूं--छोड़ो उदासी, छोड़ो दमन, छोड़ो जीवन-विरोध।
आओ सावन को बुलाएं।

प्रथम आषाढ़ी झड़ी है, चलो भीगें
पालकी ऋतु की खड़ी है, चलो भीगें
ग्रह मुहूरत चौघड़ी देखे बिना ही
यह मिलन की शुभ घड़ी है, चलो भीगें
पी पुकारे प्राण-पपीहा और तुमको
घरू कामों की पड़ी है, चलो भीगें प्यारवाले इन क्षणों की उम्र अपनी कुल उमर से भी बड़ी है, चलो भीगें लाज की चलती मगर संकोच की यह
तोड़ दो जो हथकड़ी है, चलो भीगें यदि हमीं समझें न ये संकेत गीले
स्वयं से धोखाधड़ी है, चलो भीगें
युगल अधरों प्यार की गीली रुबाई
आज पावस ने पढ़ी है, चलो भीगें
यह तुम्हारा रूप पावस में नहाया
आग पर शबनम मढ़ी है, चलो भीगें

भीगने का निमंत्रण--यही संन्यास का निमंत्रण है। संन्यास का द्वार केवल उनके लिए खुला है जो भीगने को राजी हैं। लेकिन लोग छोटी-छोटी चीजों को बचा रहे हैं। लोग साधारण वर्षा में भी कभी भीगते नहीं--कहीं कपड़े गीले न हो जाएं! कभी साधारण वर्षा में भी भीग कर देखो, उसका आनंद बहुत है। कपड़े तो सूख जाएंगे। तुम कुछ ऐसी कच्ची मिट्टी के पुतले थोड़े ही हो कि बह जाओगे, कि गल जाओगे। लेकिन साधारण वर्षा में भी लोग छाता लेकर चलते हैं। कुछ लोग तो छाता सदा ही लिए रहते हैं--पता नहीं कब वर्षा हो जाए।
मुल्ला नसरुद्दीन छाता लेकर बाजार से गुजर रहा था। वर्षा होने लगी, मगर उसने छाता न खोला। दो-चार लोगों ने देखा, उन्होंने कहा कि नसरुद्दीन, छाता क्यों नहीं खोलते?
नसरुद्दीन ने कहा कि छाते में छेद ही छेद हैं।
तो लोगों ने पूछाः फिर छाता लेकर चले ही क्यों?
तो उसने कहा कि मैंने सोचा कि कौन जाने रास्ते में वर्षा हो जाए! कौन जाने कहीं वर्षा हो जाए!
जहां तक अंतर-आकाश का संबंध है, तुम सब छाते लेकर चल रहे हो, तुम सुरक्षा का इंतजाम कर के चल रहे हो। यहां मेरे पास भी लोग आ जाते हैं, तो मैं देखता हूं कि छाता लगाए बैठे हैं और सुन रहे हैं। हालांकि सौभाग्य से उनके छातों में कभी-कभी कुछ छेद होते हैं और थोड़ी बूंदाबांदी उन पर हो जाती है--उनके बावजूद हो जाती है! मगर छाता लगाए रहते हैं।
भीतर के छाते छोड़ने होंगे। हिंदू, मुसलमान, ईसाई, बौद्ध, जैन, ये सब छाते हैं। ये सब सुरक्षाएं हैं, शब्दों की आड़ में छिपाने के उपाय हैं। इन सबकी होली जला दो। ये सब छाते इकट्ठे करके होली जला दो। इस बार जब होली जले तो छाते जला आना। एकबारगी खाली आदमी हो जाओ, जैसा परमात्मा ने तुम्हें बनाया। परमात्मा ने तुम्हें जैन नहीं बनाया और न बौद्ध बनाया और न हिंदू और न मुसलमान। परमात्मा ने तो तुम्हें बस खालिस आदमी बनाया है। एक बार वैसे ही हो जाओ जैसा परमात्मा ने बनाया, तो उससे संबंध जुड़ना आसान हो जाए। और तभी तुम यह निमंत्रण स्वीकार कर सकोगे।
प्रथम आषाढ़ी झड़ी है, चलो भीगें
पालकी ऋतु की खड़ी है, चलो भीगें
और तुम मत पूछो कि मुहूर्त! कोई मुहूर्त की नहीं पड़ी है। सारी घड़ियां उसकी हैं। हर घड़ी मुहूर्त है।
ग्रह मुहूरत चौघड़ी देखे बिना ही
यह मिलन की शुभ घड़ी है, चलो भीगें
तुम जाकर ज्योतिषियों को अपनी जन्म-पत्री मत दिखलाओ।

मेरे पास लोग आ जाते हैं, वे कहते हैं कि ज्योतिषी महाराज को जन्म-पत्री दिखलाई थी, उन्होंने कहा कि इस जन्म में समाधि का मुहूर्त नहीं है। तो मैं संन्यास लूं कि नहीं?
ज्योतिषियों से पूछ रहे हैं समाधि का मुहूर्त! तुमने समाधि को कोई रेसकोर्स का घोड़ा समझा है! कि लाटरी की कोई टिकट समझी है!
खूब होशियार हैं लोग! बचने के कैसे-कैसे उपयोग खोजते हैं! मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैंः संन्यास तो लेना है, लेकिन शुभ घड़ी में लेंगे। कौन सी शुभ घड़ी? परमात्मा अभी है, तो यह घड़ी शुभ नहीं है? सारे दिन प्यारे हैं, सारे क्षण प्यारे हैं, क्योंकि सारे दिन उसमें पगे हैं, सारे दिन उसमें हैं। हर घड़ी वही तो है, और तो कोई भी नहीं है।
ग्रह मुहूरत चौघड़ी देखे बिना ही
यह मिलन की शुभ घड़ी है चलो भीगें
प्यारवाले इन क्षणों की उम्र अपनी
कुल उमर से भी बड़ी है चलो भीगें
एक क्षण भी उसके प्रेम में भीगने का तुम्हें अवसर आ जाए, तो तुम्हारी सारी हजारों-हजारों जिंदगियों की लंबाई व्यर्थ हो गई; उसके प्रेम का एक क्षण भी शाश्वत है। वर्षों जीने का कोई अर्थ नहीं है; एक क्षण उसके प्रेम में जी लेना पर्याप्त है। सारे जीवन-जीवन की, अनंत-अनंत जीवन की तृप्ति हो जाती है।
लाज की चलती मगर संकोच की यह
तोड़ दो जो हथकड़ी है चलो भीगें
मगर बड़ा लाज, बड़ा संकोच--दुनिया क्या कहेगी!
मैं विश्वविद्यालय में विद्यार्थी था तो नियमित मेरा क्रम था कि जब
भी वर्षा हो तो एक सुनसान रास्ते पर विश्वविद्यालय के, मैं वर्षा में भीगने के लिए जाता था। फिर धीरे-धीरे एक और पागल आदमी मेरे साथ राजी हो गया। उस रास्ते पर जो आखिरी बंगला था, वह विश्वविद्यालय के फिजिक्स के प्रोफेसर का बंगला था। वहीं जाकर रास्ता समाप्त हो जाता था। तो उसी रास्ते के समाप्ति पर बड़े वृक्ष के नीचे बैठ कर हम दोनों भीगते थे। प्रोफेसर की पत्नी और बच्चे बड़ी दया खाते होंगे और जब भी वर्षा होती थी तो वे जरूर रास्ता देखते होंगे, क्योंकि जब भी हम पहुंचते तो वे खिड़कियों पर, द्वार पर खड़े हुए दिखाई पड़ते।
फिर संयोग की बात, फिजिक्स के प्रोफेसर से किसी ने मेरी मुलाकात करवा दी। और वे मेरी बातों में धीरे-धीरे इतने उत्सुक हो गए कि एक दिन मुझे घर भोजन पर निमंत्रण किया। तो मैंने उनसे कहा कि मेरे एक मित्र भी हैं, वे सदा आपके घर तक मेरे साथ घूमने आते हैं, उनको भी ले आऊं? तो उन्होंने कहाः उनको भी जरूर ले आएं। उन्होंने घर जाकर अपनी पत्नी को बहुत प्रशंसा की होगी कि दो बहुत अदभुत व्यक्तियों को लेकर आ रहा हूं। घर में लोग बड़े उत्सुक थे, बड़ी तैयारियां की गईं। और जब हम दोनों को देखा तो सारे बच्चे, पत्नी, बहू, सब वहां से भाग गए अंदर के कमरे में और इतने जोर से हंसने लगे अंदर के कमरे में जाकर कि प्रोफेसर को बड़ा सदमा पहुंचा, कि यह तो बड़ा...
मैंने उनसे कहाः आप संकोच न करें। हमारा परिचय पुराना है। वे कोई हमारे अपमान में नहीं हंस रहे हैं; वे सिर्फ यह देख कर हंस रहे हैं कि आप बड़ी प्रशंसा करके लाए हैं और वे हमें जानते हैं कि ये दोनों पागल हैं। बाहर ही भीगने से लोग डर गए हैं, तो भीतर तो भीगने की बात ही कहां उठती है! थोड़ा लाज-संकोच छोड़ो। मीरा ने कहा हैः लोकलाज छोड़ी! पद घुंघरू बांध मीरा नाची रे! सब लोकलाज छोड़ कर नाची! ऐसे ही लोकलाज छोड़ोगे तो नाच पाओगे, तो भीग पाओगे।
यदि हमीं समझें न ये संकेत गीले
स्वयं से धोखाधड़ी है चलो भीगें
युगल अधरों प्यार की गीली रुबाई
आज पावस ने पढ़ी है चलो भीगें
और कभी तुम्हें ऐसा संयोग मिल जाए कि कोई भीगा हुआ आदमी मिल जाए और निमंत्रण दे तो लोकलाज छोड़ देना, और बुलाए अपने अंतरगृह में तो जरा झांक कर देख लेना।

सदगुरु का इतना ही अर्थ है कि तुम्हें एक बार याद दिला दे--उस सबकी जो तुम्हारे भीतर भी पड़ा है, लेकिन अपरिचित, अनजाना।
कंचन का गिर देख कर, लोभी भया उदास!
बड़ी अदभुत बात दरिया ने कही है। दरिया कहते हैंः तुम लोभ इत्यादि की फिकर मत करो। मैं तुम्हें भीतर उस जगह ले चलता हूं--कंचन का गिर देख कर-- जहां तुम सोने के हिमालय देखोगे। वहां तुम्हारा लोभी उदास हो जाएगा अपने आप--यह देख कर कि जितना मैं मांगता था, उससे बहुत ज्यादा मुझे मिला ही हुआ है! सारी वासना गिर जाएगी।
यह सूत्र बड़ा अर्थपूर्ण है। लोग तुमसे कहते हैंः लोभ छोड़ो, तब वहां पहुंच सकोगे। दरिया कहते हैंः वहां आ जाओ और लोभ इत्यादि सब छूट जाएगा। लोभ इसीलिए तो है, भिखमंगे तुम इसीलिए तो बने हो कि कुछ तुम्हारे पास नहीं है। एक बार दिखाई पड़ जाए कि भीतर अनंत संपदा मेरी है, फिर कैसा लोभ! लोभ खुद उदास होकर बैठ जाएगा।
कंचन का गिर देख कर, लोभी भया उदास।
जन दरिया थाके बनिज, पूरी मन की आस।।
फिर वहां कहां का व्यापार! फिर वहां सारा लोभ, सारी आसक्ति, सारे चित्त के व्यापार अपने आप गिर जाते हैं।
... पूरी मन की आस।
तुमने जो मांगा था, उससे हजार गुना मिल गया, करोड़ गुना मिल गया। तुमने
जो सोचा भी नहीं था, वह भी मिला। तुम जिसकी कल्पना भी नहीं कर सकते थे, सपने भी नहीं देख सकते थे, वह भी मिला। तुम मालिक हो बड़े साम्राज्य के। तुम सम्राट हो। परमात्मा तुम्हारे भीतर विराजमान है।
मीठे राचैं लोग सब, मीठे उपजै रोग।
दरिया कहते हैंः हो सकता है मेरी बातें तुम्हें कड़वी लगें, क्योंकि तुम्हें मीठी-मीठी बातें सुनने की आदत हो गई है। तुम सिर्फ सांत्वना सुनने के लिए उत्सुक हो गए हो। तुम साधुओं के पास जाते हो कि वे किसी तरह मलहम-पट्टी कर दें।
मीठे राचैं लोग सब, मीठे उपजै रोग।
लेकिन ध्यान रखना, सांत्वना सबको अच्छी लगती है, मीठी लगती है; मगर सांत्वना के कारण ही तुम्हारे रोग बच रहे हैं, तुम्हारे रोग नहीं मिट पा रहे हैं।
निरगुन कडुवा नीम सा, दरिया दुर्लभ जोग।
तैयारी करो--विरह की पीड़ा को झेलने की!
निरगुन कडुवा नीम सा...
बहुत कड़वी दवा है, मगर यही तुम्हें तुम्हारी बीमारियों से मुक्त करेगी। ध्यान से कड़वी दवा और कुछ भी नहीं है। विरह से ज्यादा बड़ी और कोई पीड़ा नहीं है। मगर ध्यान की कड़वी दवा ही तुम्हें अमृत के सरोवर तक पहुंचा देती है। और विरह की गहन पीड़ा और विरह की अग्नि ही तुम्हारे स्वर्ण को निखार देती है। तुम्हें पात्रता देती है। तुम्हें इस योग्य बनाती है कि परमात्मा तुम्हारा आलिंगन करे।
लेकिन यह दुर्लभ जोग है। अगर तुममें साहस हो और समझ हो तो ही यह क्रांतिकारी घटना घट सकती है। और ऐसा नहीं है कि तुममें साहस और समझ नहीं है--सिर्फ अवसर दो साहस और समझ को मिलने का। सम्हालो साहस और समझ को साथ-साथ। और तुम्हारे जीवन में भी वह परम सौभाग्य का क्षण आ सकता है जब तुम भी कह सको--
अमी झरत, बिगसत कंवल, उपजत अनुभव ग्यान।
जन दरिया उस देस का, भिन-भिन करत बखान।।
फिर सारे कुरान, सारी बाइबिलें, सारे वेद, सारी गीताएं तुम्हें ठीक मालूम पड़ेंगी, क्योंकि तुम जान लोगे अनुभव से कि अलग-अलग भाषाओं में एक ही बात कही गई है।
अमी झरत, बिगसत कंवल!
खिल सकता है कमल। अमृत भी झर सकता है। सच तो यह है कि कमल खिला ही हुआ है, अमृत झर ही रहा है--अपनी तरफ लौटो। आंख भीतर की तरफ उलटाओ। भीतर सुनो, भीतर गुनो।

अमी झरत, बिगसत कंवल
चौथा प्रवचन

संसार की नींव, संन्यास के कलश

पहला प्रश्नः खाओ, पीओ और मौज उड़ाओ--चार्वाकों का यह प्रसिद्ध संसार-सूत्र है। नाचो, गाओ और उत्सव मनाओ--यह आपका संन्यास-सूत्र है। संसार-सूत्र और संन्यास-सूत्र के भेद को कृपा करके हमें समझाएं।

नरेंद्र! खाओ, पीओ और मौज उड़ाओ--चार्वाकों के लिए यह साधन नहीं है, साध्य है। बस, इस पर ही परिसमाप्ति है; इसके पार कुछ भी नहीं है। जीवन इतने में ही पूरा हो जाता है। इसीलिए तो उनको चार्वाक नाम मिला।
यह शब्द समझने जैसा है। चार्वाक बना है चारु-वाक से। चारु-वाक का अर्थ होता हैः प्यारे वचन, प्रीतिकर वचन। अधिकतम लोगों को यह प्रीतिकर लगा कि बस खाओ, पीओ और मौज उड़ाओ; इसके पार कुछ भी नहीं है। सौ में से निन्यानबे लोग चार्वाक के अनुयायी हैं--चाहे वे मंदिर जाते हों, मस्जिद जाते हों, गिरजा जाते हों, इससे भेद नहीं पड़ता; हिंदू हों, मुसलमान हों, ईसाई हों, इससे भेद नहीं पड़ता। जिंदगी उनकी चार्वाक की ही है। खाना, पीना और मौज उड़ाना, यही उनके जीवन की परिभाषा है, कहें चाहे न कहें। जो कहते हैं, वे तो शायद ईमानदार हैं; जो नहीं कहते हैं, वे बड़े बेईमान हैं। उन नहीं कहने वालों के कारण ही जगत में पाखंड है।
मैं कल ही एक संस्मरण देख रहा था। महात्मा गांधी ने पंडित जवाहरलाल नेहरू के पिता पंडित मोतीलाल नेहरू को एक पत्र लिखा। क्योंकि उन्हें खबर मिली कि मोतीलाल नेहरू सभा-समाज में, क्लब में लोगों के सामने शराब पीते हैं। तो पत्र में उन्होंने लिखा कि अगर पीनी ही हो तो कम से कम अपने घर के एकांत में तो पीएं! भीड़-भाड़ में, लोगों के सामने पीना... यह शोभा नहीं देता। मोतीलाल नेहरू ने जो जवाब दिया, वह बहुत महत्वपूर्ण है। मोतीलाल नेहरू ने कहाः आप मुझे पाखंडी बनाने की चेष्टा न करें। जब मैं पीता ही हूं तो क्यों घर में छिप कर पीऊं? जब पीता ही हूं तो लोगों को जानना चाहिए कि मैं पीता हूं। जिस दिन नहीं पीऊंगा, उस दिन नहीं पीऊंगा। आपसे ऐसी आशा न थी कि आप ऐसी सलाह देंगे!
अब इन दोनों में महात्मा कौन है? इसमें मोतीलाल नेहरू ज्यादा ईमानदार आदमी मालूम होते हैं; इसमें महात्मा गांधी ज्यादा बेईमान मालूम होते हैं। महात्मा गांधी की मान कर ही तो सारा मुल्क बेईमान हुआ जा रहा है--बाहर कुछ, भीतर कुछ। घर में लोग शराब पी रहे हैं और बाहर शराब के विपरीत व्याख्यान दे रहे हैं! संसद में शराब के विपरीत नियम बना रहे हैं--वे ही लोग, जो घरों में छिप कर शराब पी रहे हैं! एक चेहरा छिपाने का, एक चेहरा बताने का। दिखाने के दांत कुछ और, काम में लाने के दांत कुछ और।
लोगों को गौर से देखो तो तुम न तो किसी को हिंदू पाओगे, न किसी को मुसलमान, न जैन, न बौद्ध; तुम सबको चार्वाकवादी पाओगे। फिर ये हिंदू, जैन, मुसलमान भी जिस स्वर्ग की आकांक्षा कर रहे हैं, वह आकांक्षा बड़ी चार्वाकवादी है! मुसलमानों के बहिश्त में शराब के झरने बहते हैं। बेचारा चार्वाक तो यहीं की छोटी-मोटी शराब से राजी है; कुल्हड़-कुल्हड़ पीओ, उससे राजी है। मगर बहिश्त के फरिश्ते कहीं कुल्हड़ों से राजी होते हैं! झरने बहते हैं; जी भर कर पीओ; डुबकी मारो, तैरो शराब में, तब तृप्ति होगी! बहिश्त में सुंदर स्त्रियां उपलब्ध हैं। ऐसी सुंदर स्त्रियां जैसी यहां उपलब्ध नहीं।
यहां तो सभी सौंदर्य कुम्हला जाता है। अभी खिला फूल, सांझ कुम्हला जाएगा; अभी खिला, सांझ पंखुरियां गिर जाएंगी। यहां तो सब क्षणभंगुर है। तो जो ज्यादा लोभी हैं और ज्यादा कामी हैं, उन्होंने स्वर्ग की कल्पना की है। वहां स्त्रियां सदा सुंदर होती हैं, कभी वृद्ध नहीं होतीं। तुमने कभी किसी बूढ़े देवता या बूढ़ी अप्सरा की कोई कहानी सुनी है? उर्वशी की कहानी को लिखे हो गए हजारों साल, उर्वशी अब भी जवान है! स्वर्ग में स्त्रियों की

उम्र बस सोलह साल पर ठहरी सो ठहरी, उसके आगे नहीं बढ़ती, सदियां बीत जाती हैं।
ये किनकी आकांक्षाएं हैं?
चूंकि मुसलमान देशों में समलैंगिकता का खूब प्रचार रहा है, इसलिए बहिश्त में भी उसका इंतजाम है। वहां सुंदर स्त्रियां ही नहीं, सुंदर छोकरे भी उपलब्ध हैं। यह किनका स्वर्ग है? ये किस तरह के लोग हैं? इनको तुम धार्मिक कहते हो?
और हिंदुओं के स्वर्ग में कुछ भेद नहीं है; विस्तार के भेद होंगे, मगर वही आकांक्षाएं हैं, वही अभिलाषाएं हैं। हिंदुओं के स्वर्ग में कल्पवृक्ष है, जिसके नीचे बैठते ही सारी इच्छाओं की तत्क्षण तृप्ति हो जाती है--तत्क्षण! एक क्षण भी नहीं जाता! इतना भी धीरज रखने की जरूरत नहीं है वहां। यहां तो अगर धन कमाना हो, वर्षों लगेंगे, फिर भी कौन जाने कमा पाओ, न कमा पाओ। एक सुंदर स्त्री को पाना हो, एक सुंदर पुरुष को पाना हो, हजार बाधाएं पड़ेंगी। सफलता कम, असफलता ज्यादा निश्चित है। लेकिन स्वर्ग में कल्पवृक्ष के नीचे, भाव उठा कि तत्क्षण पूर्ति हो जाती है।
मैंने सुना है, एक आदमी भटकता हुआ, भूला-चूका कल्पवृक्ष के नीचे पहुंच गया। उसे पता नहीं कि कल्पवृक्ष है। थका-मांदा था तो लेटने की इच्छा थी, थोड़ा विश्राम कर ले। मन में ऐसा ख्याल उठा कि काश इस समय कहीं कोई सराय होती, थोड़ा गद्दी-तकिया मिल जाता! ऐसा उसका सोचना था कि तत्क्षण सुंदर शय्या, गद्दी-तकिए अचानक प्रकट हो गए! वह इतना थका था कि उसे सोचने का भी मौका नहीं मिला, उसने यह भी नहीं सोचा कि ये कहां से आए! कैसे आए अचानक! गिर पड़ा बिस्तर पर और सो गया। जब उठा, ताजा, स्वस्थ थोड़ा हुआ, सोचा कि बड़ी भूख लगी है, कहीं से भोजन मिल जाता। ऐसा सोचना था कि भोजन के थाल आ गए। भूख इतनी जोर से लगी थी कि अभी भी उसने विचार न किया कि यह सब घटना कैसे घट रही है! भोजन जब कर चुका, तब जरा विचार उठा! नींद से सुस्ता लिया था, भोजन से तृप्त हुआ था, सोचा कि मामला क्या है? कहां से यह बिस्तर आया? मैंने तो सिर्फ सोचा था! कहां से यह सुंदर सुस्वादु भोजन आए? मैंने तो सिर्फ सोचा था! आस-पास कहीं भूत-प्रेत तो नहीं हैं? कि भूत-प्रेत चारों तरफ खड़े हो गए। घबड़ाया, कहा कि अब मारे गए! बस, उसी में मारा गया।
कल्पवृक्ष के नीचे तत्क्षण... समय का व्यवधान नहीं होता। ये किन्होंने बनाए होंगे कल्पवृक्ष? कामियों ने। ये चार्वाकवादियों की आकांक्षाएं हैं। साधारण चार्वाकवादी, साधारण नास्तिक तो इस पृथ्वी से राजी है। लेकिन असाधारण चार्वाकवादी हैं, उनको यह पृथ्वी काफी नहीं है; उन्हें स्वर्ग चाहिए, बहिश्त चाहिए, कल्पवृक्ष चाहिए। अलग-अलग धर्मों के अगर स्वर्गों की तुम कथाएं पढ़ोगे, तो तुम चकित हो जाओगे। उनके स्वर्ग में वही सब कुछ है जिसका वे धर्म यहां विरोध कर रहे हैं--वही सब, जरा भी फर्क नहीं है! यहां कैबरे-नृत्य का विरोध हो रहा है और इंद्र की सभा में कैबरे- नृत्य के सिवाय कुछ नहीं हो रहा है! और उसी इंद्रलोक में जाने की आकांक्षा है। उसके लिए लोग धूनी रमाए बैठे हैं, तपश्चर्या कर रहे हैं, सिर के बल खड़े हैं, उपवास कर रहे हैं। सोचते हैं कि चार दिन की जिंदगी है, इसे तो दांव पर लगा कर, तपश्चर्या करके एक बार पा लो स्वर्ग, तो अनंतकालीन... । तुम्हें वे नासमझ समझते हैं, क्योंकि तुम क्षणभंगुर के पीछे पड़े हो; स्वयं को समझदार समझते हैं, क्योंकि वे शाश्वत के पीछे पड़े हैं।
तुमसे वे बड़े चार्वाकवादी हैं। खाओ, पीओ और मौज उड़ाओ--यही उनके जीवन
का लक्ष्य भी है; यहीं नहीं, आगे भी, परलोक में भी। उनके परलोक की कथाएं तुम पढ़ो, तो वृक्ष हैं वहां जिनमें सोने और चांदी के पत्ते हैं, और फूल हीरे- जवाहरातों के हैं। ये किस तरह के लोग हैं? हीरे-जवाहरातों, सोने-चांदी को यहां गालियां दे रहे हैं; और जो उनको छोड़ कर जाता है, उसका सम्मान कर रहे हैं। और स्वर्ग में यही मिलेगा। जो यहां छोड़ोगे, वही अनंतगुना वहां मिलेगा। तो जो यहां छोड़ता है, अनंतगुना पाने को छोड़ता है। और जिसमें अनंतगुना पाने की आकांक्षा है, वह क्या खाक छोड़ता है!
यहां सौ में निन्यानबे व्यक्ति चार्वाकवादी हैं। इसलिए चार्वाकों को दिया गया शब्द बड़ा सुंदर है। धार्मिक, पंडित-पुरोहित तो उसका कुछ और अर्थ करते हैं; वह अर्थ भी ठीक है। वे तो कहते हैं कि चरने-चराने में जिनका

भरोसा है--वे चार्वाक। लेकिन मूल शब्द चारु-वाक से बना है--मधुर शब्द जिनके हैं; जिनके शब्द सबको मधुर हैं।
चार्वाकों का एक और नाम है--लोकायत। वह भी बड़ा प्रीतिकर नाम है। लोक
को जो भाता है, वह लोकायत। अधिक लोगों को जो प्रीतिकर लगता है, वह लोकायत। लोक के हृदय में जो समाविष्ट हो जाता है, वह लोकायत।
यहां धार्मिक कहे जाने वाले लोग भी धार्मिक कहां हैं? तुम जरा सोचना, अगर परमात्मा प्रकट हो जाए तो तुम उससे क्या मांगोगे? जरा सोचना, क्या मांगोगे? अगर परमात्मा कहे कि मांग लो तीन वरदान। क्योंकि पुराने समय से हर कहानी में वे तीन ही वरदान! पता नहीं क्यों तीन! तो तुम कौन से तीन वरदान मांगोगे? किसी को बताने की बात नहीं, मन में ही सोचना। और तुम्हें पक्का पता चल जाएगा कि तुम भी चार्वाकवादी हो। तुम्हारे तीन वरदानों में चार्वाक की सारी बात आ जाएगी।
धर्म के नाम पर लोगों ने एक आवरण तो बना लिया है पाखंड का, और भीतर? भीतर वे वही हैं जिसकी वे निंदा कर रहे हैं।
मैं भी कहता हूंः नाचो, गाओ, उत्सव मनाओ। लेकिन नाचना, गाना और उत्सव मनाना गंतव्य नहीं है, लक्ष्य नहीं है, साधन है। साध्य परमात्मा है। ऐसे नाचो कि नाचने वाला मिट जाए। ऐसा गाओ गीत कि गीत ही बचे, गायक खो जाए। ऐसे उत्सव से भर जाओ कि लीन हो जाओ, तल्लीन हो जाओ। उसी तल्लीनता में, उसी लवलीनता में परमात्मा प्रकट होता है।
मैं तुमसे यह नहीं कहता कि खाओ भी मत, पीओ भी मत, मौज भी मत उड़ाओ। मैं कहता हूंः खाओ, पीओ, मौज करो! परमात्मा इसके विपरीत नहीं है। लेकिन इतने पर समाप्त मत हो जाना। चार्वाक सुंदर है, मगर काफी नहीं। सीढ़ी बनाओ चार्वाक की। मंदिर की सीढ़ी का पत्थर चार्वाक से बनाओ; लेकिन मंदिर में जाना है, मंदिर के देवता से मिलन करना है। और वह देवता उन्हीं को मिल सकता है जो उत्सवपूर्ण हैं, जिनके भीतर गीत की गूंज है, जिनके ओंठों पर आनंद की बांसुरी बज रही है; जिन्होंने पैरों में घूंघर बांधे हैं--भजन के, अर्चन के। जिनकी आंखें चांद-तारों पर टिकी हैं, जो रोशनी के दीवाने हैं। तमसो मा ज्योतिर्गमय! जिनकी एक ही प्रार्थना है कि हे प्रभु, ज्योति की तरफ ले चल! असतो मा सद्गमय। असत से सत की तरफ ले चल! जिनके प्राणों में बस एक ही अभीप्सा हैः मृत्योर्मा अमृतं गमय! मृत्यु से अमृत की तरफ से चल! कितनी बार बनाया, कितनी बार मिटाया, यह खेल बहुत हो चुका; अब मुझे शाश्वत में लीन हो जाने दे, विलीन हो जाने दे। अब मैं थक गया हूं होने से। यह सुंदर है तेरा जगत। यह खाना-पीना, मौज उड़ाना, ये सब ठीक; मगर बचकानी हैं ये बातें; अब मुझे इनके ऊपर उठा।
बच्चों को खिलौनों से खेलने दो, लेकिन कभी बचकानेपन से ऊपर उठोगे या नहीं? और बच्चों के खिलौने भी मत तोड़ो। यह भी मैं नहीं कहता हूं कि उनके खिलौने तोड़ दो। जिस दिन वे प्रौढ़ होंगे, तब वे स्वयं ही खिलौनों को छोड़ देंगे।
तो मेरी बात में और चार्वाक की बात में बड़ा भेद है। चार्वाक कहता हैः यही लक्ष्य। मैं कहता हूंः यह साधन। चार्वाक कहता हैः इसके पार कुछ भी नहीं। मैं कहता हूंः इसके पार सब कुछ है। हां, एक बात में मेरी सहमति है कि मैं चार्वाक का विरोधी नहीं हूं। क्योंकि जो चार्वाक के विरोधी हैं, वे सिर्फ तुम्हें पाखंडी बनाने में सफल हो सके हैं। और मैं तुम्हें पाखंडी नहीं बनाना चाहता। मैं तुम्हारे जीवन को दो हिस्सों में नहीं बांटना चाहता--कि घर के भीतर कुछ और, और घर के बाहर कुछ और। मैं तुम्हें एक रंग देना चाहता हूं--ऐसा रंग, जो सब तरफ, सब जगह काम आए। मैं तुम्हें जीवन की एक शैली देना चाहता हूं, जिसमें पाखंड की गुंजाइश ही न हो।
तो मैं चार्वाक के पक्ष में हूं; क्योंकि चार्वाक के जो विपरीत हैं,
वे पाखंड के समर्थक हो जाते हैं। लेकिन मैं चार्वाक पर समाप्त नहीं होता हूं, सिर्फ चार्वाक पर शुरू होता हूं। चार्वाक के लिए संन्यास जैसी तो कोई चीज है ही नहीं--माया है, झूठ है, असत्य है, ब्राह्मणों की जालसाजी है। चार्वाक के लिए संन्यास जैसी बात तो सिर्फ धूर्तों का जाल है। मेरे लिए संन्यास जीवन का परम सत्य है, परम गरिमा है। चार्वाक के लिए संसार सत्य है, संन्यास झूठ है। जो चार्वाक-विरोधी हैं--तथाकथित धार्मिक, आस्तिक--उनके

लिए संसार माया है और संन्यास सत्य है। मेरे लिए दोनों सत्य हैं। और दोनों सत्यों में कोई विरोध नहीं है। संसार परमात्मा का ही व्यक्त रूप है, और परमात्मा संसार की ही अव्यक्त आत्मा है।
मैं तुम्हें एक अखंड दृष्टि देना चाहता हूं, जिसमें कुछ भी निषेध नहीं है। मैं तुम्हें एक विधायक धर्म देना चाहता हूं, जिसमें संसार को भी आत्मसात कर लेने की क्षमता है; जिसकी छाती बड़ी है; जो संसार को भी पी जा सकता है और फिर भी जिसका संन्यास खंडित नहीं होगा; जो बीच बाजार में संन्यस्त हो सकता है; जो घर में रह कर अगृही हो सकता है; जो संसार में होकर भी संसार का नहीं होता।
तो एक अर्थ में मैं चार्वाक से सहमत और एक अर्थ में सहमत नहीं।
इस अर्थ में सहमत हूं कि चार्वाक बुनियाद बनाता है जीवन की। लेकिन अकेली बुनियाद से क्या होगा? मंदिर बनेगा नहीं, तो बुनियाद व्यर्थ है। और तुम्हारे तथाकथित साधु-संत मंदिर तो बनाते हैं, लेकिन बुनियाद नहीं लगाते। उनके मंदिर थोथे होते हैं। कभी भी गिर जाएंगे; गिरे ही हैं; अब गिरे, तब गिरे। क्योंकि जिनकी कोई नींव नहीं है, उन मंदिरों का क्या भरोसा? उनमें जरा सम्हल कर जाना, कहीं खुद गिरें और तुम्हें भी न ले डूबें! मैं एक ऐसा मंदिर बनाना चाहता हूं जिसमें संसार, संसार की भौतिकता नींव बनेगी और संन्यास और परमात्मा की गरिमा मंदिर बनेगी। मैं तुम्हें एक ऐसी दृष्टि देना चाहता हूं जिसमें किसी भी चीज का विरोध नहीं है, सभी चीज का अंगीकार है। और एक ऐसी कला, रूपांतरण का एक ऐसा रसायन देना चाहता हूं जिसमें हम पत्थर में भी परमात्मा की मूर्ति खोजने में सफल हो जाएं और जहर को अमृत बनाने में सफल हो जाएं।
यह हो सकता है। और जब तक यह नहीं होगा, इस पृथ्वी पर दो ही तरह के लोग होंगे। जो ईमानदार होंगे, वे चार्वाकवादी होंगे। जो बेईमान होंगे, वे आस्तिक होंगे, धार्मिक होंगे।
ये कोई अच्छे विकल्प नहीं हैं कि ईमानदार आदमी को तो चार्वाकवादी होना पड़े और धार्मिक आदमी को बेईमान होना पड़े। ये कोई अच्छे विकल्प नहीं हैं। हमने दुनिया को चुनने के लिए कोई ठीक-ठीक राह नहीं दी।
मैं तीसरी ही बात कर रहा हूं। मैं कहता हूंः बिना बेईमान हुए धार्मिक हुआ जा सकता है।
लेकिन तब चार्वाक को अंगीकार करना होगा। तब चार्वाक को इनकार नहीं किया जा सकता। खाना, पीना और मौज--जीवन की स्वाभाविकता है। जिन ऋषियों ने कहा--"अन्नं ब्रह्म!" उन्होंने यह समझा होगा, तभी कहा। अन्न को जो ब्रह्म कह सके, सोच कर कहा होगा, अनुभव से कहा होगा। अन्न को ब्रह्म कहने का क्या अर्थ हुआ? इसका अर्थ हुआ कि भोजन में भी उसको ही अनुभव करना। स्वाद में भी उसका ही स्वाद लेना। यही चार्वाक को बदलने की कीमिया हुई। खाओ तो उसे, पीओ तो उसे, मौज मनाओ तो उसके आस-पास। वह न भूले!
और परमात्मा को हमने कहा है रसरूप--रसो वै सः। और क्या चाहिए? वही रस है। उस रस का प्रमाण दो। तुम्हारी आंखों में उसकी रसधार बहे। तुम्हारे प्राणों में उसका रस-गीत गूंजे। तुम्हारा व्यक्तित्व उसके रस की झलक दे, प्रमाण बने।
इसलिए कहता हूंः नाचो, गाओ, उत्सव मनाओ। इसलिए कहता हूं कि परमात्मा
की तरफ जब जा ही रहे हो तो रोते-रोते क्यों जाना? जब हंसते हुए जाया जा सकता है तो रोते हुए क्यों जाना? और अगर रोओ भी, तो तुम्हारे आंसू भी तुम्हारे आनंद के ही आंसू होने चाहिए। जलो भी, तो उसकी आग में जलना। और जब उसकी आग में कोई जलता है, तो आग भी बड़ी शीतल होती है। और जब उसकी आग में कोई जलता है, तो आग भी जलाती नहीं, केवल निखारती है।
चार्वाक एक पुराना दर्शन है--अति प्राचीन, शायद सर्वाधिक प्राचीन। क्योंकि आदिम मनुष्य ने सबसे पहले तो खाओ, पीओ और मौज मनाओ--इसकी ही खोज की होगी। परमात्मा की खोज तो बहुत बाद में हुई होगी। परमात्मा की खोज के लिए तो एक परिष्कार चाहिए। परमात्मा की खोज तो धीरे-धीरे जब हृदय शुद्ध हुआ होगा कुछ लोगों का, कुछ लोगों की हृदयतंत्री बजी होगी, तब हुई होगी। चार्वाक आदिम दर्शन है, सनातन धर्म है। शेष सारी बातें बाद में आई होंगी। चार्वाक को बुनियाद बनाओ, क्योंकि जो सनातन है और जो तुम्हारे

भीतर छिपा है, जो तुम्हारी बुनियाद में पड़ा है, उसको इनकार करके तुम कभी संपूर्ण न हो पाओगे। उसको इनकार करोगे तो तुम्हारा ही एक खंड टूट जाएगा, तुम अपंग हो जाओगे।
और अपंग व्यक्ति परमात्मा तक नहीं पहुंचता, ख्याल रखना। सर्वांग होना होगा। तुम्हें अपनी सर्वांग सुंदरता में ही उसकी तरफ यात्रा करनी होगी। लेकिन लोग प्रकट में चार्वाक नहीं हैं। अब मैं पार्लियामेंट के अनेक सदस्यों को जानता हूं, जो शराब-बंदी के लिए पीछे पड़े हैं--और शराब पीते हैं! मैंने उनसे पूछा भी है कि तुम जब शराब पीते हो, खुद पीते हो, तो शराब-बंदी के खिलाफ में क्यों नहीं काम करते? क्यों शराब-बंदी के लिए चेष्टा करते हो?
तो वे कहते हैंः आखिर जनता से वोट लेने हैं या नहीं? जनता के सामने तो
एक चेहरा, एक मुखौटा लगा कर रखना पड़ेगा। रही पीने की बात, सो वह हम घर में कर सकते हैं, मित्रों में कर सकते हैं। सभी पीते हैं! बाहर हम एक चेहरा बना कर रख सकते हैं।
मैं ऐसे नेताओं को भी जानता हूं जो शराब पीकर ही शराब-बंदी के पक्ष में व्याख्यान करने जाते हैं!
मैं एक विश्वविद्यालय में जब विद्यार्थी था, तो उसके जो वाइस चांसलर थे--महाशराबी थे। और शराब-बंदी के खिलाफ व्याख्यान दिया उन्होंने! और जब व्याख्यान दिया तो वे इतना पीए हुए थे कि उनकी गांधीवादी टोपी दो बार गिरी। पहली बार गिरी तो उन्होंने टटोल कर अपने सिर पर रख ली। जब दूसरी बार गिरी, वे इतने नशे में थे कि उन्होंने बगल के आदमी की टोपी उतार कर अपने सिर पर रख ली!
जब विश्वविद्यालय का दीक्षांत समारोह होता था, तो दो प्रोफेसर उनके
घर छोड़ने पड़ते थे चौबीस घंटे पहले कि उनको पीने न दें। क्योंकि दीक्षांत समारोह में वे बड़ी गड़बड़ कर देते थे। जिनको बी ए की डिग्री देनी है, उनको एम ए की डिग्री दे देते। जिनको पीएच डी की डिग्री मिलनी है, उनको बी ए की डिग्री मिल पाती! ऐसा जब एक बार हो चुका... और फिर वहां बीच में उनको टोकना भी संभव नहीं था; वही सबसे बड़े अधिकारी थे।
मैंने उनसे पूछा कि कम से कम जिस दिन शराब-बंदी के पक्ष में आपको बोलना था, उस दिन तो न पीते!
उन्होंने कहाः मैं पीऊं न तो मैं बोल ही नहीं सकता। जब पी लेता हूं, तभी तो इस तरह की व्यर्थ की बातें बोल सकता हूं, नहीं तो बोल ही नहीं सकता। इस तरह की फिजूल की बकवास बिना पीए नहीं हो सकती।
मोरारजी भाई देसाई के मंत्रिमंडल में जितने लोग हैं, उनमें से कम से
कम पचहत्तर प्रतिशत शराब पीते हैं; इससे ज्यादा भला पीते हों। जिन लोगों ने ठीक हिसाब लगाया है, वे तो कहते हैं नब्बे प्रतिशत। लेकिन मैं कहता हूं थोड़ा कम करके, ताकि अगर अदालत में भी मुझे प्रमाण देना पड़े तो मैं दे सकूं! पचहत्तर प्रतिशत तो निश्चित पीते हैं।
लेकिन एक पाखंड है जो धार्मिक आदमी में पाया जाता है--कहता कुछ, करता कुछ; दिखाता कुछ, होता कुछ।
हमने दो ही विकल्प छोड़े हैं आदमी के लिएः या तो वह शुद्ध भौतिकवादी हो; वह भी अच्छा नहीं है, क्योंकि उससे जीवन बड़ा सीमित हो जाता है। आकाश से संबंध टूट जाता है। पृथ्वी पर सरकना ही हमारे जीवन की नियति हो जाती है। फिर हम आकाश में उड़ नहीं सकते हैं। फिर सूर्य की ओर उड़ान नहीं भर सकते हैं। और या फिर पाखंड हमारे हाथ में लगता है। या तो हम झूठे हो जाते हैं--ऐसे झूठे कि हमें याद भी नहीं पड़ता कि हम झूठे हो गए हैं। अगर कोई झूठ ही झूठ बोलता रहे जीवन भर, तो झूठ भी सच जैसा मालूम होने लगता है।
एक कवि महोदय, कविता पाठ करने के पहले हूटरों को सचेत करते हुए बोलेः देखिए, यदि आपने मुझे हूट किया तो मैं आत्महत्या कर लूंगा।
यह कथन सुन कर हा-हा, ही-ही कर रहे सारे हूटर गंभीर हो गए। थोड़ी देर बाद उनमें से एक हूटर ने प्रश्न किया कि क्या आप सचमुच ही आत्महत्या कर लेंगे? कवि महाराज ने कहाः बिल्कुल, बिल्कुल निश्चित है यह बात। यह तो मेरी पुरानी आदत है। मैं तो सदा ऐसा करता रहा हूं।

झूठ बोलते-बोलते एक ऐसी सीमा आ जाती है कि तुम्हें पहचान में ही न आएगा स्वयं कि तुम झूठ बोल रहे हो। निरंतर दोहराए गए झूठ सच जैसे मालूम होने लगते हैं। पाखंड धर्म बन गया है!
मैं नहीं चाहता कि तुम चार्वाक को अस्वीकार करो। मैं चाहता हूं कि तुम चार्वाक को स्वीकार करो। चार्वाक की स्वीकृति बिल्कुल स्वाभाविक है, प्राकृतिक है। सुस्वादु भोजन में पाप क्या है? खाने-पीने में और मौज उड़ाने में मनुष्य की गरिमा है, महत्ता है।
तुम जरा देखो, पशु भी खाते-पीते हैं; पशुओं के खाने-पीने में और आदमी
के खाने-पीने में फर्क क्या है? एक ही फर्क है कि कोई पशु खाने-पीने में उत्सव नहीं मनाता। अगर एक कुत्ते को रोटी मिल गई तो वह चार और कुत्तों को निमंत्रित नहीं करता कि आओ भाई! रोटी कुत्ते को मिल गई तो वह भागता है एक कोने में; एकांत खोजता है। किसी को निमंत्रण नहीं देता। कहीं कोई आ न जाए, इस डर से पीठ कर लेता है दूसरों की तरफ।
मनुष्य चाहता है कि मित्रों को बुलाए, प्रियजनों के बीच बैठे; भोजन को उत्सव बना लेता है। वहां मनुष्य की संस्कृति है, सभ्यता है।
मैंने जिन वाइस चांसलर का उल्लेख किया, वे आदमी प्यारे थे। शराब उन्होंने कभी अकेले नहीं पी। कभी अगर मित्र उनके घर इकट्ठे न हो पाएं तो वे बिना पीए सो जाते थे। मैंने पूछाः ऐसा क्यों?
उन्होंने कहाः अकेले पीने में क्या अर्थ? पीने का मजा तो चार के साथ है।
तुम चकित होओगे यह जान कर कि शराब पीने वाले लोग, अक्सर शराब नहीं पीने वाले लोगों से ज्यादा मिलनसार होते हैं, ज्यादा मैत्रीपूर्ण होते हैं, ज्यादा उदार होते हैं। और कारण? क्योंकि शराब पीने का मजा ही चार के साथ है।
अब जो स्व-मूत्र पीते हैं, वे तो कोई चार के साथ नहीं पीएंगे! वे तो हो जाएंगे इकंडे। वे तो छिप कर ही पीएंगे। उनको तो छिप कर पीना ही पड़ेगा। उनमें किसी तरह की मनुष्यता नहीं हो सकती।
मोरारजी देसाई जब जवान थे तो एक लड़की से शादी करना चाहते थे। पिता पक्ष में नहीं थे। बात इतनी बिगड़ गई कि पिता ने कुएं में कूद कर आत्महत्या कर ली! मोरारजी को बहुत लोगों ने समझाया कि शादी तो अब तुम कर ही लेना जिससे करनी है, लेकिन कम से कम अभी कुछ दिन तो रुक जाओ! मगर वे नहीं रुके। पिता मर गए, लेकिन तारीख जो उन्होंने तय कर ली थी, ठीक तीन दिन बाद, पिता की आत्महत्या के तीन दिन बाद शादी हुई। शादी वे करके ही रहे। अब तो कोई विरोध करने वाला भी नहीं था। अब तो अगर महीने, पंद्रह दिन रुक जाते तो कुछ हर्ज न था। लेकिन एक तरह की अमानवीयता... ।
मोरारजी देसाई की लड़की ने भी आत्महत्या की; उन्हीं के कारण। पिता ने
भी उन्हीं के कारण की। और डर यह है कि यह पूरा मुल्क कहीं उनके कारण न करे। उनकी लड़की देखने-दाखने में सुंदर नहीं थी; वैसी ही रही होगी जैसे वे हैं! तो देर तक लड़का नहीं मिल सका। सत्ताईस वर्ष की उम्र में बामुश्किल उसने एक लड़का खोजा। वह लड़का भी उसमें उत्सुक नहीं था; वह मोरारजी तब चीफ मिनिस्टर थे बंबई के, उनमें उत्सुक था, कि उनके सहारे सीढ़ियां चढ़ लेगा। मोरारजी को यह पसंद नहीं था। जानते हुए भलीभांति कि उनकी लड़की को लड़का मिलना मुश्किल है। उनका ही ढंग-ढर्रा लड़की में था। अब यह बामुश्किल मिल गया है, किसी बहाने सही। मगर चूंकि उन्होंने विरोध किया, लड़की ने आत्महत्या कर ली, क्योंकि उसे भविष्य में कोई आशा ही नहीं थी कि कोई दूसरा लड़का मिल सकेगा।
जब अस्पताल में जली हुई लड़की को देखने वे गए, मरी हुई लड़की को देखने गए, तो एक शब्द नहीं बोले। डाक्टर चकित, अस्पताल की नर्सें चकित! न उनके चेहरे पर कोई भाव आया; न एक शब्द बोले। एक मिनट वहां खड़े रहे, लौट पड़े। कमरे के बाहर आकर डाक्टरों से कहा कि जैसे ही औपचारिकता पूरी हो जाए, लाश को मेरे घर के लोगों को दे दिया जाए ताकि अंत्येष्टि क्रिया की जा सके; और चले गए।
ऐसी कठोरता! ऐसी अमानवीयता!

नहीं, शराबियों में नहीं मिलेगी। शराबी में थोड़ी सी भलमनसाहत होती है।
वह जो चार मित्रों को बुला कर भोजन करता है, उसमें थोड़ी भलमनसाहत होती है, थोड़ी मिलनसारिता होती है। उसमें मैत्री का भाव होता है।
ऐसे तो पशु-पक्षी भी भोजन करते हैं; मनुष्य में और उनमें इतना ही भेद
है कि मनुष्य भोजन को भी एक सुसंस्कार देता है। टेबल है, कुर्सी है, चम्मच है; बैठने का ढंग है; धूप बाली गई है; फूल सजाए गए हैं; रोशनी की गई है, दीये जलाए गए हैं। इस सबके बिना भी भोजन हो सकता है। यह सब भोजन का अंग नहीं है। लेकिन यह सब भोजन को एक संस्कार देता है, एक सभ्यता देता है।
अकेले में एक कोने में बैठ कर शराब पी जा सकती है। लेकिन जब तुम पांच मित्रों को बुला कर, गपशप करके, गीत गाकर पीते हो, तो पीने का मजा और है। चार्वाक को इनकार करने के लिए मैं राजी नहीं हूं। चार्वाक मुझे पूरा स्वीकार है। लेकिन चार्वाक पर रुकने को भी मैं राजी नहीं हूं। इतना ही काफी नहीं है। मिलनसार होना अच्छा; खाने-पीने को संस्कार देना अच्छा; मैत्री अच्छी; मगर इतना ही पर्याप्त नहीं है; परमात्मा की तलाश भी करनी है।
और चार्वाक में और परमात्मा की तलाश करने में मुझे कोई विरोध नहीं दिखाई पड़ता। सच तो यह है, मुझे दोनों में एक संगति दिखाई पड़ती है, एक सेतु दिखाई पड़ता है।
मैं तुमसे नहीं कहता कि पाखंडी बनो। मैं तुमसे कहता हूंः सच्चे रहो।
जैसे हो वैसे अपने को स्वीकार करो। और इस सरलता और सहजता से ही धीरे-धीरे परमात्मा की तरफ बढ़ो।
परमात्मा की तरफ जाने को अकारण असहज मत बनाओ। परमात्मा तक जाने की यात्रा जितनी सहजता से हो सके उतनी सुंदर है।

दूसरा प्रश्नः बंबई के गुजराती भाषा के पत्रकार और लेखक श्री कांति भट्ट ने कृष्णमूर्ति के प्रवचन में आए हुए बंबई के लोगों को बुद्धिमत्ता का अर्क कहा है। श्री कांति भट्ट आपसे भी बंबई में मिल चुके हैं और यहां आश्रम में भी आए थे। लेकिन उन्होंने आपके पास आने वाले लोगों को कभी बुद्धिमान नहीं कहा। आप इस बाबत कुछ कहने की कृपा करेंगे?

कैलाश गोस्वामी! श्री कांति भट्ट ठीक ही कहते हैं। कृष्णमूर्ति के पास जो लोग इकट्ठे होते हैं, वे तथाकथित बुद्धिमान लोग ही हैं। क्योंकि कृष्णमूर्ति की बात बस गणित और तर्क की बात है। उसमें हृदय नहीं है, उसमें भाव नहीं है, भक्ति नहीं है, उसमें जीवन का गीत नहीं है--केवल जीवन का शुष्क विश्लेषण है। उसमें जीवन का नृत्य नहीं है--सिर्फ नृत्य का गणित है।
और दोनों बातों में भेद है। एक तो वीणा कोई बजाए और एक कोई वीणा के संगीत को... कागज पर लिपिबद्ध किया जा सकता है, संगीत की लिपि होती है, कागज पर लिपिबद्ध किया जा सकता है... उस कागज पर लिपिबद्ध संगीत का विश्लेषण करे। दोनों में बड़ा भेद है। कुछ लोग जो विश्लेषणप्रिय हैं, जो चीजों को खंड-खंड करके, टुकड़े-टुकड़े करके उनकी व्याख्या करने में रस लेते हैं, कृष्णमूर्ति में उन्हें बहुत आकर्षण मालूम होगा।
मेरी उत्सुकता तर्क में नहीं है, मेरी उत्सुकता प्रेम में है। मेरी उत्सुकता गणित में नहीं है, मेरी उत्सुकता गीत में है। मेरी उत्सुकता लिपिबद्ध संगीत में नहीं है, वीणा को बजाने में है। पांडित्य मेरे लिए असार है, पागलपन में मेरी बड़ी श्रद्धा है।
तो मेरे पास तो श्री कांति भट्ट को कैसे यह लग सकता है कि यहां बुद्धिमत्ता का अर्क? यहां तो लगता होगा कि दीवाने इकट्ठे हुए हैं, पागल इकट्ठे हुए हैं, मस्ताने इकट्ठे हुए हैं! यह तो है ही मधुशाला। कृष्णमूर्ति के पास जो लोग जा रहे हैं, वह जमात अहंकारियों की है। अगर तुम्हें अहंकारियों की कोई शुद्ध जमात कहीं देखनी हो तो कृष्णमूर्ति के पास मिलेगी। और कृष्णमूर्ति भी थक गए हैं उस जमात से, ऊब गए हैं। मगर उनके कहने का ढंग, उनके बोलने का ढंग, उनकी प्रस्तावना ऐसी है कि सिवाय उन अहंकारियों के कोई दूसरा उनके पास कभी इकट्ठा नहीं हो सकता।

कृष्णमूर्ति स्वयं तो ज्ञान को उपलब्ध हैं, लेकिन उनकी अभिव्यक्ति शुष्क है। उनकी अभिव्यक्ति से, परमात्मा रस-रूप है, इसका कोई पता नहीं चलता। उनकी अभिव्यक्ति से, तल्लीनता से भी मिल सकता है सत्य, इसकी कोई संभावना नहीं खुलती। उनका स्वर एक है; वह ध्यान का स्वर है--जागरूक होना है, चित्त को जाग कर देखते रहना है, सजग होकर।
यह एक मार्ग है--बस एक मार्ग! एक दूसरा मार्ग भी है, ठीक इसके विपरीत;
वह प्रेम का मार्ग है--डूब जाना है, लीन हो जाना है। जागरूक, दूर-दूर नहीं खड़े रहना है; तल्लीन हो जाना है।
मैं दोनों ही मार्गों की बात कर रहा हूं। क्योंकि जगत में दोनों तरह
के लोग हैं। कुछ हैं जो ध्यान से उपलब्ध होंगे। उनके लिए मैं विश्लेषण भी करता हूं। उनके लिए मैं तर्क की बात भी बोलता हूं। और कुछ हैं जो प्रेम से उपलब्ध होंगे। उनके लिए मैं मादक गीत भी गाता हूं। चूंकि मैं दोनों विपरीत बातें एक साथ बोलता हूं, चूंकि दोनों विरोधाभासों को एक साथ एक संगति में लाता हूं, जो लोग सिर्फ सोच-विचार से जीते हैं, उन्हें मेरी बातों में विरोधाभास दिखाई पड़ेंगे, असंगति दिखाई पड़ेगी। स्वाभाविक, क्योंकि कभी जब मैं महावीर पर बोलता हूं तो शुद्ध तर्क होता हूं और जब मीरा पर बोलता हूं तो शुद्ध अतर्क होता हूं। जो मुझे सुनेंगे, उन्हें धीरे-धीरे यह लगेगा कि इस बात में तो विरोधाभास है, असंगति है। इसलिए तर्क से जीने वाला व्यक्ति मेरी बातों में असंगति पाएगा।
कृष्णमूर्ति की बातें बड़ी संगत हैं, क्योंकि वे एक ही स्वर दोहरा रहे हैं पचास वर्षों से। उस स्वर में उन्होंने कभी भी हेर-फेर नहीं किया। उस स्वर में उन्होंने कभी भी कोई असंगति नहीं की। दो और दो चार, दो और दो चार, दो और दो चार--ऐसा पचास वर्ष से दोहरा रहे हैं।
जो मुझे सुनता है, मैं कभी कहता हूंः दो और दो चार। और कभी कहता हूंः
दो और दो पांच। और कभी कहता हूंः दो और दो तीन। और कभी कहता हूंः दो और दो जुड़ते ही नहीं! और कभी कहता हूं कि दो और दो तो सदा से एक ही हैं, जोड़ोगे कैसे? तो मेरे पास एक और ही तरह का व्यक्ति इकट्ठा हो रहा है--एक और ही अन्यथा प्रकार का!
कृष्णमूर्ति के पास केवल वे ही लोग इकट्ठे होते हैं जिन्हें यह भ्रांति है कि वे बुद्धिमान हैं। पाया क्या? इकट्ठे होते रहे, सुनते भी रहे, संग्रह भी बढ़ गया सूचनाओं का। मिला क्या? तीस-तीस साल, चालीस-चालीस साल कृष्णमूर्ति को सुनने वाले लोग मेरे पास आते हैं और कहते हैं कि सब समझ में तो आ गया, मगर मिला कुछ भी नहीं! ऐसी समझ किस काम की?
मैं तुम्हें समझ नहीं देता, मैं तुम्हें अनुभव देता हूं। मैं तुम्हें
यह नहीं कहता कि इतना जान लो, इतना जान लो। मैं कहता हूंः इतने डूबो, इतने डूबो! मैं तुम्हें धक्का देता हूं सागर में।
जो इस धक्के को झेलने को राजी हैं, स्वभावतः श्री कांति भट्ट को वे कोई बुद्धिमान लोग मालूम न पड़े होंगे। और कांति भट्ट स्वयं पत्रकार हैं, लेखक हैं, तो स्वयं भी गणित और तर्क से ही सोचते होंगे। गणित और तर्क के पार भी एक विराट आकाश है, इसकी उन्हें कोई खबर नहीं।
जो मुझे समझेंगे, वे मेरी बातों में कृष्णमूर्ति को भी पा सकते हैं।
जो कृष्णमूर्ति को समझेंगे, वे कृष्णमूर्ति की बातों में मुझे नहीं पा सकते। कृष्णमूर्ति का तो छोटा सा आंगन है साफ-सुथरा; कृष्णमूर्ति की तो छोटी सी बगिया है साफ-सुथरी। बगिया भी विक्टोरिया के जमाने की, इंग्लैंड की बगिया! कटी-छंटी, साफ-सुथरी, सिमिट्रीकल। एक झाड़ इस तरफ, तो दूसरा झाड़ ठीक उसके ही अनुपात का, माप का दूसरी तरफ। लान कटा हुआ।
कृष्णमूर्ति में बहुत कुछ है जो विक्टोरियन है। वे असल में बड़े हुए
इस तरह के लोगों के साथ--एनीबीसेंट, लीडबीटर, इन लोगों के साथ बड़े हुए। इन्होंने उन्हें पाला-पोसा। इन्होंने उन्हें शिक्षा दी। इंग्लैंड में बड़े हुए। वह छाप उन पर रह गई है।
तुम मेरे बगीचे को देखो, जंगल है! जैसा मेरा बगीचा है, वैसा ही मैं हूं। कहीं कोई सिमिट्री नहीं, कोई तालमेल नहीं। एक झाड़ ऊंचा, एक झाड़ छोटा। रास्ते इरछे-तिरछे। मुक्ता है मेरी मालिन। मुक्ता ग्रीक है। ग्रीक तर्क! बहुत चेष्टा की उसने शुरू में कि इस तरफ भी ठीक वैसा ही झाड़ होना चाहिए

जैसा उस तरफ है, दोनों में समतुलता होनी चाहिए। बहुत चेष्टा की उसने कि किसी तरह झाड़ों को काट-छांट कर आकार दिया जा सके। लेकिन धीरे-धीरे समझ गई कि मेरे साथ यह न चलेगा। चुरा कर, चोरी से, मेरे अनजाने, पीठ के पीछे छिपा कर, कैंची लेकर वह झाड़ों को रास्ते पर लगाती थी। धीरे-धीरे उसे समझ में आ गया कि यह मेरा बगीचा जंगल ही रहेगा।
जंगल में मुझे सौंदर्य मालूम होता है; बगिया में मौत। आदमी का कटा- छंटा हुआ बगीचा सुंदर नहीं हो सकता। कटे-छंटे होने के कारण ही उसकी नैसर्गिकता नष्ट हो जाती है। मैं नैसर्गिक का प्रेमी हूं। और निसर्ग बड़ा है। निसर्ग बहुत बड़ा है।
एक झेन फकीर ने एक सम्राट को बागवानी की शिक्षा दी। और जब शिक्षा पूरी
हो गई तो वह परीक्षा लेने उसके बगीचे में आया। सम्राट ने एक हजार माली लगा रखे थे। और परीक्षा के दिन के लिए तीन वर्ष तैयारी की थी। और सोचता था कि गुरु आकर प्रसन्न हो जाएगा। कोई भूल-चूक न छोड़ी थी। यही भूल-चूक थी! यह तो बहुत बाद में पता चला। बिल्कुल समग्ररूपेण बगिया पूर्ण थी। यही अपूर्णता थी। क्योंकि पूर्ण चीजों में मृत्यु आ जाती है। जहां पूर्णता है वहां मृत्यु छा जाती है। जब गुरु आया तो सम्राट सोचता था, अपेक्षा करता था--बहुत प्रसन्न होगा, आह्लादित होगा; लेकिन गुरु बड़ा उदास होता चला गया; जैसे- जैसे बगिया में भीतर गया, और उदास होता चला गया। सम्राट ने कहाः आप उदास! मैंने बहुत मेहनत की है। एक-एक नियम का परिपूर्णता से पालन किया है।
गुरु ने कहाः वही चूक हो गई। तुमने नियमों का इतनी परिपूर्णता से पालन किया है कि सारा निसर्ग नष्ट हो गया। यह बगीचा झूठा मालूम पड़ता है, सच्चा नहीं। और मुझे सूखे पत्ते नहीं दिखाई पड़ते! सूखे पत्ते कहां हैं? जहां इतने वृक्ष हैं, वहां एक सूखा पत्ता रास्तों पर नहीं है!
सम्राट ने कहाः आज ही सारे सूखे पत्ते इकट्ठे करवा कर मैंने बाहर फिंकवा दिए, कि आप आते हैं तो सब शुद्ध रहे।
टोकरी उठा कर बूढ़ा गुरु बाहर गया, रास्ते पर फेंक दिए गए सूखे पत्तों
को ले आया टोकरी में भर कर, फेंक दिए रास्तों पर! आईं हवाएं, सूखे पत्ते खड़खड़ की आवाज करके उड़ने लगे। और गुरु प्रसन्न हुआ। उसने कहाः अब देखते हो, थोड़ा प्राण आया। यह आवाज देखते हो, यह संगीत सुनते हो! ये सूखे पत्तों की खड़खड़, इसके बिना मुर्दा था तुम्हारा बगीचा। मैं फिर आऊंगा, साल भर फिर तुम फिकर करो। अब की बार फिकर करना कि इतनी पूर्णता ठीक नहीं, कि इतना नियमबद्ध होना ठीक नहीं, कि थोड़ी अपूर्णता शुभ है, कि थोड़ा नियम का उल्लंघन शुभ है, क्योंकि निसर्ग को मौका मिले। तुमने बिल्कुल अनुशासनबद्ध कर दिए सारे वृक्ष, जैसे सिपाही हों। तुमने वृक्षों की मौलिकता छीन ली, उनकी अद्वितीयता छीन ली। कोई वृक्ष किसी दूसरे वृक्ष जैसा नहीं है, प्रत्येक वृक्ष बस अपने जैसा है।
मैं प्रत्येक व्यक्ति की निजता को स्वीकार करता हूं, सम्मान करता हूं। मैं तुम्हें काट-छांट कर एक जैसे नहीं बना देना चाहता। जब मैं देखता हूं कि तुम्हारे भीतर प्रेम का गुलाब खिलेगा, तो मैं तुमसे ध्यान की बात नहीं करता। और जब मैं देखता हूं कि तुम्हारे भीतर ध्यान की जुही खिलेगी, तो मैं तुमसे गुलाब की बात नहीं करता। और चूंकि मैं किसी से गुलाब की बात करता हूं, किसी से जुही की, किसी से चंपा की और किसी से केवड़े की, मेरी बातों में असंगति हो जानी स्वाभाविक है।
मेरे पास तो वही आ सकता है जो मेरी हजार-हजार असंगतियों को झेलने की छाती रखता हो। बड़ी छाती चाहिए! कृष्णमूर्ति को सुनने के लिए बहुत छोटी सी खोपड़ी काफी है। बहुत छोटी खोपड़ी चाहिए--थोड़ा सा तर्क आता हो, थोड़ा सा गणित आता हो, थोड़े कालेज-स्कूल की पढ़ाई-लिखाई हो, कृष्णमूर्ति समझ में आ जाएंगे।
मेरे साथ इतने सस्ते में नहीं चलेगा। मेरे साथ तो पियक्कड़ों की दोस्ती बनती है। मुझसे तो नाता ही दीवानों का जुड़ता है, प्रेमियों का जुड़ता है--जो संगति की मांग नहीं करते; जो असंगति में भी संगति देखने का हृदय रखते हैं और जो विरोधाभासों में भी सेतु बना लेने की क्षमता रखते हैं। यह एक और ही तरह का जगत है।

कृष्णमूर्ति की शिक्षाएं बस शिक्षाएं हैं। कृष्णमूर्ति एक शिक्षक होकर समाप्त हो गए, सदगुरु नहीं हो पाए। और सुनने वाले शिष्य ही नहीं बन पाए, सिर्फ विद्यार्थी रह गए।
यहां विद्यार्थियों की जगह ही नहीं है। मैं कोई शिक्षक नहीं हूं और मेरे पास कोई शिक्षा का शास्त्र नहीं है। मैं खुद एक दीवाना हूं, खुद जिसने जी भर कर पी है! मुझसे दोस्ती बनाओगे तो मेरे साथ लड़खड़ा कर चलना सीखना होगा! इसके बिना कोई उपाय नहीं है।
इसलिए कैलाश गोस्वामी, कांति भट्ट ठीक ही कहते हैं कि कृष्णमूर्ति के पास बुद्धिमत्ता का अर्क इकट्ठा होता है। मगर बुद्धिमत्ता का अर्क जरा भी मूल्य का नहीं है, दो कौड़ी उसका मूल्य नहीं है।
कोई पंद्रह वर्षों तक मेरे पास भी उसी तरह के लोग इकट्ठे होते थे। फिर मुझे उनके साथ छुटकारा करने में बड़ी मेहनत करनी पड़ी। वही बुद्धिमत्ता का अर्क मेरे पास इकट्ठा होता था। जो लोग कृष्णमूर्ति को सुनने जाते हैं, वे ही मुझे भी सुनने आते थे। करीब-करीब वे ही लोग! मुझे उनसे छुटकारा पाने के लिए बड़ी मेहनत करनी पड़ी, बामुश्किल उनसे छुटकारा कर पाया। क्योंकि उन्होंने कृष्णमूर्ति का जीवन खराब किया। उन्होंने कृष्णमूर्ति के जीवन से जो लाभ हो सकता था, वह नहीं होने दिया। सारी बातें बस बुद्धि की होकर रह गईं। और मैं नहीं चाहता था कि मेरे पास भी बस वही बातें चलती रहें।
और एक कठिनाई होती है। अगर तुम्हारे पास एक ही तरह की जमात इकट्ठी हो जाए तो मुश्किल हो जाती है। वह जो भाषा समझती है, उसी भाषा में तुम्हें बोलना पड़ता है। मैं चाहता था कि मेरे पास सब रंगों, सब ढंगों के लोग हों। मैं चाहता था कि मेरे पास इंद्रधनुष हो, सातों रंग के लोग हों। मैं चाहता था कि मेरे पास इकतारा न हो, मेरे पास सब तरह के वाद्य हों कि मैं एक आर्केस्ट्रा बनाऊं जिसमें सारे वाद्य सम्मिलित हो सकें।
वे लोग जो मेरे पास इकतारा लेकर इकट्ठे हो गए थे, उनसे छुटकारा पाने में मुझे बड़ी मुश्किल हुई। उनसे छुटकारा पाना जरूरी था, क्योंकि उनकी जमात जो भाषा समझती थी, वही भाषा मुझे बोलनी पड़ती थी।
अब मेरे पास एक जमात है कि मैं जो भाषा बोलता हूं, उसी भाषा को समझने
के लिए वह राजी है, क्योंकि वह मेरे हृदय को पहचानती है। अब मेरे शब्दों पर मेरे संन्यासियों को बहुत चिंता नहीं करनी पड़ती। वे मेरे शब्दों में मेरे भाव को पढ़ते हैं। वे मेरे शब्दों में मेरे अर्थ को सुनते हैं। अब मेरा शून्य मेरे संन्यासियों को सुनाई पड़ने लगा है।
मैं प्रसन्न हूं, क्योंकि अब मुझे भीड़-भाड़ से, आमजन से नहीं बोलना पड़ रहा है। अब मैंने, जो मुझे समझ सकते हैं, सुन सकते हैं, जो मुझे आत्मसात कर ले सकते हैं, उनको धीरे-धीरे जुटा लिया है। उन्हें निमंत्रण दे-दे कर मैंने अपने पास बुला लिया है। अब मेरे पास ऐसे लोग हैं कि उनकी कोई अपेक्षा नहीं है मुझसे कि मैं यही बोलूं, कि ऐसा ही बोलूं। अब उनकी कोई अपेक्षा ही नहीं है। वे मुझे पीने को राजी हैं। जैसा मैं हूं वैसा पीने को राजी हैं। आज जो पिलाऊंगा वही पीने को राजी हैं। वे यह नहीं कहेंगे कि कल तो आप कुछ और ही पिलाते थे, आज कुछ और पिलाने लगे! कल कल था, आज आज है। और कल आने वाला कल होगा। अब उनकी चिंता नहीं है संगति बिठाने की।
यह जरा कठिन मामला है--सातों रंग के लोगों को सम्हालना, सब शैली के लोगों को साथ-साथ लेकर चलना! इसका मजा भी बहुत है, इसकी झंझट भी बहुत है। कृष्णमूर्ति झंझट से तो बच गए, लेकिन फिर जीवन में वे जो करना चाहते थे, नहीं कर पाए। कृष्णमूर्ति अत्यंत विषादग्रस्त हैं--अपने लिए नहीं; अपने लिए तो दीया जल गया, बात पूरी हो गई। उनका विषाद यह है कि वे किसी और का दीया नहीं जला पाए। इसलिए नाराज हो जाते हैं, चिल्लाते हैं, अपना माथा ठोंक लेते हैं, क्योंकि लोग समझते ही नहीं। लेकिन इसमें कसूर सिर्फ लोगों का नहीं है। कृष्णमूर्ति ने जिस तरह की बातें कहीं, उस तरह के लोग इकट्ठे हो गए हैं। ये वे लोग हैं जो बदलने की आकांक्षा ही नहीं रखते। ये तो सिर्फ सुनने आते हैं, ये तो सिर्फ कुछ और थोड़ी बातें संगृहीत हो जाएं, थोड़ा पांडित्य और बढ़ जाए, इसलिए आते हैं। इनकी विश्लेषण की क्षमता थोड़ी और प्रखर हो जाए, इसलिए आते हैं।

यह अहंकारियों की जमात है। क्योंकि कृष्णमूर्ति कहते हैं कि किसी को गुरु बनाने की आवश्यकता नहीं है, कहीं समर्पण करने की कोई आवश्यकता नहीं है। तो उन लोगों की जमात कृष्णमूर्ति के पास इकट्ठी हो जाती है जो समर्पण करने में असमर्थ हैं और जिनका अहंकार इतना मजबूत है कि जो किसी के सामने झुक नहीं सकते। उनके लिए कृष्णमूर्ति की बात बड़ा आवरण बन जाती है--बड़ा सुंदर आवरण! वे कहते हैंः झुकने की जरूरत ही नहीं है, इसलिए हम नहीं झुकते हैं। बात कुछ और है। झुक नहीं सकते हैं, इसलिए नहीं झुकते हैं। लेकिन अब एक तर्क हाथ आ गया कि झुकने की कोई जरूरत ही नहीं है। समर्पण आवश्यक ही नहीं है, इसलिए हम समर्पण नहीं करते हैं। सचाई कुछ और है। समर्पण करना हर किसी के बस की बात नहीं है, बड़ा साहस चाहिए। अपने को मिटाने का साहस चाहिए!
मैं जो प्रयोग कर रहा हूं वह पृथ्वी पर अनूठा है, इसलिए श्री कांति भट्ट जैसे लोग उसे नहीं समझ पाएंगे। मैं जो प्रयोग कर रहा हूं उसे समझने में सदियां लग जाएंगी। अब तक दुनिया में बहुत प्रयोग हुए हैं। बुद्ध ने एक भाषा बोली--संगत भाषा; एक तरह के लोग इकट्ठे हो गए। महावीर ने दूसरी भाषा बोली--संगत भाषा; दूसरी तरह के लोग इकट्ठे हो गए। चैतन्य ने तीसरी भाषा बोली--संगत भाषा; तीसरी तरह के लोग इकट्ठे हो गए। चैतन्य के पास जो लोग इकट्ठे हुए, वे झांझ-मजीरा, ढोलक-मृदंग लेकर इकट्ठे हुए, नाचे, गाए। बुद्ध के पास जो लोग इकट्ठे हुए, उन्होंने विपस्सना की, आंख बंद की, शांत होकर बैठे। महावीर के पास जो लोग इकट्ठे हुए, उन्होंने उपवास किया, शरीर की शुद्धि की। अलग-अलग लोग, उनकी अलग-अलग विधि, उनके अनुकूल लोग इकट्ठे होते रहे।
मैं जो प्रयोग कर रहा हूं वह अनूठा है, कभी किया नहीं गया। कभी किसी ने इतनी झंझट मोल लेना चाही भी नहीं। यहां विपस्सना भी चल रहा है। जो लोग शांत बैठना चाहते हैं, मौन होना चाहते हैं, उनके लिए भी द्वार है। जो लोग नाचना चाहते हैं मृदंग की थाप पर, उनके लिए भी द्वार है। जो अकेले में, एकांत में बांसुरी बजाना चाहते हैं, उनके लिए भी द्वार है। और जो बहुतों के साथ संगीत में लीन होना चाहते हैं, उनके लिए भी द्वार है।
मैं एक मंदिर बना रहा हूं, जिस मंदिर में सभी द्वार होंगे--मस्जिद का
भी द्वार होगा, और गिरजे का भी, और गुरुद्वारे का भी, मंदिर का भी, सिनागॉग का भी--जिसमें सारे द्वार होंगे। तुम कहीं से आओ, जिस द्वार से तुम्हारी रुचि हो, आओ। भीतर एक ही परमात्मा विराजमान है।
यह झंझट की बात है। इतने भिन्न-भिन्न लोगों को साथ सम्हाल कर चलना कठिन काम है। लेकिन बात लगता है कि बनी जा रही है। बनते-बनते बन रही है; लेकिन बनी जा रही है।
मुल्ला नसरुद्दीन ने अपनी आदत के अनुसार जैसे ही संगीत-सम्मेलन में आलाप भरा, एक श्रोता खड़ा हो गया और विनम्र स्वर में बोलाः बड़े मियां, आप गाने की स्टाइल बदलिए। कल मैं आप ही की तरह गा रहा था तो पिटते-पिटते बचा। मुल्ला नसरुद्दीन ने अपनी ही स्टाइल में गीत प्रारंभ किया और बोलेः महाशय, मेरा ख्याल है कि आपका गाने का ढंग घटिया रहा होगा। यदि हूबहू मेरी स्टाइल में गाते तो जरूर पिटते।
मेरे पास जो घटित हो रहा है, वह अघटित होने जैसी बात है। उसे समझने में सदियां लगेंगी। उसे समझने में सिर्फ बुद्धि पर्याप्त नहीं होगी--हृदय की गहराई चाहिए होगी। उसे समझने में सिर्फ तर्क काम नहीं देगा, क्योंकि मेरे पास जो लोग इकट्ठे हो रहे हैं, वे बुद्धिमत्ता का अर्क नहीं हैं--समग्रता का अर्क हैं। उसमें उनका तन भी जुड़ा है, उसमें उनका मस्तिष्क भी जुड़ा है, उसमें उनका हृदय भी जुड़ा है, उसमें उनकी आत्मा भी जुड़ी है। कृष्णमूर्ति के पास जो लोग इकट्ठे हो रहे हैं, वे बुद्धिमत्ता के अर्क हैं। मेरे पास जो लोग इकट्ठे हो रहे हैं, वे समग्रता के अर्क हैं। यह बात और है। यह बड़ा आकाश है। यह कोई छोटा आंगन नहीं है।
छोटे आंगन को साफ-सुथरा रखा जा सकता है, लीपा-पोता जा सकता है। इस बड़े आकाश को कैसे लीपो-पोतो? कैसे साफ-सुथरा रखो? यह तो जैसा है वैसा ही अंगीकार करना होगा।

मैं निसर्ग का भक्त हूं। मेरे लिए निसर्ग ही परमात्मा है। और परमात्मा ने जितने रूप लिए हैं, वे सब मुझे स्वीकार हैं। परमात्मा ने जितने ढंगों में अपनी अभिव्यक्ति की है, सबका मेरे मन में सम्मान है। कृष्णमूर्ति के पास भक्त जाएगा तो कृष्णमूर्ति कहेंगेः गलत! भक्ति में क्या रखा है? यह मंदिर की पत्थर की मूर्ति के सामने सिर पटकने से क्या होगा? भजन-कीर्तन सब आत्म-सम्मोहन है। संगीत, संकीर्तन, ये सब अपने को भुलावे के ढंग हैं।
मेरे पास भक्त आएगा, तो मैं कहूंगा कि पत्थर में भी भगवान है, क्योंकि भगवान ही है! तो पत्थर में भी वही होगा! लेकिन पत्थर में तुम्हें तब दिखाई पड़ेगा जब तुम्हें अपने में दिखाई पड़ने लगेगा। अन्यथा पूजा झूठी रहेगी। तुम्हें अपने में नहीं दिखाई पड़ता, अपनी पत्नी में नहीं दिखाई पड़ता, अपने बच्चे में नहीं दिखाई पड़ता, तुम्हें मंदिर की मूर्ति में कैसे दिखाई पड़ेगा?
हां, पत्थर में भी जरूर भगवान है, क्योंकि भगवान अस्तित्व का ही दूसरा नाम है। और पत्थर भी है--उतना ही जितना मैं हूं, जितने तुम हो! तो पत्थर के होने में ही तो भगवत्ता है उसकी। मगर पत्थर में देखने के लिए जरा गहरी आंख चाहिए पड़ेगी। अभी तो तुम्हारे पास इतनी थोथी आंखें हैं कि जीवंत मनुष्यों में भी नहीं दिखाई पड़ता, पशु-पक्षियों में नहीं दिखाई पड़ता, वृक्षों में नहीं दिखाई पड़ता--और पत्थर में दिखाई पड़ जाएगा!
फिर सभी पत्थरों में भी नहीं दिखाई पड़ता। छैनी से किसी ने पत्थर पर थोड़े से हाथ मार दिए हैं, हथौड़ी चला दी है, उसमें दिखाई पड़ता है; या किसी ने किसी पत्थर पर आकर सिंदूर पोत दिया है, उसमें दिखाई पड़ने लगता है। सिर्फ सिंदूर पोतने से!
तुम्हें पता है, जब पहली दफा अंग्रेजों ने भारत में रास्ते बनाए और मील के पत्थर लगाए तो बड़ी मुश्किल खड़ी हो गई। क्योंकि मील के पत्थर लगाए, लाल रंग से रंगा। गांव से रास्ते गुजरें और जिस पत्थर पर भी लाल रंग पुता है, उसी पर फूल चढ़ा कर लोग हनुमान जी समझते हैं! अंग्रेज बड़ी मुश्किल में पड़ गए कि करना क्या! लोग नारियल फोड़ें, हनुमान जी की जय बोलें। और अंग्रेज उस पर तो लिखें, मील का पत्थर, तो मील; कितने मील, आने वाला नगर कितनी दूर। लेकिन गांव के लोग हर महीने दो महीने में उस पर सिंदूर पोत दें, क्योंकि हनुमान जी को सिंदूर चढ़ाना ही पड़ता है। पर्त पर पर्त!
जरा सिंदूर पोत दिया तो पत्थर एकदम हनुमान जी हो जाते हैं। और ऐसे तुम्हें हनुमान जी मिल जाएं कहीं रास्ते में तो तुम ऐसे भागोगे... तुम्हारा तो क्या, विवेकानंद ने अपने संस्मरण में लिखा है कि हिमालय में यात्रा करते वक्त एक भयंकर बंदर उनके पीछे पड़ गया। बंदर, कुत्ते, इस तरह के प्राणियों को यूनिफार्म से बड़ी दुश्मनी है, पता नहीं क्यों! पुलिसवाला निकल जाए कि कुत्ते एकदम भौंकने लगते हैं; पोस्टमैन, कि संन्यासी, एक यूनिफार्म भर... यूनिफार्म के दुश्मन! देखा होगा विवेकानंद को गैरिक वस्त्रों में चले जाते, बंदर एकदम नाराज हो गया। एकदम दौड़ा विवेकानंद के पीछे। विवेकानंद शक्तिशाली आदमी थे, हिम्मतवर आदमी थे, लेकिन एकदम हनुमान जी पीछे आ जाएं... विवेकानंद भी भागे! अपनी जान बचानी पड़ती है ऐसे मौकों पर। ऐसे पत्थर पर सिंदूर पोतना एक बात है। लेकिन जितने ही विवेकानंद भागे, बंदर और मजा लिया। जब कोई भाग रहा हो तो भागते के पीछे तो कोई भी भागने लगता है। भगाने वाले कोई भी मिल जाएंगे फिर। बंदर और मजा लेने लगा।
फिर विवेकानंद को लगा कि अगर मैं और भागा, तो यह हमला करेगा। कोई और रास्ता न देख कर... पहाड़ी सन्नाटा, कोई रास्ता नहीं भागने का, बचने का, कोई आदमी दिखाई पड़ता नहीं, सोचा कि अब एक ही उपाय है कि डट कर खड़ा हो जाऊं, अब जो कुछ करेंगे हनुमान जी सो करेंगे। लौट कर खड़े हो गए। लौट कर खुद खड़े हुए तो बंदर भी लौट कर खड़ा हो गया। बंदर ही तो ठहरा आखिर।
हनुमान जी तुम्हें रास्ते में मिल जाएं तो तुम भी भागोगे। तुम एकदम गिड़गिड़ाने लगोगे कि हनुमान जी कोई नाराज हो गए हैं, क्या बात है? ऐसे जाकर पत्थर के सामने प्रार्थना करते थे कि हे हनुमान जी, कभी प्रकट होओ!

पत्थर की पूजा करोगे और अभी तुम्हें मनुष्य में भी परमात्मा दिखाई पड़ा नहीं! मनुष्य की तो छोड़ दो, अपने भीतर नहीं दिखाई पड़ा--निकटतम जो है तुम्हारे, तुम्हारे प्राणों में बैठा प्राणों की भांति, वहां नहीं दिखाई पड़ा!
तो मैं भक्त से कहूंगा कि जरूर पत्थर में भी भगवान है, क्योंकि भगवान
ही है! पर पहले अपने में खोजो। और अगर अपने में खोज पाओ तो मंदिर की मूर्ति में भी है। मंदिर की मूर्ति में ही क्यों, रास्ते के किनारे पड़े अनगढ़ पत्थर में भी है। फिर चारों तरफ तुम्हें वही दिखाई पड़ेगा।
मेरे पास तुम जो लेकर आओगे, मैं उसी का उपाय करूंगा कि तुम्हारे लिए सीढ़ी बन जाए। चेष्टा करूंगा कि तुम्हारे राह के बीच पड़ा हुआ जो पत्थर है, जिसकी वजह से तुम अटक गए हो, वह सीढ़ी बन जाए।
कृष्णमूर्ति की एक धुन है। उस धुन से इंच भर यहां-वहां वे तुम्हें स्वीकार नहीं करते। उन्होंने कपड़े पहले से तैयार करके रखे हैं। अगर गड़बड़ी है तो तुममें गड़बड़ी है। कपड़े पहना कर वे जांच कर लेंगे। अगर तुम्हें नहीं कपड़े ठीक बैठ रहे हैं तो काट-छांट तुम्हारी की जाएगी, कपड़ों की नहीं। यूनान में एक पुरानी कथा है कि एक सम्राट था, वह झक्की था। उसकी झक्क यही थी कि उसके पास एक सोने का पलंग था, बड़ा बहुमूल्य पलंग था। उसके घर में कोई भी मेहमान होता तो वह उसी पलंग पर सुलाता। मगर एक उसकी झंझट थी। उसके घर कोई मेहमान नहीं होता था। जब लोगों को पता चलने लगा, धीरे-धीरे कुछ मेहमान गए और फिर लौटे ही नहीं, तो मेहमानों ने आना बंद कर दिया। मगर कभी- कभी कोई भूल-चूक से फंस जाता था, तो वह उस बिस्तर पर लिटाता। अगर उसके पैर बिस्तर से लंबे होते तो पैर काटता; अगर पैर उसके छोटे होते बिस्तर से, वह छोटा होता, तो दो पहलवान दोनों तरफ से उसको खींचते। लेकिन उसको बिल्कुल बिस्तर के बराबर करके ही सोने देते थे। मगर तब सोना होता ही कहां, वह तो आदमी खत्म ही हो जाता। और ठीक बिस्तर के माप का आदमी कहां मिले! कभी लाख, दो लाख में संयोग से कोई मिल जाए ठीक माप का तो बात अलग, नहीं तो ठीक माप का आदमी कहां मिले! कोई इंच छोटा, कोई इंच बड़ा; कोई ऐसा, कोई वैसा।
इस जगत में कोई व्यक्ति किसी एक तर्कसरणी के अनुसार न तो पैदा हुआ है,
न उसकी नियति है कि किसी तर्कसरणी के अनुसार जीए। कृष्णमूर्ति के पास एक बंधा हुआ जीवन-ढांचा है। वे कहते हैं कि बस इसके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं। मेरे पास कोई तैयार कपड़े नहीं हैं। तुम्हारे प्रति मेरा सम्मान इतना
है कि मैं पलंग की फिकर नहीं करता। अगर जरूरत पड़े तो पलंग को छोटा-बड़ा किया जा सकता है; तुम्हें छोटा-बड़ा नहीं किया जा सकता। तुम अगर भक्त हो तो मैं तुम्हारी भक्ति में और चार चांद जोडूंगा। और तुम अगर ध्यानी हो तो तुम्हारे ध्यान में और चार चांद जोडूंगा। तुम जो हो, उसमें कुछ जोडूंगा। तुम्हारे भीतर अगर कुछ कूड़ा-कर्कट है, तो जरूर कहूंगा कि इसे फेंको, हटाओ। मगर तुम्हारी जीवन-शैली की जो अंतरंगता है, निजता है, उस पर कोई आघात मेरी तरफ से नहीं होगा।
इसलिए स्वभावतः मेरी बातें असंगत होंगी। और तथाकथित बुद्धिमानों की सबसे बड़ी अड़चन यह है कि संगत बात चाहिए उन्हें। लेकिन मैं क्या कर सकता हूं? लोग ही इतने भिन्न हैं। भिन्नता इस जगत का स्वभाव है। मैं क्या कर सकता हूं? यह मेरे हाथ की बात नहीं है। पलंग काटा जा सकता है, तुम नहीं काटे जा सकते। और पलंग का काटना कभी-कभी खूब काम कर जाता है।
मुल्ला नसरुद्दीन बहुत परेशान था। उसको एक ही चिंता, रात में दस-पांच दफा उठ कर वह अपने बिस्तर के नीचे जब तक झांक कर न देख ले कि कोई चोर, कोई डाकू, कोई लुच्चा छिपा तो नहीं है? और ठीक भी है; क्योंकि डाकू, चोर, लुच्चे इस समय इतने प्रभावी हैं, जगह-जगह छाए हुए हैं कि आदमी को सचेत रहना ही चाहिए। उसकी पत्नी भी परेशान कि तुम न सोते, न सोने देते। रात में दस दफा उठ-उठ कर दीया जला कर देखोगे--कोई बिस्तर के नीचे तो है नहीं! पत्नी उसे मनोचिकित्सकों के पास ले गई, उन्होंने बहुत समझाया, मनोविश्लेषण किया, उसकी अचेतन बातें उसको समझाईं, उसके सपनों का विश्लेषण किया, यह किया, वह किया, कोई काम न आया। उसकी बीमारी जारी रही।
फिर एक दिन मेरे पास आया, बड़ा प्रसन्न था और कहने लगाः मेरी सास आई और उसने मामला मिनट में रफा-दफा कर दिया।

तो मैंने कहाः तुम्हारी सास मालूम होता है कोई बड़ी मनोवैज्ञानिक है। उसने कहाः कुछ भी नहीं। बुद्धि उसमें नाममात्र को नहीं है। मगर उसने मिनट में रफा-दफा कर दिया।
मैंने कहाः किया क्या उसने?
उसने कहाः उसने किया यह कि उठा कर आरा और मेरे बिस्तर की चारों टांगें काट दीं। अब मेरा बिस्तर जमीन पर रखा है, अब उसके नीचे कोई छिप ही नहीं सकता। बड़े-बड़े मनोवैज्ञानिक हार गए। अब मैं उठना भी चाहूं तो बेकार। पुरानी आदत से नींद भी खुल जाती है तो मैं सोचता हूं कि क्या सार! नीचे कोई छिप ही नहीं सकता, उसने पैर ही उड़ा दिए। बिस्तर ही जमीन पर लगा दिया। बिस्तर के पैर काटने हों, काट लो। बिस्तर को छोटा करना हो, छोटा कर लो; बड़ा करना हो, बड़ा कर लो। आदमी को साबित छोड़ो! आदमी के प्रति सम्मान रखो और आदमी की भावना का सम्मान रखो। और इसलिए स्वभावतः मेरी बातें बहुत असंगत हैं, क्योंकि मैं भिन्न-भिन्न लोगों के लिए भिन्न-भिन्न गीत गाता हूं। और उन सबको तुम मिलाओगे, और उन सबके बीच तुम सोचना चाहोगे कि कोई एक विचार की व्यवस्था खड़ी हो जाए तो नहीं हो सकेगी।
जो यहां तर्क से सुनने आएगा वह बड़ी झंझट में पड़ जाएगा।
मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन बड़े आक्रोश से अपनी खूब तेज-तर्रार रचनाएं, अपनी कविताएं, अपनी शायरी बड़ी देर तक सुनाता रहा। जनता चिल्लाती भी रही कि बंद करो! मगर जनता जितनी चिल्लाए कि बंद करो, उतनी ही जोर आवाज से वह अपनी कविता सुनाए, वह उतने और आक्रोश में आता गया। लोग ताली बजाएं, इसलिए कि भाई बंद करो। मगर वह समझे कि प्रशंसा की जा रही है। आखिर एक आदमी खड़ा हुआ और उसने कहा कि बड़े मियां, आप काव्य-पाठ बंद करते हैं या नहीं? अगर आपने काव्य-पाठ बंद न किया तो मैं पागल हो जाऊंगा।
मुल्ला नसरुद्दीन ने चौंक कर, भौचक रह कर उस आदमी से कहाः भाई साहब! कविता पढ़ना बंद किए तो मुझे एक घंटा हो चुका है।
जो लोग मुझे तर्क से सुनने आएंगे, जो गणित बिठाएंगे, वे विक्षिप्त हो जाएंगे। जो मुझे भाव से सुनेंगे... यह सत्संग है, यहां कोई शिक्षण नहीं दिया जा रहा है। यहां मैं अपने को बांट रहा हूं, कोई शिक्षाएं नहीं बांट रहा हूं। यहां अपने को लुटा रहा हूं, कोई सिद्धांत नहीं दे रहा हूं। सत्य का हस्तांतरण होता भी नहीं, सत्य तो संक्रामक है। यहां तो मैं तुम्हें अपने पास बुला रहा हूं कि मेरे पास आओ कि सत्य तुम्हें भी पकड़ ले, संक्रामक हो जाए। यह तो दीवानों की बस्ती है और दीवानों के लिए निमंत्रण है। यहां अहंकारी आएंगे, अपने आप लौट जाएंगे, क्योंकि समर्पण यहां सूत्र है। यहां अहंकारी आएंगे और उन्हें मेरी बात सुनाई भी नहीं पड़ेगी, क्योंकि यहां शिष्यत्व के बिना कोई बात सुनाई पड़ ही नहीं सकती। यहां तर्कवादी आएंगे और कुछ का कुछ सुनेंगे, क्योंकि यहां जो बात की जा रही है, वह प्रेम की है, वह तर्क की नहीं है। यहां कुछ बात कही जा रही है जो कही ही नहीं जा सकती है। यहां अकथ्य को कथ्य बनाने की चेष्टा चल रही है।
फिर लोग अपना-अपना हिसाब लेकर आते हैं। श्री कांति भट्ट आए होंगे अपना हिसाब लेकर, अपने हिसाब से सुना होगा, अपने हिसाब से समझा होगा। शायद कृष्णमूर्ति उनके हृदय में बहुत ज्यादा भरे हों, तो अड़चन हो गई होगी, तो तौलते रहे होंगे। और जिसने तौला, वह चूका। फिर मैं कुछ कहूंगा, वे कुछ समझेंगे।
जनसमूह कवि-सम्मेलन सुनने के लिए उमड़ आया था। मुल्ला नसरुद्दीन जैसे
ही काव्य-पाठ के लिए खड़े हुए किसी श्रोता ने भीड़ में से प्रश्न उछाल दियाः बड़े मियां! काव्य-पाठ के पहले कृपया यह बताएं कि गधे के सिर पर कितने बाल होते हैं?
मुल्ला नसरुद्दीन ने कुछ देर जिधर से आवाज आई थी उधर देखते हुए कहाः क्षमा करें, भारी भीड़ में मुझे आपका सिर दिखाई नहीं दे रहा है।

आखिरी प्रश्नः संतों की वाणी में इतना रस किस स्रोत से आता है? और संतों की वाणी से इतनी तृप्ति और आश्वासन क्यों मिलता है?

रस का तो एक ही स्रोत है--रसो वै सः! रस का तो कोई और स्रोत नहीं है, परमात्मा ही रस का स्रोत है। रस उसका ही दूसरा नाम है।
संत अपनी तो कुछ कहते नहीं, उसकी ही गुनगुनाते हैं। संत तो वही है जिसके पास अपना कुछ कहने को बचा ही नहीं है। अपना जैसा ही कुछ नहीं बचा है। संत तो बांस की पोली पोंगरी है, चढ़ा दी गई परमात्मा के हाथों में; अब उसे जो गीत गाना हो, गा ले; न गाना हो, न गाए; ऐसा बजाए कि वैसा बजाए। बांस की पोंगरी तो बस बांस की पोंगरी है। वह गाता है तो बांसुरी हो जाती है, वह नहीं गाता है तो बांस की पोंगरी बांस की पोंगरी रह जाती है! गीत उसके हैं, बांसुरी के नहीं हैं। स्वर उसके हैं।
संत तो केवल एक माध्यम है। संत तो केवल उपकरण है। परमात्मा के हाथ में छोड़ देता अपने को, जैसे कठपुतली!
तुमने कठपुतलियों का नाच देखा? छिपे हुए धागे और पीछे छिपा रहता है उनको नचाने वाला। फिर कठपुतलियों को नचाता, जैसा नचाता वैसी कठपुतलियां नाचती हैं। लड़ाता तो लड़ती हैं, मिलाता तो मिलती हैं, बातचीत करवाता, हजार काम लेता।
संत तो बस ऐसा है जिसने एक बात जान ली है कि मैं नहीं हूं, परमात्मा है। अब जो कराए। इसलिए रस है उनकी वाणी में, अमृत है उनकी वाणी में। अमृत बरसता है, क्योंकि वे अमृत के स्रोत से जुड़ गए हैं। कमल खिलते हैं, क्योंकि कमल जहां से रस पाते हैं, उस स्रोत से जुड़ गए हैं।

पतझड़ के बाद यह
आया है नव-वसंत
वाणी में मेरी!

वाणी की डालों पर
भावों के फूल खिले,
बहती मादक बयार
वहन करती गंध भार,
सरसों के फूलों का
सागर लहराया
वाणी में मेरी!

वाणी की लहरों में
दहक-दहक उठते हैं,
टेसू के फूलों के
जीवित दाहक अंगार!
वाणी के कंपन में
जीवन का दर्द नया
लहराया छाया!
वाणी में मेरी
नव-वसंत आया!
महक उठा आम्र बौर
मस्ती में झूम झूम
जीवन का गीत नया
मादक यह राग नया
कोकिल ने गाया
वाणी में मेरी!

जीवन-अनुराग-सिक्त
उड़ता अरुणिम गुलाल!
भावों ने वेदना के
अनुभव ने व्यथा के
मीड़ दिए हैं कपोल!
अरुणिम आभा का यह

नव-प्रकाश छाया
वाणी में मेरी!

आस्था के फूल सजा
श्रद्धा के दीप जला
अक्षत-विश्वास और
ममता की रोली ले
नवयुग के अर्चन का
थाल यह सजाया
वाणी में मेरी!

पतझड़ के बाद यह
आया है नव-वसंत
वाणी में मेरी!

पहले झड़ जाओ पतझड़ से, पत्ते-पत्ते गिर जाएं! तुम्हारा कुछ भी न बचे-- नग्न, जैसा पतझड़ के बाद खड़ा हुआ वृक्ष! फिर नये अंकुर फूटते हैं, नये फूल लगते हैं। वे फूल तुम्हारे नहीं हैं, वे फूल परमात्मा के हैं। वे अंकुर तुम्हारे नहीं हैं, वे अंकुर परमात्मा के हैं! मिटने की कला सीखो। जिस दिन तुम मिट जाओगे पूरे-पूरे, उस दिन परमात्मा तुमसे बहेगा--अहर्निश बहेगा, बाढ़ की तरह बहेगा। और तब न केवल तुम तृप्त होओगे, तुम्हारे पास जो आ जाएगा, उसकी भी जन्मों-जन्मों की प्यास तृप्त हो जाएगी।
पूछते हो तुम वेदमूर्तिः "संतों की वाणी में इतना रस किस स्रोत से आता है? और संतों की वाणी से इतनी तृप्ति और आश्वासन क्यों मिलता है?"
इसीलिए आश्वासन है, क्योंकि संत प्रमाण हैं परमात्मा के। और कोई प्रमाण नहीं है--न वेद प्रमाण हैं, न उपनिषद प्रमाण हैं, न कुरान प्रमाण है। प्रमाण तो होता है कभी कोई जीवंत संत। मोहम्मद प्रमाण हो सकते हैं, याज्ञवल्क्य प्रमाण हो सकते हैं, बुद्ध प्रमाण हो सकते हैं, दरिया प्रमाण हो सकते हैं। प्रमाण तो होता है सदा कोई जीवंत व्यक्तित्व, जिसके चारों तरफ एक आभा होती है--जिस आभा को तुम छू सकते हो, जिस आभा को तुम स्पर्श कर सकते हो, जिस आभा का तुम स्वाद ले सकते हो; जिसके आस-पास एक मधुरिमा होती है, एक माधुर्य होता है; जिसके आस-पास तुममें अगर खोज हो तो तुम भौंरे बन जाओ कि रस पीओ!
और प्यास किसमें नहीं है? दबाए बैठे हैं लोग प्यास को। भुलाए बैठे हैं लोग प्यास को। प्यास तो सभी में है। जन्मों-जन्मों से किसकी तलाश कर रहे हो? जब किसी संत में उस अनंत का आविर्भाव होता है, तो आश्वासन मिलता है कि मैं व्यर्थ ही नहीं दौड़ रहा, कि मेरी कल्पनाओं में, मेरे स्वप्नों में जो छाया उतरी थी, वह छाया ही नहीं है, माया ही नहीं है, सत्य भी हो सकता है। जो मैंने मांगा है, वह किसी को मिल गया है, तो मुझे भी मिल सकता है। जो मैंने चाहा है, किसी में पूरा हुआ है, तो मुझमें भी हो सकता है। मुझ जैसे ही हड्डी-मांस-मज्जा के व्यक्ति में जब ऐसी अनंत शांति और आनंद का आविर्भाव हुआ है, तो मुझमें भी होगा। इसलिए आश्वासन मिलता है।
संतों के पास बैठ कर आस्था उमगती है, श्रद्धा जगती है। विश्वास नहीं करना होता फिर। विश्वास तो जबरदस्ती करना होता है। श्रद्धा अपने से पैदा होती है। ऐसे चरण, जहां सिर अपने से झुक जाए, झुकाना न पड़े!
ऐसा हुआ कि बुद्ध को जब तक ज्ञान उपलब्ध न हुआ था, वे महातपश्चर्या करते थे। बड़ी तपश्चर्या, बड़ी दुर्धर्ष! अपने शरीर को गलाते थे, सताते थे, उपवास करते थे। धूप में खड़े होते, शीत में खड़े होते। सूख गए थे। बड़ी सुंदर उनकी देह थी जिस दिन राजमहल छोड़ा था। फूल सी सुकुमार उनकी देह थी! सूख गए थे, काले हो गए थे, हड्डियां कोई गिन ले... । कहानियां कहती हैं कि पेट पीठ से लग गया था। बस हड्डी-हड्डी रह गए थे। पांच उनके शिष्य हो गए थे उनकी तपश्चर्या देख कर कि यह कोई महातपस्वी है। फिर एक दिन बुद्ध को यह बोध हुआ कि यह मैं क्या कर रहा हूं? यह तो आत्मघात है जो मैं कर रहा हूं! यह कोई परमात्मा को या सत्य को पाने का उपाय तो नहीं। यह तो मैं सिर्फ अपने को

नष्ट कर रहा हूं, पा क्या रहा हूं? छह साल की निरंतर तपश्चर्या के बाद एक दिन यह समझ में आया कि ये छह साल मैंने यूं ही गंवाए--अपने को सताने में, परेशान करने में। यह तो हिंसा है, आत्महिंसा। उसी क्षण उन्होंने उस आत्महिंसा का त्याग कर दिया।
स्वभावतः, जो पांच शिष्य उसी आत्महिंसा से प्रभावित होकर उनके साथ थे, उन्होंने कहाः यह गौतम भ्रष्ट हो गया। अब इसके साथ क्या रहना! अब यह हमारा गुरु न रहा। अब हम कोई और गुरु खोजेंगे। इसने तपश्चर्या छोड़ दी।
और क्या कोई पाप किया था?
इतनी सी बात थी जिससे पांचों शिष्य छोड़ कर चले गए--कि बुद्ध ने उस दिन
एक पीपल के वृक्ष के नीचे बैठे हुए... किसी स्त्री ने गांव की मनौती मनाई होगी कि मैं अगर मां बन जाऊंगी तो पीपल के देवता को थाली भर कर खीर चढ़ाऊंगी। वह गर्भिणी हो गई थी। वह सुजाता नाम की स्त्री सुस्वादु खीर बना कर पीपल के वृक्ष को चढ़ाने आई थी।
पूरे चांद की रात, पीपल का वृक्ष, उसके नीचे बुद्ध विराजमान, उसने तो यही समझा कि पीपल के देवता स्वयं प्रकट होकर मेरी खीर स्वीकार कर रहे हैं। और कोई दिन होता तो बुद्ध ने इनकार कर दिया होता। क्योंकि एक तो रात थी, रात्रि-भोजन वर्जित; फिर वे केवल उन दिनों एक ही बार भोजन करते थे दोपहर में, सो दुबारा भोजन का सवाल ही न उठता था। मगर उसी सांझ उन्होंने सारी तपश्चर्या को आत्महिंसा समझ कर त्याग कर दिया था। तो उस स्त्री ने जब भेंट की उनको खीर, तो उन्होंने स्वीकार कर ली। खीर को स्वीकार करते देख कर पांचों शिष्य उठ कर चले गए। गौतम भ्रष्ट हो गया! रात्रि-भोजन! अनजान, अपरिचित स्त्री के हाथ से बनी हुई खीर! पता नहीं ब्राह्मण है, शूद्र है, कौन है, क्या है! रात्रि का समय! एक बार भोजन का नियम तोड़ दिया। छोड़ कर चले गए।
फिर बुद्ध को उसी रात ज्ञान भी हुआ। उसी रात की पूर्णता पर सुबह होते
जब रात का अंतिम तारा डूबता था और सूरज ऊगने-ऊगने को था, तभी भीतर बुद्ध के भी सूरज ऊगा। रात का आखिरी तारा डूबा, अंधेरा गया, रोशनी हुई। फिर उन्हें याद आया कि वे मेरे पांचों शिष्य तो मुझे छोड़ कर चले गए, लेकिन मैंने जो जाना है अब, मेरा कर्तव्य है कि सबसे पहले उन पांचों को जाकर कहूं, बांटूं। बहुत वर्षों तक मेरे पीछे रहे। अभागे! जब घटना घटने को थी, तब छोड़ कर चले गए!
तो बुद्ध उनकी तलाश में निकले। उनको बामुश्किल पकड़ पाए। वे काफी दूर निकल गए थे। वे नये गुरु की तलाश में आगे बढ़ते चले गए। जिस गांव बुद्ध पहुंचते, पता चलता कि कल ही उन्होंने गांव छोड़ दिया। बस ऐसे बुद्ध उनको खोजते-खोजते सारनाथ में पकड़े। इसलिए सारनाथ में बुद्ध का पहला प्रवचन हुआ, पहला धर्मचक्र-प्रवर्तन हुआ।
जब उन्होंने बुद्ध को आते देखा तो वे पांचों एक वृक्ष की छाया में विश्राम कर रहे थे। उन पांचों ने देखा कि यह भ्रष्ट गौतम आ रहा है। हम इसकी तरफ पीठ कर लें। यह सम्मान के योग्य नहीं है। यह जब आएगा तो हम उठ कर खड़े नहीं होंगे, नमस्कार भी नहीं करेंगे। इसको खुद बैठना हो तो बैठ जाए, हम यह भी न कहेंगे कि बैठिए, विराजिए। हम इसे भलीभांति यह बात प्रदर्शित कर देंगे कि अब हम तुम्हारे शिष्य नहीं हैं, तुम भ्रष्ट हो चुके हो, हम तुम्हारा परित्याग कर चुके हैं।
लेकिन जैसे-जैसे बुद्ध पास आए, एक बड़ी अपूर्व घटना घटी। वे पांचों जो पीठ करके बैठे थे, कब किस अपूर्व क्षण में, किस अनजाने कारण से मुड़ गए और बुद्ध की तरफ देखने लगे! पांचों! और जब बुद्ध पास आए तो उठ कर खड़े हो गए। और जब बुद्ध और पास आए तो झुक कर उनके चरणों में प्रणाम किया। और कहाः विराजिए।
बुद्ध हंसे और बुद्ध ने कहाः लेकिन तुमने तय किया था कि पीठ मेरी तरफ रखोगे। और तुमने तय किया था कि नमस्कार न करोगे, पैर छूने की तो बात ही दूर थी। और तुमने तय किया था कि यह भ्रष्ट गौतम आ रहा है तो हम बैठने को भी न कहेंगे। और तुम अब शय्या बिछाते हो, बैठने का आसन लगाते हो! बात क्या है? तो उन पांचों ने कहाः विवश! इसके पहले हम जब तुम्हारे साथ थे तो हम तुममें विश्वास करते थे, आज श्रद्धा का जन्म हुआ है। वह विश्वास था।

विश्वास टूट भी सकता है, क्योंकि ऊपरी होता है। आज श्रद्धा का अपने आप आविर्भाव हुआ है। हमने कुछ किया नहीं, अपने आप हम मुड़ गए तुम्हारी तरफ। जैसे कोई चुंबक की तरफ खिंच जाए। अपने आप हम उठ कर खड़े हो गए, अपने आप हम झुक गए, अपने आप तुम्हारे चरणों से सिर लग गया।
संत प्रमाण हैं। जब तुम्हें कोई ऐसा व्यक्ति मिल जाए जिसके पास अपने
आप सिर झुक जाए, तो फिर समझ लेना कि वह मंदिर आ गया, वह द्वार आ गया, वह देहली आ गई--जहां से अब सिर उठाने की जरूरत नहीं है। जब किसी व्यक्ति को देख कर तुम्हें भरोसा आ जाए कि परमात्मा होना ही चाहिए, तो जानना कि सदगुरु से मिलन हो गया। फिर छोड़ना मत संग-साथ, फिर छाया बन जाना उसकी, क्योंकि इसी तरह लोग पहुंचे हैं। और किसी तरह न कोई कभी पहुंचा है, और न कभी कोई पहुंच सकता है।
वेदमूर्ति! तृप्ति है, आश्वासन है, क्योंकि संतों में प्रमाण है।

रहो निश्चिंत जब तक मैं खड़ा हूं तिमिर के तट पर
कभी भी रोशनी को खुदकुशी करने नहीं दूंगा।

खड़ा पुरुषार्थ पहरे पर
किरण स्वच्छंद डोलेगी
जहां भी ज्योति बंदी है
वहां के द्वार खोलेगी
उजालों को अंधेरे से
खरीदा जा नहीं सकता
प्रभा के पक्ष में रजनी
सुबह के साथ बोलेगी
मनुज स्थापित करो अब मंदिरों में शुभ मुहूरत है कभी तूफान को मैं आरती वरने नहीं दूंगा

पसीने और लोहू से
मिला कर जो बनाई है
नये इतिहासकारों की
अमिट यह रोशनाई है
लिखा प्रारब्ध जाना है
हमारा ही स्वयं हमसे
सदी के सत्य को लिखने
कलम हमने उठाई है
सजग हूं सभ्यता के शत्रु से, विध्वंस को झूठा कभी इतिहास पर आरोप मैं धरने नहीं दूंगा

नया इन्सान लिखता है
सृजन के श्लोक सुरभीले
मशीनी संस्कृतियों के
नहीं होंगे नयन गीले
ग्रहों पर शीघ्र बसने का
इरादा आदमी का है
सही अर्थों मगर जीवन
धरा पर हम प्रथम जी लें
तुम्हें आश्वस्त करता हूं पदार्थों के छली युग को कभी भी आस्था का शील मैं हरने नहीं दूंगा

रहो निश्चिंत जब तक मैं खड़ा हूं तिमिर के तट पर कभी भी रोशनी को खुदकुशी करने नहीं दूंगा

संत की उपस्थिति पर्याप्त है। जिनके पास देखने को आंखें हैं, और सुनने को कान हैं, और अनुभव करने को हृदय है--उनके लिए संत की उपस्थिति पर्याप्त है कि परमात्मा है।
इसलिए आश्वासन है, इसलिए महातृप्ति है, इसलिए रस है। क्योंकि संत सिर्फ केवल प्रतिनिधि है, संदेशवाहक है परमात्मा का, उस परम सत्य का-- जिसके बिना हम व्यर्थ हैं, और जिसे पाकर ही सब कुछ पा लिया जाता है!
आज इतना ही।

अमी झरत, बिगसत कंवल
पांचवां प्रवचन

जागे में फिर जागना

तज बिकार आकार तज, निराकार को ध्यान।
निराकार में पैठ कर, निराधार लौ लाए।।
प्रथम ध्यान अनुभौ करै, जासे उपजै ग्यान।
दरिया बहुतै करत हैं, कथनी में गुजरान।।
पंछी उड़ै गगन में, खोज मंडै नहिं माहिं।
दरिया जल में मीन गति, मारग दरसै नाहिं।।
मन बुधि चित पहुंचै नहीं, सब्द सकै नहिं जाए।
दरिया धन वे साधवा, जहां रहे लौ लाए।।
किरकांटा किस काम का, पलट करे बहु रंग।
जन दरिया हंसा भला, जद तद एकै रंग।।
दरिया बगला ऊजला, उज्जल ही होए हंस।
ये सरवर मोती चुगैं, वाके मुख में मंस।।
जन दरिया हंसा तना, देख बड़ा ब्यौहार।
तन उज्जल मन ऊजला, उज्जल लेत अहार।।
बाहर से उज्जल दसा, भीतर मैला अंग।
ता सेती कौवा भला, तन मन एकहि रंग।।
मानसरोवर बासिया, छीलर रहै उदास।
जन दरिया भज राम को, जब लग पिंजर सांस।।
दरिया सोता सकल जग, जागत नाहिं कोए।
जागे में फिर जागना, जागा कहिए सोए।।
साध जगावै जीव को, मत कोई उट्ठे जाग।
जागे फिर सोवै नहीं, जन दरिया बड़ भाग।।
हीरा लेकर जौहरी, गया गंवारै देस।
देखा जिन कंकर कहा, भीतर परख न लेस।।
दरिया हीरा क्रोड़ का, कीमत लखै न कोए।
जबर मिलै कोई जौहरी, तब ही पारख होए।।

फिर दर्द उठा है, आंख भरी
सीने में बाएं कोने से
फिर हूक उठी गहरी-गहरी

दिन तो दुनिया की ले-दे में
कट गया चलो जैसे-तैसे
पल-पल पहाड़ जैसी भारी
यह रात कटेगी पर कैसे
खाएगी मेरा हृदय नोंच
यह सांध्य-चील क्रूरता भरी

कांटे बबूल के पलकों में अनजाने ही उग आएंगे
मैं तो जागूंगा सो कर भी
सब सो-सो कर जग जाएंगे
टूटेगा तन का पोर-पोर
जैसे शराब उतरी-उतरी

फिर सुलगेगा चंदन भीतर
पर बाहर धुआं न आएगा
आवाज नहीं होगी कोई
घुन भीतर-भीतर खाएगा

फिर मुझको डस कर उलटेगी
वह स्मृतियों की सांपिन ठहरी

कब रेत बंधी है मुट्ठी में कब अंजुरी में जल ठहरा है कहती भी क्या गूंगी पीड़ा सुनता भी क्या जग बहरा है
जिंदगी बूंद है पारे की
जो एक बार बिखरी, बिखरी

फिर दर्द उठा है, आंख भरी
सीने में बाएं कोने से
फिर हूक उठी गहरी-गहरी

इस जीवन को सस्ते में मत गंवा देना। चूंकि मिल गया है अनायास, निर्मूल्य मत समझ लेना। कीमत तो इसकी कोई भी नहीं, पर मूल्य इसका बहुत है। कीमत और मूल्य का भाषाकोश में तो एक ही अर्थ है, लेकिन जीवन के कोश में एक ही अर्थ नहीं। जिन चीजों की कीमत होती है उनका कोई मूल्य नहीं होता और जिन चीजों का मूल्य होता है उनकी कोई कीमत नहीं होती।
प्रेम का मूल्य है, कीमत क्या? ध्यान का मूल्य है, कीमत क्या? स्वतंत्रता का मूल्य है, कीमत क्या? और बाजार में बिकती हुई चीजें हैं, सब पर कीमत लगी है, पर उनका मूल्य क्या है?
जो व्यक्ति कीमत के ही जगत में जीता है, वह संसारी है। जो मूल्य के जगत में प्रवेश करता है, वह संन्यासी है। मूल्य प्रसाद है परमात्मा का। लेकिन चूंकि प्रसाद है, इसलिए चूक जाने की संभावना है। कीमत देनी पड़ती तो शायद तुम जीवन का मूल्य भी करते। चूंकि मिल गया है; तुम्हारी झोली में कोई अनजान ऊर्जा उसे भर गई है; तुम्हें पता भी नहीं चला और कोई तुम्हारे प्राणों में श्वास फूंक गया है; तुम्हें खबर भी नहीं, कौन तुम्हारे हृदय में धड़क रहा है--इसलिए भूले-भूले कंकड़-पत्थर बीन-बीन कर ही जीवन को गंवा मत देना। जब तक परमात्मा की खोज शुरू न हो, तब तक जानना ही मत कि तुम जीए। जीवन की शुरुआत परमात्मा की खोज से ही होती है। जन्म काफी नहीं है जीवन के लिए। एक और जन्म चाहिए। और धन्यभागी हैं वे, जिनके जीवन में हूक उठती है, पुकार उठती है; पीड़ा का जिन्हें अनुभव होता है; जो परमात्मा की तलाश पर निकल पड़ते हैं; जो सब दांव पर लगाने को राजी हो जाते हैं।
फिर दर्द उठा है, आंख भरी
सीने में बाएं कोने से
फिर हूक उठी गहरी-गहरी
कब रेत बंधी है मुट्ठी में
कब अंजुरी में जल ठहरा है
कहती भी क्या गूंगी पीड़ा
सुनता भी क्या जग बहरा है
जिंदगी बूंद है पारे की
जो एक बार बिखरी, बिखरी
सावधान! जिंदगी गंवानी तो बहुत आसान है, कमानी बहुत कठिन है। पारे की बूंद है, बिखरी तो बिखरी, फिर सम्हाल न सकोगे। और क्षण-क्षण बूंद बिखरती जा रही है और तुम हो कि खोए हो न मालूम किस व्यर्थता के जाल में--कोई धन, कोई पद, कोई प्रतिष्ठा। दो कौड़ी उनका मूल्य है; शायद दो कौड़ी भी उनका मूल्य नहीं है। कंकड़-पत्थर बीन रहे हो, जब कि हीरे की खदान बहुत ही निकट है, बहुत ही करीब है--तुम्हारे भीतर है! उसी हीरे की खदान तक कैसे पहुंचा जाए, इस संबंध में आज के सूत्र हैं।

पीड़ा की गंध लिए,
विष का अनुबंध लिए,
चंदन की छांव तले, जीवन के गीत पले।

तिनकों का आलंबन आंधी की घातों पर, कंपती सी आशाएं नश्वर संघातों पर। मृत्यु की हथेली पर जीने की उत्कंठा, धूप और छांहों की संघर्षी मातों पर। अधरों से आग पिए,
अंतर में नेह लिए,
जैसे तूफानों में बुझता सा दीप जले।

सतरंगे मौसम को बंद किए बांहों में, उद्वेलित यौवन का ज्वार लिए चाहों में। पलकों की कोरों पर अंजवाए गहराई,
अविरल गति चलने को पथरीली राहों में। अपना अधिकार लिए,
उर में नव-ज्वार लिए,
सिकता पर रेखा बन ज्यों मिटती लहर ढले।

डसते विश्वासों पर आंसू से भरे भरे,
हारों की लड़ियों में कलियों से झरे झरे। झीने अवगुंठन में सिंदूरी मांग लिए, प्रतिबिंबित रूप निरख दर्पण में तिरे तिरे। यौवन का मोड़ लिए,
हंसने की होड़ लिए,
जैसे निज स्मित से पूनम का चांद छले।

जेठ की दोपहरी में शीतल जिज्ञासा बन, द्वंद्वों के मंथन में अमृत अभिलाषा बन। पनघट के घट-घट में सागर को सीमित कर,
दर्शन के प्यासे को जीवन की परिभाषा बन।
राग में विराग लिए,
तपने का त्याग लिए,
बनने को स्वर्णमुकुट ज्यों कंचन देह जले।

जेठ की दोपहरी में शीतल जिज्ञासा बन!
यह जीवन तो जलती हुई दोपहरी है। यहां सब जल रहा है, धू-धू कर जल रहा है।
यह जीवन तो चिताओं के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। और तुम भी जानते हो, और हरेक जानता है, क्योंकि सिवाय घावों के हाथ लगता क्या है?
जेठ की दोपहरी में शीतल जिज्ञासा बन!
उठाओ जिज्ञासा को। खोजें उसे जो कभी खोएगा नहीं। खोजें उसे जिसे पा लेने पर फिर सारी खोज समाप्त हो जाती है।
द्वंद्वों के मंथन में अमृत अभिलाषा बन।
कब तक उलझे रहोगे दुई में, द्वैत में? कब तक बंटे रहोगे द्वंद्व में? मध्य-युग में यूरोप में कैदियों को एक सजा दी जाती थी। सजा ऐसी थी कि कैदी को लिटा कर चार घोड़ों से उसके हाथ-पैर बांध दिए जाते थे। एक घोड़े से एक हाथ, दूसरे घोड़े से दूसरा हाथ। तीसरे घोड़े से पैर, चौथे घोड़े से दूसरा पैर। और चारों घोड़ों को चारों दिशाओं में दौड़ा दिया जाता था। टुकड़े-टुकड़े हो जाता था आदमी, खंड-खंड हो जाता था। सजा का नाम था क्वार्टरिंग। और ठीक ही था सजा का नाम, क्योंकि चार टुकड़े हो जाते थे, चौथाई हो जाता था आदमी। सजा का नाम था चौथाई।
लेकिन जिंदगी को अगर गौर से देखो तो ऐसी सजा तुम खुद अपने को दे रहे हो। तुमने कितनी वासनाओं के साथ अपने को जोड़ लिया! अलग-अलग दिशाओं में जाती वासनाएं--कोई पूरब, कोई पश्चिम, कोई दक्षिण, कोई उत्तर। चार घोड़े नहीं, हजार घोड़ों से तुम बंधे हो। खंड-खंड हुए जा रहे हो, टूटे जा रहे हो, बिखरे जा रहे हो। इसी बिखराव को तनाव कहो, चिंता कहो, बेचैनी कहो,

विक्षिप्तता कहो, जो भी तुम्हें कहना हो, मगर यह बिखराव है। और इस बिखराव में कभी तुम्हें विश्राम न मिलेगा। तुम तपोगे, कटोगे, सड़ोगे, मरोगे; जीओगे कभी भी नहीं।
जीवन का संबंध तो तब होता है, जब तुम्हारी सारी वासनाएं एक अभीप्सा में समाहित हो जाती हैं; जब तुम्हारी अलग-अलग दिशाओं में दौड़ती हुई कामनाएं एक जिज्ञासा में रूपांतरित हो जाती हैं; जब तुम और सब न मालूम क्या-क्या छोड़ कर, सिर्फ उस एक को खोजने के लिए आतुर, आबद्ध हो जाते हो, कटिबद्ध हो जाते हो, प्रतिबद्ध हो जाते हो। छोड़ो दो को, छोड़ो अनेक को--पकड़ो एक को, क्योंकि एक को पकड़ने में तुम भी एक हो जाओगे। अनेक को पकड़ोगे, तुम भी अनेक हो जाओगे। और एक होने का आनंद और एक होने की विश्रांति!
जेठ की दोपहरी में शीतल जिज्ञासा बन!
द्वंद्वों के मंथन में अमृत अभिलाषा बन।
क्या मरणधर्मा तुम्हारी खोज है! क्या उसे खोज रहे हो जो मृत्यु तुमसे छीन लेगी! अमृत को कब खोजोगे?
द्वंद्वों के मंथन में अमृत अभिलाषा बन।
पनघट के घट-घट में सागर को सीमित कर!
एक-एक घट में, एक-एक हृदय में पूरा आकाश उतर सकता है, ऐसी तुम्हारी गरिमा है, ऐसा तुम्हारा गौरव है। एक-एक बूंद सागर को अपने में समा सकती है, ऐसी तुम्हारी क्षमता है, ऐसी तुम्हारी संभावना है। लेकिन तुम आकाश की तरफ आंख ही नहीं उठाते। तुम जमीन में आंखों को गड़ाए, कंकड़-पत्थरों में, कूड़े- कर्कट में ही अपने जीवन को बिता देते हो। और भरोसा भी किन चीजों का कर रहे हो! तूफान आ रहा है बड़ा और पक्षी ने तिनकों से घोंसला बना लिया है और इस भरोसे में बैठा है कि सुरक्षा है। तूफान आ रहा है भयंकर और रेत में तुमने ताश के पत्तों का घर बना लिया है। और इस भरोसे में बैठे हो कि क्या चिंता है! मौत आएगी, तुम्हारे सब ताश के घर गिरा जाएगी। इसके पहले कि मौत आए, अमृत का थोड़ा स्वाद ले लो।
तिनकों का आलंबन आंधी की घातों पर,
कंपती सी आशाएं नश्वर संघातों पर।
मृत्यु की हथेली पर जीने की उत्कंठा,
धूप और छांहों की संघर्षी मातों पर।
मौत के हाथ में बैठे हो। कब मुट्ठी बंध जाएगी, कहा नहीं जा सकता। मौत
के हाथों में बैठे हो, फिर भी व्यर्थ में चिंता लगी है।
बौद्धों की एक प्रसिद्ध कथा है। एक राजकुमार युद्ध हार गया है और जंगल में शरण के लिए भाग गया है। दुश्मन पीछे लगे हैं। उनके घोड़ों की टाप का शोरगुल बढ़ता जाता है। और राजकुमार बड़ी मुश्किल में पड़ गया है। क्योंकि वह ऐसी जगह पहुंच गया है पहाड़ी की कगार पर, जहां रास्ता समाप्त हो जाता है। आगे भयंकर खड्ड है। पीछे दुश्मनों के आने की आवाज सघन होती जाती है। एक-एक घड़ी मौत करीब आ रही है। ऐसी ही दशा तुम्हारी है, जैसी उस राजकुमार की थी। फिर भी हिम्मत जुटाता है। आखिरी आशा बांधता है। सोचता है कि छलांग लगा दूं। क्योंकि दुश्मन के हाथ में पड़ा तो तत्क्षण गर्दन कट जाएगी। छलांग लगाना भी कम खतरनाक नहीं है, खड्ड भयंकर है, बचने की आशा नहीं है। लेकिन फिर भी दुश्मन के हाथ में पड़ने से तो ज्यादा आशा है; शायद हाथ-पैर टूट जाएंगे, लेकिन जीवन बचेगा। लंगड़ा हो जाऊंगा, लेकिन फिर भी जीवन बचेगा। और कौन जाने कभी-कभी चमत्कार भी हो जाता है कि गिरूं और बच जाऊं! न हाथ टूटें, न पैर टूटें।
तो नीचे झांक कर देखता है। और नीचे देखता है कि दो सिंह मुंह बाए ऊपर
की तरफ देख रहे हैं। अब तो कोई भरोसा न रहा। घोड़ों के टाप की आवाज और जोर से बढ़ने लगी। और सिंह नीचे गर्जन कर रहे हैं। उन्होंने भी राजकुमार को देख लिया है कि वह खड़ा है ऊपर। अगर गिर जाए तो प्रतीक्षा में रत हैं कि तत्क्षण चीर-फाड़ करके खा जाएंगे। कोई और रास्ता न देख कर राजकुमार एक वृक्ष की जड़ों को पकड़ कर लटक रहता है कि शायद दुश्मनों को दिखाई न पडूं। सोच कर कि रास्ता समाप्त हो गया है, वे वापस लौट जाएं। और वृक्ष की जड़ों में लटका हुआ सिंहों से भी बच जाऊंगा। अगर दुश्मन लौट गए तो एक आशा है कि मैं वापस लौट कर बच सकता हूं।

जब वह जड़ों को पकड़ कर लटक जाता है तब देखता है कि और भी मुसीबत है। एक सफेद और एक काला चूहा, जिस जड़ को वह पकड़ कर लटका है, उसे काट रहे हैं। दिन और रात के प्रतीक हैं सफेद और काला चूहा। अब तो बचने की कोई संभावना नहीं है। दुश्मनों की आवाज बढ़ती जाती है, सिंहों का गर्जन बढ़ता जाता है। और चूहे हैं कि जड़ काटे डाल रहे हैं, काटे डाल रहे हैं, अब कटी, तब कटी। ज्यादा देर नहीं है, जड़ कटती जा रही है। और तभी पास के एक मधुछत्ते से एक शहद की बूंद टपकती है। अपनी जीभ पर वह शहद की बूंद को ले लेता है। और उसका स्वाद बड़ा मधुर है। उस क्षण में भूल ही जाता है सब--दुश्मन के घोड़ों की टाप, सिंहों की गर्जना, वे सफेद और काले चूहे काटते हुए जड़--सब भूल जाता है। शहद बड़ा मीठा है।
बौद्ध कथा बड़ी प्यारी है। तुम्हारे संबंध में है। तुम्हीं हो वह राजकुमार। चारों तरफ से मौत घिरी है और शहद की एक बूंद का मजा ले रहे हो। और शहद की एक बूंद में सोचते हो कि सब मिल गया, अब तुम्हें मौत की चिंता नहीं है। जैसे अमृत मिल गया! तुम्हारे सुख क्या हैं? शहद की बूंदें हैं; जीभ पर थोड़ा सा स्वाद है। और मौत चारों तरफ से घिरी है।
तिनकों का आलंबन आंधी की घातों पर,
कंपती सी आशाएं नश्वर संघातों पर।
मृत्यु की हथेली पर जीने की उत्कंठा,
धूप और छांहों की संघर्षी मातों पर।
अधरों से आग पिए,
अंतर में नेह लिए,
जैसे तूफानों में बुझता सा दीप जले।
बड़े तूफान हैं और तुम एक छोटे दीये हो। तुम्हारा बुझना निश्चित है। बचने का कोई उपाय नहीं। न कभी कोई बचा है, न कभी कोई बच सकेगा।
लेकिन यह जो छोटा सा क्षण तुम्हारे हाथ में है, इसका सदुपयोग हो सकता है। यह क्षण सत्संग बन सकता है। यह क्षण तुम्हारे भीतर ज्योति का विस्फोट बन सकता है। यह क्षण तुम्हारे भीतर ध्यान बन सकता है। यह क्षण तुम्हारे भीतर साक्षी का भाव बन सकता है।
सोचो उस राजकुमार को फिर। काश मधु की बूंद में न उलझता! मौत को चारों तरफ घिरा देख कर शांत चित्त हो जाता। आखिरी इस क्षण में साक्षी हो जाता। आखिरी इस क्षण में जाग कर शुद्ध चैतन्य हो जाता। तो सारी मृत्यु व्यर्थ हो जाती, अमृत से नाता जुड़ जाता।
साक्षी में अमृत है। जागरण में अमृत है। अमी झरत, बिगसत कंवल! जैसे ही तुम साक्षी हो जाते हो, अमृत की वर्षा होने लगती है और तुम्हारे भीतर छिपा हुआ शाश्वत का कमल खिलने लगता है।
दरिया कहते हैंः
तज बिकार आकार तज, निराकार को ध्यान।
निराकार में पैठ कर, निराधार लौ लाए।।
कहते हैंः एक ही काम तुम कर लो तो सब हो जाए। व्यर्थ के विकारों में मत उलझे रहो। शहद की बूंदों में मत उलझे रहो--धोखा है। व्यर्थ के आकारों, आकृतियों में मत उलझे रहो--भ्रांतियां हैं, मृग-मरीचिकाएं हैं। एक निराकार का ध्यान करो।
निराकार का ध्यान कैसे हो? मुझसे आकर लोग पूछते हैंः आकार का तो ध्यान
हो सकता है, निराकार का ध्यान कैसे हो?
ठीक है उनका प्रश्न, सम्यक है। राम का ध्यान कर सकते हो--धनुर्धारी राम। कृष्ण का ध्यान कर सकते हो--बांसुरी वाले कृष्ण। कि क्राइस्ट का ध्यान कर सकते हो--सूली पर चढ़े। कि बुद्ध का, कि महावीर का। लेकिन निराकार का ध्यान?
तुम्हें थोड़ी ध्यान की प्रक्रिया समझनी होगी। जिसको तुम ध्यान कहते हो, वह ध्यान नहीं है, एकाग्रता है। एकाग्रता के लिए आकार जरूरी होता है। क्योंकि किसी पर एकाग्र होना होगा। कोई एक बिंदु चाहिए--राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर... । कोई प्रतिमा, कोई रूप, कोई आकार, कोई मंत्र, कोई शब्द, कोई आधार, कोई आलंबन चाहिए--तो तुम एकाग्र हो सकते हो।

एकाग्रता ध्यान नहीं है। ध्यान तो एकाग्रता से बड़ी उलटी बात है। हालांकि तुम्हारे ध्यान के संबंध में जो किताबें प्रचलित हैं, उन सबमें यही कहा गया है कि ध्यान एकाग्रता का नाम है। गलत है वह बात। गैर-अनुभवियों ने लिखी होगी। एकाग्रता तो चित्त को संकीर्ण करती है। एकाग्रता तो एक बिंदु पर अपने को ठहराने का प्रयास है। एकाग्रता विज्ञान में उपयोगी है। ध्यान बड़ी और बात है। ध्यान का अर्थ होता हैः शुद्ध जागरूकता। किसी चीज पर एकाग्र नहीं, सिर्फ जागे हुए--बस जागे हुए।
ऐसा समझो कि टार्च होती है। टार्च तो ध्यान नहीं है, एकाग्रता है। जब तुम टार्च जलाते हो तो प्रकाश एक जगह जाकर केंद्रित हो जाता है। लेकिन जब तुम दीया जलाते हो तो दीया जलाना ध्यान है। वह एक चीज पर जाकर एकाग्र नहीं होता; जो भी आस-पास होता है, सभी को प्रकाशित कर देता है। एकाग्रता में, अगर तुम टार्च लेकर चल रहे हो तो एक चीज तो दिखाई पड़ती है, शेष सब अंधेरे में होता है। अगर दीया तुम्हारे हाथ में है तो सब प्रकाशित होता है। और ध्यान तो ऐसा दीया है कि उसमें कोई तलहटी भी नहीं है कि दीया तले अंधेरा हो सके। ध्यान तो सिर्फ ज्योति ही ज्योति है, जागरण ही जागरण है--और बिन बाती बिन तेल! इसलिए दीया तले अंधेरा होने की भी संभावना नहीं है।
ध्यान शब्द को तुम समझो साक्षी-भाव। जैसे मुझे तुम सुन रहे हो, दो ढंग
से सुन सकते हो। जो नया-नया यहां आया है, वह एकाग्रता से सुनेगा। स्वभावतः, दूर से आया है, कष्ट उठा कर आया है, यात्रा की है। कोई शब्द चूक न जाए! तो सब तरफ से एकाग्र होकर सुनेगा। सब तरफ से चित्त को हटा लेगा। जो मैं कह रहा हूं, बस उसी पर टिक जाएगा। लेकिन जो यहां थोड़ी देर रुके हैं, जो थोड़ी देर यहां रंगे हैं, जो थोड़ी देर यहां की मस्ती में डूबे हैं, वे एकाग्रता से नहीं सुन रहे हैं, ध्यान से सुन रहे हैं।
भेद बड़ा है। एकाग्रता से सुनोगे, जल्दी थक जाओगे। तनाव होगा। एकाग्रता से सुनोगे तो यह पक्षियों का गीत सुनाई नहीं पड़ेगा। राह पर चलती हुई कारों की आवाज सुनाई नहीं पड़ेगी। एकाग्रता से सुनोगे तो और सब तरफ से चित्त बंद हो जाएगा, संकीर्ण हो जाएगा। ध्यान से सुनोगे तो मैं जो बोल रहा हूं वह भी सुनोगे; ये जो चिड़ियां टीवी-टुटटुट, टीवी-टुटटुट कर रही हैं, यह भी सुनोगे। राह से कार की आवाज आएगी, वह भी सुनोगे; ट्रेन गुजरेगी, वह भी सुनोगे; बस सिर्फ सुनोगे! जो भी है, उसके साक्षी रहोगे। और तब तनाव नहीं होगा, तब थकान भी नहीं होगी। तब ताजगी बढ़ेगी। तब चित्त निश्छल होगा, निर्दोष होगा, क्योंकि चित्त विराम में होगा।
निराकार पर ध्यान नहीं करना होता है। जब तुम ध्यान में होते हो तो निराकार होता है। आकार पर ध्यान करना एकाग्रता; और ध्यान करना निराकार से जुड़ जाना है।
निराकार में पैठ कर, निराधार लौ लाए।
सब आधार छूट जाते हैं वहां। निराधार हो जाता है व्यक्ति, निरालंब हो जाता है। बस मात्र होता है। शुद्ध होने की वह घड़ी, बस होने की वह घड़ी-- अपूर्व है। वहीं झरता है अमृत। अमी झरत, बिगसत कंवल!
प्रथम ध्यान अनुभौ करै, जासे उपजै ग्यान।
सूत्र बड़ा बहुमूल्य है। तुमने उलटी बातें सुनी हैं आज तक। तुमसे लोग कहते हैं कि पहले शास्त्र पढ़ो, ज्ञान इकट्ठा करो, फिर ध्यान हो पाएगा। पहले ध्यान के संबंध में जानो, फिर ध्यान को जान सकोगे। दरिया कुछ और कह रहे हैं। दरिया वही कह रहे हैं जो मैं तुमसे कहता हूं।
प्रथम ध्यान अनुभौ करै...
पहले ध्यान का अनुभव करना होगा।
... जासे उपजै ग्यान।
उससे ज्ञान का जन्म होगा।
तुम उलटा ही काम कर रहे हो। तुमने बैलों को बैलगाड़ी के पीछे बांध रखा है। इसीलिए कहीं नहीं पहुंच रहे हो, न कहीं पहुंच सकते हो। ज्ञान पहले और फिर सोचते हो ध्यान? नहीं, ध्यान पहले, फिर ज्ञान। सच तो यह है कि ध्यान के पीछे ज्ञान ऐसे ही आ जाता है जैसे तुम्हारे पीछे तुम्हारी छाया चली आती है। अगर मुझे तुम्हारी छाया को निमंत्रण देना हो तो तुम्हें निमंत्रण देना होगा। मैं तुम्हारी छाया को सीधा निमंत्रण नहीं दे सकता। मैं

तुम्हारी छाया को कितना ही कहूं कि आओ, स्वागत है, तो भी छाया के बस के बाहर है आना। हां, तुम आओगे तो छाया भी आ जाएगी।
ज्ञान ध्यान की छाया है। वेद से नहीं मिलता ध्यान, न मिलता ज्ञान। न कुरान से, न बाइबिल से। और जिसको तुम ज्ञान समझ कर इकट्ठा कर लेते हो--वेद, कुरान, बाइबिल, धम्मपद से--वह ज्ञान नहीं है, कोरा, थोथा पांडित्य है। तोतारटंत है। वह ज्ञान नहीं है, ज्ञान का धोखा है। असली फूल नहीं है, कागज का फूल है। असली ज्ञान तो ध्यान में से उमगता है। ध्यान ज्ञान का गर्भ है। वेद से तुमने जो सीख लिए वचन और कुरान की आयतें कंठस्थ कर लीं, वह तो ऐसे ही है जैसे किसी दूसरे के बच्चे को गोद ले लिया। तो गोदी तो भर गई, लेकिन झूठी ही भरी। बात कुछ और है, जब कोई मां नौ महीने बच्चे को गर्भ में ढोती है। नौ महीने की लंबी पीड़ा जरूरी भूमिका है, तो ही प्रेम उमगेगा। और जिसे नौ महीने पेट में ढोया है, उसके प्रति एक लगाव होगा, एक स्नेह होगा, एक अंतर्संबंध होगा।
और फिर यह भी ख्याल रहे, जब एक बच्चे का जन्म होता है तो सिर्फ एक बच्चे का ही जन्म नहीं होता, दो चीजों का जन्म होता है। एक तरफ बच्चा पैदा होता है, एक तरफ मां पैदा होती है। उसके पहले मां नहीं थी, उसके पहले सिर्फ एक स्त्री थी। इधर बच्चा पैदा हुआ, उधर मां पैदा हुई। बिना बच्चे के पैदा हुए स्त्री स्त्री रहेगी, मां न बनेगी। हां, बच्चा गोद लिया जा सकता है। लेकिन गोद लेने से मां पैदा नहीं होगी, मां का धोखा भला हो जाए।
और यही हो रहा है। मां तो लोग बनते ही नहीं। ध्यान का गर्भ तो निर्मित
ही नहीं करते और ज्ञान को गोद ले लेते हैं। और ज्ञान को गोद ले लेना सस्ता है। किताबें, शास्त्र आसान हैं पढ़ लेने। परमात्मा के संबंध में जान लेना बहुत आसान है; परमात्मा को जानने के लिए जीवन को दांव पर लगाना होता है। ठीक कहते हैं दरिया। मैं उनसे सौ प्रतिशत राजी हूं। यह अनुभवी का वचन है। अगर दरिया को अनुभव न होता, तो यह बात कह ही नहीं सकते थे वे। जब मैंने दरिया पर बोलना शुरू किया, सोचा कि दरिया पर बोलूं, तो ऐसे ही कुछ वचनों ने मुझे आकर्षित किया। क्योंकि ऐसे वचन केवल वे ही बोल सकते हैं जिन्होंने अनुभव किया हो!
प्रथम ध्यान अनुभौ करै...
पहले ध्यान।
... जासे उपजै ग्यान।
अगर उन्होंने कहा होता कि वेद से ज्ञान उपजता है, मैं कभी भूल कर उन पर
न बोलता। अगर उन्होंने कहा होता कि बाइबिल में ज्ञान है, मुझसे नाता ही टूट जाता। इस एक वचन ने मुझे जोड़ दिया। यह आदमी असली पारखी है, जौहरी है। इसने गोद नहीं लिया है ज्ञान, इसने ज्ञान को जन्म दिया है ध्यान के गर्भ से। इसने पीड़ा सही है नौ महीने की। इसने बच्चे को बड़ा किया है। इसकी आत्मप्रतीति है।
और जीवन में भी तुम जानते हो, जो अनुभव से संभव होता है, वह उधार अनुभव
से संभव नहीं होता। बच्चों को मां-बाप लाख समझाएं--ऐसा मत करो, वैसा मत करो--बच्चे मानते नहीं। और ठीक ही करते हैं बच्चे जो नहीं मानते हैं। क्योंकि मान लें तो नपुंसक रह जाएंगे सदा के लिए, थोथे रह जाएंगे। रीढ़ पैदा न होगी। अनुभव से ही मानते हैं। तुम कितना ही कहो बच्चे से कि मत जाओ दीये के पास, हाथ जल जाएगा; लेकिन जब तक एक बार उसका हाथ जले नहीं, जब तक उसे अनुभव न होगा। और तुम्हारी बात का कोई मूल्य नहीं है।
इसलिए हर बच्चा वही भूलें करता है जो सब बच्चों ने सदियों से की हैं। मां-बाप की सिखावन काम नहीं आती। और जिन बच्चों पर काम आ जाती है, वे बच्चे गोबरगणेश रह जाते हैं, ख्याल रखना, उनमें आत्मा पैदा नहीं होती। आत्मा तो अनुभव से पैदा होती है। जब बच्चे का हाथ जलता है, तब वह जानता है कि आग जलाती है।
मुल्ला नसरुद्दीन का एक मित्र उससे कह रहा था कि मुल्ला, क्या तुम मेरी पत्नी को जानते हो?
मुल्ला ने कहाः नहीं भैया! मैं अपनी पत्नी को जानता हूं, यही बहुत है। अनुभव अपना! बस अपना अनुभव ही जीवन को सम्यक आधार देता है; दूसरे का अनुभव आधार नहीं देता। दूसरे के अनुभव को तुम समझ ही नहीं सकते। दूसरे के

अनुभव और तुम्हारे बीच संबंध ही नहीं जुड़ता, सेतु नहीं बनता। उधार उधार ही रह जाता है। सूचनाएं सूचनाएं ही रह जाती हैं, ज्ञान नहीं बनतीं।
इस सूत्र को खूब हृदय में सम्हाल कर रखा लेना, क्योंकि जो इसके विपरीत
गए हैं, भटक गए हैं। और जिन्होंने इस सूत्र का अनुसरण किया है, पहुंच गए हैं। उनका पहुंचना निश्चित है।
प्रथम ध्यान अनुभौ करै, जासे उपजै ग्यान।
दरिया बहुतै करत हैं, कथनी में गुजरान।।
लेकिन बहुत से लोग हैं जो सुने-सुनाए में ही जी रहे हैं। कथनी में गुजरान कर रहे हैं! हो सकता है उन्होंने प्यारे वचन इकट्ठे किए हों, सुभाषित संगृहीत किए हों; वेद का शुद्ध-शुद्ध उन्हें ज्ञान हो; कुरान की आयत-आयत उन्हें कंठस्थ हो। मगर इससे भी कुछ न होगा।
मोहम्मद के तो ध्यान में कुरान उतरी थी। कुरान उतरी थी, पढ़ी नहीं गई
थी कुरान। मोहम्मद तो पढ़ना जानते भी नहीं थे। पहाड़ पर एकांत में ध्यान कर रहे थे। और तब अचानक जैसे कहीं अंतराकाश से कोई बोलने लगा। उदघोष हुआ। एक झरना फूटा और प्यारा झरना फूटा। कोई गुनगुनाने लगा प्राणों में। इसलिए कुरान में जैसा गीत है और कुरान में जैसा संगीत है, वैसा किसी दूसरे शास्त्र में नहीं है। कुरान की तरन्नुम किसको न नचा दे! किसके हृदय को न डांवाडोल कर दे! फिर कुरान के आधार पर जितनी भाषाएं दुनिया में पैदा हुईं, उनमें भी एक तरन्नुम है, एक लय है, कुरान की छाप है। लेकिन कुरान कोई पढ़ी नहीं थी मोहम्मद ने, उतरी थी। इलहाम हुआ था। जन्मी थी।
मोहम्मद क्या कर रहे थे? मोहम्मद चुपचाप बैठे थे। शून्य में थे, साक्षीभाव में थे। और जब भी तुम साक्षी हो जाओगे, कुरान उतरेगी। वही कुरान नहीं जो मोहम्मद पर उतरी, क्योंकि परमात्मा अपने को दोहराता नहीं है।
परमात्मा का कार्बनकापियों में भरोसा नहीं है, विश्वास नहीं है।
परमात्मा हमेशा नया गीत गाता है। परमात्मा हर दिन नई सुबह लाता है। परमात्मा हर बार नये हस्ताक्षर करता है।
जैसे कि तुम्हारे अंगूठे का चिह्न तुम्हारा ही चिह्न है, दुनिया में किसी दूसरे आदमी के अंगूठे का चिह्न तुम्हारा चिह्न नहीं है। चकित करने वाली बात है। चार अरब आदमी हैं दुनिया में, लेकिन तुम्हारे अंगूठे की प्रतिलिपि किसी दूसरे आदमी के अंगूठे की नहीं है। और ऐसा ही नहीं है कि तुम्हारे अंगूठे की जो छाप है वह जिंदा आदमियों में किसी की नहीं है। वैज्ञानिक कहते हैंः जितने लोग इस जमीन पर अब तक हुए हैं, उनमें से भी किसी की छाप वैसी नहीं थी। और जितने लोग आगे भी कभी पैदा होंगे, उनमें से भी किसी की छाप वैसी नहीं होगी। हर अंगूठे की छाप अनूठी है।
जब अंगूठे तक की छाप अनूठी है तो आत्मा की छाप की तो बात ही न करो! जब तुम्हारे ध्यान में उतरेगा कोई गीत तो न तो वह वेद होगा, न गीता होगी, न कुरान होगा। यद्यपि उसमें वही होगा जो कुरान में है, जो वेद में है, जो गीता में है। मगर गीत तुम्हारा होगा। गुनगुनाहट तुम्हारी होगी। लय तुम्हारी होगी। नाचोगे तुम। उसमें अनूठापन होगा। उसमें मौलिकता होगी। और यह अच्छा है, शुभ है। काश, वही-वही गीत बार-बार उतरता तो बड़ी ऊब पैदा होती। परमात्मा नित-नूतन है।
मुल्ला नसरुद्दीन एक ट्रेन में सफर कर रहा था। एक बड़े प्रसिद्ध कवि
भी साथ में सफर कर रहे थे। कवि थे तो ट्रेन में बैठे-बैठे भी कविताएं लिख रहे थे। मुल्ला ने उनसे पूछाः कोई किताब-पत्रिका वगैरह है आपके पास? खाली बैठा हूं, कुछ पढूं।
कवि जी ने फौरन पास में रखी एक किताब देते हुए कहाः यह पढ़िए, मेरी कविताओं का संकलन है।
मुल्ला नसरुद्दीन बोलाः धन्यवाद, उसे तो आप अपने पास रखिए। वैसे पढ़ने
के लिए तो मेरे पास टाइम-टेबल भी है।
एक तो आदमियों में हैं कवि, जो वही-वही दोहराए जाते हैं। इधर-उधर थोड़ा- बहुत भेद, फर्क, शब्दों का जमाव, तुकबंदी--बस तुकबंदी।
राजस्थान की पुरानी कहानी है। एक जाट सिर पर खाट लेकर जा रहा था। गांव
का कवि मिल गया, उसने कहाः जाट रे जाट, सिर पर तेरे खाट!

जाट भी कोई ऐसा रह जाए पीछे! जाट और पीछे रह जाए! उसने कहाः कवि रे कवि, तेरी ऐसी की तैसी!
कवि ने कहाः तुकबंदी नहीं बैठती, काफिया नहीं बैठता।
जाट ने कहाः काफिया बैठे कि न बैठे, जो मुझे कहना था सो मैंने कह दिया।
काफिया बिठा कौन रहा है? तू बिठाता रह काफिया!
एक तो तुकबंद हैं, जो जाट के साथ खाट का काफिया बिठा रहे हैं। परमात्मा कोई तुकबंद नहीं है। अनंत है परमात्मा। अनंत हैं उसकी अभिव्यक्तियां--हर बार नई।
जब भी तुम उधार ज्ञान इकट्ठा कर लेते हो तब तुम बासा ज्ञान इकट्ठा कर लेते हो। तुम्हारा परमात्मा पर भरोसा नहीं है, इसलिए तुम वेद पर भरोसा करते हो। तुम्हारा परमात्मा पर भरोसा नहीं है, इसलिए तुम कुरान को छाती से लगाए बैठे हो। काश, तुम्हारा परमात्मा पर भरोसा हो तो तुम कुरान भी छोड़ो, वेद भी छोड़ो, बाइबिल भी छोड़ो; तुम कहो परमात्मा से कि मैं राजी हूं, मुझ पर भी उतर! मेरे द्वार खुले हैं। मेरे भीतर भी आ। मुझमें भी गुनगुना। मेरा कसूर क्या है? मुझे भी छू। मेरी मिट्टी को भी सोना बना। मुझे भी सुगंध दे। आखिर मुझसे नाराजी क्या है?
जिसका परमात्मा पर भरोसा है, वही ध्यान कर सकता है। ध्यान का अर्थ भूल
मत जाना--जागरूकता, साक्षीभाव। और तुम कितना ही शास्त्र पढ़ो, तुम समझोगे वही जो तुम समझ सकते हो। अन्यथा हो भी कैसे सकता है? तुम वेद भी पढ़ोगे तो तुम वही थोड़े ही पढ़ लोगे जो वेद के ऋषि ने लिखा था। वेद के ऋषि ने जो लिखा है उसे समझने को, उस ऋचा को समझने को, उस ऋषि की बोध-दशा चाहिए पड़ेगी। बिना उस ऋषि की बोध-दशा के तुम कैसे समझोगे अर्थ?
अर्थ शब्दों में नहीं होता, अर्थ देखने वाले की आंखों में होता है। अर्थ शब्द में छिपा नहीं है कि तुमने शब्द को समझ लिया तो अर्थ समझ में आ जाएगा। शब्द तो केवल निमित्त है, खूंटी है। टांगना तो तुम्हें अपना ही कोट पड़ेगा। तुम जो टांगोगे, वही खूंटी पर टंग जाएगा। वेद को जब बुद्धू पढ़ेगा तो वेद भी उसके साथ बुद्धू हो जाते हैं।
मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन मुझसे कह रहा थाः कल रात मेरा पड़ोसी आधी रात
को मेरा दरवाजा पीटने लगा।
तो मैंने कहा कि मुल्ला, तब तो तुम बहुत परेशान हुए होओगे।
मुल्ला ने कहाः नहीं जी, मैं और परेशान होता! मैं तो अपना गाना पहले की तरह ही गाता रहा।
उसी गाने की वजह से वह पड़ोसी दरवाजा पीट रहा है कि भैया, बंद करो। मगर मुल्ला समझे तब! मुल्ला तो समझा कि है कैसा मूढ़, कि आधी रात और दरवाजा पीट रहा है! यह तो मुल्ला सोच भी नहीं सकता कि मेरे गाने की वजह से ही पीट रहा है।
मुल्ला ने सितार बजाना शुरू किया तो वह एक ही तार पर रें-रें, रें-रें, रें-रें करता रहता। पत्नी घबड़ा गई, पागल होने लगी। बच्चे घबड़ा गए, पड़ोसी घबड़ा गए। एक दिन सारे लोग इकट्ठे हो गए, हाथ जोड़ कर प्रार्थना की कि महाराज, बहुत संगीतज्ञ देखे! मगर रें-रें, रें-रें कितने दिन से तुम कर रहे हो, हम सब पगला रहे हैं! अब तो हमें दिन में भी, बाजार में, काम करते वक्त भी तुम्हारी रें-रें सुनाई पड़ने लगी है। जान बख्शो! अगर संगीत ही सीखना है तो कम से कम दूसरे तारों को भी तो छुओ।
मुल्ला ने कहाः तुम समझे नहीं। दूसरे संगीतज्ञ इसलिए दूसरे तारों को छूते हैं कि वे अपना स्थान खोज रहे हैं; मुझे मेरा स्थान मिल गया है। अब मुझे खोजने की जरूरत नहीं है। मैंने पा लिया, जो मुझे खोजना था वह मुझे मिल गया। मुझे मेरा स्वर मिल गया है।
तुम पढ़ोगे भी शास्त्रों में तो क्या पढ़ोगे?
मैंने सुना है, कुरान में कहीं एक वचन आता है कि शराब पीओ, वेश्यागामी बनो--और नरक में सड़ोगे। मुल्ला नसरुद्दीन शराब भी पीता, वेश्यागामी भी... और कुरान भी पढ़ता है।
तो मैंने पूछाः नसरुद्दीन, इस वचन पर तुम्हारी नजर नहीं गई?
उसने कहाः गई क्यों नहीं, कई बार गई। लेकिन अभी जितना मुझसे बन सकता
है उतना कर रहा हूं। अभी आधा ही वचन मुझसे पूरा होता है। सामर्थ्य! मुल्ला

ने कहाः सामर्थ्य अपनी-अपनी। बड़े पुरुष बड़ी बातें कह गए हैं। मगर जितना अपने से बने, उतना करो। साफ आज्ञा है। शराब पीओ, वेश्यागमन करो--साफ आज्ञा है। नरक में सड़ोगे--वह बाद की बात है, वह देखेंगे।
तुम समझोगे वही जो तुम समझ सकते हो। तुम अर्थ भी वे ही निकालोगे जो तुम्हीं को ही समर्थित कर जाएंगे।
नहीं; ध्यान के बिना ज्ञान नहीं हो सकता। ध्यान पहले तुम्हें ऋषि बनाएगा, तब ऋचाओं के अर्थ खुलेंगे। और मजा यह है कि जब तुम ऋषि हो जाओगे और वेदों की ऋचाओं के अर्थ तुम्हारे सामने खुलने लगेंगे--जैसे वसंत आ जाए और कलियां खिल जाएं--तब तुम्हें जरूरत ही न रहेगी वेदों में जाने की, क्योंकि तुम्हारा अपना वेद ही भीतर लहराने लगेगा। तब तुम स्वयं ही वेद हो जाओगे। तब तुम्हारा वचन-वचन वेद होगा। तब तुम्हारा शब्द-शब्द कुरान होगा। उसी की तलाश करो जिसे पा लेने से सारे शास्त्रों का सार मिल जाता है।
पंछी उड़ै गगन में, खोज मंडै नहिं माहिं।
दरिया जल में मीन गति, मारग दरसै नाहिं।।
अदभुत वचन दरिया दे रहे हैं। एक-एक सूत्र ऐसा है कि हीरे-जवाहरातों में भी तौलो तो भी तौले न जा सकें, अतुलनीय हैं।
पंछी उड़ै गगन में...
तुमने पक्षियों को आकाश में उड़ते देखा? उनके पैरों के चिह्न नहीं बनते हैं। ऐसे ही ऋषियों की गति है। उनके पैरों के चिह्न नहीं बनते। परमात्मा के आकाश में जो उड़ रहे हैं, उनके पैरों के चिह्न कहां बनेंगे? इसलिए तुम किसी के अनुगामी मत बनना। अनुगमन हो ही नहीं सकता। पद-चिह्न ही नहीं बनते।
पंछी उड़ै गगन में, खोज मंडै नहिं माहिं।
लेकिन आकाश में उसके कोई चिह्न नहीं पाए जाते। पंछी उड़ जाता है, निशान नहीं बनते। इसलिए कोई दूसरा पंछी अगर उसका अनुगमन करना चाहे तो कैसे करे? दरिया जल में मीन गति...
जैसे नदी में कि सागर में मछली चलती है।
... मारग दरसै नाहिं।
कोई मार्ग नहीं बनता उसके चलने से। कोई दूसरा उसके मार्ग का अनुसरण करना चाहे तो कैसे करे? परमात्मा के उस परम आकाश में भी, ध्यान के उस शून्याकाश में भी न कोई चिह्न बनते हैं, न कोई मार्ग।
पंछी उड़ै गगन में...
दरिया जल में मीन गति...
ऐसी ही गति है उस अंतराकाश की। वहां कोई चिह्न कभी नहीं बनते। इसलिए वहां अनुगमन नहीं हो सकता। तुम्हें अपना रास्ता स्वयं ही बनाना होगा। हिंदू होने से काम न चलेगा, मुसलमान होने से काम न चलेगा। ईसाई, जैन, बौद्ध होने से काम न चलेगा। क्योंकि इस बात का तो यह अर्थ हुआ कि मार्ग बना-बनाया है, सिर्फ तुम्हें चलना है। जैन होने का क्या अर्थ है? कि मार्ग तो बना गए तीर्थंकर, अब हमारा कुल काम इतना है कि चलना है। वे तो सुपर हाईवे तैयार कर गए। अब तुम्हें कुछ और करने को बचा नहीं है। नहीं; मार्ग बनता ही नहीं सत्य का। सत्य का कोई मार्ग नहीं बनता।
पंछी उड़ै गगन में...
याद रखना, महावीर और बुद्ध और कृष्ण और क्राइस्ट, ये सब आकाश में उड़ते पंछी हैं। तुम इनका पीछा नहीं कर सकते। ये कोई चिह्न छोड़ नहीं गए हैं। चिह्न तो पंडितों ने बना लिए हैं।
बुद्ध ने कहा था--मेरी कोई मूर्ति मत बनाना। और आज दुनिया में जितनी बुद्ध की मूर्तियां हैं उतनी किसी की भी नहीं। थोड़ा सोचो। कैसे अदभुत लोग हैं! बुद्ध जिंदगी भर कहते रहे--मेरी मूर्ति मत बनाना। हजार बार समझाया-- मेरी मूर्ति मत बनाना। क्योंकि मेरी पूजा से कुछ भी न होगा। जाओ भीतर, जाओ अपने भीतर। अप्प दीपो भव! अपने दीये खुद बनो!
लेकिन बुद्ध की इतनी मूर्तियां बनीं, इतनी मूर्तियां बनीं, जितनी किसी की भी कभी नहीं बनीं और शायद अब किसी की भी कभी नहीं बनेंगी! इतनी मूर्तियां बुद्ध की बनीं कि उर्दू में जो शब्द है बुत, वह बुद्ध का ही रूपांतर है। बुद्ध शब्द का अर्थ ही मूर्ति हो गया--बुत! इतनी मूर्तियां

बनीं कि बुद्ध में और मूर्ति शब्द में पर्यायवाची संबंध हो गया, कुछ भेद ही न रहा। मूर्ति यानी बुद्ध की।
चीन में मंदिर है एक--दस हजार बुद्धों का मंदिर। एक मंदिर में दस हजार मूर्तियां हैं। हुआ क्या? बुद्ध कहते रहे--मेरी मूर्ति मत बनाना। फिर लोगों ने मूर्ति क्यों बना ली?
लोग, जो पीछे आते हैं, उन्हें चिह्न चाहिए, उन्हें पद-चिह्न चाहिए, उन्हें मील के पत्थर चाहिए, उन्हें साफ-सुथरा रास्ता चाहिए। कोई इतनी झंझट नहीं लेना चाहता कि जंगल में अपनी पगडंडी खुद बनाए--चले और बनाए, चले और बनाए; जितना चले उतनी बने।
याद रखना, यह बात अति मौलिक, अति आधारभूत है। सत्य का कोई भी अनुसरण नहीं हो सकता। सत्य का अनुसंधान होता है। अनुकरण नहीं--अनुसंधान। किसी के पीछे चल कर तुम सत्य तक कभी न पहुंचोगे। अपने भीतर जाओगे तो सत्य तक पहुंचोगे। किसी के पीछे गए तो बाहर का ही अनुगमन रहा। अपने भीतर जाओगे, तब! बीहड़ है वहां। अंधकार है वहां। जंगल है, रास्ता साफ नहीं है। जाना कठिन है। लेकिन वह कठिनाई ही तो मूल्य है जो चुकाना पड़ता है।

कंपित, वंजुल तन, मंजुल मन, यौवन चंचल,
नौ-बंधन-कील-रहित तरणी, भव-सिंधु विकल।
गहो मीत, बांह सदय!

भ्रम मय चिंतन शोचन, भ्रमित ज्ञान, अथिर चरण
दुर्दम तम-तोम-जाल, अगम दुसह काल-क्षण,
आगत अनजान, दुखद, सुखद गत-स्मरण मरण। वर्तमान करो विजय!

जागें नव-स्तव, अहरह, रत नित चरणारविंद, मदमय संकेत-दान काटे दिक्-काल-बंध,
शरणागत आरत जन स्मितकांक्षा नित अमंद। करो, बंधु, करो अभय!

प्लावित घन-धाराधर, उच्छल जीवन-सागर, वात-वसन झीन अमित, क्षेपण-गति अति दुस्तर,
संशय-भय-दीन-द्विपद, केवट तट अंध-गहर।
करो सिंधु बिंदु विलय!

इस विराट सिंधु में अपने बिंदु को विलय करो।
करो, बंधु, करो अभय!
भय के कारण कुछ पकड़ो मत। भय छोड़ो।
मंदिर-मस्जिद को भय के कारण पकड़ा है तुमने। तुम्हारा भगवान तुम्हारे
भय की ही प्रतिमा है। तुम्हें भगवान का कोई पता नहीं, क्योंकि तुम्हें ध्यान का ही कुछ पता नहीं। एक तो भगवान है जो ध्यान में अवतरित होता है और एक भगवान है जो तुम्हारे भय के कारण तुम निर्मित कर लेते हो। जो तुमने मूर्तियां बना रखी हैं मंदिरों में, तुम्हारे भय के भगवान की हैं। तुमने ही गढ़ा है उन्हें। वे असली भगवान की नहीं हैं। असली भगवान तो वह है जिसने तुम्हें गढ़ा है। तुम भी खूब उसे चुका रहे हो! उऋण हो रहे हो! कि तूने हमें गढ़ा, कोई फिकर नहीं, हम तुझे गढ़ते हैं! तुम्हीं बना लेते हो अपनी मूर्तियां। तुम्हीं सजा लेते हो अपने थाल। तुम्हीं गढ़ लेते हो अपनी प्रार्थनाएं। किसे धोखा दे रहे हो? आत्मवंचना है यह।
करो, बंधु, करो अभय!
करो सिंधु बिंदु विलय!
डरो मत। भयभीत न होओ। धर्म का और भय से कोई संबंध नहीं है। धर्म का और भीरु से कोई नाता नहीं है। तुमने शब्द तो सुना होगा, सारी भाषाओं में इस तरह के शब्द हैं। हिंदी में शब्द है--धर्म-भीरु। धार्मिक आदमी को कहते

हैं--धर्म-भीरु। अंग्रेजी में भी ठीक वैसा शब्द है। धार्मिक आदमी को कहते हैं--गॉड-फियरिंग, ईश्वर से डरने वाला।
महात्मा गांधी ने लिखा हैः और किसी से मत डरो, मगर ईश्वर से जरूर डरना। और मैं तुमसे कहता हूंः और किसी से डरो तो डरो, ईश्वर से कभी मत डरना। क्योंकि ईश्वर से अगर डरे तो संबंध ही न हो सकेगा। उससे तो प्रेम करना। और प्रेम में कोई डरता है? प्रेम कहीं डरता है? प्रेम अभय है। प्रेम से जोड़ो नाता। भय से नाते जुड़ते नहीं। और जिससे तुम भयभीत होते हो, तुम्हारे मन में उसके प्रति विरोध होता है, प्रेम नहीं होता। तुलसीदास ने कहा हैः भय बिनु होय न प्रीति। और मैं तुमसे कहता हूं ठीक इससे उलटी बात। तुलसीदास कहते हैंः बिना भय के प्रीति नहीं होती। ये पता नहीं किस प्रीति की बात कर रहे हैं! कि किसी के सिर पर लट्ठ लेकर खड़े हो गए और उसको भयभीत कर दिया और वह कहने लगा कि मुझे आपसे बड़ा प्रेम है! यह प्रीति हुई? वह प्रतीक्षा करेगा किसी क्षण में जब बदला ले सके। वह तुम्हें मजा चखाएगा। वह राह देखेगा। भय बिनु होए न प्रीति?
मगर तुलसीदास कोरे पंडित हैं; दरिया जैसे नहीं, बस कोरे पंडित! इसलिए मुझसे बहुत बार लोग पूछते हैंः आप कबीर पर बोले, नानक पर बोले, फरीद पर बोले, दरिया पर बोल रहे हैं, मीरा पर बोले, इतने संतों पर बोले; तुलसीदास पर क्यों नहीं बोलते हैं?
तुलसीदास पर मैं नहीं बोलूंगा। तुलसीदास की वाणी में मुझे ध्यान नहीं दिखाई पड़ता, अनुभव नहीं दिखाई पड़ता। पंडित हैं। बड़े कवि हैं। मगर कवियों से क्या लेना-देना? मैं कालिदास पर थोड़े ही बोलूंगा, भवभूति पर थोड़े ही बोलूंगा, शेक्सपियर पर थोड़े ही बोलूंगा। कवियों से क्या लेना-देना? महाकवि हैं, और बड़े पंडित हैं, और शास्त्रों के बड़े ज्ञाता हैं; मगर इन सब बातों का मेरी दृष्टि में कोई मूल्य नहीं है। अनुभव की चूक मालूम होती है कहीं, कहीं भूल मालूम होती है।
कहते हैं कि जब तुलसीदास को कृष्ण के मंदिर में ले जाया गया--नाभादास
ने अपने संस्मरणों में लिखा है--तो तुलसीदास कृष्ण की मूर्ति के सामने झुके नहीं। जो ले गया था, उसने कहाः नमस्कार नहीं करिएगा? उन्होंने कहाः मैं तो सिर्फ धनुर्धारी राम के सामने झुकता हूं।
जिसे ध्यान हो गया हो, उसे धनुर्धारी राम और बांसुरी रखे कृष्ण में भेद मालूम पड़ेगा? जिसे ध्यान हो गया हो, उसे तो मंदिर और मस्जिद में भी भेद नहीं रह जाएगा। उसे तो महावीर, बुद्ध और मोहम्मद में भी भेद नहीं रह जाएगा।
मगर तुलसीदास को अभी कृष्ण और राम में भी भेद दिखाई पड़ रहा है--दोनों हिंदू हैं! लेकिन तुलसीदास ने कहा कि मेरा माथा तो तभी झुकेगा, जब धनुषबाण हाथ लोगे! मेरा माथा तो सिर्फ राम के सामने झुकता है!
परमात्मा पर भी शर्त लगाओगे? यह माथा झुकाना हुआ? यह तो परमात्मा को झुकवाना हुआ! यह तो साफ बात हो गई कि हों इरादे, अगर चाहते हो कि मैं झुकूं, तो पहले तुम झुको, लो धनुषबाण हाथ। यह तो बात साफ हो गई, यह तो सौदा हो गया। यह प्रार्थना न हुई। यह तो अपेक्षा हो गई कि मेरी अपेक्षा पहले पूरी करो तो फिर मैं झुकूंगा। पहले तुम मेरी अपेक्षा पूरी करो तो फिर मैं तुम्हारी अपेक्षा पूरी करूंगा।
नहीं; तुलसीदास दिखता है भय के कारण ही भक्त हैं। और भय से भक्ति पैदा नहीं होती। भक्ति तो प्रेम का परिष्कार है। भय के कारण ही तुम दूसरों के बनाए हुए रास्तों पर चलते हो। क्योंकि लगता है कि सुरक्षित हैं। बहुत लोग चल चुके हैं तो डर नहीं मालूम होता। अगर भीड़ गड्ढे में भी जा रही हो तो तुम आसानी से जा सकते हो। क्योंकि इतने लोग कुछ गलती थोड़े ही कर रहे होंगे। एक बार बर्नार्ड शॉ को किसी ईसाई पुरोहित ने कहा कि आप अपने को ईसाई नहीं मानते; करोड़ों लोग ईसाई हैं, क्या इतने लोग गलती कर सकते हैं? क्या इतने लोग गलत हो सकते हैं?
बर्नार्ड शॉ ने जो उत्तर दिया वह बहुत अदभुत है। खूब ध्यानपूर्वक सुनना। बर्नार्ड शॉ ने कहाः इतने लोग सही हो ही नहीं सकते। क्योंकि सत्य तो कभी किसी एकाध के जीवन में उतरता है। इतने लोग अगर सत्य हों तो सारी पृथ्वी सत्य से जगमग हो जाए। बर्नार्ड शॉ ने कहाः मैं तो इसीलिए ईसाई नहीं

हूं कि इतने लोग ईसाई हैं तो सब गड़बड़ होगा। नहीं तो इतने लोग ईसाई हो सकते थे?
जहां भीड़ चले, वहां सावधान हो जाना। भीड़-चाल भेड़-चाल है। और परमात्मा
की तलाश तो केवल वे ही कर पाते हैं जिनके पास सिंहों की आत्मा है--जो सिंहनाद कर सकते हैं।
अकेले चलने में डर लगता है। मगर ध्यान में तो अकेले ही चलना पड़ेगा। वहां पत्नी भी साथ नहीं हो सकती, मित्र भी साथ नहीं हो सकते।
यहां हम इतने लोग हैं। हम सब आंख बंद करके ध्यान में हो जाएं--तो सब अकेले हो जाओगे। सब पड़ोसी मिट जाएंगे। फिर यहां कोई न रहेगा। तुम अकेले बचोगे। और सब रहेंगे, वे भी अकेले-अकेले बचेंगे। ध्यानी अकेला हो जाता है। इसलिए लोग ध्यान से डरते हैं। ध्यानी को तो जंगल में घुस पड़ना पड़ता है-- बीहड़ जंगल में, जहां कोई पगडंडी भी नहीं! चलता है झाड़ियों में से, कांटों में से, उतना ही रास्ता बनता है।
ठीक कहते हैं दरियाः
पंछी उड़ै गगन में, खोज मंडै नहिं माहिं।
दरिया जल में मीन गति, मारग दरसै नाहिं।।
मन बुधि चित पहुंचै नहीं, सब्द सकै नहिं जाए।
दरिया धन वे साधवा, जहां रहे लौ लाए।।
वहां शब्द की तो कोई गति ही नहीं, तो शास्त्र कैसे तुम्हें समझाएंगे? वहां मन-बुद्धि-चित्त भी नहीं पहुंचते। तो सोचने-विचारने, अध्ययन करने, मनन करने से तुम वहां न पहुंचोगे।
दरिया धन वे साधवा...
दरिया कहते हैंः वे सरलचित्त लोग धन्य हैं, जो उस जगह पहुंच गए हैं-- जहां शब्द नहीं पहुंचता, मन नहीं पहुंचता, चित्त नहीं पहुंचता, बुद्धि नहीं पहुंचती, जहां शास्त्रों की कोई गति नहीं है; जहां विचार बहुत पीछे छूट जाते हैं। जो उस भावलोक में उतर गए हैं, वे धन्यभागी हैं।
किरकांटा किस काम का, पलट करे बहु रंग।
गिरगिट किसी काम का नहीं होता; बहुत रंग बदलता है। और यही हालत है दुनिया में। तुम एक रंग से थक जाते हो तो दूसरा रंग बदल लेते हो। संसारी संसार से थक जाता है, जंगल भाग जाता है। लेकिन वही का वही--चित्त वही, चिंतन वही, धारणाएं वही। जिस गीता को पकड़े बैठा संसार में था, उसी गीता को लेकर जंगल चला जाता है। समाज छोड़ देते हैं लोग...
एक मेरे मित्र जैन थे। समाज छोड़ दिया, घर छोड़ दिया, मुनि हो गए। मैंने उनसे पूछा कि अब तुम अपने को जैन मुनि क्यों कहते हो? जब जैनों का समाज ही छोड़ दिया, जब जैन घर छोड़ दिया, तो अब कैसे जैन?
लेकिन वह छोड़ना सब ऊपर-ऊपर है, भीतर सब वही का वही है--वही पकड़, वही धारणाएं, वही शास्त्र। असली बात ऐसे नहीं छूटती। यह तो गिरगिट का रंग बदलना है।
हिंदू ईसाई हो जाते हैं; थक गए हिंदू होने से। बहुत सिर मार लिया, चलो
अब ईसाई हो जाएं। ईसाई हिंदू हो जाते हैं। थक गए ईसाई होने से, चलो हिंदू हो जाएं। ऐसे लोग अपने रंग बदल लेते हैं। मगर रंग बदलने से कुछ भी नहीं होता, जब तक कि तुम्हारी आत्मा न बदले।
किरकांटा किस काम का, पलट करे बहु रंग।
जन दरिया हंसा भला, जद तद एकै रंग।।
हंस ही अच्छा है, दरिया कहते हैं, कि सदा एक रंग। एक शुभ्र सादगी, एक सरलता, एक निर्मलता।
ध्यान का रंग है शुभ्र, सादगी, निर्मलता, निर्दोषता। एक छोटे बच्चे की तरह निर्दोष चित्त ध्यान का रंग है। और जो ध्यान को उपलब्ध होता है, वही समर्थ होता है एक रहने में। जो ध्यान को उपलब्ध नहीं होता, उसे तो गिरगिट की तरह रंग बदलने ही पड़ते हैं।
तुम खुद भी जानते हो। अपने अनुभव से जानते हो। जरा में सज्जन मालूम होते हो, जरा में दुर्जन हो जाते हो। अभी-अभी बिल्कुल भले थे, अभी-अभी एकदम तलवार निकाल ली। अभी-अभी बिल्कुल प्रेमपूर्ण मालूम होते थे, जरा सी कुछ बात हो गई, आगबबूला हो गए। सुबह मंदिर जा रहे थे, ऐसे भगत जी मालूम होते थे।

और तुम्हें ही कोई दुकान पर बैठा देखे... तो लुटेरे हो जाते हो। तुम दिन में कितने रंग बदलते हो! यह गिरगिट होना छोड़ो। मगर यह तभी छूट सकता है जब तुम्हारे भीतर ध्यान का शुभ्र रंग फैल जाए।
दरिया बगला ऊजला, उज्जल ही होए हंस।
लेकिन ख्याल रखना, दरिया कहते हैं कि मैं कह रहा हूं कि सफेद रंग, सफेद रंग बगुलों का भी होता है।
बगुले बहुत प्राचीन समय से ही शुद्ध सफेद खादी पहनते हैं। गांधी बाबा
ने तो बहुत बाद में यह राज खोला। बगुलों को पहले से ही पता है, वे पहले से ही खादी पहनते हैं। और बगुले बड़े योगी होते हैं! देखा तुमने, एक टांग पर खड़े रहते हैं--बगुलासन, आसन लगाए रहते हैं! नहीं तो मछलियां फंसें भी नहीं। एक टांग पर बगुला खड़ा रहता है--मछलियों को धोखा देने को। क्योंकि दो टांगें अगर मछलियों को दिखाई पड़ें तो उनको शक हो जाए कि यह बगुला है। एक टांग का कहीं कोई होता है? एक टांग का कहीं कोई हो सकता है? एक टांग का कोई होता ही नहीं। तो मछलियां निश्चिंत रहती हैं कि होगी, लकड़ी गड़ी होगी, कि कोई पौधा उगा होगा। मगर कोई बगुला, तो उसकी दो टांग होनी चाहिए। तो बेचारा बगुला सदियों से योग साध रहा है; एक टांग पर खड़ा रहता है। योगशास्त्र में बगुलासन भी एक आसन है, जिसमें एक टांग पर खड़े रहना पड़ता है। और बिल्कुल हिलता-डुलता नहीं। क्योंकि जरा हिले-डुले तो पानी हिल-डुल जाए। पानी हिल-डुल जाए तो मछलियां शंकित हो जाएं। तो बगुला ऐसा खड़ा रहता है--बिल्कुल थिर, चित्त एकाग्र!
दरिया कहते हैं कि मैं सफेद रंग की बात कर रहा हूं, तुम कहीं भूल मत कर बैठना। क्योंकि हंस भी सफेद होते हैं, बगुले भी सफेद होते हैं।
दरिया बगला ऊजला, उज्जल ही होए हंस।
दोनों उजले हैं, मगर दोनों के उजलेपन में बड़ा फर्क है।
ये सरवर मोती चुगैं, वाके मुख में मंस।
एक तो मानसरोवर में मोती चुगता है और दूसरा केवल मछलियां पकड़ता है।
दूसरा केवल मांस के चीथड़ों के लिए लालायित रहता है। एक के मुंह में मांस है और एक के मुंह में मोती है। मोतियों से पहचान होगी--कौन बगुला है, कौन हंस है! जिस वाणी से मोती झरते हों, जिसके पास मोतियों की वर्षा होती हो, जहां से तुम भी अपनी झोली मोतियों से भर कर लौट आओ--बैठना वहां। लगाना प्राणों को वहां। जोड़ना अपनी आत्मा को वहां।
दरिया बगला ऊजला, उज्जल ही होए हंस।
ये सरवर मोती चुगैं, वाके मुख में मंस।।
बस में सफर कर रही एक महिला ने अपने सहयात्री मुल्ला नसरुद्दीन को कहा कि आप शायद कुछ कहना चाह रहे हैं!
मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा कि जी नहीं। मैं क्यों कुछ कहना चाहूंगा?
उस महिला ने कहाः तो फिर शायद आप जिसे अपना पैर समझ कर खुजला रहे हैं,
वह मेरा पैर है, यह बता देना जरूरी है।
मुल्ला गया था नुमाइश में। लखनऊ की नुमाइश। रंगीन लोग, रंगीन हवा। एक सुंदर सी महिला को मुल्ला धक्का-धुक्की करने लगा। मौका देख कर च्यूंटी इत्यादि भी ले ली। आखिर उस महिला से न रहा गया, उसने मुड़ कर मुल्ला की तरफ कहा कि शर्म नहीं आती! खादी के सफेद कपड़े पहने हो। गांधीवादी टोपी लगाए हो। शर्म नहीं आती!
मुल्ला ने कहाः जब दिल्ली में ही किसी को नहीं आती तो मुझे ही क्यों आए? कोई मैंने शर्म का ठेका लिया है?
महिला भी कुछ चुप रह जाने वाली नहीं थी। उसने कहाः छोड़ो खादी की बात। बाल भी सफेद हो गए। कुछ सफेद बालों की तो लाज रखो!
मुल्ला ने कहाः बाल कितने ही सफेद हो गए हों, दिल मेरा अब भी काला है।
अब बालों की सुनूं कि दिल की सुनूं, तू ही बता।
बगुला ऊपर-ऊपर सफेद है, दिल तो बहुत काला है। रंग बस ऊपर-ऊपर है। भीतर
तो बड़ा तमस है। और ख्याल रखना, बगुला हो जाना बहुत आसान है। कहते हैं न बगुला भगत!
जन दरिया हंसा तना, देख बड़ा ब्यौहार।
तन उज्जल मन ऊजला, उज्जल लेत अहार।।

इसलिए तन को ही देख कर मत उलझ जाना। बाहर-बाहर के व्यवहार को देख कर मत उलझ जाना। अंतर्तम में झांकना।
तन उज्जल मन ऊजला, उज्जल लेत अहार।
देखना व्यवहार। देखना आहार। देखना बाहर, देखना भीतर।
सत्संग का यही अर्थ है कि गुरु के पास सब रंगों में बैठ कर देखना, सब ढंगों में बैठ कर देखना। सब दिशाओं से गुरु से संबंध जोड़ना, ताकि उसकी अंतरात्मा की झलक तुम पर पड़ने लगे।
बाहर से उज्जल दसा, भीतर मैला अंग।
ता सेती कौवा भला, तन मन एकहि रंग।।
दरिया कहते हैंः बगुले से तो कौआ भला, कम से कम बाहर-भीतर एक ही रंग तो है। राजनेताओं से तो अपराधी भले, कम से कम बाहर-भीतर एक ही रंग तो है! तुम्हारे तथाकथित संतों से तो पापी भले, कम से कम बाहर-भीतर एक ही रंग तो है।
बाहर से उज्जल दसा, भीतर मैला अंग।
लेकिन सदियों-सदियों से तुम्हें पाखंड सिखाया गया है। तुम्हें यही सिखाया गया है--बाहर कुछ, भीतर कुछ। तुम्हें यही सिखाया गया है--भीतर जो करना हो करो, मगर बाहर एक सुंदर रूप-रेखा बनाए रखो। लोग अपने घरों में बैठकखाना सजा कर रखते हैं, बाकी उनका घर गंदा पड़ा रहता है। बस बैठकखाना सजा रहता है। ऐसी ही लोगों की जिंदगी है; उनका बैठकखाना सजा रहता है। चेहरे पर उनके मुस्कान रहती है। मुंह में राम, बगल में छुरी।
मुल्ला नसरुद्दीन मुझसे कह रहा था कि मैं डर के कारण हंसता हूं।
मैंने पूछाः यह भी कोई बात हुई! लोग आनंद के कारण हंसते हैं, डर के कारण? तुम कुछ नई ही बात ले आए! तुम क्या तुलसीदास जी के अनुयायी हो या क्या बात है? भय बिनु होए न प्रीति! तुम्हें डर से हंसी आती है? डर से लोग कंपते हैं, हंसोगे क्यों?
उसने कहा कि नहीं, आप समझे नहीं। आपको क्या मालूम! मेरी पत्नी जब भी कभी चुटकुले सुनाने लगती है तो उसके डर से मुझे हंसना ही पड़ता है। और वही चुटकुले वह कई दफे सुना चुकी है, मगर फिर भी मुझे हंसना पड़ता है।
एक पाखंड है, जिसमें हम दीक्षित किए जाते हैं। रास्ते पर कोई मिल जाता है, तुम कहते होः जयराम जी, सौभाग्य कि सुबह-सुबह आपके दर्शन हुए! शुभ घड़ी, शुभ मुहूर्त! और मन में कहते हो कि यह दुष्ट कहां से सुबह-सुबह दिखाई पड़ गया! अब पता नहीं दिन में क्या हालत होगी! कोई घर आता है तो कहते होः आओ, विराजो! स्वागत! पलक-पांवड़े बिछाते हो। और भीतर-भीतर कहते होः यह कमबख्त! इसको आज ही आने की सूझी!
मुल्ला नसरुद्दीन के घर एक दिन एक दंपति ने दस्तक दी। मुल्ला ने डरते- डरते आधा दरवाजा खोला। नंग-धड़ंग था। सिर्फ गांधी टोपी लगाए हुए था। स्त्री तो बहुत घबड़ा गई। लेकिन अब मेहमान आ ही गए हैं तो मुल्ला ने कहाः आइए-आइए, बड़ा स्वागत है! आइए!
डरते-डरते पति पहले घुसा, पीछे पत्नी भयभीत। पति ने पूछाः यह तुमने क्या ढंग बना रखा है? नंगे क्यों बैठे हो?
तो मुल्ला ने कहा कि इस समय मुझसे कोई मिलने आता ही नहीं। इसलिए मस्त, अपना घर अकेला, नंगा बैठा हुआ हूं।
तो पत्नी ने पूछाः फिर यह टोपी क्यों लगाई है?
तो मुल्ला ने कहाः कभी कोई भूल-चूक से शायद आ ही जाए।
लोग दोहरे इंतजाम किए हुए हैं। एक उनकी जिंदगी है जिसे वे अंधेरे में जीते हैं और एक जिंदगी है जिसे वे उजाले में दिखाते हैं।
दरिया कहते हैंः इससे तो कौआ भला।
ता सेती कौवा भला, तन मन एकहि रंग।
काला ही सही, मगर कम से कम तन और मन तो एक है!
बुरे भी होओ तो इतना बुरा नहीं है, अगर तुम निष्कपट हो और जैसे हो वैसा
ही अपने को प्रकट करते हो। पाखंडी पापी से भी बदतर है।
लेकिन पाखंडियों की पूजा होती है, पापियों को सजा मिलती है। पाखंडी सिर पर बैठे हैं। इसलिए जिनको भी सिर पर बैठना है, वे पाखंड को अंगीकार कर लेते हैं।

मैं तुमसे कहना चाहता हूं, स्मरण रखनाः पाखंड इस जगत में सबसे बड़ी दुर्गति है। उससे और ज्यादा नीचे गिरने का कोई उपाय नहीं है। अगर हंस हो सको तो अच्छा--बाहर-भीतर एक शुभ्र रंग। अगर हंस न हो सको तो कम से कम कौआ बेहतर--बाहर-भीतर एक रंग। कम से कम एक बात में तो हंस जैसा है; यद्यपि रंग काला है, मगर बाहर-भीतर की एकता तो है। मगर बगुला भगत मत होना। वह सबसे बदतर अवस्था है।
मानसरोवर बासिया, छीलर रहै उदास।
जन दरिया भज राम को, जब लग पिंजर सांस।।
वह जो मानसरोवर का अनुभव कर लिया है हंस, अब उसे छिछले, गंदे तालाब में अच्छा नहीं लगता। इस बात को ख्याल में लो।
मैं तुमसे कहता हूंः संसार मत छोड़ो, लेकिन ध्यान में डूबो। एक दफा ध्यान का स्वाद आएगा कि बस संसार गंदा तालाब हो जाएगा। हो ही जाएगा; छोड़ना न पड़ेगा, भागना न पड़ेगा। अपने को मनाना न पड़ेगा। त्यागना न पड़ेगा। अपने आप छिछला, गंदा तालाब हो जाएगा। मानसरोवर की जिसे झलक भी मिल गई; उस स्फटिक मणि जैसे स्वच्छ जल की जिसे झलक भी मिल गई; या एक घूंट जिसने पी ली--उसके लिए यह सारा संसार अपने आप व्यर्थ हो जाता है। इसलिए मैं छोड़ने को नहीं कहता; हां, छूट जाए तो बात और। छूट जाए तो गरिमा और, गौरव और। छोड़ना मत। छोड़ने से सिर्फ अहंकार बढ़ेगा और पाखंड बढ़ेगा।
संसार में रहते-रहते ही यह तुम्हें साफ होने लगे कि भीतर एक मानसरोवर है, तो तुम भीतर डुबकी मारोगे, भीतर पीओगे, भीतर नहाओगे। और बाहर ठीक है, कीचड़ है सो है। बाहर की कीचड़ तुम्हारा क्या बिगाड़ लेगी? बाहर की कीचड़ बहुत से बहुत तुम्हारी देह को ही छू सकती है। और तुम्हारी देह भी कीचड़ से बनी है। सो कीचड़ से कीचड़ का क्या बिगड़ेगा?
मानसरोवर बासिया...
जिसको ध्यान में बसना आ गया।
... छीलर रहै उदास।
वह अपने आप छिछले सागर, छिछले सरोवर, छिछले तालाबों के प्रति उदास हो जाता है। ध्यान रखना, उसके लिए हमारे गहरे से गहरे सागर भी छिछले हो जाते हैं, जिसने भीतर का सागर देख लिया।
जन दरिया भज राम को, जब लग पिंजर सांस।
फिर तो एक ही बात रह जाती है करने योग्य कि जब तक पिंजड़े में सांस चलती है, श्वास-श्वास में प्रभु का स्मरण चलता है। रहता है संसार में, रहता है बाजार में, मगर बसता है मानसरोवर में। बसता है परमात्मा में, राम में।
दरिया सोता सकल जग, जागत नाहिं कोए।
जागे में फिर जागना, जागा कहिए सोए।।
छोटे से सूत्र में साक्षी का पूरा शास्त्र कह दिया!
दरिया सोता सकल जग...
यहां तो सारा संसार सोया हुआ है। तुम जो भी कर रहे हो, नींद में कर रहे हो। यहां कोई जागा हुआ नहीं है।
एक दाढ़ी वाले साहब बस में खड़े-खड़े सफर कर रहे थे। एक स्टॉप पर एक बहुत
ही ठिगने कद का व्यक्ति उसमें सवार हुआ। उसका हाथ डंडे तक नहीं पहुंच रहा था। इसलिए वह उन दाढ़ी वाले साहब की दाढ़ी पकड़ कर खड़ा हो गया। कुछ देर तक तो दाढ़ी वाले साहब चुप रहे, लेकिन वे फिर उससे बोलेः मेरी दाढ़ी छोड़!
उस ठिगने आदमी ने कहाः क्यों? क्या आप अगले स्टॉप पर उतरने वाले हैं? अपनी-अपनी सूझ। अपनी-अपनी ऊंचाई। अपनी-अपनी तंद्रा। अपनी-अपनी बुद्धिहीनता। और हम चले जा रहे हैं। और हम किए जा रहे हैं, जो भी हमसे बनता है।
एक कवि महोदय माइक छोड़ने का नाम नहीं ले रहे थे। जब श्रोताओं ने बहुत चिल्ल-पों मचाई तो कवि महोदय बोलेः ठीक है, अब आप थोड़ी देर और सब्र करके मेरी अंतिम पंद्रहवीं कविता सुन लें।
ऐसा बार-बार कह कर तो आप उन्नीस कविताएं पहले ही सुना चुके हैं--कई श्रोताओं ने चिल्ला कर टोका।

कवि महोदय ने शांत मुद्रा में श्रोताओं की ओर देखा और बोलेः गिनती में भूल-सुधार के लिए धन्यवाद। और यह कह कर वे पुनः कविता-पाठ करने में तल्लीन हो गए।
लोग बस चले जा रहे हैं। कहां जा रहे हैं, क्यों जा रहे हैं, क्या कर रहे हैं, जो कर रहे हैं उससे कुछ हो रहा है कि नहीं हो रहा है--किसी को चिंता नहीं है। होश ही नहीं है। जिंदगी ऐसे धक्कमधुक्की में बीती जाती है, आपाधापी में बीती जाती है।
दरिया सोता सकल जग, जागत नाहिं कोए।
जागे में फिर जागना...
इसको जागना नहीं कहते, जिसको तुम जागना कहते हो। यह जो रात नींद टूट जाती है और सुबह उठ गए और कहा कि जाग गए, इसको जागना नहीं कहते। जागने वाले इसको जागना नहीं कहते। जागने वाले किसको जागना कहते हैं?
जागे में फिर जागना...
इस जागने में भी जो जाग जाए। नींद टूट गई, वह तो देह की थी। आत्मा की नींद जब टूट जाए। रात सपने देखते हो, दिन विचार करते हो। दोनों हालत में तंद्रा घिरी रहती है। अगर विचार छूट जाएं, अगर विचारों का सिलसिला बंद हो जाए--तो जागना, तो साक्षी, तो ध्यान। निर्विचार चित्त--जागने का अर्थ है। जागे में फिर जागना, जागा कहिए सोए।
जो समाधि को उपलब्ध है, वही जागा हुआ है। इसलिए हमने समाधिस्थ लोगों
को बुद्ध कहा है। बुद्ध का अर्थ होता हैः जागा हुआ।
बुद्ध से किसी ने पूछाः तुम कौन हो? क्योंकि बुद्ध इतने सुंदर थे! देह
तो उनकी सुंदर थी ही, लेकिन ध्यान ने और अमृत की वर्षा कर दी थी--अमी झरत, बिगसत कंवल! ध्यान ने उन्हें और नई आभा दे दी थी। एक अपूर्व सौंदर्य उन्हें घेरे था। एक अपरिचित आदमी ने उन्हें देखा और पूछाः तुम कौन हो? क्या स्वर्ग से उतरे कोई देवता?
बुद्ध ने कहाः नहीं।
तो क्या इंद्र के दरबार से उतरे हुए गंधर्व?
बुद्ध ने कहाः नहीं।
तो क्या कोई यक्ष?
बुद्ध ने कहाः नहीं।
ऐसे वह आदमी पूछता गया, पूछता गया--क्या कोई चक्रवर्ती सम्राट? बुद्ध ने कहाः नहीं।
तो उस आदमी ने पूछाः कम से कम आदमी तो हो!
बुद्ध ने कहाः नहीं।
तो क्या पशु-पक्षी हो?
बुद्ध ने कहाः नहीं।
तो उसने फिर पूछा थक कर कि फिर तुम हो कौन, तुम्हीं कहो!
तो बुद्ध ने कहाः मैं सिर्फ एक जागरण हूं। मैं बस जागा हुआ, एक साक्षीमात्र। वे तो सब नींद की दशाएं थीं। कोई पक्षी की तरह सोया है, कोई पशु की तरह सोया है। कोई मनुष्य की तरह सोया है, कोई देवता की तरह सोया है।
वे तो सब सुषुप्ति की दशाएं थीं। कोई स्वप्न देख रहा है गंधर्व होने का, कोई यक्ष होने का, कोई चक्रवर्ती होने का। वे सब तो स्वप्न की दशाएं थीं।
वे तो विचार के ही साथ तादात्म्य की दशाएं थीं। मैं सिर्फ जाग गया हूं।
मैं इतना ही कह सकता हूं कि मैं जागा हुआ हूं। मैं सब जाग कर देख रहा हूं।
मैं जागरण हूं--मात्र जागरण हूं!
ऐसे को हम जागा हुआ कहते हैं।
साध जगावै जीव को, मत कोई उट्ठे जाग।
सदगुरु जगाते हैं, लेकिन कुछ थोड़े से ही लोग जगते हैं। कौन लोग? जो मत्त हैं, अलमस्त हैं। कुछ थोड़े से मस्त। कल मैंने जो तुमसे कहा न--यहां बुद्धिमानों के लिए आमंत्रण नहीं है, यहां मस्तों के लिए आमंत्रण है! यहां दीवानों के लिए बुलावा है। बुद्धिमानी तो कचरा है। इसलिए इस आश्रम का नियम है कि जहां जूते उतारते हो, वहीं बुद्धिमानी भी उतार कर रख आया करो। यहां तो आओ पियक्कड़ की तरह।
दरिया कहते हैंः साध जगावै जीव को, मत कोई उट्ठे जाग।

कोई मतवाला, कोई दीवाना जागता है। चतुर, होशियार चूक जाते हैं। अपनी चतुराई में चूक जाते हैं। सोच ही विचार में चूक जाते हैं--जागना कि नहीं जागना? जागने से फायदा क्या है? और फिर इतने-इतने मीठे स्वप्न चल रहे हैं, कहीं टूट गए जागने से! जो हाथ में है वह भी छोड़ देना, उसके लिए जो अभी हाथ में नहीं है। समझदार तो कहते हैंः हाथ की आधी रोटी भली, दूर की पूरी रोटी के बजाय। पता नहीं आधी भी छूट जाए और पूरी भी न मिले! यह तो कोई मस्त, यह तो कोई दीवाने, यह तो कोई जुआरी, यह तो कोई दुस्साहसियों का काम है।
साध जगावै जीव को, मत कोई उट्ठे जाग।
जागे फिर सोवै नहीं, जन दरिया बड़ भाग।।
और जो एक दफा जाग गया, फिर सोता नहीं--सो ही नहीं सकता। वह बड़भागी है!
हीरा लेकर जौहरी, गया गंवारै देस।
लेकिन अधिकतर तो हालत ऐसी है कि सदगुरु आते हैं, बहुत कम लोग पहचान पाते हैं। उनकी हालत वैसी है जैसे--
हीरा लेकर जौहरी, गया गंवारै देस।
गंवारों के देश में कोई जौहरी हीरा लेकर गया।
देखा जिन कंकर कहा, भीतर परख न लेस।
परख ही न थी, तो जिन्होंने भी देखा, कंकड़ कहा। हंसे होंगे। जौहरी ने दाम मांगे होंगे, तो कहा होगाः पागल हो गए हो? हमें तुमने बुद्धू समझा है? इस कंकड़ को हम खरीदेंगे? ऐसे कंकड़ तो यहां गांव में जगह-जगह पड़े हैं। कहीं और जाओ। किन्हीं बुद्धुओं को फंसाओ। इतने हम पागल नहीं हैं!
हीरा लेकर जौहरी, गया गंवारै देस।
देखा जिन कंकर कहा, भीतर परख न लेस।।
दरिया हीरा क्रोड़ का...
हीरा तो करोड़ का!
दरिया हीरा क्रोड़ का, कीमत लखै न कोए।
जबर मिलै कोई जौहरी, तब ही पारख होए।।
वे थोड़े से दीवाने, जिनकी आंखों में मस्ती का रंग छा गया है, वे ही पहचान पाएंगे, हीरे को परख पाएंगे।
जीसस को कितने थोड़े लोगों ने पहचाना! हीरा आया और गया! बुद्ध को कितने थोड़े लोगों ने संग-साथ दिया! हीरा आया और गया! हीरे आते रहे, जाते रहे; थोड़े से दीवाने पहचानते हैं। लेकिन जो पहचान लेते हैं, वे मुक्त हो जाते हैं।
वे बड़भागी हैं।
तुम भी बड़भागी बनो!
आज इतना ही।

अमी झरत, बिगसत कंवल
छठवां प्रवचन

अपने मांझी बनो

पहला प्रश्नः उपनिषद कहते हैं कि सत्य को खोजना खड्ग की धार पर चलने जैसा है। संत दरिया कहते हैं कि परमात्मा की खोज में पहले जलना ही जलना है। और आप कहते हैं कि गाते-नाचते हुए प्रभु के मंदिर की ओर जाओ। इनमें कौन सा दृष्टिकोण सम्यक है?

आनंद मैत्रेय! सत्य के बहुत पहलू हैं। और सत्य के सभी पहलू एक ही साथ सत्य होते हैं। उनमें चुनाव का सवाल नहीं है। जिसने जैसा देखा, उसने वैसा कहा।
उपनिषद की बात ठीक ही है, क्योंकि सत्य के मार्ग पर चलना जोखिम की बात है। बड़ी जोखिम! क्योंकि भीड़ असत्य में डूबी है। और तुम सत्य के मार्ग पर चलोगे तो भीड़ तुम्हारा विरोध करेगी। भीड़ तुम्हारे मार्ग में हजार तरह की बाधाएं खड़ी करेगी। भीड़ तुम पर हंसेगी, तुम्हें विक्षिप्त कहेगी। भीड़ में एक सुरक्षा है। सत्य के मार्ग पर चलने वाला व्यक्ति अकेला पड़ जाता है। भीड़ उससे नाते तोड़ लेती है, उससे संबंध विच्छिन्न कर लेती है। समाज उसे शत्रु मानता है। नहीं तो जीसस को लोग सूली देते? कि मंसूर की गर्दन काटते? वे तुम्हारे जैसे ही लोग थे जिन्होंने जीसस को सूली दी और जिन्होंने मंसूर की गर्दन काटी। अपने हाथों को गौर से देखोगे तो उनमें मंसूर के खून के दाग पाओगे। तुम्हारे जैसे ही लोग थे। कोई दुष्ट नहीं थे। भले ही लोग थे। मंदिर और मस्जिद जाने वाले लोग थे। पंडित-पुरोहित थे। सदाचारी, सच्चरित्र, संत थे। जिन्होंने जीसस को सूली दी, वे बड़े धार्मिक लोग थे। और जिन्होंने मंसूर को मारा उन्हें भी कोई अधार्मिक नहीं कह सकता।
लेकिन क्या कठिनाई आ गई?
जब भी आंख वाला आदमी अंधों के बीच में आता है तो अंधों को बड़ी अड़चन होती है। आंख वाले के कारण उन्हें यह भूलना मुश्किल हो जाता है कि हम अंधे हैं। अहंकार को चोट लगती है। छाती में घाव हो जाते हैं। न होता यह आंख वाला आदमी, न हम अंधे मालूम पड़ते। इसकी मौजूदगी अखरती है। यह मिट जाए तो हम फिर लीन हो जाएं अपने अंधेपन में और मानने लगें कि हम जानते हैं, हमें दिखाई पड़ता है।
जब जानने वाला कोई व्यक्ति पैदा होता है, तो जिन्होंने थोथे ज्ञान के अंबार लगा रखे हैं, उन्हें दिखाई पड़ने लगता है कि उनका ज्ञान थोथा है। उनका ज्ञान लाश है। उसमें सांसें नहीं चलतीं, हृदय नहीं धड़कता, लहू नहीं बहता। उन्हें दिखाई पड़ने लगता है कि उन्होंने फूल जो हैं, बाजार से खरीद लाए हैं, झूठे हैं, कागजी हैं, प्लास्टिक के हैं। असली गुलाब का फूल न हो तो अड़चन पैदा नहीं होती, क्योंकि तुलना पैदा नहीं होती।
बुद्धों का जन्म तुलना पैदा कर देता है।
तुम अंधेरे घर में रहते हो, तुम्हारा पड़ोसी भी अंधेरे घर में रहता है,
और पड़ोसियों के पड़ोसी भी अंधेरे घर में रहते हैं। तुम निश्चिंत हो गए हो। तुम्हें अंधेरे से कोई अड़चन नहीं है। तुमने मान लिया है कि अंधेरा ही जीवन का ढंग है, शैली है। जीवन ऐसा ही है, अंधेरा ही है। ऐसी तुम्हारी मान्यता हो गई।
फिर अचानक तुम्हारे पड़ोस में किसी ने अपने घर का दीया जला लिया। अब या
तो तुम भी दीया जलाओ तो राहत मिले; या उसका दीया बुझाओ तो राहत मिले। और दीया जलाना कठिन है, दीया बुझाना सरल है। और दीया जलाना कठिन इसलिए भी है कि कितने-कितने लोगों को दीये जलाने पड़ेंगे, तब राहत मिलेगी। और बुझाना सरल है, क्योंकि एक ही दीया बुझ जाए तो फिर अंधेरा स्वीकृत हो जाए। उपनिषद ठीक कहते हैं। सत्य के एक पहलू की तरफ इशारा है कि सत्य के मार्ग पर चलना तलवार की धार पर चलने जैसा है। और संत दरिया भी ठीक कहते हैं कि परमात्मा की खोज में जलना ही जलना है। विरह की अग्नि के बिना निखरोगे भी कैसे? जब तक विरह में जलोगे नहीं, तपोगे नहीं, राख न हो जाओगे विरह में--

तब तक तुम्हारे भीतर मिलन की संभावना पैदा ही नहीं होगी। विरह में जो मिट जाता है, वही मिलन के लिए हकदार होता है, पात्र होता है। मिटने में ही पात्रता है। और जलन कोई साधारण नहीं होगी; रोआं-रोआं जलेगा; कण-कण जलेगा। क्योंकि समग्र होगी जलन, तभी समग्र से मिलन होगा। यह कसौटी है, यह परीक्षा है, और यह पवित्र होने की प्रक्रिया है। यही प्रार्थना है। यही भक्ति है। तो दरिया भी ठीक कहते हैं। यह दूसरा पहलू हुआ सत्य का। यह आंतरिक पहलू हुआ सत्य का। पहली बात थी, जो बाहर से पैदा होगी। दूसरी बात है, जो तुम्हारे भीतर पैदा होगी।
समाज तुम्हें सताएगा; उसे सहा जा सकता है। कौन चिंता करता उसकी? ज्यादा से ज्यादा देह ही छीनी जा सकती है। तो देह तो छिन ही जाएगी। अपमान किया जा सकता है। तो नाम ठहरता ही कहां है इस जगत में? पानी पर खींची गई लकीर है, मिट ही जाने वाला है। लोग पत्थर फेंकेंगे, गालियां देंगे। मगर ये सब साधारण बातें हैं। जिसके भीतर लगन लगी सत्य की, वह इन सबके लिए राजी हो जाएगा। यह कुछ भी नहीं है। यह कोई बड़ा मूल्य नहीं है।
भीतर की आग कहीं ज्यादा तड़पाएगी। धू-धू कर जलेगी। अपने ही प्राण अपने
ही हाथों जैसे हवन में रख दिए! हजार बार मन होगा कि हट जाओ! अभी भी हट जाओ! अभी भी देर नहीं हो गई है। अभी भी लौटा जा सकता है। हजार बार संदेह खड़े होंगे कि क्या पागलपन कर रहे हो? क्यों अपने को जला रहे हो? सारी दुनिया मस्त है और तुम जल रहे हो! सारे लोग शांति से सोए हैं और तुम जग रहे हो और तुम्हारी आंखों में नींद नहीं और तारे गिन रहे हो!
और एक दिन हो तो चल जाए। दिन बीतेंगे, माह बीतेंगे, वर्ष बीतेंगे। और कोई भी पक्का नहीं कि मिलन होगा भी! यही पक्का नहीं है कि परमात्मा है! पक्का तो उसी को हो सकता है जिसका मिलन हो गया। मिलन जिसका नहीं हुआ है, वह तो श्रद्धा से चल रहा है। होना चाहिए, ऐसी श्रद्धा से चल रहा है। होगा, ऐसी श्रद्धा से चल रहा है। झलकें दिखाई पड़ती हैं उसकी--सुबह उगते सूरज में, रात तारों भरे आकाश में, लोगों की आंखों में--झलकें मिलती हैं उसकी। इतना विराट आयोजन है तो इसके पीछे छिपे हुए हाथ होंगे। और इतना संगीतबद्ध अस्तित्व है तो इसके पीछे कोई छिपा संगीतज्ञ होगा। ऐसी मधुर वीणा बज रही है तो अपने से नहीं बज रही होगी। यह संयोग ही नहीं हो सकता।
वैज्ञानिक कहते हैंः जगत संयोग है; पीछे कोई परमात्मा नहीं है। एक वैज्ञानिक ने इस पर विचार किया कि अगर जगत संयोग है तो इसके बनने की संभावना कैसी है, कितनी है? उसने जो हिसाब लगाया वह बहुत हैरानी का है। उसने हिसाब लगाया है, बीस अरब बंदर, बीस अरब वर्षों तक, बीस अरब टाइप राइटरों पर खटापट-खटापट करते रहें, तो संयोग है कि शेक्सपियर का एक गीत पैदा हो जाए। संयोग है। बीस अरब बंदर, बीस अरब वर्षों तक, बीस अरब टाइप राइटरों को ऐसे ही खटरपटर-खटरपटर करते रहें, तो कुछ तो होगा ही। लेकिन शेक्सपियर का एक गीत पैदा करने में इतनी बीस अरब वर्षों की प्रतीक्षा करनी होगी--शेक्सपियर का एक गीत पैदा करने में!
और यह अस्तित्व गीतों से भरा है। हजार-हजार कंठों से गीत प्रकट हो रहे हैं। हजारों शेक्सपियर पैदा हुए हैं, होते रहे हैं। और जरा तारों के इस विस्तार को, इसकी गतिमयता को, इसके छंद को तो देखो! इस अस्तित्व की सुव्यवस्था को तो देखो! इसके अनुशासन को तो देखो! जगह-जगह छाप है कि अराजकता नहीं है। कहीं गहरे में कोई संयोजन बिठाने वाला हृदय है। कहीं कोई चैतन्य सबको सम्हाले है, अन्यथा सब कभी का बिखर गया होता।
कौन जोड़े है इस अनंत को? इस विस्तार को कौन सम्हाले है?
तुम मरुस्थल में जाओ और तुम्हें एक घड़ी मिल जाए पड़ी हुई, तो क्या तुम कल्पना भी कर सकते हो कि यह संयोग से बन गई होगी? हजारों-हजारों साल में, लाखों-लाखों साल में, करोड़ों-करोड़ों साल में पदार्थ मिलता रहा, मिलता रहा, मिलता रहा, फिर एक घड़ी बन गया! और घड़ी कोई बड़ी बात है? लेकिन एक घड़ी भी अगर तुम्हें रेगिस्तान में पड़ी मिल जाए तो भी पक्का हो जाएगा कि कोई मनुष्य तुमसे पहले गुजरा है, कि तुमसे पहले कोई मनुष्य आया है। घड़ी सबूत है। घड़ी अपने आप नहीं बन सकती। घड़ी नहीं बन सकती तो यह इतना विराट अस्तित्व कैसे बन सकता है?

घड़ी नहीं बन सकती तो मनुष्य का यह सूक्ष्म मस्तिष्क कैसे बन सकता है? सिर्फ पदार्थ की उत्पत्ति, जैसा मार्क्स कहता है? मार्क्स की सुंदर कृतियां, कम्युनिस्ट मैनिफेस्टो नहीं बन सकता अकारण और न दास कैपिटल लिखी जा सकती है अकारण। संयोग मात्र नहीं है। पीछे कोई सधे हाथ हैं।
मगर यह श्रद्धा है। जब तक मिलन न हो जाए; जब तक परमात्मा से हृदय का आलिंगन न हो जाए; जब तक बूंद सागर में एक न हो जाए--तब तक यह श्रद्धा है। श्रद्धा सम्यक है, सार्थक है; मगर श्रद्धा श्रद्धा है, अनुभव नहीं है।
तो मिलन के पहले विरह की अग्नि तो होगी। और चूंकि मिलन की शर्त यही है
कि तुम मिटो तो परमात्मा हो जाए। जब तक तुम हो, परमात्मा नहीं है। और जब परमात्मा है, तब तुम नहीं हो।
कबीर कहते हैंः हेरत-हेरत हे सखी, रह्या कबीर हिराई।
चले थे खोजने, कबीर कहते हैं, और खोजते-खोजते खुद खो गए। और जब खुद खो जाते हैं, तभी खुदा मिलता है। जब तक खुदी है, तब तक खुदा नहीं है।
तो जलन तो बड़ी है। अपने ही हाथों से अपने को चिता पर चढ़ाने जैसी है। साधारण प्रेम की जलन तो तुमने जानी है! किसी से तुम्हारा प्रेम हो गया, तो मिलने की कैसी आतुरता होती है! चौबीस घड़ी सोते-जागते एक ही धुन सवार रहती है; एक ही स्वर भीतर बजता रहता है इकतारे की तरह--मिलना है, मिलना है! एक ही छवि आंखों में समाई रहती है। एक ही पुकार उठती रहती है। हजार कामों में उलझे रहो--बाजार में, दुकान में, घर में--मगर रह-रह कर कोई हूक उठती रहती है।
साधारण प्रेम में ऐसा होता है तो भक्ति की तो तुम थोड़ी कल्पना करो! करोड़ों-करोड़ों गुनी गहनता! और अंतर केवल मात्रा का ही नहीं है, गुण का भी है। क्योंकि यह प्रेम तो क्षणभंगुर है जो इतना सताता है। जिससे आज प्रेम है, हो सकता है कल समाप्त हो जाए। जिसकी आज याद भुलाए नहीं भूलती, कल बुलाए-बुलाए न आए, यह भी हो सकता है। आज जिसे चाहो तो नहीं भूल सकते, कल जिसे चाहो तो याद न कर पाओ, यह भी हो सकता है। यह तो क्षणभंगुर है, यह तो पानी का बबूला है। यह इतना जला देता है। यह पानी का बबूला ऐसे फफोले उठा देता है आत्मा में, तो जब शाश्वत से प्रेम जगता है तो स्वभावतः सारी आत्मा दग्ध होने लगती है।
संत दरिया ठीक कहते हैं। वह एक और पहलू हुआ सत्य का कि उसके मार्ग पर जलना ही जलना है। और चूंकि उपनिषद कहते हैं कि उसके मार्ग पर चलना खड्ग की धार पर चलना है और दरिया कहते हैं कि उसके मार्ग पर चलना अग्नि लगे जंगल से गुजरना है, इसीलिए मैं तुमसे कहता हूंः नाचते जाना, गाते जाना! नहीं तो रास्ता काट न पाओगे। जब तलवार पर ही चलना है तो मुस्कुरा कर चलना। मुस्कुराहट ढाल बन जाएगी। नाच सको तो तलवार की धार मर जाएगी। गीत गा सको तो आग भी शीतल हो जाएगी। चूंकि उपनिषद सही, चूंकि दरिया सही, इसलिए मैं सही। जाओ नाचते, गाते, गीत गुनगुनाते। यह तीसरा पहलू है।
जब उस परमात्मा से मिलने चले हैं तो उदास-उदास क्या? साधारण प्रेमी से मिलने जाते हो तो कैसे सज कर जाते हो! देखा किसी स्त्री को अपने प्रेमी से मिलने जाते वक्त? कितनी सजती है! कितनी संवरती है! कैसी अपने को आनंद-विभोर, मस्त-मगन करती है! कैसे उसके ओंठ प्रेम के वचन कहने को तड़फड़ाते हैं! कैसे उसका हृदय लबालब रस से भरा, उंडलने को आतुर! कैसे उसका रोआं-रोआं नाचता है! और तुम परमात्मा से मिलने जाओगे, और उदास-उदास?
उदास-उदास यह रास्ता तय नहीं हो सकता। रास्ता वैसे ही कठिन है; तुम्हारी उदासी और मुश्किल खड़ी कर देगी। रास्ता वैसे ही दुर्गम है। तुम उदास चले तो पहाड़ सिर पर लेकर चले। तलवार की धार पर चले और पहाड़ सिर पर लेकर चले, बचना मुश्किल हो जाएगा। जब तलवार की धार पर ही चलना है तो पैरों में घुंघरू बांधो!
मीरा ठीक कहती हैः पद घुंघरू बांध मीरा नाची रे!
जब तलवार पर ही चलना है तो पैर में घुंघरू तो बांध लो! मैं तुमसे कहता हूंः अगर तुम्हारे पैरों में घुंघरू हों तो तुमने तलवार को बोथला कर दिया। ओंठों पर गीत हों--मस्त, अलमस्त--जैसे आषाढ़ के पहले-पहले बादल घिरे हैं और मत्त मयूर नाचता है, ऐसे तुम नाचते चलो। तलवारें ही तब फूलों की भांति कोमल हो जाएंगी। कांटे फूल हो जाएंगे!

और तुमसे कहता हूंः उत्सव मनाते चलो। क्योंकि उत्सव ही तुम्हें चारों तरफ शीतलता से घेर लेगा। फिर कोई लपट तुम्हें जला न पाएगी। जंगल में लगी रहने दो आग, मगर तुम इतने शीतल होओगे कि आग तुम्हारे पास आकर शीतल हो जाएगी। अंगारे तुम्हारे पास आते-आते बुझ जाएंगे। लपटें तुम्हारे पास आते- आते फूलों के हार बन जाएंगी।
उपनिषद सही, दरिया सही, मैं भी सही। इनमें कुछ विरोधाभास नहीं है। परमात्मा के संबंध में हजारों वक्तव्य दिए जा सकते हैं, जो एक-दूसरे के विपरीत लगते हों। फिर भी उनमें विरोधाभास नहीं होगा। क्योंकि परमात्मा विराट है। सारे विरोधों को समाए है। सारे विरोधों को आत्मसात किए हुए है।
उसमें फूल भी हैं और कांटे भी हैं। उसमें रातें भी हैं और दिन भी हैं। उसमें खुला आकाश भी है, जब सूरज चमकता है; और बदलियों से घिरा आकाश भी है, जब सूरज बिल्कुल खो जाता है। परमात्मा में सब है, क्योंकि परमात्मा सब है। उपनिषद सिर्फ एक पहलू की बात कहते हैं, दरिया दूसरे पहलू की बात कहते हैं। उपनिषद और दरिया भिन्न-भिन्न बात नहीं कह रहे हैं। और उपनिषद में और दरिया में तो तुम थोड़ा संबंध भी जोड़ लोगे कि ठीक है, खड्ग की धार पर चलना कि जलना, इन दोनों में संबंध जुड़ता है। मैं तुमसे बहुत ही उलटी बात कह रहा हूं। मैं कहता हूंः नाचते हुए, गीत गाते हुए, उत्सव मनाते हुए... । प्रभु से मिलने चले हो,शृंगार करो। प्रभु से मिलने चले हो, बंदनवार बांधो। उस अतिथि को बुलाया, महाअतिथि को--द्वार पर स्वागत, स्वागतम का आयोजन करो। रांगोली सजाओ। इतने महाअतिथि को निमंत्रण दिया है तो घर में दीये जलाओ। दीवाली मनाओ! कि गुलाल उड़ाओ। कि होली और दीवाली साथ ही साथ हो। कि छेड़ो वाद्य, कि गीत उठने दो, कि संगीत जगने दो। उस बड़े मेहमान को तभी तुम अपने हृदय में समा पाओगे।
वह मेहमान जरूर आता है; बस तुम्हारे तैयार होने की जरूरत है। और बिना उत्सव के तुम तैयार न हो सकोगे। उत्सवरहित हृदय में परमात्मा का आगमन न कभी हुआ है, न हो सकता है। क्योंकि परमात्मा उत्सव है। रसो वै सः! वह रसरूप है। तुम भी रसरूप हो जाओ तो रस का रस से मिलन हो। समान का समान से मिलन होता है।

दूसरा प्रश्नः वो नगमा बुलबुले रंगी-नवा इक बार हो जाए।
कली की आंख खुल जाए, चमन बेदार हो जाए।।

निर्मल चैतन्य! वह गीत गाया ही जा रहा है। वह नगमा हजार-हजार कंठों से गूंज रहा है। अस्तित्व का कण-कण उसे ही दोहरा रहा है। उसका ही पाठ हो रहा है चारों दिशाओं में--अहर्निश।
और तुम कहते होः "वो नगमा बुलबुले रंगी-नवा इक बार हो जाए।"
वही है! बज रहा है! सब तारों पर वही सवार है। सब द्वारों पर वही खड़ा है। तुम कहते होः इक बार? वही बार-बार हो रहा है।
"कली की आंख खुल जाए, चमन बेदार हो जाए।"
कलियां खिल गई हैं, चमन बेदार है; तुम बेहोश हो। दोष कलियों को मत दो
और दोष चमन को भी मत देना। और यह सोच कर भी मत बैठे रहना कि वह गीत गाए तो मैं सुनने को राजी हूं। वह गीत गा ही रहा है। वह गीत है। वह बिना गाए रह ही नहीं सकता। कौन पक्षियों में गा रहा है? कौन फूलों में गा रहा है? कौन हवाओं में गा रहा है? अनंत-अनंत रूपों में उसी की अभिव्यक्ति है।
लेकिन अक्सर हम ऐसा सोचते हैं। निर्मल चैतन्य ही ऐसा सोचते हैं, ऐसा नहीं; अधिकतर लोग ऐसा ही सोचते हैं कि एक बार परमात्मा दिखाई पड़ जाए, एक बार उससे मिलन हो जाए! और रोज तुम उससे ही मिलते हो, मगर पहचानते नहीं! जिसमें भी आता है तुम्हारे द्वार, वही आता है। मगर प्रत्यभिज्ञा नहीं होती। उसके अतिरिक्त यहां कोई है ही नहीं।
तुम पूछते होः परमात्मा कहां है?
मैं पूछता हूंः परमात्मा कहां नहीं है?
लेकिन हम बहाने खोजते हैं। हम कहते हैंः गीत बजता, जरूर हम सुनते। यह नहीं सोचते कि हम बहरे हैं। क्योंकि अगर हम कहें कि हम बहरे हैं, तो फिर कुछ करना पड़े। जिम्मेवारी अपने पर आ जाए। कहते हैंः सूरज निकलता तो हम

दर्शन करते; झुक जाते सूर्य-नमस्कार में। यह नहीं कहते कि हम अंधे हैं, या कि हमने आंखें बंद कर रखी हैं। क्योंकि यह कहना कि हमने आंखें बंद कर रखी हैं, फिर दोष तो अपना ही हो जाएगा। और जब दोष अपना हो जाएगा तो बचने का उपाय कहां रह जाएगा?
सूरज नहीं निकला, इसलिए हम करें तो क्या करें? सितार नहीं बजी उसकी, तो
हम करें तो क्या करें? फूल नहीं खिले उसके, तो हम नाचें तो कैसे नाचें? बहाने मिल गए, सुंदर बहाने मिल गए। इनकी ओट में अपने को छिपाने का उपाय हो जाएगा! वह प्यारा हमारे द्वार पर दस्तक ही नहीं दिया तो हम कहें तो किसको कहें कि आओ? हम द्वार किसके लिए खोलें? दस्तक तो दे! हम ये पलक-पांवड़े किसके लिए बिछाएं? उसका कुछ पता तो चले, कम से कम पगध्वनि तो सुनाई पड़े! ये मनुष्य की तरकीबें हैं। ये तरकीबें हैं अपने को बचा लेने की। ये तरकीबें हैं कि हम जैसे हैं ठीक हैं। गलती है अगर कुछ तो उसकी है। कली की आंख खुलती, तो चमन तो बेदार होने को राजी था। कली की आंख नहीं खुलती, चमन बेदार कैसे हो?
और मैं तुमसे कहता हूंः हजारों-हजारों कलियों की आंखें खुली हैं। चमन बेदार है! तुम सोए हो, सिर्फ तुम सोए हो! जिम्मेवारी है तो सिर्फ तुम्हारी है। यह तीर तुम्हारे हृदय में चुभ जाए--कि जिम्मेवारी है तो सिर्फ मेरी है; मैंने आंखें बंद कर रखी हैं; मैंने कान वज्र-बधिर कर रखे हैं--तो क्रांति की शुरुआत हो गई। तो पहली किरण शुरू हुई। तो पहला कदम उठा। अब कुछ किया जा सकता है। अगर आंख मैंने बंद की हैं, तो कुछ कर सकता हूं मैं; मेरे हाथ में कुछ बात हो गई। आंख खोल सकता हूं!
जब हम दूसरे पर टाल देते हैं और जब हम अनंत पर टाल देते हैं, तो हम निश्चिंत होकर सो रहते हैं। और एक करवट ले लो, कंबल को और खींच लो, और थोड़ा सो जाओ। अभी सुबह नहीं हुई है; जब सुबह होगी तब उठेंगे।
और मैं तुमसे कहता हूंः सुबह ही सुबह है। हर घड़ी सुबह है! सूरज निकला है। परमात्मा तुम्हारे द्वार पर दस्तक दे रहा है। तुम सुनते नहीं। तुम सुन सको, इतने शांत नहीं। तुम्हारे भीतर बड़ा शोरगुल है। तुम्हारे भीतर बड़ा तूफान है, बड़ी आंधियां, बवंडर--विचारों के, वासनाओं के। तुम्हारी आंखें बंद हैं--पांडित्य से, शास्त्रों से, तथाकथित ज्ञान से। तुम्हारी आंखों पर इतनी किताबें हैं कि बेचारी आंखें खुलें भी तो कैसे खुलें? किसी की आंख वेद से बंद है, किसी की कुरान से, किसी की बाइबिल से। तुम इतना जानते हो, इसलिए जानने से वंचित हो। थोड़े अज्ञानी हो जाओ।
मैं तुमसे कहता हूंः थोड़े अज्ञानी हो जाओ। मैं अपने संन्यासियों को अज्ञानी होना सिखा रहा हूं। छीन रहा हूं ज्ञान उनका। क्योंकि ज्ञान ही धूल है दर्पण पर। और ज्ञान छिन जाए और दर्पण कोरा हो जाए--निर्दोष, जैसे छोटे बच्चे का मन, ऐसा निर्दोष--तो फिर देर नहीं होती, पल भर की देर नहीं होती। तत्क्षण उसकी पगध्वनि सुनाई पड़ने लगती है। तत्क्षण द्वार पर उसकी दस्तक सुनाई पड़ने लगती है। तत्क्षण सारा चमन बेदार मालूम होता है। मस्ती ही मस्ती! सब तरफ उसके गीत गूंजने लगते हैं। फिर तुम जहां भी हो, मंदिर है; और जहां भी हो, वहीं तीर्थ है।
आंख से धूल हटे... और धूल ज्ञान की है, मुश्किल यही है। क्योंकि तुम धूल
को धूल मानो तो हटा दो अभी। तुम धूल को समझ रहे हो कि सोना है, हीरे-जवाहरात हैं। सम्हाल कर रखे हो!
इस जगत में सबसे ज्यादा कठिन चीज छोड़ना ज्ञान है। धन लोग छोड़ देते हैं। धन बहुतों ने छोड़ दिया है। घर-द्वार छोड़ देते हैं। वह बहुत कठिन नहीं है। घर-द्वार छोड़ना बहुत सरल है, क्योंकि कौन घर-द्वार से ऊब नहीं गया है? सच तो यह है कि घर-द्वार में रहे आना बड़ी तपश्चर्या है। जो रहते हैं, उनको तपस्वी कहना चाहिए--हठयोगी! पिट रहे हैं, मगर रह रहे हैं। तुम उनको संसारी कहते हो और भगोड़ों को संन्यासी कहते हो! जो भाग गए कायर, उनको कहते हो संन्यासी। और बेचारे ये, जो सौ-सौ जूते खाएं, तमाशा घुस कर देखें! इनको तुम कहते हो कि संसारी। जूतों पर जूते पड़ रहे हैं, मगर उनके कान पर जूं नहीं रेंगती। डटे हैं! हठयोगी कहता हूं मैं इनको! इनकी जिद तो देखो! इनका संकल्प तो देखो! इनकी दृढ़ता तो देखो! इनकी छाती तो देखो! बड़े मजबूत हैं! इनको तुम पापी कहते हो?

संसार से भागना तो बिल्कुल आसान है। कौन नहीं भागना चाहता है? संसार में है क्या? तकलीफें ही तकलीफें हैं, जंजाल ही जंजाल हैं। दुखों पर दुख चले आते हैं। बदलियां घनी से घनी, काली से काली होती चली जाती हैं। अंग्रेजी में कहावत है कि हर काले बादल में एक रजत-रेखा होती है। एवरी क्लाउड हैज ए सिल्वर लाइन। अगर तुम संसार को देखो तो हालत बिल्कुल उलटी है। एवरी सिल्वर लाइन हैज ए क्लाउड। हर रजत-रेखा के पीछे चला आ रहा है एक बड़ा काला बादल, भयंकर बादल! वह रजत-रेखा तो चमक कर क्षण भर में खत्म हो जाती है। और फिर काला बादल छाती पर बैठ जाता है, जो पीछा नहीं छोड़ता। वह रजत-रेखा तो वैसे ही है जैसे कि मछुआ, मछलीमार कांटे में आटा लगा कर बंसी लटका कर बैठ जाता है तालाब के किनारे। कोई आटा खिलाने के लिए मछलियों के लिए नहीं लाया है। आटे में छिपा कांटा है। मछलियों को फांसने आया है; कोई मछलियों को भोजन कराने नहीं आया है।
एक झील पर मछली मारना मना था। बड़ा तख्ता लगा था कि मछली मारना मना है, सख्त मना है। और जो भी मछली मारेगा, उस पर अदालत में मुकदमा चलाया जाएगा। स्वभावतः उस झील में खूब मछलियां थीं। मुल्ला नसरुद्दीन मजे से मछलियां मारने बैठा था वहां। आ गया मालिक बंदूक लिए। उसने कहाः नसरुद्दीन, तख्ती पढ़ी?
नसरुद्दीन ने कहाः हां, पढ़ी।
फिर क्या कर रहे हो?
बंसी लटका कर बैठा था। कहाः कुछ नहीं, जरा मछलियों को तैरना सिखा रहा हूं।
कोई मछलियों को तैरना सिखाने की जरूरत है? कि मछलियों को आटा खिलाने
के लिए कोई उत्सुक है? आटा खुद नहीं मिल रहा है। लेकिन आटे के बिना मछली कांटे को लीलेगी नहीं। प्रयोजन कांटा है।
वह जो रजत-रेखा चमकती है बादल में, वह तो आटा है। पीछे चला आ रहा है काला बादल! आशाओं की तरह रजत-रेखा है। संसार में बस आशाएं हैं, उनकी पूर्ति तो कभी होती नहीं। बस आश्वासन। बस दूर से सब अच्छा लगता है।
एक महिला ने मुझसे कहा कि मेरी बड़ी मुसीबत है; मैं दूर से सुंदर मालूम पड़ती हूं। और बात सच थी। दूर से देखो तो बहुत फोटोजनिक, चित्र उतारने की तबीयत हो जाए। लेकिन उसकी तकलीफ यह है कि पास आओ तो बड़ी भद्दी हो जाती है। कुछ लोग होते हैं जो दूर से सुंदर दिखाई पड़ते हैं, पास आओ... । तो मैं क्या करूं?
तो मैंने कहाः तू एक काम कर, जितनी प्याज-लहसुन खा सके खा।
उसने कहाः प्याज-लहसुन! इससे मैं सुंदर हो जाऊंगी?
मैंने कहाः सुंदर तू नहीं हो जाएगी, मगर कोई तेरे पास नहीं आएगा। तू सुंदर दिखाई पड़ती रहेगी।
इस जगत में सब चीजें दूर से सुंदर दिखाई पड़ती हैं। पास आओ, सब विकृत होने लगता है। जैसे-जैसे पास आओ, सब सपने उखड़ने लगते हैं, सब आशाएं टूटने लगती हैं। जैसे-जैसे पास आओ, तथ्य उभरने लगते हैं। आटा खो जाता है और कांटा हाथ लगता है। लेकिन तब तक बहुत देर हो गई होती है। तब तक उलझ गए होते हो। फिर उलझाव से निकलना मुश्किल हो जाता है। जितनी निकलने की चेष्टा करते हो, उतना उलझाव बढ़ता चला जाता है। क्योंकि निकलने की चेष्टा में नये उलझाव खड़े करने पड़ते हैं।
तुमने देखा, कभी एक झूठ बोल कर देखा? एक झूठ बोलो, फिर दस झूठ बोलने पड़ते हैं। क्योंकि उस एक झूठ को बचाना है। और दस बोले तो हजार बोलने पड़ेंगे, क्योंकि उनको बचाना है। एक झूठ बोल कर जो फंसे, तो शायद जिंदगी भर झूठ बोलने पड़ें। सत्य की यही खूबी है कि एक बोला कि उसके पीछे कोई सिलसिला नहीं। तुम ऐसा समझो कि सत्य बांझ है, उसके बाल-बच्चे नहीं होते। सत्य संतति-नियमन को मानता है। झूठ पक्का हिंदुस्तानी है! जब तक दर्जन दो दर्जन बच्चे पैदा न कर दे, तब तक झूठ का मन नहीं भरता। बस बच्चे पैदा करते चला जाता है।
सबसे बड़ा झूठ आदमी ने जो बोला है, वह यह है कि दोष किसी और का है। यह सबसे बड़ा झूठ है। यह बड़े से बड़ा झूठ है। यह आधारभूत झूठ है। फिर सारे झूठों के महल इसी पर खड़े होते हैं।

मैं क्या करूं? परमात्मा कहीं दिखाई नहीं पड़ता, अन्यथा मैं तो उसके चरणों में झुक जाने को राजी हूं। मैं क्या करूं? उसकी आवाज मुझे सुनाई नहीं पड़ती, अन्यथा मैं तो जहां पुकारे वहां जाने को राजी हूं; किसी दूर चांद-तारों पर पुकारे तो वहां जाने को राजी हूं! मैं तो सब समर्पण करने को तैयार हूं, लेकिन पुकार तो सुनाई पड़े! आवाज तो आए!
और आवाज रोज आ रही है, प्रतिपल आ रही है--और तुम कानों में अंगुलियां डाले बैठे हो। लेकिन अंगुलियां तुम जन्मों-जन्मों से डाले हो। तो शायद तुम सोचते हो कि कानों में अंगुलियों का डाला होना, यही स्वाभाविक है। और आंखों पर तुम्हारे इतनी धूल है... और धूल चूंकि ज्ञान की है, और ज्ञान की बड़ी महिमा और प्रतिष्ठा गाई गई है--कि जहां राजा का भी सम्मान नहीं होता, वहां भी विद्वान पूजे जाते हैं! सदियों-सदियों से तुम्हें समझाया गया है कि ज्ञान की बड़ी गरिमा है, बड़ी महिमा है। वेद कंठस्थ करो, उपनिषद दोहराओ। और परिणाम में तुम सिर्फ तोते हो गए हो। उपनिषद भी दोहराते हो, वेद भी दोहराते हो। ज्ञान तो कुछ हुआ नहीं, ज्ञान के नाम पर थोथे शब्दों का जाल तुम्हारी आंखों पर छा गया है। जाली छा गई है तुम्हारी आंखों पर। अब तुम्हें कुछ दिखाई नहीं पड़ता।
परमात्मा सामने खड़ा है। तुम जहां मुंह करो वहीं खड़ा है। तुम उसके अतिरिक्त और किसी के संपर्क में कभी आते ही नहीं। तुम्हारी पत्नी में भी वही है, तुम्हारे पति में भी वही है। तुम्हारे घर जो बेटा पैदा हुआ है, उसमें भी वही फिर आया है--नया संस्करण उसका फिर! लेकिन आंख से जाली कटनी चाहिए।
निर्मल चैतन्य! ज्ञान छोड़ो, ध्यान पकड़ो! दरिया ठीक कहते हैंः ध्यान हो
तो ज्ञान अपने से जन्मता है। वह ज्ञान तुम्हारे भीतर से आएगा, तभी ज्ञान है। जब तक बाहर से आए, तब तक अज्ञान को छिपाने की प्रक्रिया है, और कुछ भी नहीं।
सोचो बैठ कर कभी, तुम जो भी जानते हो, वह भीतर से आया है या बाहर से? और तुम बड़े चकित हो जाओगे। तुम पाओगे कि सब बाहर से आया है। तो सब बेकार है। और बेकार ही नहीं है, बाधक है, अड़चन है। उतने का ही भरोसा करो जो तुम्हारे भीतर से आया हो। जो तुम्हारे ध्यान में उमगा हो, बस उसका ही भरोसा करना। उसका ही भरोसा रहे तो तुम्हें उसके नगमे अभी सुनाई पड़ें--अभी, यहीं! उसका ही भरोसा रहे तो तुम्हें उसका सौंदर्य अभी दिखाई पड़े--अभी, यहीं! अगर तुम थोड़े ज्ञान की पकड़ को छोड़ दो, फिर से अज्ञानी हो जाओ जैसे छोटे बच्चे... अज्ञान में एक निर्दोषता है!
मैं तुमसे कहता हूंः पंडित नहीं पहुंचते, अज्ञानी पहुंचते हैं। अज्ञानी से मेरा अर्थ है--जिसने बाहर के ज्ञान को बिल्कुल इनकार कर दिया और जो भीतर डुबकी मार कर बैठ गया। और जिसने कहा कि जो मेरे भीतर अनुभव होगा, वही मेरा है, शेष सब उधार है, बासा है, उच्छिष्ट!
तुम दूसरों के जूते नहीं पहनते, दूसरों के कपड़े नहीं पहनते, और दूसरों
का ज्ञान उधार ले लेते हो? दूसरों का जूठा भोजन नहीं करते और हजार-हजार ओंठों से जो शब्द जूठे हो गए हैं, उनको ही छाती लगा कर बैठ गए हो? इससे अड़चन है। नहीं तो आंख बंद करो, और उसका ही जलवा है।

हम वही हैं जो हम नहीं हैं।
भाव जो कभी मूर्त न हुए
शब्द जो कभी कहे नहीं गए
जीने की व्यथा में डूबे हुए स्वर
जो ध्वनित नहीं हो पाए
राग नहीं बने
जीवन के अचीन्हे सीमांत के
चरम क्षण
होने न होने के
अपनी अनंतता में ठहरे रहे
निरंतर अपनी अतींद्रिय संपूर्णता में जीते रहे

पर बीते नहीं, भोगे नहीं गए...

आकार-रूप-हीन आघात
जो बस सहे ही गए
अनजाने अनचाहे
आंखों की कोरों में
उमड़े हुए आंसू-से अनदीखे
अटके ही रहे, झरे नहीं
वही हैं हम
जो नहीं हैं।

तुम वही हो गए हो जो तुम नहीं हो। क्योंकि उस ज्ञान को पकड़ लिया जो तुम्हारा नहीं; उस चरित्र को पकड़ लिया जो दूसरों ने तुम्हें पकड़ा दिया; उस संस्कार से भर गए, जो बासा ही नहीं है, उधार ही नहीं है, मुर्दा भी है! तुमने अपने अंतस को अवसर ही न दिया। तुमने स्व-स्फुरणा को मौका ही न दिया। इसलिए तुम वही हो गए हो जो तुम नहीं हो। और जो तुम हो, उसका तुम्हें पता भूल गया है। तुम जो हो, वही परमात्मा का एक रूप है। उसे कहीं खोजने और नहीं जाना है। अपने भीतर डुबकी मारनी है।

खोलो निज मन के वातायन
रवि-किरणों को
मत रोको
भीतर आने दो,
उनमें श्रद्धा और ज्ञान के अनगिन जगमग दीप जल रहे!
खोलो निज मन के वातायन,
मुक्त पवन को
मत रोको
भीतर आने दो!
उसकी लहरों में
मानव-ममता के
सुरभित स्वप्न पल रहे!

और एक बार तुम शून्य हो जाओ, शांत हो जाओ, मौन हो जाओ, तो चांद में भी वही आएगा चांदी होकर और सूरज में भी वही आएगा सोना होकर। खोलो द्वार-दरवाजे। ज्ञान के ताले मार कर बैठे हो। खोलो द्वार-दरवाजे। आने दो हवाओं को। बहने दो हवाओं को। अस्तित्व से संबंध जोड़ो। मंदिरों से, मस्जिदों से संबंध तोड़ो। वृक्षों से, फूलों से, चांद-तारों से संबंध जोड़ो। क्योंकि वे जीवंत परमात्मा हैं। तुम मुर्दा मूर्तियों की पूजा में संलग्न हो।
दीये जल ही रहे हैं। आरती उतर ही रही है। फूल चढ़े ही हैं उसके चरणों में। तुम जरा देखो! तुम जरा जागो! तुम सोए हो। तुम गहरी नींद में हो।
दरिया ठीक कहते हैंः जागे में फिर जागना।
इस जागने को जागना मत समझ लेना। इसमें अभी और जागना है।
जागे में फिर जागना।
बस यही समाधि की परिभाषा है। और जो जागे में जाग गया, वह परमात्मा में जाग जाता है।

तीसरा प्रश्नः आपको सुनता हूं तो लगता है कि पहले भी कभी सुना है। देखता हूं तो लगता है कि पहले भी कभी देखा है। वैसे मैं पहली ही बार यहां आया हूं। पहली ही बार आपको सुना और देखा है। मुझे यह क्या हो रहा है?

संदीप! यहां कोई भी नया नहीं है; न तुम नये हो, न मैं नया हूं। यहां जो तुम्हारे पास बैठे हुए लोग हैं, ये भी कोई नये नहीं हैं। न मालूम कितनी बार, न मालूम कितनी-कितनी राहों में, न मालूम कितने-कितने लोकों में, न

मालूम कितनी-कितनी यात्राओं में, योनियों में मिलन होता रहा है। हम अनंत यात्री हैं। बिछुड़ते रहे, मिलते रहे।
इसलिए चकित न होओ, चौंको मत। यह भी हो सकता है कि मुझसे तुम्हारा मिलना कभी न हुआ हो। लेकिन मुझ जैसे किसी व्यक्ति से मिलना हुआ हो, तो भी याद आएगी; तो भी कोई दबी हुई गहन अचेतन की पर्तों में याद सरकेगी। क्योंकि बुद्धत्व का स्वाद एक है। अगर तुमने बुद्ध को देखा था; अगर तुमने नानक को देखा था; अगर तुमने कबीर या फरीद के साथ दो घड़ियां बिताई थीं; या कौन जाने, दरिया से दोस्ती रही हो--अगर तुमने अनंत-अनंत जीवन की यात्राओं में कभी भी किसी ध्यानस्थ व्यक्ति के पास दो क्षण बिताए थे, तो याद आएगी। क्योंकि ध्यान का स्वाद अलग-अलग नहीं होता।
बुद्ध ने कहा हैः जैसे सागर को कहीं से भी चखो, खारा है; ऐसे ही बुद्धों को भी कहीं से चखो, उनका स्वाद एक ही है--जागरण का स्वाद है।
मैं कोई व्यक्ति नहीं हूं। व्यक्ति तो गया। व्यक्ति तो बहा। कब का बह गया। अब तो भीतर एक शून्य है। ऐसे शून्य का अगर तुमसे कभी भी संस्पर्श हुआ हो... और यह असंभव है कि अनंत-अनंत जन्मों में कभी न हुआ हो। यह असंभव है। यह हो ही नहीं सकता। इतने बुद्ध हुए हैं! इतने समाधिस्थ लोग हुए हैं! इतने जिन हुए, इतने पैगंबर, इतने तीर्थंकर, इतने सिद्ध! यह कैसे हो सकता है कि तुम कभी भी किसी बुद्ध की छाया में न बैठे होओ? यह कैसे हो सकता है कि सत्संग का स्वाद तुमने कभी न लिया हो? असंभव है। चाहे तुम्हारे बावजूद ही सही, कभी किसी राह पर दो कदम तुम जरूर किसी बुद्ध के साथ चल लिए होओगे। चूक गए। उस बार चूक गए, इस बार मत चूकना। इसीलिए कोई याद तुम्हारे भीतर उठ रही है, उभर रही है।
हम अनंत-अनंत जीवन की स्मृतियां अपने भीतर लिए बैठे हैं। भूल गए उन्हें, मगर वे मिटती नहीं हैं। शरीर छूट जाता है, लेकिन चित्त साथ चलता है। शरीर तो एक बार जो मिला, वह मिट्टी में गिर जाता है। लेकिन उसके भीतर चित्त--अनुभवों का जो संग्रह है--वह नई छलांग ले लेता है, वह नया जन्म ले लेता है। शरीर का नया जन्म नहीं होता, मन का नया जन्म हो जाता है।
इस बात को समझना। शरीर का नया जन्म हो ही नहीं सकता, क्योंकि शरीर मिट्टी है, गिरा सो गिरा। और आत्मा का नया जन्म हो ही नहीं सकता, क्योंकि आत्मा शाश्वत है; न उसका कोई जन्म है, न मृत्यु है। फिर जन्म किसका होता है?
दोनों के बीच में जो मन है, उसका ही जन्म होता है। यह जो पुनर्जन्म का सिद्धांत है, मन के ही संबंध में लागू होता है, आत्मा के संबंध में लागू नहीं होता। आत्मा का क्या जन्म? न कोई मृत्यु, न कोई जन्म। और शरीर का भी क्या जन्म, क्या मृत्यु? शरीर तो मरा ही हुआ है। शरीर है मृत्यु, मरणधर्मा, मिट्टी; उसका कोई जन्म नहीं होता, न कोई मरण होता है। वह तो मरा ही हुआ है। मरे की और क्या मौत होगी? और मरे का जन्म क्या हो सकता है? और आत्मा शाश्वत जीवन है। शाश्वत जीवन का कैसा जन्म और कैसी मृत्यु?
दोनों के मध्य में एक कड़ी है मन की। वही मन यात्रा करता है। वही मन नये-नये जन्म लेता है। उसी मन में तुम्हारे सारे जन्मों-जन्मों के संस्कार हैं। उन संस्कारों में मनुष्यों के ही संस्कार नहीं हैं; जब तुम पशु थे, उसके भी संस्कार हैं; जब तुम पक्षी थे, उसके भी संस्कार हैं; जब तुम वृक्ष थे, उसके भी संस्कार हैं; जब तुम एक चट्टान थे, उसके भी संस्कार हैं। तुम्हारे भीतर अस्तित्व की सारी आत्मकथा है। तुम छोटे नहीं हो। तुम्हारी उतनी ही लंबी कथा है जितनी लंबी कथा अस्तित्व की है। तुम अस्तित्व के सब रंग, सब ढंग जान चुके हो, पहचान चुके हो। लेकिन हर जन्म के बाद विस्मरण हो जाता है। लेकिन फिर भी किसी गहरी अनुभूति के क्षण में, किसी प्रीति के क्षण में, कोई स्मृति पंख फड़फड़ाने लगती है।
ऐसा ही कुछ हुआ होगा, संदीप!
तुम कहते होः "आपको सुनता हूं तो लगता है कि पहले भी कभी सुना है।"
जरूर सुना होगा। मुझे सुना हो या न सुना हो, मगर मुझ जैसे किसी व्यक्ति को जरूर सुना होगा।
तुम कहते होः "देखता हूं तो लगता है कि पहले भी कभी देखा है।"

मुझे देखा हो, न देखा हो, लेकिन जरूर कोई जलता हुआ दीया तुमने देखा होगा। और जब कोई जलते दीये को देखता है तो मिट्टी के दीये पर थोड़े ही नजर जाती है, ज्योति पर नजर जाती है। मिट्टी के दीये तो अलग-अलग हो जाते हैं, लेकिन ज्योति तो एक ही है। ज्योति तो अलग-अलग नहीं होती।
तुम कहते होः "वैसे मैं पहली बार ही यहां आया हूं।"
यहां पहली बार आए होओगे, लेकिन यहां जैसी जगहें सदियों-सदियों से जमीन पर सदा-सदा रही हैं। तीर्थ उठते रहे हैं। क्योंकि जब भी कहीं कोई ज्योति जली, तीर्थ बना। जब भी कभी कोई बुद्ध हुआ, वहीं मंदिर उठा। जब भी कहीं कोई फूल खिला, भंवरे आए, गीत गूंजे, नाच हुआ। जब भी कोई बांसुरी बजी है प्राणों की तो रास रचा, राधा नाची! गोपियों ने मंडल बनाए, गीत गाए। सदियों- सदियों में यह होता रहा। जरूर कोई झलक, अतीत की कोई स्मृति फिर जग गई होगी, इसलिए तुम्हें ऐसा लगा है।

पुरवा जो डोल गई,
घटा-घटा आंगन में जूड़े से खोल गई।

बूंदों का लहरा दीवारों को चूम गया,
मेरा मन सावन की गलियों में झूम गया;
श्याम-रंग-परियों से अंबर है घिरा हुआ;
घर को फिर लौट चला बरसों का फिरा हुआ; मइया के मंदिर में,
अम्मा की मानी हुई--
डुग-डुग, डुग-डुग-डुग, बधइया फिर बोल गई। पुरवा जो डोल गई,
घटा-घटा आंगन में जूड़े से खोल गई।
बरगद की जड़ें पकड़ चरवाहे झूल रहे, विरहा की तानों में बिरहा सब भूल रहे; अगली सहालक तक ब्याहों की बात टली,
बात बड़ी छोटी पर बहुतों को बहुत खली; नीम तले चौरा पर,
मीरा की बार-बार--
गुड़िया के ब्याहवाली चर्चा रस घोल गई। पुरवा जो डोल गई,
घटा-घटा आंगन में जूड़े से खोल गई।

खनक चूड़ियों की सुनी मेंहदी के पातों ने, कलियों पे रंग फेरा मालिन की बातों ने; धानों के खेतों में गीतों का पहरा है, चिड़ियों की आंखों में ममता का सेहरा है; नदिया से उमक-उमक,
मछली वह छमक-छमक--
पानी की चूनर को दुनिया से मोल गई। पुरवा जो डोल गई,
घटा-घटा आंगन में जूड़े से खोल गई।

झूलों के झूमक हैं शाखों के कानों में, शबनम की फिसलन है केले की रानों में; ज्वार और अरहर की हरी-हरी सारी है, नई-नई फूलों की गोटा-किनारी है, गांवों की रौनक है,
मेहनत की बांहों में--
धोबिन भी पाटे पे हइया छू बोल गई। पुरवा जो डोल गई,
घटा-घटा आंगन में जूड़े से खोल गई।

जैसे कोई बहुत दिनों का दूर चला गया व्यक्ति अपने गांव वापस लौटे और
हर छोटी-छोटी बात याद आने लगे--
पुरवा जो डोल गई,
घटा-घटा आंगन में जूड़े से खोल गई।
छोटी-छोटी बातें याद आने लगें--यह गांव का मंदिर, यह गांव का पनघट, पनघट पर घटी हुई रसभरी बातें, यह गांव का पुराना बरगद, इस बरगद के नीचे खेले गए खेल, इस बरगद पर डाले गए झूले, झूलों पर भरी गई पेंगें, यह गांव का बाजार, बाजार के भरने के दिन, बाजार में खरीदे गए खिलौने, सब याद आने लगता है। जैसे कोई वर्षों-वर्षों बाद अपने गांव लौटा हो!
बूंदों का लहरा दीवारों को चूम गया,
मेरा मन सावन की गलियों में झूम गया;
श्याम-रंग-परियों से अंबर है घिरा हुआ;
घर को फिर लौट चला बरसों का फिरा हुआ;
मइया के मंदिर में,
अम्मा की मानी हुई--
डुग-डुग, डुग-डुग-डुग, बधइया फिर बोल गई।
पुरवा जो डोल गई,
घटा-घटा आंगन में जूड़े से खोल गई।
ऐसा ही कुछ हो रहा है तुम्हें। कहीं फिर लौट आए हो, जहां कभी आना हुआ था! यह बात स्थान की नहीं है, समय की नहीं है। यह बात आत्मा की एक दशा की है। इन स्मृतियों को दबा मत देना, तर्क-जाल में डुबा मत देना, बुद्धि के विश्लेषण में नष्ट-भ्रष्ट मत कर डालना। इन स्मृतियों को उठने दो, फैलाने दो पंख! इन स्मृतियों को छाने दो, क्योंकि ये स्मृतियां तुम्हें याद दिलाएंगी कि पहले भी चूक गए थे, अब की बार न चूक जाना!
ऐसा हुआ, महावीर के जीवन में उल्लेख है। एक राजकुमार ने महावीर से दीक्षा ली। राजकुमार, महलों में रहा, सुख-सुविधाओं में पला। फिर महावीर के साथ जिस धर्मशाला में ठहरना पड़ा, नया-नया संन्यासी था, उसे जगह मिली बिल्कुल दरवाजे पर। रात भर लोगों का आना-जाना, सो ही न सका। मच्छर अलग काटें। जमीन कड़ी। बिना बिस्तर के सोना। न तकिया पास; हाथ का ही तकिया! कभी ऐसे सोया नहीं था और ऐसी बेहूदी जगह--धर्मशाला का दरवाजा, जिस पर दिन भर भी लोग, रात भर भी लोग! फिर कोई आया, फिर किसी ने द्वार खटखटाया। फिर कोई मेहमान आया। फिर द्वार खोले गए, फिर मेहमान भीतर लिया गया।
आधी रात थी। उसने सोचाः यह क्या हुआ? यह मैं किस झंझट में पड़ गया! अच्छा-भला घर था, सुख-सुविधा थी। सुबह होते ही वापस लौट जाऊंगा। सोचा था कि चुपचाप ही लौट जाए, महावीर को कुछ कहना ठीक नहीं है। पर राजकुमार था, संस्कारी था। सोचा कि यह तो उचित न होगा। दीक्षा ली है, तो कम से कम उनको नमस्कार करके, क्षमा मांग कर कि नहीं, मुझसे न सधेगी, लौट जाऊं।
जैसे ही महावीर के पास पहुंचा, झुक कर नमस्कार किया, महावीर ने कहाः
तो इस बार फिर लौट चले?
बड़ा हैरान हुआ राजकुमार, उसने कहाः इस बार? मैं तो पहली ही बार आपके पास आया हूं। क्या कभी पहले भी लौट गया हूं?
महावीर ने कहाः यह तुम दूसरी बार लौट रहे हो। मेरे पास नहीं आए थे पहली बार, मुझसे पहले जो तीर्थंकर हुए पार्श्वनाथ, उनके पास आए थे। और यही अड़चन। यही धर्मशाला का दरवाजा। यही एक हाथ का तकिया बना कर सोना। यही मच्छर। जरा याद करो!
महावीर ने ऐसे उकसाया जैसे कोई सिगड़ी में अंगारे को उकसाए। जरा झाड़
दी राख। एक स्मृति भभक कर उठी। दृश्य खुल गया। एक क्षण को उसकी आंख बंद हो गई। याद आया कि हां--पार्श्वनाथ की प्रतिमा प्रकट हुई--याद आया कि हां, दीक्षित हुआ था। और याद आया कि बीच से ही लौट गया था। आंख आंसुओं से भर गई। महावीर के चरणों पर सिर रखा।
महावीर ने कहाः अब क्या इरादा है? रुकते हो कि जाते हो?
उस राजकुमार ने कहाः अब जाना कैसा! धन्यभागी हूं कि आपने याद दिला दी।

धन्यभागी हो तुम कि तुम्हें याद आ रही है। बिना मेरे दिलाए तुम्हें याद आ रही है; सो और भी धन्यभागी हो। भाग गए होओगे पहले कभी। आते-आते पास दूर छिटक गए होओगे। बनते-बनते साथ छूट गया होगा। किसी नाव पर चढ़ते-चढ़ते उतर गए होओगे। कोई द्वार खुलते-खुलते बंद हो गया होगा।

हंस-हंस कर मैं भूल चुका हूं आशा और निराशा को,
रो-रो कर मैं भूल चुका हूं सुख-दुख की परिभाषा को,
भूल चुका हूं सब कुछ केवल इतना मुझको याद रहा--
बनते देखा, मिटते देखा अपनी ही अभिलाषा को!

नहीं आज तक देख सका हूं निज धुंधले अरमानों को,
नहीं आज तक सुन पाया हूं उर के अस्फुट गानों को, अरे, देखना-सुनना उसका, जिसका हो अस्तित्व यहां; प्रेम मिटा देता है पल में अपने ही दीवानों को!

देखें किसमें कितनी तृष्णा किसमें कितनी ज्वाला है? निर्जीवों के इस समूह में जीवित कौन निराला है?
आज हलाहल छलक रहा है पीड़ित जग की आंखों में,
सुधा समझ कर कौन यहां पर उसको पीने वाला है?

देखें किसमें अमिट साध है, किसमें अक्षत आशा है? मिट-मिट कर फिर बनने वाली किसमें नव-अभिलाषा है?
आज मौन-निस्पंद पड़ा है विश्व मृत्यु की तंद्रा में; जीवन का संदेश सुनाने वाली किसकी भाषा है?

देखें किसके उर में गति है, श्वासों में उच्छवास यहां? किसके वैभव के अंतर में है अक्षय विश्वास यहां?
आज विकृत सीमित है जग के जीवन का उन्मुक्त प्रवाह,
इस असीम में लहराता है किसका पूर्ण विकास यहां?

किस गति से प्रेरित हो अविकल बहता है सरिता का जल?
किस इच्छा से पागल होकर लहरें उठतीं मचल-मचल?
कल-कल ध्वनि में छलक रहा है किस अभिलाषा का संगीत?
"लय होने को प्रेम ढूंढता है असीम का वक्षस्थल!"

किस तृष्णा से आकुल होकर पिहु-पिहु रटता है चातक?
किस प्रिय का आह्वान कर रही कुहु-कुहु स्वर में कुहू अथक? कलरव के उन सप्त स्वरों में है किससे मिलने की साध?
"ढूंढ रहा अस्तित्व पूर्णता के सपने की एक झलक!"

आंख मूंद कर बढ़ते जाना, एक नियम दीवानों का,
सिर न झुकाना, लड़ते जाना, एक नियम मरदानों का,
श्वासों में गति, उर में गति है, यहां प्रगति ही एक नियम,
गति बनना, गति में मिल जाना, एक नियम गतिवानों का!

मैं एक चुनौती हूं--एक आह्वान! झकझोरता हूं तुम्हें। पूछता हूं तुमसे।
आंख मूंद कर बढ़ते जाना, एक नियम दीवानों का,
सिर न झुकाना, लड़ते जाना, एक नियम मरदानों का,
श्वासों में गति, उर में गति है, यहां प्रगति ही एक नियम,
गति बनना, गति में मिल जाना, एक नियम गतिवानों का!
चूके हो पहले, इस बार न चूकना। डर तो लगता है। सत्संग भय तो लाता है। अरे, देखना-सुनना उसका, जिसका हो अस्तित्व यहां;
प्रेम मिटा देता है पल में अपने ही दीवानों को!

तो प्रेम तो मिटाता है। प्रेम तो जलाता है। लेकिन जिसमें हिम्मत है, जिसमें साहस है, वह हंसते हुए जलता है, वह हंसते हुए मिटता है। और जो हंसते हुए मिट जाए, वह उसे पा लेता है जिसका फिर कभी मिटना नहीं होता है।
देखें किसमें अमिट साध है, किसमें अक्षत आशा है?
मिट-मिट कर फिर बनने वाली किसमें नव-अभिलाषा है?
देखें किसके उर में गति है, श्वासों में उच्छवास यहां?
किसके वैभव के अंतर में है अक्षय विश्वास यहां?
मैं एक अवसर हूं कि तुम्हें मिटा दूं। जैसे मैं मिट गया हूं, वैसे तुम्हें मिटा दूं। भागने का मन बहुत होगा। बचने की बहुत चेष्टा होगी। स्वाभाविक है वह मन, वह चेष्टा। लेकिन स्वभाव से ऊपर उठने में ही मनुष्य की गरिमा है। स्वभाव के अतिक्रमण में ही मनुष्य की दिव्यता है।
संदीप! चिंता मत करना।
तुम पूछते होः "मुझे यह क्या हो रहा है?"
तुम सोचते होओगेः मैं कोई पगला तो नहीं रहा हूं? कोई मस्तिष्क खराब तो नहीं हो रहा है? यहां पहले कभी आया नहीं; लगता है पहले आया हूं। पहले कभी देखा नहीं; लगता है पहले देखा है। पहले कभी सुना नहीं; लगता है सुना है। कहीं मेरा मस्तिष्क डांवाडोल तो नहीं हुआ जा रहा है? कहीं मैं अपना संयम, अपना नियंत्रण तो नहीं खोए दे रहा हूं?
ऐसा विचार उठना स्वाभाविक है। लेकिन इस विचार से ही जो अटक जाते हैं,
वे कभी अतिक्रमण न कर पाएंगे। वे कभी अपने ऊपर आंखें न उठा पाएंगे। वे कभी, बुद्धि के ऊपर जो है, उसका संस्पर्श न कर पाएंगे। और जो है संस्पर्श करने योग्य, वह बुद्धि के पार है।
दरिया ने कहा नः न चित्त वहां पहुंचता, न मन वहां पहुंचता, न बुद्धि वहां पहुंचती, न शब्द की वहां गति है। सब पीछे छूट जाता है, सिर्फ शुद्ध चैतन्य मात्र वहां पहुंचता है।
जब मैं कहता हूं कि मैं तुम्हें पूरा मिटाना चाहता हूं, तो उसका इतना
ही अर्थ है कि सिर्फ शुद्ध चैतन्य तुम्हारे भीतर रह जाए, और सब तुमसे अलग हो जाए, और सबसे तुम्हारा तादात्म्य टूट जाए, सिर्फ एक साक्षीभाव, मात्र साक्षीभाव ही तुम्हारे भीतर गहन हो जाए। फिर तुम्हारे लिए रहस्यों के द्वार खुलेंगे। खजाने, जो कभी फिर चुकते नहीं! अमृत, जिसकी हम जन्मों- जन्मों से तलाश कर रहे हैं और खोज नहीं पाए! और मजा यह है कि जिसे हम दूर खोज रहे हैं, वह बहुत पास है, पास से भी पास है।

चौथा प्रश्नः आप कुछ कहते हैं, लोग कुछ और ही समझते हैं। यह कैसे रुकेगा?

हरिदास! यह कभी रुकेगा नहीं। यह रुक ही नहीं सकता। यह सदा-सदा से चला आया नियम है। रघुकुल रीति सदा चलि आई!
मैं जो कहूंगा, तुम उसे वैसा ही कैसे समझ सकते हो जैसा मैं कहता हूं? तुम उसे वैसा ही कैसे समझ सकते हो? कोई उपाय नहीं है। मैं पुकारता हूं एक पहाड़ से; तुम सरक रहे हो अपनी अंधेरी घाटियों में। तुम तक पहुंचते-पहुंचते मेरी आवाज मेरी आवाज नहीं रह जाएगी। तुम ज्यादा से ज्यादा घाटियों में मेरी गूंज सुनोगे, अनुगूंज सुनोगे, प्रतिध्वनि सुनोगे। और फिर प्रतिध्वनि भी तुम अपने ढंग से सुनोगे। मैं बोलूंगा पहाड़ के शिखर की स्वर्ण-मंडित शिखर की भाषा में, प्रकाशोज्ज्वल शिखर की भाषा में; तुम समझोगे घाटियों के अंधेरे की भाषा में। तुम पहले अनुवाद करोगे, तब समझोगे।
एक भाषा से दूसरी भाषा में अनुवाद करने में ही बहुत कुछ खो जाता है। फिर अगर गद्य हो तो भी खो जाता है; पद्य हो, तब तो बहुत कुछ खो जाता है। लेकिन यह तो मामला उन भाषाओं का है जो एक ही सतह की हैं--घाटी की भाषाएं। एक कोने में एक भाषा बोली जाती है, घाटी के दूसरे कोने में दूसरी भाषा बोली जाती है। लेकिन दोनों गुणात्मक रूप से अंधेरे की भाषाएं हैं। जब प्रकाशोज्ज्वल शिखर से कोई पुकारता है, तो भाषाओं का अंतर बहुत बड़ा है। गुणात्मक अंतर है। आकाश को पृथ्वी पर लाना, अदृश्य को दृश्य में लाना,

निःशब्द को शब्द में लाना, शून्य को भाषा के वस्त्र पहनाने... सब अस्तव्यस्त हो जाता है। फिर तुम समझोगे, तुम समझोगे न! तुम अपने ही चित्त से समझोगे। और तो तुम्हारे पास समझने का अभी कोई उपाय नहीं है। अभी तुमने ध्यान तो जाना नहीं। अगर तुम ध्यान में बैठ कर मुझे सुनो, तो तुम वही समझोगे जो मैं कह रहा हूं।
लेकिन लोग मुझसे पूछते हैं कि पहले हम आपको समझें, तब तो ध्यान करें। पहले हमें भरोसा आ जाए कि आप जो कहते हैं ठीक ही कहते हैं, तब तो हम ध्यान की झंझट में पड़ें। पहले ध्यान क्या है, यह समझ में आ जाए, तो हम ध्यान करें। ठीक ही कहते हैं, तर्कयुक्त बात कहते हैं। होशियार आदमी हैं। बाजार में आदमी जाता है, चार पैसे का घड़ा खरीदता है तो भी ठोंक-पीट कर देखता है, बजा कर देखता है--कहीं फूटा-फाटा तो नहीं! ऐसे ही चार पैसे गंवा न दें! जो आदमी चार पैसे के घड़े को भी ठोंक-बजा कर देखता है, वह ध्यान जैसी महाक्रांति में बिना सोचे-समझे उतर जाएगा, इसकी आशा रखनी उचित नहीं है। पहले समझेगा। और समझने में ही अड़चन है। समझेगा मन से, और मन ध्यान का दुश्मन है। मन और ध्यान विपरीत हैं। मन है अंधेरा, ध्यान है ज्योतिर्मय। मन है मृत्यु, ध्यान है अमृत। मन है क्षणभंगुर, ध्यान है शाश्वत। कोई संबंध नहीं बैठता मन का और ध्यान का। बात ही नहीं बनती।
हरिदास! तुम्हारी तकलीफ मैं समझता हूं, तुम्हारी पीड़ा मैं समझता हूं। तुम उतरने लगे ध्यान में, तुम्हें कुछ-कुछ बात समझ में पड़ने लगी। तो तुम्हें बेचैनी होती है कि लोग आपकी बात को गलत क्यों समझते हैं? कुछ का कुछ क्यों समझते हैं? लेकिन नाराज मत होना। उनकी भी मजबूरी है। वे भी क्या करें? उन पर अनुकंपा रखना। समझाए जाना।
इसीलिए तो रोज मैं समझाए जाता हूं। तुम कुछ भी समझो, तुम कुछ का कुछ समझो--मैं समझाए जाऊंगा। मेरी तरफ से कृपणता न होगी। आज नहीं समझोगे, कल नहीं समझोगे, परसों नहीं समझोगे--कब तक नहीं समझोगे? एकाध दिन, शायद तुम्हारे बावजूद कोई किरण उतर जाए, कोई रंध्र मिल जाए, कोई थोड़ा सा द्वार-दरवाजा मुझे मिल जाए--और तुम तक पहुंच जाऊं और तुम्हारे प्राणों को छू लूं। एक बार तुम्हारी हृदयतंत्री बज जाए, बस फिर शुरुआत हुई। पहला पाठ हुआ। पहले पाठ तक पहुंचाने में ही वर्षों लग जाते हैं। अंतिम पाठ की तो बात ही नहीं करनी चाहिए।
गुरु पहले पाठ तक ही पहुंचा दे, बस काफी है; अंतिम पाठ तक तो फिर तुम स्वयं पहुंच जाओगे। पहला कदम उठ जाए तो अंतिम कदम बहुत दूर नहीं है। पहला कदम, पचास प्रतिशत यात्रा पूरी हो गई। क्योंकि फिर पहला कदम दूसरा उठवा लेगा, और दूसरा तीसरा उठवा लेगा... । फिर तो सिलसिला शुरू हो गया।शृंखला का जन्म हो गया। चल पड़े तुम, सम्यक दिशा मिल गई।
मगर साधारणतः तो लोग भीड़-भाड़, बाजार में कुछ का कुछ समझते ही रहेंगे।
यहां आएंगे भी नहीं। मुझसे सीधा सुनेंगे भी नहीं। कोई उन्हें सुनाएगा।
उसने भी किसी से सुना होगा।
अभी भारतीय संसद में घंटे भर उन्होंने मेरे संबंध में विवाद किया।
उनमें से एक भी व्यक्ति यहां नहीं आया, जिन्होंने विवाद में भाग लिया। और सब इस तरह विवाद में भाग लिए जैसे जानकार हैं। एक ने भी साहस नहीं किया है आने का। लेकिन बोले ऐसे, जैसे सब जानते हैं; जैसे मैं जो कह रहा हूं, उसको समझते हैं। जैसे मैं जो यहां कर रहा हूं, उसकी उन्हें पहचान है! अफवाहों को लोग सुनते हैं। अफवाहों से लोग जीते हैं। और जिनको तुम समझदार कहते हो, बुद्धिमान कहते हो, वे भी अफवाहों से ही जीते और समझते हैं।
मुल्ला नसरुद्दीन से उसका एक मित्र बहुत परेशान हो गया था, क्योंकि मुल्ला ने उससे कुछ रुपया उधार लिया था। जब भी उससे मांगता रुपये मित्र, मुल्ला कहताः अगले महीने। और अगला महीना कभी आता ही नहीं। आखिर उसने एक दिन कहा कि तुम हर बार यही कहते हो--अगले महीने, फिर देते तो नहीं!
तो मुल्ला हंसने लगा, उसने कहाः तुम्हें यह समझ में नहीं आता कि अगर देना ही होता तो अगले महीने पर क्यों टालते? और फिर मैं हमेशा अगले महीने पर टालता हूं। मेरी संगति देखी? अपने वचन पर प्रतिबद्ध हूं। अगले महीने ही दूंगा। जो बात कह दी, कह दी। वचन का पक्का हूं। इस वचन को कभी खंडित न करूंगा।

मित्र आखिर थक गया। वर्षों गुजर गए। सैकड़ों तकाजों के बावजूद भी जब मुल्ला ने रुपया वापस करने का नाम नहीं लिया तो एक दिन मित्र ने कहाः अब तो मेरा इंसानियत पर से विश्वास ही उठ गया।
मुल्ला नसरुद्दीन ने तत्परता से कहाः भाई, इंसानियत पर से विश्वास उठ जाए तो कोई बात नहीं, मित्रता पर से विश्वास नहीं उठना चाहिए।
अपने-अपने ढंग हैं। अपनी-अपनी समझ है। शब्दों के अपने-अपने अर्थ हैं।
एक कवि का विवाह हुआ। प्रथम मिलन में ही कवि ने बड़े प्यार से अपनी बीबी से कहाः मेरी एक कविता सुनोगी?
बीबी तत्काल बोलीः छोड़िए भी, कोई अच्छी बात करिए!
एक लॉज में हर रोज दो चम्मच गायब हो जाते थे। इसलिए जो लोग भोजन के लिए आते, उन पर फिर कड़ी निगरानी रखी गई। मुल्ला नसरुद्दीन हर रोज आता था, आज उस पर भी नजर रखी गई। जब उसने भोजन समाप्त कर लिया तो जल्दी से दो चम्मच उठा कर अपनी जेब में डाल लिए। फौरन उसको पकड़ भी लिया गया। नौकर उसे मालिक के पास ले गए। मालिक ने कहाः बड़े मियां! आप देखने से तो बड़े भोले-भाले मालूम पड़ते हैं। फिर आपको यह चोरी क्या शोभा देती है?
मुल्ला नसरुद्दीन ने अपनी जेब में से एक कागज निकाल कर मालिक को दिया,
जो डाक्टर का प्रिस्क्रिप्शन था; उसमें लिखा थाः हर रोज भोजन के पश्चात दो चम्मच लेना।
अब करोगे क्या? लोग तो वैसा ही समझेंगे जैसा समझ सकते हैं।
तुम पूछते होः "आप कुछ कहते हैं, लोग कुछ और ही समझते हैं।"
स्वाभाविक, जरा भी इसमें कुछ अघट नहीं हो रहा है। ऐसा ही सदा होता रहा है।
और तुम पूछते हो, हरिदासः "यह कैसे रुकेगा?"
यह रुकने वाला नहीं। कुछ के लिए रुक जाएगा। जो मेरे पास आ जाएंगे, जो मेरे निकट हो जाएंगे, जो मेरे सामीप्य में जीने लगेंगे, उनके लिए मिट जाएगा। बाकी वृहत भीड़ तो कुछ का कुछ सोचती ही रहेगी, कहती ही रहेगी। यही बुद्ध के साथ हुआ, यही महावीर के, यही मोहम्मद के, यही जीसस के। यही सदा हुआ है। यही आज भी होगा। यही कल भी होता रहेगा। भीड़ बहुत क्षुद्र बातों को ही समझ सकती है। बाजारू बातों को समझ सकती है। उसने आकाश की तरफ आंख उठा कर कभी देखा भी नहीं, फुर्सत भी नहीं, आकांक्षा भी नहीं। उससे तुम चांद-तारों की बातें करोगे, तो भीड़ कहेगी कि तुम झूठे हो।
तुमने कहानी सुनी है न! सागर का एक मेंढक एक बार एक कुएं में चला आया। कुएं के मेंढक ने पूछा कि मित्र, कहां से आते हो?
उसने कहाः सागर से आता हूं।
कुएं के मेंढक ने तो सागर शब्द सुना ही नहीं था। उसने कहाः सागर! यह किस कुएं का नाम है?
सागर से आया मेंढक हंसने लगा, उसने कहाः यह कुएं का नाम नहीं है।
तो सागर क्या है?
बड़ी मुश्किल हुई सागर के मेंढक को, वह कैसे समझाए सागर क्या है! कुएं
का मेंढक कभी कुएं के बाहर गया नहीं था। सागर तो दूर, उसने ताल-तालाब भी नहीं देखे थे। कुएं में ही बड़ा हुआ, कुएं में ही जीया, कुआं ही उसका संसार था। वही उसका समस्त विश्व था। कुएं के मेंढक ने एक तिहाई कुएं में छलांग लगाई और कहाः इतना बड़ा है तुम्हारा सागर?
सागर के मेंढक ने कहाः मित्र, तुम मुझे बड़ी अड़चन में डाले दे रहे हो। सागर बहुत बड़ा है!
तो उसने दो तिहाई कुएं में छलांग लगाई, उसने कहाः इतना बड़ा है तुम्हारा सागर?
सागर के मेंढक ने कहा कि मैं तुम्हें कैसे समझाऊं? तुम्हें कैसे बताऊं? सागर बहुत बड़ा है।
तो उसने पूरे कुएं में एक कोने से दूसरे कोने तक छलांग लगाई, उसने कहाः इतना बड़ा है तुम्हारा सागर? और जब सागर के मेंढक ने कहाः यह तो कुछ भी नहीं है, अनंत-अनंत गुना बड़ा है। तो कुएं के मेंढक ने कहाः तेरे जैसा झूठ बोलने वाला मेंढक मैंने कभी देखा नहीं। बाहर निकल! किसी और को धोखा देना। तूने मुझे समझा क्या है? मैं कोई बुद्धू नहीं हूं कि तेरी बातों में आ

जाऊं ! मगर इसी वक्त बाहर निकल ! इस तरह के झूठ बोलने वालों को इस कुएं में कोई जगह नहीं !

यह कहानी बड़ी अर्थपूर्ण है। यह आदमी की कहानी है। सुकरात को जब जहर दिया गया तो एथेंस के जजों ने यह निर्णय लिया कि या तो तुम मरने को राजी हो जाओ और या फिर तुम जो बातें कहते हो, वे बातें कहना बंद कर दो। दो में से कुछ भी चुन लो। तुम जो बातें कहते हो, वे बंद कर दो, तो तुम जी सकते हो। और अगर तुम उन बातों को जारी रखोगे तो सिवाय मृत्यु के और कोई उपाय नहीं है। फिर मृत्यु के लिए राजी हो जाओ।

सुकरात बातें क्या कह रहा था? सागर की बातें कर रहा था--कुएं के लोगों से ! और कुएं के भीतर रहने वाले लोग सागर की बात सुन कर नाराज हो जाते हैं। सुकरात लगता है उन्हें खतरनाक। सुकरात का अपराध था यही, उसका यही अपराध अदालत ने तय किया था कि तुम लोगों को बिगाड़ते हो। सुकरात लोगों को बिगाड़ता है ! सत्य की ऐसी शुद्ध अभिव्यक्ति बहुत कम लोगों में हुई है जैसी सुकरात में। सुकरात लोगों को बिगाड़ता है, यह अदालत का फैसला था। अदालत एथेंस के सबसे ज्यादा बुद्धिमान लोगों से बनी थी। एथेंस में जो सबसे ज्यादा प्रतिभाशाली लोग थे, वे ही उस अदालत के न्यायाधीश थे। उन्होंने एक मत से निर्णय दिया था कि तुम चूंकि लोगों को बिगाड़ते हो, खासकर युवकों को... क्योंकि बूढ़े तो तुम्हारी बातों में आने से रहे, युवक तुम्हारी बातों में आ जाते हैं। क्योंकि बूढ़े तो इतने अनुभवी हैं कि तुम उनको धोखा नहीं दे सकते।

बूढ़े, मतलब जो कुएं में इतना रह चुके हैं कि अब मान ही नहीं सकते कि कुएं से भिन्न कुछ और हो सकता है। जवान वह, जो अभी कुएं में नया-नया आया है और जो सोचता है कि हो सकता है कि कुएं से भी बड़ी चीज हो। कौन जाने ! जवान में जिज्ञासा होती है, खोज होती है, साहस भी होता है; नये को सीखने की तमन्ना भी होती है। बूढ़ा तो सीखना बंद कर देता है। जैसे-जैसे आदमी बूढ़ा होता जाता है वैसे-वैसे उसका सीखना क्षीण होता जाता है। और जो आदमी अपने बुढ़ापे तक सीखने को राजी है, वह बूढ़ा है ही नहीं। उसका शरीर ही बूढ़ा हुआ, उसकी आत्मा जरा भी बूढ़ी नहीं है। उसके भीतर अभी उतनी ही ताजगी है जितनी किसी छोटे बच्चे के भीतर हो। जो अंत तक सीखने को राजी है, उसके भीतर सदा ही युवावस्था बनी रहती है। और युवावस्था की ताजगी, और युवावस्था का बहाव, और युवावस्था की प्रतिभा बनी रहती है।

लेकिन लोग तो जल्दी बूढ़े हो जाते हैं। तुम सोचते हो कि सत्तर साल में बूढ़े होते हैं, तो तुम गलत सोचते हो। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि अधिकतर लोग बारह वर्ष की उम्र के बाद रुक जाते हैं, फिर सीखते ही नहीं। बारह वर्ष--यह औसत मानसिक उम्र है दुनिया की ! बारह वर्ष भी कोई उम्र हुई ! सात वर्ष की उम्र में बच्चा पचास प्रतिशत बातें सीख लेता है, अब बस पचास प्रतिशत और सीखेगा। और अभी जिंदगी पड़ी है पूरी। और बारह वर्ष की उम्र तक पहुंचते-पहुंचते, या बहुत हुआ तो चौदह वर्ष की उम्र तक पहुंचते-पहुंचते सब ठहर जाता है। फिर सीखने का उपक्रम बंद हो जाता है। फिर तुम अपने ही कुएं के गोल घेरे में घूमने लगते हो। फिर तुम सागर की तरफ दौड़ती हुई सरिता नहीं रह जाते, रेल की पटरी पर दौड़ती हुई मालगाड़ी हो जाते हो--मालगाड़ी, पैसेंजर गाड़ी भी नहीं, क्योंकि भीतर तुम्हारे सिर्फ कूड़ा-कचरा भरा होता है ! तुम्हारे भीतर जीवन भी नहीं होता। और रेल की पटरी पर दौड़ते रहते हो फिर। फिर तुम्हारे जीवन में और कोई स्वतंत्रता नहीं रह जाती। उसी पटरी पर दौड़ते-दौड़ते एक दिन मर जाते हो। कहीं पहुंचना नहीं हो पाता।

अधिक लोग तो मेरी बात नहीं समझेंगे। समझेंगे तो गलत समझेंगे। समझेंगे तो कुछ का कुछ समझेंगे। मैं इससे अन्यथा की आशा भी नहीं रखता। इसलिए मुझे इससे कुछ अड़चन नहीं होती। मुझे इससे कुछ विषाद नहीं होता। इससे मुझे कोई चिंता नहीं होती। यह होना ही चाहिए। अगर लोग मेरी बात बिल्कुल वैसी ही समझ लें जैसी मैं कह रहा हूं तो चमत्कार होगा। ऐसा चमत्कार न तो कभी हुआ है, न हो सकता है। अभी मनुष्य से इतनी आशा करनी असंभव है।

निकली है सुबह, नहा के आंख मल के देखिए !
बैठे हुए हैं आप, जरा चल के देखिए !

है खा रही जमीन सितारों के फासले,
कितनी हसीन आग है, ये जल के देखिए!
तन कर खड़ी हैं चोटियां जो टूट जाएंगी, बेहतर है इस हवा में आप ढल के देखिए! गल-गल के बहे जा रहे हैं धूप में पहाड़,
गलना भी एक जिंदगी है, गल के देखिए!
फूलों से रंगी गंध है, गंधों से रंगी धूप,
साये हैं उड़ रहे किसी आंचल के देखिए!
कल तक तो फूल भी न खिल सके थे बाग के,
तिनके भी आज हैं खड़े खिल-खिल के देखिए!

मगर यह अनुभव की बात! आओ पास! चखो मुझे! पीओ मुझे!
निकली है सुबह, नहा के आंख मल के देखिए!
बैठे हुए हैं आप, जरा चल के देखिए!
लोग चलने को राजी नहीं, देखने को राजी नहीं, आंख खोलने को राजी नहीं। फिर कैसे उन्हें समझाओ? समझाए जाऊंगा। सौ को समझाऊंगा, दस सुनेंगे; नब्बे तो सुनेंगे ही नहीं। दस सुनेंगे, शायद एकाध समझे। पर उतना भी काफी पुरस्कार है, उतना भी काफी तृप्तिदायी है। अगर थोड़े से फूल भी खिल जाएं, अगर थोड़े से लोग भी बुद्धत्व को उपलब्ध हो जाएं, तो इस पृथ्वी का हम रंग बदल देंगे। थोड़े से दीये जल जाएं तो बहुत अंधेरा टूट जाएगा। और फिर एक दीया जल जाए तो उससे और बुझे दीयों को जलाया जा सकता है।
बुद्धों की एकशृंखला पैदा करने का आयोजन है। संन्यास उसी दिशा में उठाया गया पहला कदम है। संन्यास का अर्थ हैः आओ मेरे करीब। संन्यास का अर्थ हैः घोषणा करो अपनी तरफ से कि तुम सामीप्य के आकांक्षी हो।
है खा रही जमीन सितारों के फासले,
कितनी हसीन आग है, ये जल के देखिए!
तन कर खड़ी हैं चोटियां जो टूट जाएंगी,
बेहतर है इस हवा में आप ढल के देखिए!
आओ, ढलो, पीओ, गलो!
गल-गल के बहे जा रहे हैं धूप में पहाड़,
गलना भी एक जिंदगी है, गल के देखिए!
वे थोड़े से लोग ही समझ पाएंगे, जो गलेंगे मेरे साथ; जो इस आग से नाचते हुए गुजरेंगे मेरे साथ। बाकी तो कुछ का कुछ समझेंगे। उन्हें समझने दो। उनकी चिंता भी न लो। उनकी उपेक्षा करो। दया रखना उन पर। क्रोध मत लाना। क्योंकि उनका कोई कसूर नहीं है। ऐसी ही उनकी मन की दशा है। इतनी ही उनकी पात्रता है। इतनी ही उनकी क्षमता है।

आखिरी प्रश्नः आपका मूल संदेश क्या है?

वही जो सदा से सभी बुद्धों का रहा हैः अप्प दीपो भव! अपने दीये खुद बनो! अपने मांझी स्वयं बनो! किसी और के कंधे का सहारा न लेना। खुद खाओगे तो तुम्हारी भूख मिटेगी। खुद पीओगे तो तुम्हारी प्यास मिटेगी। सत्य को स्वयं जानोगे, तो ही, केवल तो ही संतोष की वीणा तुम्हारे भीतर बजेगी। मेरा जाना हुआ सत्य तुम्हारे किसी काम का नहीं।
मैं तुम्हें सत्य नहीं दे सकता। मैं तो सिर्फ तुम्हारे भीतर सत्य को पाने की अभीप्सा को प्रज्वलित कर सकता हूं। मैं तुम्हें सत्य नहीं दे सकता, लेकिन सत्य की ऐसी आग तुम्हारे भीतर पैदा कर सकता हूं कि तुम पतिंगे बन जाओ, कि तुम सत्य की ज्योति में जल मिटने को तत्पर हो जाओ।

कौन कहता है
कि मेरी नाव पर मांझी नहीं है,
आज मांझी मैं स्वयं इस नाव का हूं!

मैं नहीं स्वीकार करता

जलधि की छलनामयी
मनुहारमय रंगीन लहरों का निमंत्रण
आज तो स्वीकार मैंने की जलधि की
अनगिनत विकराल इन उद्दाम लहरों की चुनौती! आज मेरे सधे हाथों में थमी पतवार।
लहरें नाव को आकाश तक फेंकें भले ही, जाएं ले पाताल तक वे साथ अपने,
किंतु पाएंगी न इसको लील!
उनकी हार निश्चित
नाथ लेगी नाग-सी विकराल लहरों को
हृदय की आस्था की डोर!
लहरें शीश पर ढोकर स्वयं ले जाएंगी
यह नाव मेरे लक्ष्य तक!
क्योंकि अपनी नाव का मांझी स्वयं मैं,
और मेरे सधे हाथों में थमी पतवार!

यही मेरा संदेश हैः मांझी बनो! पतवार उठाओ! थोड़ी पतवार चलाओ, हाथ सध जाएंगे। परमात्मा ने तुम्हारे हाथ इस योग्य बनाए हैं कि सध सकते हैं। सधना उनकी क्षमता है। बैसाखियों पर न चलो, अपने पैरों पर चलो! अपने मांझी बनो!
और घबड़ाओ मत। सागर की जो उद्दाम लहरें तुम्हें पुकार रही हैं, वे ही तुम्हें परमात्मा के किनारे तक ले जाएंगी। चुनौतियां ही अवसर हैं। चूको मत। हर चुनौती को अवसर बना लो।
राह पर पड़े पत्थर ही सीढ़ियां बन जाएंगे--तुम जरा सम्हलो, तुम जरा जागो! तुम्हें पता नहीं कि तुम्हारे भीतर कौन बैठा है! वही, जिसे तुम खोज रहे हो, तुम्हारे भीतर बैठा है। खोजने वाला और जिसे हम खोज रहे हैं, दो नहीं हैं। तुम्हारी अनंत क्षमता है। अमृतस्य पुत्रः! तुम अमृत के पुत्र हो!

प्रिय! तुम्हारे किस सजीले स्वप्न का आकार हूं मैं!
जो तुम्हारे नेत्र में नत है, वहीशृंगार हूं मैं।
एक ही थी दृष्टि जिसमें
सृष्टि मेरी मुस्कुराई,
थी वही मुसकान जिसमें
हंसी जाकर लौट आई,
थी तुम्हारी गति कि जो
दुख में सदा सुख बन समाई
भाग्य-रेखा क्षितिज-रेखा
बन प्रभा से जगमगाई,
टूट कर भी नित्य बजता हूं, तुम्हारा तार हूं मैं। प्रिय! तुम्हारे किस सजीले स्वप्न का आकार हूं मैं।

कौन सा वह क्षण दिया
जो प्राण में अनुराग बांधे,
कौन सा वह बल दिया
अनुराग में भी आग बांधे,
कौन सा साहस दिया जो
भूमि के भी भाग बांधे,
भूमि-भागों के मुकुट पर
मुस्कुराता त्याग बांधे,
सूख कर भी जो हृदय पर खिल रहा है, हार हूं मैं। प्रिय! तुम्हारे किस सजीले स्वप्न का आकार हूं मैं!

चंद्र निष्प्रभ हो चला अब
रात ढलती जा रही है,

कौन सा संकेत है जो
सांस चलती जा रही है,
अवधि जितनी कम बची
उतनी मचलती जा रही है,
दीप्ति बुझने की नहीं
वह और जलती जा रही है,
मृत्यु को जीवन बनाने का अमिट अधिकार हूं मैं।
प्रिय! तुम्हारे किस सजीले स्वप्न का आकार हूं मैं!

तुम उस परमात्मा के स्वप्न हो। तुममें वही आकार लिया है, रूपायित हुआ है। तुम्हारी वीणा में उसी का संगीत छिपा है, छेड़ो!
जो बुद्धों का संदेश है--सब बुद्धों का, समस्त बुद्धों का--वही मेरा संदेश हैः अप्प दीपो भव! अपने दीये बनो! अपने मांझी बनो!
आज इतना ही।

अमी झरत, बिगसत कंवल
सातवां प्रवचन

जो जागे सो सबसे न्यारा

सब जग सोता सुध नहिं पावै। बोलै सो सोता बरड़ावै।।
संसय मोह भरम की रैन। अंधधुंध होए सोते अैन।।
जप तप संयम औ आचार। यह सब सुपने के ब्यौहार।।
तीर्थ-दान जग प्रतिमा-सेवा। यह सब सुपना लेवा-देवा।।
कहना सुनना हार औ जीत। पछा-पछी सुपनो विपरीत।।
चार बरन औ आश्रम चार। सुपना अंतर सब ब्यौहार।।
शट दरसन आदि भेद-भाव। सुपना अंतर सब दरसाव।।
राजा-रानी तप बलवंता। सुपना माहिं सब बरतंता।।
पीर औलिया सबै सयाना। ख्वाब माहिं बरतै विध नाना।।
काजी सैयद औ सुलताना। ख्वाब माहिं सब करत पयाना।।
सांख जोग औ नौधा भकती। सुपना में इनकी इक बिरती।।
काया कसनी दया औ धर्म। सुपने सुर्ग औ बंधन कर्म।।
काम क्रोध हत्या परनास। सुपना माहिं नर्क निवास।।
आदि भवानी संकर देवा। यह सब सुपना लेवा-देवा।।
ब्रह्मा बिष्नु दस औतार। सुपना अंतर सब ब्यौहार।।
उद्भिज सेदज जेरज अंडा। सुपनरूप बरतै ब्रह्मंडा।।
उपजै बरतै अरु बिनसावै। सुपने अंतर सब दरसावै।।
त्याग ग्रहन सुपना ब्यौहारा। जो जागे सो सबसे न्यारा।।
जो कोई साध जागिया चावै। सो सतगुरु के सरनै आवै।।
कृतकृत बिरला जोग सभागी। गुरमुख चेत सब्दमुख जागी।।
संसय मोह-भरम निस नास। आतमराम सहज परकास।।
राम सम्हाल सहज धर ध्यान। पाछे सहज प्रकासै ग्यान।।
जन दरियाव सोई बड़भागी। जाकी सुरत ब्रह्म संग जागी।।

ज्वार उठा जब-जब तूफानों में,
तट मेरा मझधार हो गया।
स्नेह-छांव छुट गई हाथ से,
छाया-पथ अंगार हो गया।
बेसुध सी रो पड़ी जिंदगी, स्वप्न पले के पले रह गए।
नयन ज्योति हो गई परायी, दीप जले के जले रह गए।

एक स्वप्न झूठा-झूठा सा,
जीने का विश्वास दे गया।
पांवों में बेड़ियां बांध कर,
चलने का आभास दे गया।
नयनों में चुभ गए अश्रुकण,
आशाओं का दर्पण फूटा।
कदम बढ़ाते ही आगे को,
फिसले पांव गीत-घट फूटा।
ठहर गए अधरों पर आंसू,
बिखर गया उल्लास धूल में।
चाह लुटी सोई अंगड़ाई,
उलझ गया मधुमास शूल में।
गीत बन गई मौन वेदना, भाव छले के छले रह गए।
दर्पण ने सब कुछ कह डाला, अधर सिले के सिले रह गए।

अंतर में पतझार छिपाए,
उपवन में आंधी बौराई।
हरसिंगार झर गया अजाने,

झुलस गई लतिका तरुणाई।
बिखर गया मनभावन सौरभ,
रही देखती साध कुंआरी,
धूल-धूसरित सूना अंबर,
खोई सी रजनी उजियारी।
टूट गई डाली से डाली,
उखड़ गई सांसों से धड़कन।
ठूंठ बनी रह गई कामना,
उजड़ गई कसमों की कसकन।
यौवन के फूटे अंकुर के पात हिले के हिले रह गए।
उपवन की लुट गईं बहारें, फूल खिले के खिले रह गए।

अनजाना सा एक सपेरा,
मंत्रों की डोली चढ़ आया।
नागिन डसी बीन की धुन में,
अपना ही हो गया पराया।
सिसक उठी सिंदूरी बिंदिया,
बिखर गया नैनों का काजल।
बांझ हो गई मिलन प्रतीक्षा,
बंधन बनी परायी पायल।
फूट गए अवशेष घरौंदे,
स्वप्न रहा सोया का सोया।
सब कुछ ही रह गया देखता,
बेसुध आंगन खोया-खोया।
छूट गए हाथों के बंधन, नयन मिले के मिले रह गए,
डोली पर चढ़ चली बावरी, द्वार खुले के खुले रह गए।

यह जीवन इतना क्षणभंगुर है, फिर भी हम भरोसा कर लेते हैं। हमारे भरोसे
की क्षमता अपार है। हमारा भरोसा चमत्कार है। पानी का बबूला है यह जीवन--अब फूटा, तब फूटा। फिर भी हम कितने सपने संजो लेते हैं। सपने में भी हम कितनी आस्था कर लेते हैं। कि सपना भी सच मालूम होने लगता है। आस्था हो तो सपना भी सच हो जाता है। सच मालूम होता है कम से कम। और न मालूम कितने स्वप्न हैं! जितने लोग हैं, उतने स्वप्न हैं। जितने मन हैं, उतने स्वप्न हैं। संसार के स्वप्न हैं, त्याग के स्वप्न हैं। नरक के स्वप्न हैं, स्वर्ग के स्वप्न हैं।
जो जानते हैं, उनका कहना हैः स्वप्न देखने वाले को छोड़ कर और सब स्वप्न है। सिर्फ द्रष्टा सत्य है। सब दृश्य झूठे हैं।
और यही क्रांति है--दृश्य से द्रष्टा पर आ जाना। यही छलांग है। स्वप्न
तो झूठ हैं ही, स्वप्नों को देखने वाला भर झूठ नहीं है।
मगर हम बड़े उलटे हैं। स्वप्नों को देखने वाले को तो देखते ही नहीं, स्वप्नों में ही उलझे रह जाते हैं। और एक स्वप्न टूटा तो दूसरा बना लेते हैं। ऐसा भी हो जाता है कि धन का स्वप्न टूटा, तो त्याग का स्वप्न निर्मित कर लेते हैं। घर-गृहस्थी का स्वप्न टूटा, तो त्याग-विरक्ति का स्वप्न निर्मित कर लेते हैं। इस लोक का स्वप्न टूटा, तो परलोक के स्वप्न निर्मित कर लेते हैं।
यह क्रांति नहीं है। यह धर्म नहीं है। यह रूपांतरण नहीं है। रूपांतरण
तो बस एक है--दृश्य से द्रष्टा पर सरक जाना। वह जो दिखाई पड़ रहा है, फिर चाहे सुख हो, चाहे दुख हो, सब बराबर है। हार हो कि जीत हो, बराबर है। देखने वाला भर सच है। देखने वाले को कब देखोगे? जिस दिन देखने वाले को देखोगे, उस दिन जाग गए।
जागरण का कोई और अर्थ नहीं है। जागरण का इतना ही अर्थ है कि द्रष्टा स्वयं के बोध से भर गया। यही ध्यान, यही समाधि! और फिर देर नहीं लगती--अमी झरत, बिगसत कंवल! झरने लगता है अमृत, कमल खिलने लगते हैं। तुम जागो भर।

स्वप्न तुम्हें सुलाए हैं। स्वप्नों ने तुम्हें मादकता दे दी है, तुम्हारी आंखों को बोझिलता दे दी है। तुम्हारी पलकों को स्वप्नों ने बंद कर दिया है। और तुम जानते भी हो। ऐसा भी नहीं कि नहीं जानते। ऐसा भी नहीं कि दरिया कहें तब तुम जानोगे। रोज कोई अरथी उठती है। मगर मन में एक भ्रांति बनी रहती है कि अरथी सदा दूसरे की उठती है। और बात एक अर्थ में ठीक भी मालूम पड़ती है। तुमने सदा दूसरे की अरथी ही उठते देखी है--कभी अ की, कभी ब की, कभी स की; अपनी अरथी तो उठते देखी नहीं। अपनी अरथी तो तुम उठते कभी देखोगे भी नहीं। दूसरे देखेंगे। इसलिए ऐसा लगता है कि मौत सदा दूसरे की होती है, मैं तो कभी नहीं मरता। तो भ्रांति को संजोए रखते हैं हम। हर आदमी ऐसे जीता है जैसे यह जीवन समाप्त न होगा; ऐसे लड़ता है जैसे सदा यहां रहना है; ऐसा जूझता है कि रत्ती भर उससे छिन न जाए; जब कि सब छिन जाएगा।
छूट गए हाथों के बंधन, नयन मिले के मिले रह गए,
डोली पर चढ़ चली बावरी, द्वार खुले के खुले रह गए।
यौवन के फूटे अंकुर के पात हिले के हिले रह गए,
उपवन की लुट गईं बहारें, फूल खिले के खिले रह गए।
गीत बन गई मौन वेदना, भाव छले के छले रह गए।
दर्पण ने सब कुछ कह डाला, अधर सिले के सिले रह गए।
बेसुध सी रो पड़ी जिंदगी, स्वप्न पले के पले रह गए,
नयन ज्योति हो गई परायी, दीप जले के जले रह गए।
सब पड़ा रह जाएगा। दीये जलते रहेंगे, तुम बुझ जाओगे। फूल खिलते रहेंगे, तुम झड़ जाओगे। संसार ऐसे ही चलता रहेगा। शहनाइयां ऐसे ही बजती रहेंगी, तुम न होओगे। वसंत भी आएंगे, फूल भी खिलेंगे। आकाश तारों से भी भरेगा। सुबह भी होगी। सांझ भी होगी। सब ऐसा ही होता रहेगा। एक तुम न होओगे।
यह एक कौन है, जो कभी अचानक प्रकट होता है जन्म में और फिर अचानक मृत्यु में विलीन हो जाता है? इस एक को पहचान लो। इस एक को जान लो। इस एक की स्मृति जगा लो। जिसने इस एक को जान लिया, उसका जीवन सार्थक है। अमी झरत, बिगसत कंवल! और सब तो सोए हुए हैं।
दरिया कहते हैंः सब जग सोता सुध नहिं पावै।
अपनी सुध नहीं है। सपनों की भलीभांति सुध है।
तुमने पुरानी कहानी सुनी न! दस आदमियों ने बाढ़ में आई हुई नदी पार की।
गांव के गंवार थे। नदी-पार जाकर एक ने कहा कि गिनती तो कर लो; जितने चले थे, उतने पार कर पाए या नहीं? बाढ़ भयंकर है। कोई बाढ़ में बह न गया हो।
गिनती भी की। और दसों बैठ कर वृक्ष के नीचे रोने लगे उसके लिए जो बाढ़ में बह गया। क्योंकि गिनती नौ ही होती थी, चले दस थे। और गिनती नौ इसलिए नहीं होती थी कि कोई बह गया था; गिनती नौ इसलिए होती थी कि प्रत्येक अपने को छोड़ कर गिनता था। गिनता था शेष को, गिनने वाला छूट जाता था, गिनने वाला नहीं गिना जाता था। एक ने गिना, दूसरे ने गिना, तीसरे ने गिना... दसों ने गिना। तब तो बात बिल्कुल पक्की हो गई। भूल होती एक से होती, दो से होती, दसों से तो भूल न होगी। और सबका निष्कर्ष आया नौ। तो जरूर एक साथी खो गया। दसों बैठ कर रोने लगे।
एक फकीर राह से गुजरता था। भले-चंगे दस आदमियों को रोते देखा, पूछाः हुआ क्या? किसलिए रोते हो?
उन्होंने कहाः हमारा एक साथी खो गया है। घर से दस चले थे। अब हम नौ हैं।
फकीर ने एक नजर डाली। दस ही थे। पूछाः जरा गिनती करो। देखी उनकी गिनती। समझ गया कि जो भूल पूरा संसार कर रहा है, वही भूल ये भी कर रहे हैं। भूल कुछ नई नहीं है, बड़ी पुरानी है, बड़ी प्राचीन है। जो इस भूल को करता है, वही गंवार है। जो इस भूल को करता है, वही अज्ञानी है। जो इस भूल से बच जाता है, उसी के जीवन में ज्ञान का सूर्य प्रकट होता है। अमी झरत, बिगसत कंवल! फकीर हंसने लगा, खिलखिला कर हंसने लगा। तो फकीर ने कहाः तुम भी वही भूल कर रहे हो जो पहले मैं करता था। तुम वही भूल कर रहे हो जो सारा संसार करता है। तुम बड़े प्रतिनिधि हो। तुम बड़े प्रतीकरूप हो। तुम साधारणजन नहीं हो, तुम सारे संसार का निचोड़ हो। अब मैं तुम्हारी गिनती करता हूं। अब मेरे ढंग से गिनती समझो। मैं एक-एक चांटा मारूंगा तुम्हें। जिसको चांटा मारूं

पहले, वह बोले एक। जब दूसरे को मारूं तो दो चांटे मारूंगा, तो वह बोले दो।
तीसरे को मारूं तो तीन मारूंगा, वह बोले तीन। ऐसे गिनती चलेगी।
मस्त-तड़ंग फकीर था। करारे चांटे मारे उसने। एक-एक को छठी का दूध याद दिला दिया! और जब पड़ा चांटा तो गिनती उठी एक। पड़े दो चांटे, गिनती उठी दो।
और ऐसे गिनती बढ़ती गई। और जब दस चांटे पड़े और गिनती उठी दस, तो उन दसों ने फकीर के पैर पकड़ लिए। उन्होंने कहाः मारा सो ठीक, पर तुम्हारा बड़ा धन्यवाद कि खोए को मिला दिया, कि डूबे को बचा लिया, कि जिसे हम समझते थे चूक ही चुके हैं, उसे लौटा दिया।
सदगुरु सिर्फ चांटे मार रहे हैं। करारे मारते हैं। छठी का दूध याद आ जाए, ऐसे मारते हैं। लेकिन नींद गहरी है, कोई और उपाय नहीं है। खूब झकझोरे जाओ तो ही शायद जागो। और एक बार अपनी गिनती कर लो तो बस, शेष करने को कुछ भी नहीं रह जाता।
सब जग सोता सुध नहिं पावै। बोलै सो सोता बरड़ावै।
और इस जगत में जो लोग बोल रहे हैं, सो रहे हैं और बोल भी रहे हैं। आखिर वार्ता तो चल ही रही है। वे सब नींद में बड़बड़ा रहे हैं।
तुम्हें यह भी कभी प्रतीति होती है कि तुम जो लोगों से बातें करते हो, होश में कर रहे हो? करनी थी, इसलिए कर रहे हो? करने में सार है, इसलिए कर रहे हो? करने से किसी का लाभ है, इसलिए कर रहे हो? कोई मंगल होगा? कोई कल्याण होगा? तुम किसलिए बातें कर रहे हो? बातों के लिए बातें चल रही हैं। बातों में से बातें चल रही हैं। बातों में से बतंगड़ बन जाते हैं। तुम एक कहते हो, दूसरा दूसरी कहता है। खाली नहीं रह सकते। लोग दिन-रात वार्ता में लगे हैं। हाथ कुछ लगता नहीं।
दरिया ठीक कहते हैंः नींद में बड़बड़ा रहे हो। तुम्हारे वचनों का कोई मूल्य नहीं है। तुम्हारे शब्दों का कोई मूल्य नहीं है। तुम्हारे शब्द निरर्थक। तुम्हारे वचन कूड़ा-कचरा। क्योंकि तुम्हीं जागे नहीं हो। सिर्फ जागों के वचन में अर्थ होता है। क्योंकि अर्थ ही जागरण से जन्मता है। बुद्धों के वचनों में जीवन होता है, आत्मा होती है। तुम्हारे वचन तो सड़ी हुई लाश हैं, जिनके भीतर कोई प्राण नहीं हैं। तुम्हें ही पता नहीं है और तुम दूसरों को जना रहे हो!
इस जगत में हर आदमी सलाह दे रहा है। कहते हैंः दुनिया में सबसे ज्यादा
जो चीज दी जाती है वह सलाह है और सबसे कम जो चीज ली जाती है वह भी सलाह है। सब सलाह दे रहे हैं, कोई सलाह ले नहीं रहा है। तुम्हें मौका मिल जाए तो तुम चूकते नहीं, तुम चुप नहीं रहते। तुम्हें जिन बातों का पता नहीं, उनके भी तुम उत्तर देते हो। तुमसे कोई पूछेः ईश्वर है? तो तुम में इतनी भी ईमानदारी नहीं है कि कह सको कि मुझे मालूम नहीं। तुम्हारे तथाकथित धार्मिक लोगों से ज्यादा बड़े बेईमान खोजने कठिन हैं! तुम तो छोटी-मोटी बेईमानियां करते हो कि दो और दो जोड़े और पांच कर लिए। तुम्हारी बेईमानियां तो बहुत छोटी-छोटी हैं। लेकिन तुम्हारे धार्मिक व्यक्तियों की, तुम्हारे पंडित-पुरोहितों की, तुम्हारे मुल्ला-मौलवियों की बेईमानियां तो बहुत बड़ी हैं। ईश्वर का कोई पता नहीं और कहते हैंः हां, ईश्वर है! जोर से कहते हैं, छाती ठोंक कर कहते हैं कि ईश्वर है।
ईश्वर को जाना है? बिना जाने कैसे कह रहे हो? और यह बेईमानी तो बड़ी से बड़ी हो गई। इससे बड़ी तो कोई बेईमानी नहीं हो सकती। और फिर ऐसे ही दूसरी तरफ दूसरे बेईमान हैं, जिन्होंने जाना नहीं और कहते हैंः ईश्वर नहीं है। पश्चिम में एक विचारक हुआ--टी.एच.हक्सले। उसने एक नये विचार, एक नई जीवन-दृष्टि को जन्म दिया। एक नया शब्द गढ़ा--एग्नास्टिक। नास्टिक का अर्थ अंग्रेजी में होता हैः जो मानता है कि मुझे ज्ञात है। नास्टिक का अर्थ होता हैः ज्ञानी, पंडित। हक्सले ने नया शब्द गढ़ा--एग्नास्टिक। हक्सले बड़ा ईमानदार आदमी था। उसने कहाः मुझे मालूम नहीं है कि ईश्वर है। और मुझे यह भी मालूम नहीं है कि ईश्वर नहीं है। और लोग मुझसे पूछते हैं कि तुम कौन हो, आस्तिक हो कि नास्तिक? मानते हो कि नहीं मानते? ईश्वरवादी कि अनीश्वरवादी? मैं क्या कहूं? बड़ा ईमानदार आदमी रहा होगा। बड़ा खरा आदमी था। उसने कहाः मुझे कोई नया शब्द गढ़ना पड़ेगा। क्योंकि लोग पूछते हैं, कुछ

न कहो तो अभद्रता मालूम होती है। और लोगों ने तो सीधी कोटियां बांध रखी हैं--या तो कहो नास्तिक या कहो आस्तिक। मगर दोनों हालत में झूठ हो जाता है।
तो हक्सले ने सिर्फ सौ साल पहले एक नया शब्द गढ़ा--एग्नास्टिक।
एग्नास्टिक का अर्थ होता हैः मुझे पता नहीं। मुझे अभी कुछ भी पता नहीं।
खोज रहा हूं, तलाश रहा हूं, टटोल रहा हूं।
मैं कहूंगाः हक्सले कहीं ज्यादा धार्मिक व्यक्ति है, बजाय तुम्हारे शंकराचार्यों के, कि वेटिकन के पोप के। ज्यादा धार्मिक आदमी है। क्योंकि धर्म यानी ईमान। और ईमान की शुरुआत यहीं से होनी चाहिए। न तो रूस के नास्तिकों में ईमानदारी है, क्योंकि उन्हें कोई पता नहीं है; न खोजा है, न ध्यान किया, न धारणा की, न समाधि में उतरे। और कहते हैंः ईश्वर नहीं है! छोटे-छोटे बच्चों को रूस में सिखाया जा रहा है कि ईश्वर नहीं है। स्कूल में पाठ हैं कि ईश्वर नहीं है। छोटे-छोटे बच्चे दोहराते हैं कि ईश्वर नहीं है। दोहराते-दोहराते बड़े हो जाते हैं, बड़े में भी दोहराते रहते हैं।
तुम सोचते हो, तुम्हारा ईश्वर रूस की नास्तिकता से कुछ भिन्न है? बचपन
से सुना है कि है, तो दोहराते हो। घर में, बाहर, सब तरफ दोहराया जा रहा है, तो तुम भी दोहरा रहे हो। तुम ग्रामोफोन रिकार्ड हो। तुम अपनी कब कहोगे? और जब तक अपनी न कहोगे, तब तक ईमान नहीं है।
खोजो! तलाश करो! और तलाश जैसे ही तुम शुरू करोगे, यह सवाल सबसे बड़ा महत्वपूर्ण हो जाएगा कि तलाश कहां करें--बाहर कि भीतर?
स्वभावतः, पहले भीतर। पहले अपने को तो पहचानो! पहले खोजी को तो खोजो!
और मजा यह है कि जिसने खोजी को खोजा, उसे सब मिल जाता है। स्वयं को जानते ही सत्य के द्वार खुल जाते हैं। आत्मा को पहचानते ही परमात्मा पहचान लिया जाता है। आत्मा तुम्हारे भीतर झरोखा है परमात्मा का। आत्मा तुम्हारे भीतर लहर है उसके सागर की। आत्मा उसका अणु है, बूंद है। और बूंद में सब सागरों का राज छिपा है। एक बूंद को ठीक से समझ लो तो तुमने सारे सागरों का राज समझ लिया। जल का सूत्र समझ में आ जाएगा। जल का स्वभाव समझ में आ जाएगा। सब जग सोता सुध नहिं पावै। बोलै सो सोता बरड़ावै।।
और यहां पंडित हैं, पुरोहित हैं और प्रवचन दिए जा रहे हैं और धर्मशास्त्र समझाए जा रहे हैं, रामायण पढ़ी जा रही है, गीता पढ़ी जा रही है, कुरान समझाए जा रहे हैं। किससे तुम समझ रहे हो? समझाने वाला छाती पर हाथ रख कर कह सकता है कि उसने जाना है? जरा उसकी आंखों में झांको। उसकी आंखें उतनी ही अंधी हैं जितनी तुम्हारी; शायद थोड़ी ज्यादा हों, कम तो नहीं। क्योंकि उसकी आंखों पर शब्दों का और शास्त्रों का बोझ तुमसे ज्यादा है। जरा उसके जीवन में तलाशो। और न तो तुम्हें सुगंध मिलेगी सत्य की और न तुम्हें आलोक मिलेगा आत्मा का। जरा उसके पास बैठो। न तो आनंद का झरना फूटता हुआ मालूम पड़ेगा, न शांति की हवाएं बहती हुई मालूम होंगी। हां, रामायण शायद तुम्हें वह ठीक से समझाए और गीता के शब्द-शब्द का विश्लेषण करे। मगर यह सब बाल की खाल निकालना है। इसका कोई भी मूल्य नहीं है।

कब आएगा नवल सवेरा,
कब जागेगा सूरज मेरा,
देख अंधेरे की तरुणाई,
मन की चाह मिटी जाती है।
इंतजार करते-करते ही
सारी उम्र कटी जाती है।

जिधर देखता नयन उठा कर,
सघन बबूलों के कानन हैं।
पुष्प जले कुंजों में खिल कर, मरुथल हरे-भरे मधुवन हैं।
देख तपन सारी धरती की,
मन की प्यास लुटी जाती है।

यही आस लेकर जीता था,

चाह स्वयं वरदान बनेगी।
तृष्णा की अनवरत साधना
सावन का प्रतिमान बनेगी।
देख पतझरों में सावन को,
घिरी घटा सिमटी जाती है।

सूरज बन कर उग आने का,
प्रण था जगते संकल्पों का।
किंतु प्रकंपित नक्षत्रों सा, मन अंकुवाए वैकल्पों का।
संशयवश चिंतन करते ही,
जीती गोट पिटी जाती है।

नित्य भोर की किरण चूम कर, सोए स्वप्न जगा जाती है।
किंतु सांझ के सूनेपन में, मौन वेदना छा जाती है।
अंगुली पोर-पोर गिनते ही, थक कर स्वयं हटी जाती है।

इतनी दूर आ गया चल कर,
फिर भी लक्ष्य न दिख पाता है।
मेरे दो नयनों का दर्शन,
द्विविधा बन कर भटकाता है।
इंतजार करते-करते ही,
सारी उम्र कटी जाती है।

इंतजार ही इंतजार में उम्र को बिता दोगे? आशा ही आशा में उम्र को गंवा दोगे, या कि कुछ पाना है? पाना है तो कल पर मत छोड़ो। पाना है तो आज और अभी झांको। पाना है तो टालो मत। क्योंकि टालना सोने की एक प्रक्रिया है। टालना नींद का एक ढंग है। टालना नींद की दवा है। टालो मत। यह मत कहो कल। आज, अभी!
जागना है तो अभी, सोना है तो कल। जो सोया सो खोया। क्योंकि आज टालेगा
कल पर, कल फिर टालेगा कल पर। टालना आदत हो जाएगी। इंतजार कहीं तुम्हारी आदत न हो जाए। जिसे पाया जा सकता है, उसका इंतजार क्यों? जो तुम्हारे भीतर मौजूद है, उसका स्थगन क्यों? अभी क्यों नहीं? उससे ज्यादा मूल्यवान और कुछ भी नहीं है।
सब टालो, आत्मबोध मत टालना। सब टालो, जागने की आकांक्षा मत टालना। सब टालो, जागने पर सारी ऊर्जा को उंडेल दो। क्योंकि एक क्षण भर को भी तुम जाग जाओ और सपने बिखर जाएं, तो तुम्हारे जीवन में क्रांति उपस्थित हो जाएगी। फिर तुम वही न हो सकोगे जो तुम थे। फिर तुम नये हो जाओगे। फिर तुम्हारा संबंध शाश्वत से जुड़ जाएगा। अमी झरत, बिगसत कंवल!
संसय मोह भरम की रैन।
बड़ी अंधेरी रात है। और अंधेरी रात बनी है संशय से, मोह से, भ्रम से। मन जीता ही संशय के भोजन से है। मन कहता हैः यह करो, वह करो। मन हमेशा यह या वह, इसमें डोलता रहता है। मन कभी तय ही नहीं कर पाता। मन का तय करना स्वभाव नहीं है। मन जीता ही अनिश्चय में है।
कभी तय भी तुम्हें करना पड़ता है तो तुम मजबूरी में तय करते हो। जब कोई विकल्प ही नहीं रह जाता, तब तय करते हो। मगर तब बहुत देर हो गई होती है।
दो तरह के लोग हैं यहां इस संसार में। भीड़ तो उनकी है जो बिना तय किए
ही जीते हैं। जैसे पानी के झकोरों में डोलता हुआ लकड़ी का टुकड़ा--कभी इधर, कभी उधर, पानी की लहरें जहां ले जाएं। न कोई किनारे का पता है, न कोई मंजिल का होश है, न कुछ अपना बोध है। लहरों के भरोसे, लहरों के बंधन में बंधा,

हवाओं के झोंकों में बंधा। न कोई दिशा है, न कोई गंतव्य है। गति भी विक्षिप्त है। ऐसे ही अधिक लोग हैं।
तुम कैसे जी रहे हो, जरा गौर करना। तुम्हारा जीना करीब-करीब ऐसा ही है। राह पर जाते थे, किसी ने कहाः अरे, फलां फिल्म देखी कि नहीं? बड़ी सुंदर है! तुमने सोचा, चलो देख ही आएं। फिल्म देखने चल दिए। एक हवा का झोंका आया। एक धक्का लगा। फिल्म देख आए। फिल्म में पास कोई स्त्री बैठी थी। पहचान हो गई। यह सोचा ही नहीं था कि फिल्म में यह मामला इतना बढ़ जाएगा। विवाह कर बैठे। बाल-बच्चे हो गए। यह सब हुआ चला जा रहा है।
एक यहूदी विचारक ने अपनी आत्मकथा लिखी है। उसमें उसने लिखा है कि मेरा होना बिल्कुल संयोगवशात है। उसने लिखा है कि मैं शुरू से ही शुरू करता हूं, कि मेरे पिता एक ट्रेन में सफर कर रहे थे। स्टेशन पर उतरे। ट्रेन छह घंटे देर से पहुंची थी। आधी रात हो गई थी। बर्फ पड़ रही थी। रूस की कहानी है। टैक्सियां भी उपलब्ध न थीं। इतनी रात तक कोई टैक्सी ड्राइवर प्रतीक्षा करने रुका भी नहीं था। कोई और उपाय न देख कर, जो होटल के दरवाजे बंद हो रहे थे, भीतर गए और कहाः कम से कम एक कप कॉफी तो मुझे पीने मिल जाए, इसके बाद बंद करना।
जो महिला होटल बंद कर रही थी, उसने एक कप कॉफी दी। उसने खुद भी एक कप कॉफी पी। रात सर्द थी। फिर दोनों ने बातचीत की। यात्री ने कहा कि मैं बड़ी मुश्किल में पड़ा हूं। छह मील दूर जाना है, कोई टैक्सी नहीं।
उस महिला ने कहाः ऐसा करो कि मुझे भी घर जाना है, मेरी गाड़ी में ही आ जाओ।
गाड़ी में बैठ गए। सर्दी थी तो पास-पास सरक कर बैठे। होटल बंद थी। मैनेजर कभी का घर जा चुका था। ठहरने को कोई जगह न मिलती थी। तो उस महिला ने कहाः तुम मेरे ही घर रात गुजार दो। अब दो-चार घंटे तो रात और बची है। फिर सुबह उठ कर होटल चले जाना।
ऐसे बात बढ़ती गई, बढ़ती गई, बढ़ती गई और फिर बिगड़ कर रही! उस विचारक ने लिखा हैः काश, उस रात ट्रेन लेट न होती तो मैं कभी पैदा ही न होता; या कि होटल खुली मिल गई होती तो मैं पैदा न होता; या कि एकाध टैक्सी ड्राइवर भूला-भटका बैठा ही रह गया होता तो मैं पैदा न होता; या कि स्त्री जो होटल बंद कर रही थी, एक क्षण पहले होटल बंद करके जा चुकी होती तो मैं कभी पैदा ही न होता। बिल्कुल संयोगवशात मालूम होता है सब।
तुम जरा अपनी जिंदगी गौर से देखो, और तुम ऐसे ही संयोग पाओगे। ऐसे ही संयोगों का सिलसिला! इसको जिंदगी कहते हो? संयोगों के सिलसिले का नाम जीवन नहीं है। संयोगों का सिलसिला तो एक धोखा है। संयोगों के सिलसिले से तो ज्यादा से ज्यादा एक स्वप्न पैदा हो सकता है, सत्य निर्मित नहीं होता। लेकिन मन का ढंग यही है। मन ऐसे ही जीता है। मन ऐसे ही अनिश्चय में डांवाडोल होता रहता है। अंधा जैसे टटोलता-टटोलता कुछ पकड़ लेता है, पा लेता है--ऐसी हमारी जिंदगी है। और जो हम पा लेते हैं, वह भी मौत हमसे छीन लेती है।
संसय मोह भरम की रैन।
हमारे मोह क्या हैं? हमारी आसक्तियां क्या हैं?
बस ऐसे ही, संयोगवशात, नदी-नाव-संयोग! और कितने भ्रम हम पाल लेते हैं! हमने एक-दूसरे से कितनी आशाएं कर रखी हैं, कितनी अपेक्षाएं कर रखी हैं! यह भी नहीं सोचते कि दूसरा इन अपेक्षाओं को कभी पूरा कर पाएगा? इन आशाओं को पूरा कर पाएगा? और जब दूसरा पूरा नहीं कर पाता है तो हम सोचते हैं कि बड़ा धोखा खाया, बड़ा धोखा दिया गया।
कोई धोखा नहीं दे रहा है। तुम्हारी अपेक्षाएं ही ऐसी हैं जो कोई पूरी नहीं कर सकता। दूसरा भी तुम्हारे साथ इसीलिए है कि उसकी भी अपेक्षाएं हैं, तुम भी पूरी नहीं कर रहे हो। मोह हैं और मोह-भ्रांतियां टूटती हैं रोज! मगर नये मोह हम बना लेते हैं। ऐसे भ्रम, मोह, संशय, अनिश्चय की यह अंधेरी रात है। इस अंधेरी रात में हम खोज में लगे हैं। किसको खोज रहे हैं, यह भी पक्का नहीं है।
पश्चिम में दर्शनशास्त्र की परिभाषा ऐसी की जाती है--कि दार्शनिक ऐसा अंधा है, जो अंधेरी रात में, एक घनघोर अंधेरे कमरे में, एक काली बिल्ली को

खोज रहा है, जो वहां है ही नहीं। एक तो अंधे, अमावस की रात, बंद कमरा, काली बिल्ली--और वह भी वहां है नहीं, खोज रहे हैं!
यह दर्शनशास्त्र की ही परिभाषा नहीं है, यह तुम्हारे जीवन की भी परिभाषा है।
अंधधुंध होए सोते अैन।
ऐसे नींद में और अंधापन बढ़ता है, और अंधेरा बढ़ता है।
रोज-रोज अंधेरा बढ़ रहा है, और रोज-रोज अंधापन बढ़ रहा है। बच्चों के पास
तो थोड़ी आंख होती है, बूढ़ों के पास वह भी नहीं रह जाती। बच्चों के पास तो थोड़ा ताजा बोध होता है, बूढ़ों के पास वह भी धूमिल हो जाता है। खूब धुआं जम जाता है। धूल बैठ जाती है। बच्चों के पास तो थोड़ा निर्दोष चित्त भी होता है, बूढ़ों के पास कहां निर्दोष चित्त!
जीसस ने कहा हैः जो फिर से बच्चों की भांति हो जाएंगे, वे ही मेरे प्रभु के राज्य में प्रवेश कर सकते हैं। तुम्हें सीखनी होगी कला फिर से बच्चों की भांति होने की। छोड़ना होगा तथाकथित ज्ञान। छोड़ना होगा उधार पांडित्य, ताकि फिर तुम निर्दोष हो सको; ताकि फिर तुम खुली आंखों से जगत को, अस्तित्व को देख सको। छोड़ने होंगे स्वप्न, क्योंकि स्वप्नों में तुम जितने उलझ जाते हो, उतनी ही अपने पर दृष्टि जानी बंद हो जाती है।

गागर तो बूंद-बूंद रिसती ही जाती है,
जीवन की आस किंतु वैसी की वैसी है।

हर डग पर हर पग पर जाने अनजाने ही,
एक बूंद गिरती है और बिखर जाती है।
फूटी सी गागर की छलना का रूप देख,
अधरों की प्यास तनिक और सिहर जाती है।
रूप की दुपहरी तो ढलती ही जाती है, तरुणाई प्यास किंतु वैसी की वैसी है।
गागर तो बूंद-बूंद रिसती ही जाती है, जीवन की आस किंतु वैसी की वैसी है।

चाहों का मरुथल जब पीता अंगारों को, नयनों का रत्नाकर और उमड़ पड़ता है।
ढलती हैं संध्या की घड़ियां तब चुपके से, आशा का सूरज जब और तेज चढ़ता है।
संध्या तो रोज-रोज आकर छल जाती है, अनबोली सांस किंतु वैसी की वैसी है।
गागर तो बूंद-बूंद रिसती ही जाती है।
जीवन की आस किंतु वैसी की वैसी है।

वासंती मौसम में शाख-शाख जागे जब, फूल सी उमंग और रह-रह कर बढ़ती है।
अभिशापों की करवट लेकर तब अंगड़ाई,
पतझर का हाथ पकड़ धीमे से चढ़ती है।
पंखुरियां टूट-टूट बिखरी ही जाती हैं,
धूल की सुवास किंतु वैसी की वैसी है।
गागर तो बूंद-बूंद रिसती ही जाती है,
जीवन की आस किंतु वैसी की वैसी है।
और जीवन रोज चुका जा रहा है। जीवन रोज बहा जा रहा है। जागो! समय रहते जागो! पीछे बहुत पछतावा होगा। लेकिन फिर पछतावे में भी कुछ सार नहीं। जब तक शक्ति है, जागो!
और कल का क्या पता? अगले क्षण का भी पता नहीं है। श्वास जो बाहर गई, भीतर आएगी भी, इसका भी पक्का नहीं है। इसलिए जागो! क्षण भर भी मत टालो। इसी क्षण जागो!
जप तप संयम औ आचार। यह सब सुपने के ब्यौहार।।

बड़े क्रांतिकारी वचन हैं। सीधे-सादे, मगर आग के अंगारों जैसे हैं। तुम्हारा जप, तुम्हारा तप, तुम्हारा संयम, तुम्हारा आचार, सब सपने का व्यवहार है। क्योंकि जागते तो तुम हो ही नहीं। जैसे सोए-सोए दुकान करते हो, वैसे ही सोए-सोए मंदिर भी जाते हो। दुकान भी सपना, तुम्हारा मंदिर भी सपना। चलो ऐसा कर लो कि दुकान अधार्मिक सपना और मंदिर धार्मिक सपना। भोजन भी करते हो सोए-सोए। उपवास भी करते हो सोए-सोए। नींद तो टूटती ही नहीं। ध्यान तो उठता ही नहीं। आत्मबोध तो जगता ही नहीं। तो तुम्हारा जप भी व्यर्थ है।
देख लो तुम जप करने वालों को, माला जपते रहते हैं, माला फेरते रहते हैं। माला भी फेरते रहते हैं, नजर भी रखते हैं कि दुकान पर कोई ग्राहक धोखा न दे जाए, नौकर कुछ पैसा न मार दे। माला भी जपते रहते हैं; कुत्ता घुस जाता है, उसको भी भगा देते हैं। माला भी जपते रहते हैं, आंखों से इशारा भी करते रहते हैं--कि देखो, कौन आया, कौन गया!
तुम्हारी नींद कैसी है! तुम राम-राम भी जपते रहते हो और भीतर हजार-हजार सपने और हजार-हजार विचार भी चलते रहते हैं। और राम-राम ऊपर और भीतर सारा उपद्रव!
जप तप संयम औ आचार।
तुम चाहे घर छोड़ कर भाग जाओ, शरीर को सुखा लो, सिर के बल खड़े रहो, जंगल
की गुफाओं में रहो, भूखे-प्यासे रहो--कुछ फर्क न पड़ेगा। तुम चाहे दुर्जन से सज्जन हो जाओ, चोरी न करो, बेईमानी न करो--तो भी कुछ फर्क न पड़ेगा।
दरिया कहते हैंः फर्क तो सिर्फ एक बात से पड़ता है, वह है--ध्यान की लपट तुम्हारे भीतर पैदा हो। यह दरिया का जोर समझना किस बात पर है। दरिया यह नहीं कह रहे हैं कि चोरी करो, ख्याल रखना। वे यह नहीं कह रहे हैं कि संयम मत साधना। तुम्हारी मौज। तुम्हें जो सपना देखना हो देखना। कुछ लोग पापी होने का सपना देखते हैं, कुछ लोग पुण्यात्मा होने का; तुम्हारी जो मौज। दरिया तो यह कह रहे हैं कि हमारी तरफ से दोनों सपने हैं।
रात एक आदमी सोता है और चोरी का सपना देखता है--कि पहुंच गया, खोल लिया खजाना, अरबों-खरबों का रुपया सरका दिया। और एक आदमी रात सपना देखता है कि सब त्याग कर दिया, नग्न दिगंबर होकर जंगल में साधना को चल पड़ा। तुम सोचते हो उन दोनों के सपने में सुबह कुछ फर्क होगा? जब दोनों जागेंगे, अपनी-अपनी खाट पर पड़ा हुआ पाएंगे। न तो खजाने वाले के हाथ में खजाना है और न जंगल जो गया था वह जंगल पहुंचा है। दोनों सपने देख रहे थे। क्या तुम यह कहोगे कि जिसने संन्यास लेने का सपना देखा उसने अच्छा सपना देखा और जिसने चोरी का सपना देखा उसने बुरा सपना देखा? क्या सपने भी अच्छे और बुरे हो सकते हैं? सपने तो झूठे होते हैं, अच्छे-बुरे नहीं होते। इसलिए प्रश्न अच्छे- बुरे के बीच चुनने का नहीं है; प्रश्न तो सपने और सत्य के बीच चुनने का है। इस मौलिक बात को याद रखो। सवाल यह नहीं है कि क्या करो--अच्छा करो कि बुरा करो। सवाल यह है कि करने वाला कौन है? जाग कर करो! फिर तुम जो भी करो, ठीक है। जाग कर जो भी हो, पुण्य है। और सोए-सोए जो भी हो, पाप। फिर पाप में चाहे तुम मंदिर बनवाओ, धर्मशालाएं बनवाओ, त्याग-तपश्चर्या करो--कुछ भेद न पड़ेगा। जब मरोगे तब तुम पाओगे--जैसे धन छूट गया दूसरों के हाथ से, वैसे ही तुम्हारे हाथ से संयम छूट गया। जब मरोगे, नींद टूटेगी। मौत सुबह है; जिंदगी की नींद टूटती है। सिर्फ मौत उनको नहीं डरा सकती, जिन्होंने खुद अपनी नींद जीते-जी तोड़ दी है। उनके लिए मौत नहीं आती। नहीं कि उनकी देह नहीं जाती; देह तो जाएगी ही; मगर वे जागे हुए मौत में प्रवेश करते हैं। तीर्थ-दान जग प्रतिमा-सेवा। यह सब सुपना लेवा-देवा।।
इससे समझो कि जाओ तीर्थ, कि दान करो, कि प्रतिमाएं पूजो, कि जगत की सेवा करो, कि अस्पताल खोलो, कि स्कूल बनवाओ...
यह सब सुपना लेवा-देवा।
यह सब सपने का लेन-देन है।
कहना सुनना हार औ जीत।
यहां बिना जागे कुछ भी कहो और कुछ भी सुनो, हारो कि जीतो।
पछा-पछी सुपनो विपरीत।

पक्ष में रहो कि विपक्ष में रहो, हिंदू कि मुसलमान, आस्तिक कि नास्तिक--कुछ फर्क नहीं पड़ता; सब स्वप्न का लोक है।
चार बरन औ आश्रम चार।
फिर चाहे ब्राह्मण समझो अपने को, चाहे शूद्र; फिर चाहे जवान समझो अपने को, चाहे वृद्ध; चाहे गृहस्थ, चाहे वानप्रस्थ, चाहे संन्यासी--कुछ फर्क न पड़ेगा।
सुपना अंतर सब ब्यौहार।
शट दरसन आदि भेद-भाव। सुपना अंतर सब दरसाव।।
फिर तुम चाहे दर्शनशास्त्रों में कोई चुन लो--वेदांती हो जाओ, कि जैन
हो जाओ, कि बौद्ध हो जाओ, कि सांख्य को मानो, कि योग को, कि वैशेषिक को--कि तुम्हारी जो मर्जी हो, कोई भी दर्शनशास्त्र चुन लो; मगर यह सब सपने का खेल है।

हर उत्तर के बाद प्रश्न के चिह्न लगाता रहा निरंतर,
इसीलिए मेरे अंतर का अंतर प्रश्नाकार हो गया।

तर्क रेख जितनी बढ़ती है, उतनी दूरी बढ़ती जाती,
सहज प्राप्य निष्कर्षों पर भी घनी पर्त सी चढ़ती जाती।
मुख में नयन, नयन में ज्योति, ज्योति में ही विश्व समाया, कैसे कह दूं सत्य जगत है, कैसे कह दूं केवल माया।
जभी खोल देता पलकों को, सारा विश्व लीन हो जाता,
जभी मूंद लेता नयनों को, सारा जग विलीन हो जाता।
अगणित उत्तर हो सकते हैं, लेकिन प्रश्न एक होता है, जैसे हर असत्य की तह में सोया एक सत्य होता है।

हर असत्य के बाद सत्य को भूल समझता रहा निरंतर, इसीलिए कृत्रिम जीवन ही इस जग में व्यवहार हो गया।

भ्रम के वशीभूत हो मैंने जितनी बार प्रश्न को जांचा, उतनी बार बदलता रहता मेरे अनुमानों का सांचा।
ठीक-गलत के जभी तराजू में रख कर प्रश्नों को तोला, कभी झुका इस ओर संयमन, कभी उधर को रह-रह डोला।
उत्तर तो कितने आए पर मन को ही विश्वास न आया,
उत्तर तो पा लिया किंतु उन प्रश्नों का अभ्यास न आया।
जब भी नट सा चला रज्जु पर, विश्वासों के पांव हिल गए, कंपते से संतुलन हृदय में भय की काली रेख बन गए।

क्यों, कैसे, कब, क्या होता है, यही सोचता रहा निरंतर, इसीलिए संशय का पलड़ा भय का पारावार हो गया।

चाह रही सब कुछ पाने की, लेकिन पाकर पा न सका मैं,
हर झूठा विश्वास दिलाया, लेकिन मन बहला न सका मैं।
जब आशा थी पा जाने की, अंतर को विश्वास नहीं था,
जब खो जाने की घड़ियां थीं, खोने का आभास नहीं था।
पाकर खोया, खोकर पाया, लेकिन फिर भी पा न सका मैं, सब कुछ था अपने ही वश में पर मन को समझा न सका मैं।
जब पाया, खोने का भय था, खोने पर पाने की आशा,
यही सदा भटकाती मुझको मेरी अनबुझ मौन पिपासा।

सूखे अधर लिए सागर के तट पर बैठा रहा निरंतर, इसीलिए प्यासे रहना ही जीवन का व्यापार हो गया।

कभी भयातुर हो संशय से हर तिनके से नीड़ संजोता, कभी त्याग कर सारा वैभव अपने ही ऊपर हंस देता।

जिस डाली पर नीड़ बनाया वही टूट मिल गई धूल में,
जिसे अप्राप्य समझ कर छोड़ा वही फूल खिल गया शूल में।
यह जग केवल एक समस्या, हर विवाद संयम का कंपन,
चिंतन हीन भुलावा सुंदर, मादक मोह पाश का बंधन।
सत्य प्रश्न का प्रश्न अगर तो मौन मात्र इसका उत्तर है,
निज अनुभूति एक शाश्वत हल व्यर्थ अन्यथा प्रत्युत्तर है।

इस जग के ठगने को वाणी दूषित करता रहा निरंतर,
इसीलिए मन के चंदन घर सांपों का अधिकार हो गया।

करो अनुमान! तुम्हारे सारे दर्शनशास्त्र अनुमान हैं, अनुभव नहीं।
अनुभव का कोई शास्त्र नहीं होता। अनुभव का कोई दर्शन नहीं होता। जहां दर्शन है, वहां दर्शनशास्त्र नहीं होता। अनुभूति तो बंधती ही नहीं शब्दों में, सिद्धांतों में।
दरिया ठीक कहते हैंः शट दरसन आदि भेद-भाव।
ये जो छह दर्शन हैं, ये सिर्फ भेद-भाव हैं।
सुपना अंतर सब दरसाव।
राजा-रानी तप बलवंता।
ख्याल रखना, तुमसे ऐसा तो कहा गया है बार-बार कि क्या होगा सम्राट होने से? क्या होगा साम्राज्य होने से? धन का संग्रह कर लिया तो क्या फायदा? लेकिन दरिया और गहरी बात कहते हैं।
दरिया कहते हैंः राजा-रानी तप बलवंता।
राजा-रानी होने से तो कुछ होता ही नहीं; बड़े तपस्वी भी हो जाओ, महातपस्वी भी हो जाओ, तो भी कुछ नहीं होता।
सुपना माहिं सब बरतंता।
यह सब व्यवहार स्वप्न में चल रहा है।
पीर औलिया सबै सयाना। ख्वाब माहिं बरतै विध नाना।।
काजी सैयद औ सुलताना। ख्वाब माहिं सब करत पयाना।।
सांख जोग औ नौधा भकती। सुपना में इनकी इक बिरती।।
कहते हैं कि सांख्य का अपूर्व शास्त्र, योग की तपश्चर्या, नौ प्रकार
की भक्तियां, ये सब सपने की ही वृत्तियां हैं। ऐसे क्रांतिकारी वचन बहुत मुश्किल से, खोजे-खोजे नहीं मिलते हैं। क्यों इन सबको स्वप्न की वृत्ति कहते हैं दरिया? अनुभव मात्र स्वप्न है। क्योंकि अनुभव तुमसे अलग है। अनुभोक्ता सत्य है।
समझो। ध्यान में बैठे। भीतर प्रकाश ही प्रकाश हो गया। तो तुम्हारे भीतर दो हैं अब। एक वह जो जानता है कि प्रकाश हो रहा है; और एक वह जो तुम्हारे भीतर प्रकाश की भांति प्रकट हुआ है। प्रकाश तुम नहीं हो। तुम तो प्रकाश को जानने वाले हो। इसलिए भूल मत जाना, नहीं तो नया आध्यात्मिक सपना शुरू हो गया। अब इसी मजे में मत डोल जाना। और रस बहुत है। भीतर प्रकाश हो गया, खूब रसपूर्ण है! खूब आनंद मालूम होगा। लेकिन यह नये सपने की शुरुआत है। मन अंत तक पीछा करेगा। मन अंत तक डोरे डालेगा। मन अंत तक खींचेगा। कहेगाः अहा, देखो कैसे धन्यभागी हो! प्रकाश हो गया! यही प्रकाश, जिसकी संत सदा चर्चा करते रहे हैं!
लेकिन जो सचमुच जागे हुए संत हैं, उन्होंने प्रकाश इत्यादि को स्वप्न कहा है। उन्होंने भीतर होते हुए अनुभवों को, आंतरिक अनुभवों को भी स्वप्न कहा है। उन्होंने तो सिर्फ एक को ही सत्य माना है--बस एक को--द्रष्टा को, साक्षी को। जब भीतर प्रकाश हो जाए तो इस नये भ्रम में मत पड़ जाना। जानते रहना कि मैं तो जानने वाला हूं, मैं प्रकाश नहीं। यह प्रकाश तो मेरे सामने है, दृश्य है; मैं द्रष्टा हूं। यह प्रकाश तो अनुभव है; मैं अनुभोक्ता हूं। अपने को निरंतर साक्षी, साक्षी, साक्षी, ऐसी याद दिलाते रहना। तब कभी वह सौभाग्य की घड़ी आती है, जब सब अनुभव खो जाते हैं। निराकार छा जाता है। चारों तरफ शून्य व्याप्त हो जाता है। और अनुभव की कहीं कोई रेख नहीं रह जाती। सिर्फ साक्षी का दीया जलता है। उस परम घड़ी में ही--अमी झरत, बिगसत कंवल!

काया कसनी दया औ धर्म। सुपने सुर्ग औ बंधन कर्म।।
सुनते हो! दरिया हिम्मत के आदमी रहे होंगे। जरा चिंता नहीं की। सब पर पानी फेर दिया--तुम्हारे ज्ञान पर, तुम्हारे दर्शनशास्त्रों पर, तुम्हारी भक्ति पर।
काया कसनी दया औ धर्म।
कितनी ही कसो काया को, कितना ही सताओ, हो जाओ महामुनि--कुछ भी न होगा।
कितना ही धर्म करो, कुछ भी न होगा।
सुपने सुर्ग औ बंधन कर्म।
बड़ा अदभुत वचन है! तुम्हारे स्वर्ग भी स्वप्न हैं, तुम्हारे नरक भी स्वप्न हैं। और तुम जिन बंधनों को सोचते हो कि कर्म का बंधन है, वे भी तुम्हारे स्वप्न हैं; क्योंकि तुम कर्ता नहीं हो, द्रष्टा हो। कर्म का बंधन तुम पर हो ही नहीं सकता। यह क्रांति का बड़ा आग्नेय-सूत्र है। तुम्हें पंडित-पुरोहित यही समझाते रहे हैं कि कर्म का बंधन है। अगर तुम दुख पा रहे हो तो पिछले जन्मों के किए गए कर्मों का फल भोग रहे हो। अगर कोई सुख पा रहा है तो पिछले जन्मों में किए कर्मों के आधार से सुख पा रहा है। अच्छे कर्म करो, अगले जन्म में अच्छे-अच्छे फल मिलेंगे। बुरे कर्म करोगे, अगले जन्म में दुख पाओगे।
दरिया कहते हैंः कर्ता ही नहीं हूं मैं, तो कर्म का बंधन क्या होगा मुझ पर? मैं तो सिर्फ साक्षी हूं।
साक्षी स्वतंत्रता है, परम स्वतंत्रता है। उस पर कोई बंधन नहीं है। न कभी कोई बंधन हुआ है उस पर। बंधन माना हुआ है। मान लो तो हो जाता है। स्वीकार कर लो तो हो जाता है। तुम्हारी मान्यता में ही तुम्हारे ऊपर बंधन है। इसलिए मुझसे कभी-कभी लोग आकर पूछते हैं कि आप कहते हैं कि क्षण में समाधि फल सकती है। तो हमारे अतीत जन्मों में किए कर्मों का क्या होगा? पहले तो उनसे निपटना होगा न! पहले तो उनको काटना होगा न! पहले तो उनका फल भोगना होगा न! और आप कहते हो, क्षण में!
मैं कहता हूंः क्षण में! क्योंकि अतीत के कर्म छोड़ने नहीं हैं। तुमने कभी किए नहीं हैं। तुमने सिर्फ माना है। तुम अगर अभी जाग जाओ और साक्षी में थिर हो जाओ, सारे कर्म गए। कर्ता ही गया तो कर्म कहां बचेंगे? सारे बंधन गए। सारा अतीत गया, सारा भविष्य गया; सिर्फ वर्तमान बचा--शुद्ध वर्तमान! और वही शुद्ध वर्तमान परमात्मा का द्वार है, निर्वाण का द्वार है।
हम संसार में भी सपने सजाते हैं। हम परलोक के भी सपने सजाते हैं। हमने सपने ही सपने बसा लिए हैं!

तुम न अगर मिलते तो मेरे
गीत कुंआरे ही रह जाते।
कौन स्वप्न की माला मेरी हृदय लगा हंस कर अपनाता,
कौन गीत में चुपके छिप कर अपने रसमय अधर मिलाता।
कौन अर्चना के फूलों को अपने आंचल में रख लेता,
कौन उन्हेंशृंगार बना कर अपना जीवन धन कह देता।
तेरा मधुर समर्पण ही तो मेरे याचक मन की थाती,
नेह तुम्हारा पीकर जीती मेरे मन मंदिर की बाती।
प्राणों का जलना ही जीवन जलता जीवन एक कहानी, जिसका है हर पृष्ठ वेद सा पावन ज्यों गंगा का पानी।
जब रिसता है प्यारा तुम्हारा,
बह उठती गीतों की धारा।
तुम न अगर बनते पीड़ा तो,
आंसू ही खारे रह जाते।

किसके पनघट पर जाकर मैं जीवन की आशा कह पाता,
दर-दर प्यास लिए फिरता मैं हर देहरी पर ठोकर खाता।
कौन मुझे चंदन सा छूकर मादक मस्ती से भर देता, सम्मोहन में मुझे डुबा कर अपनी बांहों में भर लेता।

मादक गंध तुम्हारी पीकर पतझर भी मधुमास बन गया, सांसें महक उठीं चूनर सी मंडप नीलाकाश बन गया।
हरित वृक्ष बन गए बराती कोकिल की कूजी शहनाई, कलित कल्पना की गीतों से अनदेखी हो गई सगाई।
कितना मादक मिलन तुम्हारा,
कितना अभिनव सृजन तुम्हारा।
तुम न अगर बनते वसंत तो,
मनसिज अंगारे रह जाते।

किसके कुंतल मेघ सांवरे देख नाच उठता मयूर मन, पीला दर्द हरा रखने को कब आता ले जलधर सावन।
मेरे प्यासे अधर बावरे भैरव राग नित्य दुहराते, झूले पड़ते नहीं डाल पर सूखे स्वर मल्हार न गाते।
तुम आए तो थिरक उठा मन छाए रसमय काले बादल, कजरारे केशों का सौरभ घुल कर बना नयन में काजल।
तन भी बहका मन भी बहका, बहक उठी चंचल पुरवाई, मधु रसाल बन जागीं सुधियां नेह हुआ मादक अमराई।

तुम बरसे तो सुधियां सरसीं,
तुम हरषे तो बूंदें बरसीं।
तुम न अगर बनते सावन तो,
अंकुर अनियारे रह जाते।
तुम न अगर मिलते तो मेरे
गीत कुंआरे ही रह जाते।

यह बात दोनों जगत पर लागू है। इस जगत में भी प्रेमी और प्रेयसी इसी तरह के सपने सजा रहे हैं। और उस जगत में भी भक्त, भक्त और भगवान, इसी तरह के सपने सजा रहा है। जैसे प्रेमी और प्रेयसी इस जगत के सपने सजाते हैं, ऐसे ही भक्त भगवान के साथ उस जगत के सपने सजाता है।
दरिया तो उठा कर तलवार तुम्हारे सब सपने तोड़ देते हैं। नवधा भक्ति! तुम्हारे भक्ति के मीठे-मीठे रंग-रूप, सब व्यर्थ हैं। तुम्हारे विचार ही स्वप्न नहीं हैं, तुम्हारे भाव भी स्वप्न हैं। तुम्हारा मस्तिष्क ही व्यर्थ नहीं है, तुम्हारा हृदय भी व्यर्थ है। मस्तिष्क सबसे ऊपर है। उसके नीचे भाव, हृदय है। और उससे भी नीचे छिपा हुआ साक्षी है।
दरिया तो कहते हैंः बस साक्षी के अतिरिक्त और कहीं शरण नहीं है।
बुद्धं शरणं गच्छामि! बुद्ध की शरण जाता हूं मैं।
किसी ने बुद्ध से पूछाः आप तो कहते हैं कि किसी की शरण जाने की जरूरत नहीं। और लोग आपके ही चरणों में आकर सिर रखते हैं और कहते हैंः बुद्धं शरणं गच्छामि! आप रोकते क्यों नहीं?
तो बुद्ध ने कहाः वे मेरी शरण नहीं जाते। बुद्धं शरणं गच्छामि! बुद्धं का अर्थ होता हैः जागरण, साक्षी, बोध। मैं तो प्रतीकमात्र हूं। मैं तो बहाना हूं। वे बुद्धत्व की शरण जाते हैं।
दरिया भी कहते हैंः बस एक ही शरण पकड़ो--साक्षी की। साक्षी को पकड़ते ही तुम भी बुद्ध हो जाओगे। उससे कम पर राजी नहीं हैं। कोई समझौता करने को दरिया राजी नहीं हैं। समग्र क्रांति के पक्षपाती हैं।
काम क्रोध हत्या परनास।
तुम थोड़ा चौंकोगे भी! वे कहते हैंः काम क्रोध हत्या परनास। सुपना माहिं नर्क निवास।।
ये भी सब स्वप्न हैं--कि तुमने काम किया, कि क्रोध किया, कि हत्या की।
वह भी स्वप्न है।
सुपना माहिं नर्क निवास।
आदि भवानी संकर देवा। यह सब सुपना लेवा-देवा।।
कि चले अंबाजी के मंदिर! कि चले शंकर जी की सेवा कर आएं! कि चलो शंकर जी
से कुछ मांग लें, क्योंकि सुना है कि वे बड़े औघड़दानी हैं, जरूर देंगे! कि

चलो हनुमान जी की खुशामद करें, क्योंकि वे राम जी की खुशामद करते हैं। कुछ ऐसा रास्ता बन जाए। सीधे राम जी तक पहुंचना शायद मुश्किल हो, तो कोई चमचा जी को पकड़ो। उनके द्वारा चलो। तो लोग हनुमान-चालीसा पढ़ रहे हैं, कि हनुमान जी राजी हो गए, फिर तो हाथ में सब मामला है। कि जब हनुमान जी राजी हो गए तो फिर रामचंद्र जी को तो मानना ही पड़ेगा। ये सब तुम्हारे मन के ही जाल हैं। राम बाहर नहीं हैं। राम तुम्हारा अंतर्तम का ही नाम है।
ब्रह्मा बिष्नु दस औतार। सुपना अंतर सब ब्यौहार।।
सब सपने का व्यवहार है--यह दस अवतार। क्योंकि अवतरण तो परमात्मा का कण-कण में हुआ है। दस की गिनती क्यों? और जिन्होंने दस की गिनती की, तुम देखते हो, उनका व्यवहार देखते हो? कछुए को तो उन्होंने मान लिया कि भगवान का अवतार है, लेकिन मछुए को नहीं मान सकते। कछुए को मान सकते हैं कि भगवान का अवतार है, लेकिन शूद्र को नहीं मान सकते। यह भी खूब है! पशुओं को मान सकते हैं भगवान का अवतार, मनुष्यों को नहीं मान सकते। कछुए को भगवान का अवतार मानने वाले लोग महावीर को, मोहम्मद को, क्राइस्ट को अवतार नहीं मान सकते, औरों की तो बात छोड़ दो।
सब मान्यता के जाल हैं, अनुमान हैं, कल्पना के फैलाव हैं। और कल्पना
को जितना उड़ाओ उड़ा सकते हो। परमात्मा तो उतरा है सबमें--मुझमें, तुममें, वृक्षों में, नदी-पहाड़ों में। परमात्मा का अवतरण तो समस्त अस्तित्व में हुआ है। यह सारा अस्तित्व परमात्मरूप है। इसमें तुम दस की गिनती क्या करते हो? यहां गिनती करने का सवाल ही नहीं है। यहां तो अनगिनत रूप से परमात्मा मौजूद है, क्योंकि सभी उसकी अभिव्यक्तियां हैं। सभी गीत उसके हैं। सभी कंठ उसके हैं।
ब्रह्मा बिष्नु दस औतार। सुपना अंतर सब ब्यौहार।।
उद्भिज सेदज जेरज अंडा। सुपनरूप बरतै ब्रह्मंडा।।
स्वेदज हों, पिंडज हों, अंडज हों, कैसे भी कोई पैदा हुआ हो, यह सारा ब्रह्मांड एक स्वप्न से ज्यादा नहीं है। इस ब्रह्मांड को स्वप्न समझो, ताकि तुम अपने साक्षी की तरफ चल सको। इस ब्रह्मांड को जिस दिन तुम पूरा- पूरा स्वप्न समझ लोगे, तुम्हारी पकड़ छूट जाएगी। और पकड़ के छूटते ही साक्षी में थिर हो जाओगे।
उपजै बरतै अरु बिनसावै।
यह सारा जगत स्वप्न है, ऐसा कहने का कारण क्या? इसके बाद इस बात को कहने के लिए प्रमाण क्या?
ज्ञानियों ने सत्य और स्वप्न में थोड़ा सा ही फर्क किया है। थोड़ा, लेकिन बहुत बड़ा भी। स्वप्न की परिभाषा जानने वालों ने की हैः वह जो पैदा हो, रहे और मिट जाए। और सत्य की परिभाषा की हैः जो पैदा न हो, बस रहे और मिटे कभी नहीं। सत्य का अर्थ हैः शाश्वत। और स्वप्न का अर्थ हैः क्षणभंगुर। उपजै बरतै अरु बिनसावै।
पैदा होता है, थोड़ी देर रहता है और गया। पानी का बबूला बना, थोड़ी देर तैरा और फूटा। इंद्रधनुष उगा, अभी था, अभी खो गया।
उपजै बरतै अरु बिनसावै। सुपने अंतर सब दरसावै।।
ऐसी सारी बातों को स्वप्न समझना, जो पैदा होती हैं, क्षण भर ठहरती हैं
और विनष्ट हो जाती हैं। जो न कभी पैदा होता, न कभी विनष्ट होता, उसे खोज लो। वही असली संपदा है। वही साम्राज्य है। साक्षी कभी पैदा नहीं होता और साक्षी कभी मरता नहीं। साक्षी का समय से कोई संबंध ही नहीं है। साक्षी कालातीत है। और ध्यान में इसी साक्षी की झलक आनी शुरू होती है। ध्यान का अर्थ हैः स्वप्न-रहित हो जाना, विचार-रहित हो जाना, ताकि साक्षी की झलक अनिवार्यरूपेण फलित होने लगे।
त्याग ग्रहन सुपना ब्यौहारा। जो जागे सो सबसे न्यारा।।
अनूठी बात कहते हैं दरिया। यही मैं तुमसे कह रहा हूं रोज।
कहते हैंः त्याग ग्रहन सुपना ब्यौहारा।
भोगी भी सपने में है, योगी भी सपने में है। क्योंकि त्याग और ग्रहण, दोनों ही स्वप्न का व्यवहार हैं। कोई कहता है कि मेरे पास लाखों हैं और कोई कहता है कि मैंने लाखों त्याग दिए। दोनों में तुम फर्क मानते हो? इंच भर भी फर्क नहीं है। रत्ती भर भी फर्क नहीं है। एक कहता हैः लाखों मेरे

हैं। मैं मालिक! दूसरा भी यही कह रहा है कि मैं मालिक, मैंने लाखों छोड़ दिए! मेरे थे तभी तो छोड़ दिए!
दो अफीमची एक झाड़ के नीचे बैठे हैं। जब जरा अफीम चढ़ गई... । रात है सुंदर। आकाश में पूर्णिमा का चांद है। चांदनी बरसती है, चारों तरफ चांदी ही चांदी है! एक अफीमची ने कहाः दिल होता है कि रात को, इस चांद को, इस चांदनी को, सबको खरीद लूं।
दूसरे ने थोड़ी देर सोचा और उसने कहा कि नहीं, यह नहीं हो सकता।
पहले ने कहाः क्यों नहीं हो सकता?
उसने कहाः मुझे बेचना ही नहीं। मैं बेचूं, तब तो तुम खरीदो न! कि ऐसे
ही खरीद लोगे?
रात, चांद, चांदनी... अफीमची खरीद और बेच रहे हैं!
तुम्हारा यहां क्या है? तो जो पकड़ कर बैठा है, वह भी पागल है। और जो छोड़ कर भाग गया है, वह और बड़ा पागल है। जहां हो, बिना पकड़े मजे से रहो। सब सपना है। साक्षी के बोध को, जहां रहो, वहीं जगाए रहो। दुकान पर बैठ कर साक्षी सधे, मंदिर में बैठ कर भी सधे, बाजार में भी। साक्षी की स्मृति सघन होती जाए। धीरे-धीरे सब पकड़ना-छोड़ना छूट जाए। पकड़ना भी छूट जाए, छोड़ना भी छूट जाए, तब तुम जानना कि तुम संन्यासी हुए।
मेरे संन्यास की यही परिभाषा हैः पकड़ना भी न रह जाए, छोड़ना भी न रह जाए। क्योंकि दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। दोनों एक ही भ्रांति के हिस्से हैं। भोगी और त्यागी में फर्क नहीं है। एक-दूसरे की तरफ पीठ किए खड़े हैं, माना; मगर फर्क नहीं है। दोनों की दृष्टि एक है। दोनों मानते हैं कि मेरा है। एक मुट्ठी बांधे है, दूसरे ने फेंक दिया। मगर दोनों की भ्रांति वही है कि मेरा है। वर्षों बीत जाते हैं और त्यागी बात करता रहता है कि मैंने लाखों रुपयों पर लात मार दी!
एक संन्यासी से मैं मिलता था। वे जब भी मिलते तो याद दिलाते कि मैंने लाखों पर लात मार दी!
मैंने उनसे एक दिन पूछा... जब ऊब गया सुन-सुन कर बहुत बार कि लाखों पर उन्होंने लात मार दी... मैंने उनसे पूछाः यह लात मारी कब थी?
उन्होंने कहाः कोई तीस साल हो गए।
तो फिर मैंने कहाः एक बात मैं आपसे कहूं कि लात लगी नहीं।
उन्होंने कहाः मतलब?
मैंने कहाः जब तीस साल हो गए और अभी तक याद बनी है, तो लात लगी नहीं होगी। तीस साल से यही याद किए बैठे हो कि लाखों पर लात मार दी, लाखों पर लात मार दी! तुम्हारे थे? तुम्हारे बाप के थे? किसके थे? तुमने लात मारी कैसे? लात मारने का तुम्हें अधिकार क्या? लेकर आए थे? न लेकर जाते। यह लात मारने का अहंकार वही का वही अहंकार है। तुम जरूर, जब तुम्हारे पास लाखों रहे होंगे, तो सड़क पर चलते होओगे इस अकड़ से कि लाखों मेरे पास हैं।
मुल्ला नसरुद्दीन और उसका बेटा, दोनों एक नाले को पार कर रहे थे। बरसाती नाला। मुल्ला ने छलांग मारी। अस्सी साल का बूढ़ा, मगर मार गया छलांग। उस पार पहुंच गया। अब लड़के को भी चुनौती मिली, उसने कहा कि जब बाप बूढ़ा अस्सी साल का मार गया छलांग और मैं चल कर जाऊं नाले में से, बेइज्जती होगी, लोग क्या कहेंगे! नाले के इस तरफ उस तरफ लोग काम भी कर रहे हैं, आ-जा भी रहे हैं। तो उसने भी मारी छलांग। बीच नाले में गिरा। और भद्द हुई। रास्ते में जब दोनों फिर चलने लगे, उसने अपने बाप से पूछा कि इतना तो बताएं, आप अस्सी साल के हो गए और छलांग मार गए। और मैं तो अभी जवान हूं और बीच नाले में गिर गया, इसका राज क्या है?
मुल्ला नसरुद्दीन ने अपना खीसा बजाया--खनाखन! खनाखन! पुरानी कहानी है, रुपये बजे!
बेटे ने कहाः मैं कुछ समझा नहीं।
उसने कहा कि जेब गरम हो तो आत्मा में बल होता है। तेरी जेब में क्या है? खाली जेब! खोखी आत्मा! गिरा बीच में। बीच तक पहुंच गया, यही चमत्कार है! मैं भी पूछना चाहता हूं कि बीच तक तू पहुंचा कैसे? मैं तो सौ नगद कलदार जब तक खीसे में न रखूं, घर से नहीं निकलता। गरमी रहती है, शान रहती है, अकड़ रहती है, बल रहता है, जवानी रहती है।

लोगों के पास धन होता है तो उनकी चाल और होती है। तुमने भी गौर किया?
जब खीसे में रुपये होते हैं, तुम्हारी चाल और होती है; जब खीसे में रुपये नहीं होते, तुम्हारी चाल और होती है। अभी तक न ख्याल किया हो तो अब करना। जब आदमी पद पर होता है तब उसकी चाल देखो।
इस संबंध में बड़ी खोज-बीन की गई है और यह पाया गया है कि जब तक लोग पद
पर होते हैं, तब तक ज्यादा जीते हैं; और पद से हटते ही जल्दी मर जाते हैं। पश्चिम में इस पर काफी शोध काम हुआ है। और शोध के ये नतीजे हैं कि जब लोग अवकाश प्राप्त करते हैं तो उनकी उम्र दस साल कम हो जाती है। हैरानी की बात है!
कोई कलेक्टर था, कोई कमिश्नर था, कोई चीफ मिनिस्टर था, कोई प्राइम मिनिस्टर था, कोई राष्ट्रपति था, फिर अवकाश लिया। जब तक कलेक्टर था, एक गरमी थी। मुल्ला नसरुद्दीन की कहानी ऐसे ही नहीं है। चलता था, लोग नमस्कार करते थे, झुक-झुक जाते थे। रोब था। मैं कुछ हूं, यह बल था। जीने के लिए कुछ आधार था। फिर यही कलेक्टर रिटायर हो गया। अब इसको कोई नहीं पूछता। रास्ते से गुजर जाता है, लोग नमस्कार भी नहीं करते। घर में भी लोग नहीं पूछते। क्योंकि जब तक यह कलेक्टर था, पत्नी भी आदर देती थी। अब पत्नी भी डांटती है कि नाहक खांसते-खंखारते बैठे रहते हो, कुछ करो! बच्चे भी नाराज होते हैं कि ब.ूढे से कब छुटकारा हो, कि हर चीज में अड़ंगेबाजी करता है!
अड़ंगेबाजी करेगा; उसकी जिंदगी भर की आदत है। कलेक्टर था। हर काम में अड़ंगेबाजी करता रहा। वही उसकी कुशलता थी। सरकारी अफसरों की कुशलता ही एक है कि जो काम तीन दिन में हो सके, वह तीन साल में न होने दें। उसमें ऐसे अड़ंगे निकालें, ऐसी तरकीबें निकालें, फाइलें इस तरह घुमाएं कि भंवर खाती रहें। जिंदगी भर की उसकी कला वही थी। अब भी वह मौका देख कर थोड़े पुराने हाथ चलाता है, पुराने दांव मारता है। उतना ही जानता है। और कुछ कर भी नहीं सकता। जहां उसकी जरूरत नहीं, वहां बीच में आकर खड़ा हो जाता है। हर चीज में सलाह देता है। जमाना गया उसका। जमाना बदल गया। अब उसकी सलाह किसी काम की भी नहीं है। उसकी सलाह जो मानेगा, पिद्दी की तरह पिटेगा जगह-जगह। अब उसके बेटे उससे कहते हैंः तुम शांत भी रहो। माला ले लो। पूजा करो। घर में पूजागृह बनवा दिया है, वहां बैठा करें। मगर वह घर भर में नजर रखता है। वह सोचता है कि उसके पास भारी ज्ञान है, जीवन भर का अनुभव है।
कोई उसके पक्ष में नहीं है। मोहल्ले-पड़ोस के लोग उसके पक्ष में नहीं हैं। जिससे भी बात करता है, वह बचना चाहता है। क्योंकि अब काम क्या है इससे बात करने का! यही लोग एक दिन इसकी तलाश करते थे। आज इससे कोई बात करने को भी राजी नहीं है। पत्नी भी इसको मानती थी पहले। इसको थोड़े ही मानती थी, वह जो हर महीने तनख्वाह आती थी, उसको मानती थी। अब तनख्वाह भी नहीं आती। अब नई साड़ियां भी नहीं आतीं। अब नये गहने भी नहीं आते। अब इसको मानने से मतलब क्या है? अब तो एक ही आशा है कि ये किसी तरह विदा हो जाएं, तो वह जो बीमा करवाया है...
मुल्ला नसरुद्दीन, उसकी पत्नी और उसका बेटा झील पर गए थे--पिकनिक के लिए गए थे। मुल्ला नसरुद्दीन झील में तैरता दूर निकल गया। बेटा भी उतरना चाहता था झील में। मां ने कहाः तू रुक।
बेटे ने कहाः क्यों? और पिताजी गए!
उसने कहाः पिताजी को जाने दे। उनका बीमा है, तेरा बीमा नहीं है।
कल मैं एक कहानी पढ़ रहा था, कि एक से एक चालबाज आदमी होते हैं। एक आदमी ऐसा चालबाज था कि मरने के पहले, जब पक्का हो गया कि मरना ही है, उसने अपना बीमा कैंसिल करवा दिया। क्योंकि जब मर जाएगा तो पत्नी को लाखों डालर मिलने वाले थे। मरने के पहले उसने अपना बीमा ही कैंसिल करवा दिया! जब पक्का हो गया और डाक्टरों ने कह दिया कि अब बस दो-चार दिन के ही मेहमान हो। तो उसने पहला काम यह किया कि अपना बीमा कैंसिल करवा दिया। मगर पत्नी भी एक ही घाघ थी! पति को दफनाया नहीं--अमरीका में तो पति को दफनाते हैं--जलवाया। और आग का जो बीमा होता है, उससे पैसे वसूल किए। जल कर मरा!
पत्नी भी पूछती नहीं अब, बेटे भी पूछते नहीं अब, परिवार भी पूछता नहीं अब। पास-पड़ोस के लोग भी पूछते नहीं अब। मनोवैज्ञानिक कहते हैंः दस साल उम्र कम हो जाती है। शायद इसीलिए जो राजनेता गद्दी पर बैठ जाता है, फिर ऐसी

पकड़ता है कि छोड़ता ही नहीं। कितना ही खींचो टांग, कितना ही खींचो हाथ, कुर्सी को ऐसा पकड़ता है कि छोड़ता ही नहीं। कुछ भी करो, फिर उससे कुर्सी छुड़ाना बहुत मुश्किल है। कारण है। कुर्सी छूटी कि जिंदगी छूटी। कुर्सी ही जिंदगी है। जब तक कुर्सी पर है, तब तक सब कुछ है। जैसे ही कुर्सी गई, कुछ भी नहीं।
अभी देखा नहीं, दो-चार दिन पहले अखबारों में खबरें थीं कि भूतपूर्व राष्ट्रपति वी.वी.गिरि की टिकट का पास तक वापस ले लिया। भूतपूर्व राष्ट्रपति की यह हालत हो जाती है! कितना फर्क पड़ता है? कोई गिरि इस उम्र में रोज-रोज यात्रा करते भी नहीं हैं। और करें भी तो कितना फर्क पड़ता है? साल में अगर हजार, पांच सौ रुपये की टिकट के पास का उपयोग कर लेते तो क्या बन-बिगड़ जाता? मगर जो सत्ता से गया, वह सब तरफ से चला जाता है। यह भी न सोचा इनकार करते वक्त कि यही गति तुम्हारी हो जाएगी कल। सत्ता के बाहर हुए कि दो कौड़ी कीमत हो जाती है। इसलिए जो राजनेता पहुंच जाता है सत्ता में, वह सत्ता में ही बना रहना चाहता है।
मध्यप्रदेश के एक मुख्यमंत्री थे रविशंकर शुक्ल। उन्होंने कस्द कर लिया था कि मरूंगा तो कुर्सी पर ही मरूंगा, नहीं तो मरूंगा ही नहीं। कुर्सी पर ही मरे! क्योंकि मरो कुर्सी पर तो उसका भी मजा और है। राजकीय सम्मान मिलता है, बैंड-बाजे बजते हैं। फौजी टैंक पर सवार होकर लाश जाती है। भारी शोरगुल मचता है। मरने का मजा ही और है। ऐसे ही मर गए, न बैंड बजे, न बाजे बजे; न मिलिट्री आई, न झंडे फहराए गए, न झंडे झुकाए गए--यह भी कोई मरना है! कुत्ते की मौत!
मरने-मरने में भी लोगों ने फर्क कर रखा है। मर गए तो भी!
मैंने सुना है, एक राजनेता मरा। बड़ी भीड़ इकट्ठी हुई उसको भेजने को। वह भी, अब तो आत्मा मात्र रह गई थी, भूत मात्र, वह भी गया था देखने मरघट पर अपनी आखिरी अवस्था में--लोग कैसे-कैसे व्याख्यान देते हैं? कौन क्या कहता है? अपने वाले धोखा तो नहीं दे जाते? दुश्मन क्या कहते हैं? जब वहां उसने प्रशंसा के प्रशस्ति-गान सुने, कि दुश्मनों ने भी प्रशंसा की उसकी कि कैसा अदभुत प्रतिभाशाली व्यक्ति था! कि दीया बुझ गया! कि अब देश में अंधेरा ही अंधेरा रहेगा! कि अब कभी उसके स्थान की पूर्ति नहीं हो सकती, अपूरणीय क्षति हुई है! तो पास में खड़े एक दूसरे भूत से उसने कहा कि अगर ऐसा मुझे पता होता तो मैं पहले ही मर जाता। अगर इतना सम्मान मरने से मिल सकता है, अगर इतनी भीड़ आने वाली थी मुझे पहुंचाने, तो मैं कभी का मर गया होता। मैं नाहक अटक रहा। इतनी प्रशंसा तो जिंदगी में कभी न मिली थी।
नियम है कि मरे आदमी की हम प्रशंसा करते हैं। जिंदगी में तो बहुत मुश्किल है प्रशंसा मिलना, कम से कम मरे को सांत्वना तो दे दो। जाती-जाती आत्मा को इतनी तो सांत्वना दे दो कि चलो, जिंदगी में नहीं मिला, मर कर मिला, मरे आदमी के खिलाफ कोई कुछ नहीं कहता।
एक गांव में एक आदमी मरा। वह इतना दुष्ट था, इतना दुष्ट कि जब उसको दफनाने गए, तो नियम था कि पक्ष में कुछ बोला जाए, मगर उसके पक्ष में कोई बात ही नहीं थी जो बोली जा सके। गांव के पंच एक-दूसरे की तरफ देखें कि भई, तुम बोलो। मगर बोलें तो क्या खाक बोलें! उसने सबको सताया था। उसकी दुष्टता ऐसी थी कि पूरा घर, पूरा परिवार, पूरा गांव, आस-पास के गांव भी प्रसन्न थे कि मर गया तो झंझट कटी! लोग प्रशंसा करने नहीं आए थे, लोग आनंद मनाने आए थे। मगर यह नियम था कि जब तक प्रशंसा में कुछ बोला न जाए, तब तक दफनाया नहीं जा सकता। आखिर गांव के लोगों ने प्रार्थना की गांव के पुरोहित से कि भैया, तुम्हीं कुछ बोलो। तुम तो बड़े बक्कार हो, कि तुम तो शब्दों की खाल निकालने में बड़े कुशल हो। इस आदमी में कुछ खोजो! कुछ भी इसकी प्रशंसा करो। पुरोहित भी खड़ा हुआ; वह भी कुछ समझ नहीं पाया कि बोलें क्या इस आदमी के पक्ष में! इस आदमी की जिंदगी में कुछ था ही नहीं। फिर उसने कहा कि एक बात है, इस आदमी की प्रशंसा करनी ही होगी, क्योंकि अभी इसके सात भाई और जिंदा हैं; उनके मुकाबले यह देवता था।
मरे हुए आदमी की प्रशंसा करनी ही होती है। पद पर रहते हैं लोग तो लंबा जाती है उनकी जिंदगी। पद से हटते ही घट जाती है उनकी जिंदगी। धन की बड़ी अकड़ है। पद की बड़ी अकड़ है। होता है तो आदमी अकड़े रहते हैं और छोड़ देते हैं तो

अकड़े रहते हैं। तुम जैन शास्त्र पढ़ो, बौद्धों के शास्त्र पढ़ो, तो खूब लंबी- लंबी बढ़ा कर झूठी बातें लिखी हैं--कि महावीर ने इतने घोड़े छोड़े, इतने हाथी छोड़े, इतने रथ, इतना धन--ऐसी बड़ी-बड़ी संख्याएं जो कि संभव नहीं हैं। संभव इसलिए नहीं हैं कि महावीर एक बहुत छोटे से राज्य के राजकुमार थे। महावीर के जमाने में भारत में दो हजार रियासतें थीं। ज्यादा से ज्यादा एक तहसील के बराबर उनका राज्य था। अब तहसील के बराबर राज्य! जितने हाथी-घोड़े जैन शास्त्रों में लिखे हैं, अगर उनको खड़ा भी करो तो खड़ा करने की जगह भी न मिले। आखिर कहीं खड़े भी तो होने चाहिए! इतना धन लाओगे कहां से? मगर नहीं, लिखा है।
उसके पीछे कारण है, मनोवैज्ञानिक कारण है। क्योंकि जितना धन, जितने घोड़े, जितने हाथी, जितने रथ, जितने हीरे-जवाहरात तुम बढ़ा कर बता सको, उतना ही बड़ा त्याग मालूम पड़ेगा। त्याग को भी नापने का एक ही उपाय है--कि कितना छोड़ा? यह बड़े मजे की बात है। है तो भी रुपये से ही नापा जाता है और छोड़ा तो भी रुपये से ही नापा जाता है। दोनों का मापदंड रुपया है। दोनों का तराजू एक है।
तो फिर बौद्ध भी पीछे नहीं रह सकते थे। उन्होंने और बढ़ा दिए। जब अपने
ही हाथ में है संख्याएं लिखना तो रखते जाओ शून्य आगे, बढ़ाते जाओ शून्य पर शून्य। कोई किसी से पीछे नहीं है।
महाभारत का युद्ध कुरुक्षेत्र में हुआ। अठारह अक्षौहिणी सेना! कुरुक्षेत्र छोटा सा मैदान है। उतनी बड़ी सेना वहां खड़ी नहीं हो सकती। और खड़ी हो जाए तो लड़ना तो दूर, प्रेम करना भी आसान नहीं! आखिर तलवार वगैरह चलाने को थोड़ी जगह भी तो चाहिए। नहीं तो खुद ही की तलवार खुद ही को लग जाए, कि अपने वालों की ही गर्दन कट जाए। आखिर घोड़े-रथ दौड़ाने इत्यादि के लिए कुछ स्थान तो चाहिए। कुरुक्षेत्र के मैदान में अठारह अक्षौहिणी सेना! पागल हो गए हो? लेकिन उसको बड़ा युद्ध बताना है--महाभारत! उसको बड़ा युद्ध बताना है, छोटा-मोटा युद्ध नहीं।
युद्ध भी बड़े बताने हैं तो संख्या बढ़ाओ। त्याग भी बड़ा बताना है तो संख्या बढ़ाओ। भोग भी बड़ा बताना है तो संख्या बढ़ाओ। तुम्हारा भरोसा गणित पर बहुत ज्यादा है।
मैंने उन मित्र से कहा कि तुम्हारा पैर लगा नहीं, नहीं तो भूल गए होते। तीस साल हो गए, कौन याद रखता है! बात खत्म हो गई होती। मगर छूटता नहीं है। तुम्हारा मोह अब भी लगा है। अभी भी तुम मजा ले रहे हो। अब भी चुस्कियां ले रहे हो!
त्याग ग्रहन सुपना ब्यौहारा। जो जागे सो सबसे न्यारा।।
जो जागता है, न तो वह त्यागी होता है, न भोगी होता है। वह सबसे न्यारा होता है। इसलिए उसको पहचानना मुश्किल होता है। क्योंकि वह भोगियों जैसा भी दिखाई पड़ता है, त्यागियों जैसा भी दिखाई पड़ता है। वह दोनों नहीं होता और दोनों भी होता है।
जो जागे सो सबसे न्यारा।
त्यागी को पहचानना आसान है, भोगी को पहचानना आसान है। ज्ञानी को पहचानना बहुत कठिन है। तुम सिकंदर को भी पहचान लोगे, तुम महावीर को भी पहचान लोगे। मगर जनक को पहचानना बहुत कठिन हो जाएगा, क्योंकि जनक रहते तो सिकंदर की दुनिया में हैं और रहते महावीर की तरह हैं। जनक को पहचानने के लिए जरा गहरी आंख चाहिए, बड़ी गहरी आंख चाहिए। जनक का जीवन न तो त्याग है, न भोग है, वरन साक्षीभाव है।
इसलिए मैंने जनक-अष्टावक्र का जो संवाद हुआ, उसको महागीता कहा है। कृष्ण और अर्जुन के संवाद को मैं सिर्फ गीता कहता हूं। लेकिन अष्टावक्र और जनक के संवाद को महागीता कहता हूं। क्योंकि उसमें एक ही स्वर है-- साक्षी, साक्षी, साक्षी। न छोड़ना, न पकड़ना, बस देखने वाले हो जाना। छूटे तो छूट जाए; पकड़ में आ जाए तो पकड़ में आ जाए। लेकिन भीतर न पकड़ने की आकांक्षा है, न छोड़ने की आकांक्षा है। भीतर कोई आकांक्षा ही नहीं है। वह आकांक्षामुक्त जीवन परम जीवन है।
जो जागे सो सबसे न्यारा!
जो कोई साध जागिया चावै।

और जिसको भी जागना हो!
सो सतगुरु के सरनै आवै!
किसी जागे हुए से संबंध जोड़े। क्योंकि बिना जागे हुए से संबंध जोड़े पहचान न आएगी। यह बात जरा जटिल है। यह बात जरा सूक्ष्म है। भोग और त्याग बड़े आसान हैं, स्थूल हैं। ऊपर-ऊपर से दिखाई पड़ते हैं। इसमें कुछ अड़चन नहीं होती।
जैन मुनि को तुम जानते हो कि त्यागी। और तुम जानते हो कि जो बाजार में बैठा है, भोगी। जो वेश्यागृह में जाकर नाच देख रहा है, भोगी। और जो जंगल भाग गया है, त्यागी। जनक को क्या करोगे? जनक बैठे हैं राजमहल में, वेश्याओं का नृत्य चल रहा है। और भीतर जंगल है। भीतर सन्नाटा है। भीतर अंतर-गुफा है। भीतर साक्षी है। यह सब बाहर खेल चल रहा है। वेश्याएं नाच रही हैं और शराब के प्याले पर प्याले ढाले जा रहे हैं। और जनक वहां हैं और नहीं भी हैं। इस न्यारे आदमी को कैसे पहचानोगे? न्यारे से संबंध जोड़ोगे, तो ही पहचान आएगी।
कृतकृत बिरला जोग सभागी। गुरमुख चेत सब्दमुख जागी।।
वह भाग्यवान है जो किसी ऐसे अनूठे व्यक्ति के साथ जुड़ जाए, क्योंकि उसका शब्द भी जगा देता है।
संसय मोह-भरम निस नास।
उसका सान्निध्य संशय को मिटा देता है, मोह को मिटा देता है। भ्रम की निशा नष्ट हो जाती है, श्रद्धा की सुबह होती है।
आतमराम सहज परकास।
उसके सान्निध्य में स्वयं के भीतर डुबकी लगने लगती है। आत्मा का सहज प्रकाश उपलब्ध होने लगता है।
राम सम्हाल सहज धर ध्यान।
उसके पास सीखने को मिलता है--संसार को न तो पकड़ना है, न छोड़ना है।
पकड़ना-छोड़ना अगर किसी को है तो राम को। बाहर की बात ही छोड़ो, भीतर पकड़ो।
अभी भीतर छोड़े बैठे हो।
राम सम्हाल...
बस एक बात सम्हाल लो--भीतर राम को सम्हाल लो। भीतर साक्षीभाव को सम्हाल लो।
... सहज धर ध्यान!
नैसर्गिक है भीतर तुम्हारे जो बह रहा है। तुम्हें जन्म से मिला है। तुम्हारा स्वभाव है। उसे कहीं से लाना नहीं है, सहज है। उस सहज ध्यान को साध लो।
पाछे सहज प्रकासै ग्यान।
उसके पीछे अपने आप ज्ञान चला आता है। ध्यान के पीछे कतार बंधी है-- वेदों की, उपनिषदों की, कुरानों, बाइबिलों की। वे अपने आप चली आती हैं। मगर पहले ध्यान, पहले जागरण।
जन दरियाव सोई बड़भागी। जाकी सुरत ब्रह्म संग जागी।
और सब छोड़ो, भीतर बैठे ब्रह्म की स्मृति को जगाओ। तब जरूर होगी अमृत
की वर्षा। तब खिलेगा जरूर कमल। अमी झरत, बिगसत कंवल!
आज इतना ही।

अमी झरत, बिगसत कंवल
आठवां प्रवचन

सृजन की मधुर वेदना

पहला प्रश्नः संतों के अनुसार वैराग्य के उदय होने पर ही परमात्मा की
ओर यात्रा संभव है। और आप कहते हैं कि संसार में रह कर धर्म-साधना संभव है। इस विरोधाभास पर कुछ कहने की अनुकंपा करें।

आनंद मैत्रेय! विरोधाभास रंचमात्र भी नहीं है। विरोध तो है ही नहीं, आभास भी नहीं है विरोध का। दिखाई पड़ सकता है विरोध, क्योंकि सदियों के संस्कार ठीक-ठीक देखने नहीं देते, देखने में अड़चन डालते हैं, आंखों में धूल का काम करते हैं।
संत ठीक कहते हैं कि वैराग्य के उदय हुए बिना परमात्मा की ओर यात्रा नहीं हो सकती। और जब मैं कहता हूंः संसार में रह कर ही धर्म-साधना संभव है, तो संतों के विपरीत कुछ भी नहीं कह रहा हूं। संसार में बिना रहे वैराग्य ही कैसे पैदा होगा? संसार ही तो अवसर है वैराग्य का। संसार में ही तो वैराग्य सघन होगा। जो संसार से भाग जाएगा, उसका वैराग्य कच्चा रह जाएगा। और कच्चा वैराग्य रहा, तो राग फिर नये अंकुर फोड़ देगा, नये पल्लव निकल आएंगे।
इस उलटी सी दिखने वाली बात को ठीक से समझना। संसारी अक्सर संन्यास की बात सोचता है! संसार में दुख इतना है, पीड़ा इतनी है, चिंता इतनी है कि जिसमें थोड़ी भी बुद्धि है, वह कभी न कभी सोचता है कि छोडूं-छाडूं! बहुत हो चुका, और कब तक ऐसे ही घिट्टे खाना है! कब तक कोल्हू का बैल बना रहूं! वही चक्कर, वही सुबह, वही सांझ, वही दौड़-धूप, वही आपाधापी! क्या ऐसे ही दौड़-दौड़ कर मर जाना है या कुछ पाना भी है?
संसार में जिसके मन में संन्यास की वासना न उठती हो, संन्यास की कामना
न उठती हो, ऐसा आदमी खोजना कठिन है! भोगी से भोगी को भीतर एक अभीप्सा उठनी शुरू हो जाती है! और जो भाग गए हैं संसार से, उन्हें संन्यास का दुख है। वे संन्यास से ऊबे हुए हैं। कब तक बैठे रहें इसी गुफा में! और कब तक फेरते रहें माला! और यह रोज-रोज की भीख मांगना और द्वार-द्वार से कहा जाना कि आगे बढ़ो और यह रोटी की चिंता, और बीमारी में कौन फिकर करेगा, और बुढ़ापे में कौन सहारा देगा! और हजार उनकी भी चिंताएं हैं, हजार उनके भी कष्ट हैं।
तुम ऐसा मत सोच लेना कि गुफा में जो रह रहा है, उसके कोई कष्ट नहीं हैं। उसके अपने कष्ट हैं--तुमसे भिन्न हैं। तुम्हारा कष्ट है कि भीड़ के कारण तुम्हें शांति नहीं मिलती; उसका कष्ट है कि अकेलापन काटता है। तुम अकेले होना चाहते हो, क्योंकि भीड़ से तुम थकते हो; रोज-रोज भीड़ ही भीड़ है, सब तरफ भीड़ है। भाग जाना चाहते हो कहीं। क्षण भर को भी विश्राम मिल जाए, ऐसी आकांक्षा तुम्हारे मन में जगती है। लेकिन जो अपनी गुफा में बैठा है, वह राह देखता है कि कोई भूला-भटका शिकारी ही आ जाए कि बैठ कर दो क्षण बातें हो लें, कि कुछ खबरें मिल जाएं कि संसार में क्या हो रहा है। वह भी प्रतीक्षा करता है कि कब भरे कुंभ का मेला, कि उतरूं पहाड़ से, कि जाऊं भीड़-भाड़ में। घबड़ाने लगता है एकाकीपन, काटने लगता है एकाकीपन।
तुम भी जंगल जाकर देखो। एकाध दिन, दो दिन, तीन दिन अच्छा लगेगा, प्रीतिकर लगेगा। बड़ा सौभाग्य मालूम होगा, स्वतंत्रता मालूम होगी। बस तीन दिन, और सुहागरात समाप्त! और घर की याद आने लगेगी। और घर की सुविधाएं... सुबह-सुबह स्नान के लिए गर्म जल, और सुबह-सुबह पत्नी जगाती चाय हाथ में लिए। अब न तो कोई गर्म जल है, न कोई चाय के लिए जगाता है, न कोई पूछने वाला है कि कैसे हो, अच्छे कि बुरे, न कोई पैर दबाने को है। अब तुम्हें वे सब सुख याद आने लगेंगे जो घर में संभव थे। वह घर की सुरक्षा, सुविधा, वह घर की ऊष्मा, वे प्रीति के सारे के सारे फूल स्मरण आने लगेंगे। बच्चों की किलकारियां, उनका हंसना और तुम्हारी गोद में आकर बैठ जाना और क्षण भर को तुम्हें भी बचपन की दुनिया में ले जाना, वह सब तुम्हें याद आने लगेगा।

आदमी का मन ऐसा है कि जो है उसे भूल जाता है और जो नहीं है उसकी याद करता है। महलों में रहने वाले लोग सोचते हैं कि झोपड़ों में रहने वाले लोग बड़ी मस्ती में रह रहे हैं। न कोई चिंता राज्य की, न कोई धन को बचाने की फिकर, न दुश्मनों का कोई डर, घोड़े बेच कर सोते हैं, मस्त है उनकी नींद! महलों वाले ईर्ष्या करते हैं झोपड़े वालों से। और झोपड़े में जो रह रहा है, वह सोचता हैः अहा! महल के आनंद! उनकी कल्पना करके ही ईर्ष्या से जला जाता है।
यही द्वंद्व संसार और संन्यास का भी है। जो शहर में है वह सोचता हैः गांव में बड़ा आनंद है, प्राकृतिक सौंदर्य है, शुद्ध हवाएं हैं, सूरज-चांद-तारे हैं। बंबई में तो चांद-तारे दिखाई ही कहां पड़ते हैं! पता ही नहीं चलता कब पूर्णिमा आई और कब गई। और जमीन पर ही इतनी रोशनी है कि तारे देखे कौन! फुर्सत किसको है! आंखें जमीन पर गड़ी हैं। हवा इतनी गंदी है!
वैज्ञानिक तो बहुत चकित हैं। न्यूयार्क की हवा का विश्लेषण किया है
तो पाया कि हवा में इतना जहर है कि जितने जहर में आदमी को जिंदा रहना ही नहीं चाहिए, आदमी को मर ही जाना चाहिए। मगर आदमी अदभुत है! उसकी समायोजन की क्षमता अदभुत है! वह हर चीज से अपने को समायोजित कर लेता है। अगर तुम जहर भी धीरे-धीरे, धीरे-धीरे पीते रहो, तो तुम जहर पीने के भी आदी हो जाओगे। फिर जहर तुम्हारा कुछ न कर सकेगा।
तुमने कहानियां सुनी होंगी। पुराने दिनों में सम्राट विष-कन्याएं रखते थे राजमहल में। बचपन से ही पैदा हुई कोई सुंदर लड़की को विष पिलाना शुरू किया जाता था दूध के साथ। छोटी मात्रा, होम्योपैथी की मात्रा। और फिर धीरे-धीरे मात्रा बढ़ाते जाते, बढ़ाते जाते, बढ़ाते जाते; जब तक वह जवान होती, तब तक उसका सारा रक्त जहर से भर जाता। उसका रक्त इतना जहरीला हो जाता कि अगर वह किसी का चुंबन ले ले तो वह आदमी मर जाए। इन विष-कन्याओं का उपयोग किया जाता था जासूसों की तरह। चूंकि वे सुंदर होतीं, उनको भेजा जा सकता था दूसरे राज्यों में। चूंकि वे इतनी सुंदर होतीं कि स्वयं राजा-महाराजा उनके प्रेम में पड़ जाते। और उनको चूमना संघातक! खुद नहीं मरती है वह लड़की, लेकिन जो उसे चूम ले, मर जाता है।
मनुष्य की समायोजन की क्षमता अपार है; हर हालत से अपने को समायोजित कर लेता है। न्यूयार्क में तीन गुना जहर है हवाओं में। वैज्ञानिक सोचते हैं, जितना आदमी सह सकता है, उससे तीन गुना ज्यादा! बंबई में दो गुना होगा। बंबई में जो रहता है, सोचता है--गांव का सौंदर्य, नैसर्गिक हवाएं, चांद-तारे! लेकिन गांव वाले आदमी से पूछो। उसकी आंखें बंबई पर अटकी हैं। वह चाहता है कि कैसे बंबई पहुंच जाए! पत्नी छूटे तो छूटे, बच्चे छूटें तो छूटें, कैसे बंबई पहुंच जाए! और बंबई में मिलेगी झोपड़-पट्टी रहने को। रहेगा किसी गंदे नाले के करीब, जहां चारों तरफ सिवाय गंदगी के कुछ भी न होगा। लेकिन फिर भी, बंबई इंद्रपुरी मालूम होती है!
मनुष्य का मन ऐसा है, जो पास में नहीं है उसकी आकांक्षा होती है; जो पास है उससे विरक्ति होती है।
इसलिए मैं कहता हूं कि संसार से भागो मत, क्योंकि मैं संन्यासियों को जानता हूं जो संसार से भाग गए हैं। इस देश के करीब-करीब सभी परंपराओं के संन्यासियों से मेरे संबंध रहे हैं। और उन सबके भीतर मैंने संसार की गहन वासना देखी है। सत्तर साल की उम्र के एक जैन मुनि ने मुझे कहा कि पचास साल हो गए मुझे मुनि हुए, लेकिन मन में यह बात छूटती नहीं कि कहीं मैंने भूल तो नहीं की! जो संसार में हैं, कहीं वे ही तो मजा नहीं ले रहे हैं! कहीं मैं चूक तो नहीं गया इस झंझट में पड़ कर! अब तो देर भी बहुत हो चुकी, अब तो लौटने में भी कुछ सार नहीं है। लेकिन कौन जाने! मैं तो बहुत युवा था, बीस ही साल का था, तब घर छोड़ दिया। आ गया किसी की बातों के प्रभाव में। यह तो धीरे-धीरे पता चला कि जिसकी बातों के प्रभाव में आ गया था, उसे भी कुछ आनंद अनुभव नहीं हुआ है। मगर यह तो देर से पता चला, तब तक सम्मानित हो चुका था। लोग चरण छूते थे। वे ही लोग, जो दो दिन पहले जब तक मैं संन्यस्त न हुआ था, अगर उनके घर चपरासी के काम की आकांक्षा करता तो इनकार कर देते--वे ही लोग पैर छूते थे! तो अब लौटूं भी तो कैसे लौटूं? शोभा-यात्राएं निकालते थे--वे ही लोग, जो दो पैसे दे नहीं सकते थे, अगर मैं भीख मांगने जाता! अब मेरे चरणों पर सब

निछावर करने को राजी थे। अब छोडूं तो कैसे छोडूं? जो संसार में प्रतिष्ठा नहीं मिली, अहंकार को तृप्ति नहीं मिली, वह मुनि होकर मिल रही थी। तो छोड़ भी न पाया। मगर मन में यह बात सरकती ही रही और अब भी सरकती है, सत्तर साल की उम्र में भी सरकती है--कि कहीं मैं चूक तो नहीं गया! कहीं ऐसा तो नहीं है कि मैं व्यर्थ के जाल में पड़ कर जीवन गंवा दिया! एक पूरा जीवन गंवा दिया! इसलिए मैं कहता हूंः संसार से भागना मत। संसार से ज्यादा और सुविधापूर्ण कोई स्थान नहीं है जहां वैराग्य का जन्म होता है। संसार में रह कर विरागी हो जाओ। भागते क्यों हो? भागने का मतलब है कि अभी कुछ डर है संसार का। डर का अर्थ हैः अभी कुछ राग है। डरते हम उसी चीज से हैं जिससे राग होता है। डरते इसीलिए हैं कि हमें अपने पर भरोसा नहीं है। हम जानते हैं कि अगर एकांत और ऐसी सुविधा मिली तो हम अपने को रोक न पाएंगे; अपनी उत्तेजनाओं पर, अपनी वासनाओं पर संयम न रख पाएंगे। हमें अपने संयम के कच्चेपन का पक्का पता है। इसलिए उचित यही है कि ऐसे अवसर से ही पीठ फेर लो; ऐसी जगह से ही हट जाओ। धन का ढेर लगा हो तो हम अपने को रोक न पाएंगे, झोली भर लेंगे। इसका जिसको अनुभव होता है, वह सोचता हैः ऐसी जगह कदम ही मत रखना जहां धन का ढेर लगा हो। अगर कोई सुंदर स्त्री दिखाई पड़ेगी, उपलब्ध होगी, तो हम अपने को रोक न पाएंगे; या सुंदर पुरुष, तो हमारे नियंत्रण टूट जाएंगे, हमारे संयम के कच्चे धागे उखड़ जाएंगे, हमारे भीतर दबी हुई वासनाएं उभर आएंगी, प्रकट हो जाएंगी। इससे बेहतर है ऐसी जगह भाग जाओ, जहां अवसर ही न हो। लेकिन अवसर का न होना सिद्ध नहीं करता कि वासना समाप्त हो गई है। क्या तुम सोचते हो कि अंधे आदमी की देखने की वासना समाप्त हो जाती है? क्या अंधा आदमी रंगों को देखना नहीं चाहता? क्या अंधा आदमी सुबह को देखना नहीं चाहता? क्या अंधा आदमी रात तारों से भरे हुए आकाश को देखना नहीं चाहता? क्या अंधा आदमी किसी सुंदर चेहरे को, किन्हीं झील जैसी नीली आंखों को नहीं देखना चाहता? क्या तुम सोचते हो कि बहरे की वासना समाप्त हो जाती है संगीत को सुनने की? या कि लंगड़े की वासना समाप्त हो जाती है चलने की, उठने की, दौड़ने की?
काश, इतना आसान होता तो जंगल में भाग गए संन्यासी विराग को उपलब्ध हो जाते! लेकिन जंगल भाग कर वे केवल अवसर से वंचित होते हैं, भीतर की कामनाएं तो और भी प्रगाढ़ होकर, और भी प्रज्वलित होकर जलने लगती हैं, और भी शुद्ध होकर जलने लगती हैं।
तुम्हारे जीवन में ऐसा रोज-रोज अनुभव होता है। जिस पत्नी से तुम परेशान हो, चाहते हो कि मायके चली जाए, कुछ देर तो छुटकारा हो; उसके मायके चले जाने पर कितनी देर तक छुटकारा अनुभव होता है? दिन, दो दिन, चार दिन--और उसकी याद आने लगती है, और वे सारे सुख जो उसके कारण थे, जो पहले दिखाई ही न पड़े थे। हर चीज में अड़चन मालूम होने लगती है। अब सोचते हो कि वापस लौट आए। अब बड़े प्रेम-पातियां लिखने लगते हो, कि तेरे बिना मन नहीं लगता! और जरा सोचो तो, थूके को चाट रहे हो! अभी चार दिन पहले सोचते थे कि किसी तरह छुटकारा हो और अब तेरे बिना मन नहीं लगता!
मन की इस स्थिति को ठीक से समझ लो तो मेरी बात तुम्हें समझ में आ जाएगी। और तब तुम पाओगेः मैं जो कह रहा हूं वह संतों के विपरीत नहीं है। मैं जो कह रहा हूं वही संतों के पक्ष में है। मैं चाहता हूं कि रहो सघन संसार में, ताकि वैराग्य घना होता रहे, घना होता रहे, घना होता रहे! इतना सघन हो जाए एक दिन कि अवसर तो बाहर मौजूद रहे, लेकिन भीतर वासना मर जाए। ये दो बातें हैं--अवसर और वासना। अवसर का न होना वासना का असिद्ध होना नहीं है। हां, वासना का असिद्ध हो जाना जरूर क्रांति है, रूपांतरण है।
तो मैं कहता हूंः धन में रहो ताकि धन से मुक्त हो जाओ। भोगो, ताकि भोग व्यर्थ हो जाए। इसके सिवाय कोई और उपाय नहीं है। भागे कि भोग कभी व्यर्थ नहीं होगा; भोग सार्थक बना रहेगा; भोग की उमंग भीतर उठती ही रहेगी।
तुम जानते हो, तुम्हारे पुराणों में कथाएं तो भरी पड़ी हैं कि जब भी कोई ऋषि-मुनि ज्ञान को उपलब्ध होने को हो, बस उपलब्ध होने को होता है कि इंद्र भेज देते हैं उर्वशियों को। आखिर इंद्र उर्वशी को क्यों भेजते हैं? क्योंकि ये जो ऋषि हैं, ये जो मुनि हैं, स्त्रियों से भागे हैं। गणित साफ है, मनोविज्ञान स्पष्ट है। तुमने शायद ऐसा सोचा हो या न सोचा हो; चाहे कोई

इंद्र हों, उर्वशियां हों या न हों--मगर विज्ञान बड़ा साफ है। सूत्र स्पष्ट है। स्त्रियां छोड़ कर भाग गया यह मुनि, यह जंगल में बैठा है। एक बात पक्की है कि जिसको छोड़ कर आया है, उसकी वासना इसके भीतर सर्वाधिक प्रगाढ़ होगी। इसको अगर डुलाना है, इसको अगर गिराना है, तो भेज दो एक अप्सरा। यह डोल जाएगा, यह गिर जाएगा। इंद्र को मनोविज्ञान का ठीक-ठीक बोध है।
मेरे संन्यासी को इंद्र नहीं डुला सकेगा! इधर इंद्र चिंतित है। इधर उसके पुराने सारे उपाय व्यर्थ हैं। मेरे संन्यासी के पास उर्वशी आकर भला डोल जाए, मेरा संन्यासी नहीं डोलने वाला है। कोई कारण नहीं है। बहुत उर्वशियां देखीं, उर्वशियां ही उर्वशियां नाच रही हैं! तुम देखते हो, इंद्र की व्यवस्था को मैं किस तरह काट रहा हूं! इंद्र बड़ी बिगूचन में है। पुरानी तरकीबें कोई, पुराने हथकंडे कोई काम आएंगे नहीं। वे पुराने ऋषियों पर काम आ गए, भगोड़े थे। और कोई अप्सरा ही भेजने की जरूरत नहीं थी, कोई साधारण स्त्री पर्याप्त होती। नाहक ही, जहां सुई काम कर जाती, वहां तलवार चला रहे थे इंद्र। साधारण स्त्री काफी होती।
मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन ने पहाड़ पर एक मकान बना रखा है। वहां कभी-कभी जाता है विश्राम के लिए। कह कर जाता है तीन सप्ताह रहूंगा, आ जाता है आठवें दिन! तो मैंने पूछा कि बात क्या है? कह कर गए थे कि तीन सप्ताह रहूंगा, कभी आठवें दिन आ जाते हो; कभी कह कर जाते हो कि चार सप्ताह रहूंगा और सातवें दिन वापस लौट आते हो!
उसने कहाः अब आपसे क्या छिपाना! मैंने वहां एक नौकरानी रख छोड़ी है। वह इतनी बदशक्ल है कि उससे बदशक्ल औरत मैंने नहीं देखी। उसे देख कर ही वैराग्य उदय होता है। रागी से रागी मन में एकदम वैराग्य उदय हो जाए। वह ऐसा समझो कि उर्वशी से बिल्कुल उलटी है। उसे देख कर ही मन हटता है, जुगुप्सा पैदा होती है, वीभत्स... । तो मैंने यह नियम बना रखा है कि जाता हूं पहाड़ तय करके कि तीन सप्ताह रहूंगा। लेकिन जिस दिन वह स्त्री मुझे सुंदर मालूम होने लगती है, बस उसी दिन भाग खड़ा होता हूं। सात दिन, आठ दिन, दस दिन ज्यादा से ज्यादा, बस। वह मेरा मापदंड है। जिस दिन मुझे लगने लगता है कि यह स्त्री सुंदर है, उस दिन मैं सोचता हूं कि नसरुद्दीन, बस, अब हो गया, अब वापस लौट चलो, अब घर वापस लौट चलो।
कुरूप से कुरूप स्त्री भी सुंदर मालूम हो सकती है, अगर वासना को बहुत दबाया गया हो। भूखे आदमी को रूखी रोटी भी सुस्वादु मालूम होगी।
क्यों अप्सरा भेजी? मैं नहीं मानता कि इंद्र ने अप्सरा भेजी होगी। कोई भी नौकर-चाकरनियां भेज दी होंगी। मुनि महाराज समझे कि अप्सरा आई है।
मेरी अपनी समझ यह है। उर्वशी को भेजने की जरूरत ही क्या है? यही मुल्ला नसरुद्दीन की स्त्री भेज दी होगी, जो उसने पहाड़ पर रख छोड़ी है; मुनि महाराज समझे होंगे कि भेजी उर्वशी। कोई जरूरत नहीं है। जिन्होंने दबाया है, उन्हें उभारना तो बड़ा आसान है। उन्हें तो छोटी सी चीज भी उभार दे सकती है। इसलिए मैं दमन के विपरीत हूं, क्योंकि जिसने दबाया वह कभी मुक्त नहीं होगा। मैं संसार के पक्ष में हूं। और यही परमात्मा का प्रयोजन है संसार बनाने का। यह अवसर है विराग में ऊपर उठने का। संसार से ज्यादा और सुंदर व्यवस्था क्या हो सकती थी मनुष्य को वैराग्य देने की? सारा उपद्रव दे दिया है संसार में। और ज्यादा उपद्रव की तुम कल्पना भी क्या कर सकते हो! कुछ परमात्मा ने छोड़ा हो तो आदमी ने उसकी पूर्ति कर दी है। सब उपद्रव है यहां, उपद्रव ही उपद्रव है! वैराग्य का कैसा सुअवसर है!
मेरी बात उलटी दिखाई पड़ती है उन्हीं को, जिनके पास समझ नाममात्र को नहीं है; अन्यथा मैं जो कह रहा हूं उसके पीछे गहरा विज्ञान है, सीधा गणित है, शुद्ध तर्क है। जिस चीज से मुक्त होना है उसमें पूरे डूब जाओ, तुम्हारी मुक्ति निश्चित है। क्योंकि जितने तुम डूबोगे, उतना ही तुम उसकी व्यर्थता पाओगे। जिस दिन पूरे-पूरे डूब जाओगे, जिस दिन व्यर्थता समग्ररूपेण दिखाई पड़ जाएगी, उसी दिन तुम उसके बाहर आ जाओगे। और वह बाहर आना अपूर्व होगा, सुंदर होगा, सहज होगा, नैसर्गिक होगा। उसमें भगोड़ापन नहीं होगा, पलायनवाद नहीं होगा, दमन नहीं होगा, व्यर्थ की पीड़ा नहीं होगी। जैसे अचानक सहज ही फूल खिल जाए, ऐसे ही तुम्हारे भीतर फूल खिल जाएगा। अमी झरत, बिगसत कंवल!

दूसरा प्रश्नः कभी झील में खिला कमल देख आंदोलित हो उठता हूं। कभी अचानक कोयल की कूक सुन हृदय गदगद हो जाता है। कभी बच्चे की मुस्कान देख विमुग्ध हो जाता हूं। तब ऐसा लगता है जैसे सब कुछ थम गया है--न विचार, न कुछ। लगता है ये क्षण कुछ संदेश लाते हैं। वह क्या होगा?

प्रदीप चैतन्य! पूछा कि चूकना शुरू किया। उन क्षणों में, जहां विचार रुक जाते हैं, वहां भी संदेश खोजोगे? तो तुम विचार की खोज में लग गए। जहां विचार थम जाते हैं, अब प्रश्न मत बनाओ, नहीं तो ध्यान से गिरे और चूके। अब तो निष्प्रश्न डुबकी मारो।
ये सब ध्यान के बहाने हैं। उगता सूरज सुबह का, प्राची लाल हो गई, पक्षियों के गान फूट पड़े, बंद कलियां खुलने लगीं--सब सुंदर है! सब अपूर्व है! सब अभिनव है! इस क्षण अगर तुम्हारा हृदय आंदोलित हो उठे, तो अब पूछो मत कि ऐसा क्यों हो रहा है! क्योंकि तुमने "क्यों" पूछा कि मस्तिष्क आया। और मस्तिष्क आया कि हृदय का आंदोलन समाप्त हुआ।
हृदय में प्रश्न नहीं होते, सिर्फ अनुभव होते हैं। और मस्तिष्क में सिर्फ प्रश्न होते हैं, अनुभव नहीं होते। यह मस्तिष्क की तरफ से बाधा है। तुमने रात देखी तारों-भरी, विराट आकाश देखा, कुछ तुम्हारे भीतर स्तब्ध हो गया, विमुग्ध हो गया, विस्मय-लीन हो गया। डूब जाओ! मारो डुबकी! छोड़ो सब प्रश्न! अब यह मत पूछो कि इसका संदेश क्या है। ये सब बातें व्यर्थ की हैं। यह शून्य ही संदेश है। यह मौन ही संदेश है। यह विस्मय-विमुग्ध भाव ही संदेश है। और क्या संदेश? तुम चाहते हो कोई आयत उतरे, कि कोई ऋचा बने, कि शब्द सुनाई पड़ें, कि परमात्मा तुमसे कुछ बोले, कि प्रदीप चैतन्य! सुनो, यह रहा संदेश?
वह सब फिर तुम्हारा मन ही बोलेगा। चूक गए। आ गए थे मंदिर के द्वार के करीब और चूक गए। प्रश्न उठा कि द्वार बंद हो गया। निष्प्रश्न रहो तो द्वार खुला है।
ऐसा समझो कि बुद्धि के पास प्रश्न ही प्रश्न हैं, हृदय के पास उत्तर
ही उत्तर हैं, और दोनों का कभी मिलन नहीं होता। अगर उत्तर चाहते हो तो प्रश्न मत पूछो। अगर प्रश्न ही चाहते हो तो प्रश्न पूछते रहो, प्रश्नों से प्रश्न लगते रहेंगे।
यह सुंदर हो रहा है, शुभ हो रहा है। सौभाग्यशाली हो।
तुम कहते होः "तब ऐसा लगता है कि सब कुछ थम गया।"
उसी को तो मैं ध्यान कह रहा हूं, जब सब थम जाता है। एक क्षण को कोई तरंग नहीं रह जाती--विचार की, वासना की, स्मृति की, कल्पना की। एक क्षण को न समय होता है, न स्थान होता है। एक क्षण को तुम किसी और लोक, किसी और आयाम में प्रविष्ट हो जाते हो। तुम कहीं और होते हो। एक क्षण को तुम होते ही नहीं, कोई और होता है! यही तो ध्यान है। और ध्यान साधन नहीं है, साध्य है। ध्यान किसी और चीज के लिए रास्ता नहीं है, ध्यान मंजिल है।
इसलिए अब यह मत पूछो कि इन क्षणों में कोई संदेश होना चाहिए, वह संदेश क्या होगा?
तुम खराब कर लोगे इन क्षणों को। इन कोरे निर्दोष क्षणों को गूद डालोगे व्यर्थ की बकवास से। अस्तित्व का कोई संदेश नहीं है। अस्तित्व का संदेश अगर कुछ है तो शून्य है, मौन है; शब्द नहीं।

ध्यान मुझको तुम्हारा प्रिये,
चांद और चांदनी का मिलन देख आने लगा,
जिंदगी का थका कारवां
सैकड़ों कंठ से प्यार के गीत गाने लगा।

रात का बंद नीलम किवाड़ा डुला,
लो क्षितिज-छोर पर देव-मंदिर खुला, हर नगर झिलमिला हर डगर को खिला,
हर बटोही जला ज्योति प्लावन चला;
कट गया शाप, बीती विरह की अवधि,

ज्वार की सीढ़ियों पर खड़ा हो जलधि, अंजलि अश्रु भर-भर किसी यक्ष-सा, प्यार के देवता पर चढ़ाने लगा।

आरती थाल ले नाचती हर लहर,
हर हवा बीन अपना बजाने लगी,
हर कली अंग अपना सजाने लगी,
हर अली आरसी में लजाने लगी,
हर दिशा तक भुजाएं बढ़ाता हुआ,
हर जलद से संदेशा पठाता हुआ, विश्व का हर झरोखा दिया बाल कर, पास अपने पिया को बुलाने लगा।

ज्योति की ओढ़नी के तले लो तिमिर की युवा आज फिर साधना हो गई, स्नेह की बूंद में डूब कर प्राण की वासना आज आराधना हो गई;
आह री! यह सृजन की मधुर वेदना, जन्म लेती हुई यह नयी चेतना,
भूमि को बांह भर काल की राह पर, आसमां पांव अपने बढ़ाने लगा।
यह सफर का नहीं अंत विश्राम रे, दूर है दूर अपना बहुत ग्राम रे, स्वप्न कितने अभी हैं अधूरे पड़े, जिंदगी में अभी तो बहुत काम रे; मुस्कुराते चलो, गुनगुनाते चलो,
आफतों बीच मस्तक उठाते चलो,

ध्यान मुझको तुम्हारा प्रिये,
चांद और चांदनी का मिलन देख आने लगा,
जिंदगी का थका कारवां
सैकड़ों कंठ से प्यार के गीत गाने लगा।

हर क्षण, जब तुम चुप हो, तो परमात्मा और प्रकृति का मिलन हो रहा है। हर क्षण, जब तुम सन्नाटे में हो, तब पृथ्वी आकाश में लीन हो रही है। हर क्षण, जब तुम्हारे भीतर मौन का फूल खिला है, तब द्वंद्व समाप्त हुआ है; निर्द्वंद्व घड़ी आई है; पदार्थ और चेतना का भेद मिटा है; सृष्टि और स्रष्टा में अंतर नहीं रहा है। अब और क्या संदेश? तृप्त हो जाओ इस क्षण में! आंख बंद कर लो, जी भर कर पी लो इस क्षण को! पूछोगे, चूकोगे। प्रश्न उठा कि क्षण तुम्हारे हाथ से छिटक गया। तुम्हें जानना होगा कि अब प्रश्न नहीं उठाना है। अब तुम्हें प्रश्न से सावधान होना पड़ेगा। वह पुरानी आदत तुम्हें त्यागनी होगी। ध्यान सीख सकता है वही जो विचार की पुरानी आदत को त्यागने को तत्पर है।
और तुम सौभाग्यशाली हो प्रदीप चैतन्य, कि ध्यान की ये छोटी-छोटी झलकें आने लगीं, झरोखे खुलने लगे, बिजली कौंधने लगी। अब मत उठाओ प्रश्न। रसमय हो जाओ। नाचो तो नाच लो, प्रश्न मत उठाओ। गीत उठे तो गा लो, प्रश्न मत उठाओ। नाद उठे भीतर तो गुंजार करो, प्रश्न मत उठाओ। सम्हाल ही न सको अपने को--बांसुरी बजानी आती हो, बांसुरी बजाओ; सितार बजाना आता हो, सितार बजाओ; और कुछ भी न आता हो तो नाच तो सकते ही हो! और नाचने के लिए कोई कला की जरूरत नहीं है, क्योंकि यह तुम किन्हीं दर्शकों के लिए नहीं नाच रहे हो। अपनी मस्ती में, अपनी अलमस्ती में! मगर प्रश्न मत उठाओ। प्रश्न द्वार नहीं, दीवाल बन जाता है।
और प्रश्न उठता है, पुराना संस्कार है, हर चीज पर प्रश्न उठता है! मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैंः ध्यान में बड़ा आनंद आ रहा है, क्यों?

आनंद को भी निष्प्रश्न न ले सकोगे? आनंद को भी झोली भर कर न ले सकोगे? आनंद से भी डरे-डरे! पहले प्रश्न पूछोगे, पूछताछ करोगे, जानकारी कर लोगे-- कहां से आता है, क्या है, क्या नहीं है--तब लोगे? इतनी देर आनंद तुम्हारे लिए रुकेगा नहीं। आनंद आता है लहर की तरह। और तुम अगर इस पूछताछ में लग गए कि कौन आता, कहां से आता, क्यों आता, क्या है--तो गए काम से! जब तक तुम पूछताछ कर पाओगे, तब तक आनंद जा चुका, झोली खाली की खाली रह जाएगी। और पूछताछ से पाओगे क्या? परिभाषाएं तृप्ति तो नहीं देंगी। कोई कह भी देगा कि आनंद का क्या अर्थ है, तो भी तुम्हारे हाथ अर्थ तो न लगेगा।
नहीं, पुरानी यह आदत छोड़ो।
रात का बंद नीलम किवाड़ा डुला।
लो क्षितिज-छोर पर देव-मंदिर खुला,
हर नगर झिलमिला हर डगर को खिला
हर बटोही जला ज्योति प्लावन चला;
कट गया शाप, बीती विरह की अवधि,
ज्वार की सीढ़ियों पर खड़ा हो जलधि
अंजलि अश्रु भर-भर किसी यक्ष सा,
प्यार के देवता पर चढ़ाने लगा।
रोओ, कुछ न कर सको तो! मगर प्रश्न मत उठाओ। झर-झर बहने दो आंसू, झर-झर झरने दो आंसू--जैसे पतझर में पत्ते झरें, कि जैसे सांझ दिन भर खिला फूल अपनी पंखुरियों को वापस पृथ्वी में लौटाने लगे।
आरती थाल ले नाचती हर लहर,
हर हवा बीन अपना बजाने लगी,
हर कली अंग अपना सजाने लगी,
हर अली आरसी में लजाने लगी,
हर दिशा तक भुजाएं बढ़ाता हुआ,
हर जलद से संदेशा पठाता हुआ,
विश्व का हर झरोखा दिया बाल कर,
पास अपने पिया को बुलाने लगा।
और तुम पूछ रहे होः संदेशा क्या? परमात्मा ने तुम्हें पुकारा, पिया ने तुम्हें पुकारा, जिसकी तलाश थी, उसके पास आ गए अचानक--अब तुम पूछते होः संदेशा क्या? तुम्हें परमात्मा भी मिल जाए तो तुम पहले पूछोगेः आइडेंटिटी कार्ड? पासपोर्ट? कहां से आते? कहां जाते? क्या प्रमाण है कि तुम ही परमात्मा हो?
और बेचारा परमात्मा क्या करेगा? कहां से पासपोर्ट लाएगा? कौन उसे पासपोर्ट देगा? और आइडेंटिटी कार्ड कौन उसका बनाएगा? बड़ी मुश्किल में पड़ जाएगा। वह कहेगाः भाई, तो फिर रहने ही दो। क्षमा करो, भूल हो गई। आपके दर्शन हुए, यही धन्यभाग! अब दुबारा ऐसी भूल न करेंगे।
जब ऐसी शुभ घड़ियां आएं तो प्रश्न जैसी क्षुद्र बातें मत उठाओ। तब थोड़े निष्प्रश्न श्रद्धा का रस लो।
ज्योति की ओढ़नी के तले लो तिमिर
की युवा आज फिर साधना हो गई,
स्नेह की बूंद में डूब कर प्राण की
वासना आज आराधना हो गई;
आह री! यह सृजन की मधुर वेदना,
जन्म लेती हुई यह नयी चेतना,
भूमि को बांह भर काल की राह पर,
आसमां पांव अपने बढ़ाने लगा।
ये क्षण हैं, जब आसमान पृथ्वी की तरफ आने लगता है। ये क्षण हैं, जब अज्ञात ज्ञात की तरफ हाथ फैलाता है। ये क्षण हैं, जब उस विराट का आलिंगन तुम्हारे लिए उपलब्ध होता है! गिर पड़ो! उसकी गोदी पास है, गिर पड़ो! अब व्यर्थ के प्रश्न न पूछो।
स्नेह की बूंद में डूब कर प्राण की
वासना आज आराधना हो गई;
आह री! यह सृजन की मधुर वेदना,

जन्म लेती हुई यह नयी चेतना,
और तुम प्रश्नों में उलझे हो! तुम पूछते होः संदेश! तुम शब्दों में ही कुछ समझोगे तभी समझोगे? शब्दों के बिना तुम कोई सेतु नहीं बना सकते? और चांद-तारे बोलते नहीं। सूरज को कोई भाषा नहीं आती। फूल मौन हैं--या कि मौन ही उनकी भाषा है! तुम उनकी ही भाषा सीखो। मौन के साथ मौन रह जाओ। जहां दो मौन होते हैं वहां दो नहीं रह जाते, क्योंकि दो मौन मिल कर एक हो जाते हैं। जहां दो शून्य होते हैं वहां दो नहीं रह जाते, क्योंकि दो शून्य मिल कर एक हो जाते हैं।
और ध्यान रखना, ये जो छोटे-छोटे झरोखे खुल रहे हैं, यह तो सिर्फ शुरुआत है। यह तो बांसुरी का पहला स्वर है। अभी तो बहुत बजने को, बहुत होने को है! यह सफर का नहीं अंत विश्राम रे,
दूर है दूर अपना बहुत ग्राम रे,
स्वप्न कितने अभी हैं अधूरे पड़े,
जिंदगी में अभी तो बहुत काम रे;
मुस्कुराते चलो, गुनगुनाते चलो,
आफतों बीच मस्तक उठाते चलो,
ध्यान मुझको तुम्हारा प्रिये,
चांद और चांदनी का मिलन देख आने लगा,
जिंदगी का थका कारवां
सैकड़ों कंठ से प्यार के गीत गाने लगा।

तीसरा प्रश्नः यह शिकायत मत समझना, आपकी एक जिंदादिल भक्त की प्रेम-पुकार है। आपसे दूर रह कर दिल पर क्या गुजरती है, वह आप ही समझ सकेंगे।
दिल की बात लबों पर लाकर, अब तक हम दुख सहते हैं।
हमने सुना था, इस बस्ती में, दिल वाले भी रहते हैं।
एक हमें आवारा कहना कोई बड़ा इलजाम नहीं,
दुनिया वाले दिल वालों को और बहुत कुछ कहते हैं।
बीत गया सावन का महीना, मौसम ने नजरें बदलीं,
लेकिन इन प्यासी आंखों से अब तक आंसू बहते हैं।
जिनके खातिर शहर भी छोड़ा, जिनके लिए बदनाम हुए,
आज वही हम से बेगाने बेगाने से रहते हैं।

राधा मोहम्मद! शिकायत तो है, नहीं तो प्रश्न की शुरुआत इस बात से न होती कि इसे शिकायत मत समझना। तुझे भी शक है कि शिकायत समझ ली जाएगी। जब तू ही समझ गई तो मैं न समझ पाऊंगा? जो तुझसे कह गया, वही मुझसे भी कह गया! पुरानी कहानी सुनी न! एक बूढ़ी स्त्री, गांव की ग्रामीण, अपने सिर पर गठरी लिए चल रही है। पास से एक घुड़सवार गुजरा। उस बूढ़ी ने कहाः बेटे, बोझ मेरे सिर पर बहुत है, तू घोड़े पर ले ले। आगे चौराहा पड़ता है, वहां चौराहे पर छोड़ देना। फिर मैं उठा लूंगी, फिर मेरा गांव बहुत करीब है।
घुड़सवार ने कहाः तूने मुझे समझा क्या है? कोई मैं नौकर-चाकर हूं? तूने मुझे कुछ ऐसा-वैसा समझा है? यह घोड़ा बोझ ढोने के लिए नहीं है। ढो अपना बोझ! लगाम खींची, घोड़े को आगे बढ़ा दिया। कोई मील भर पहुंच कर उसे ख्याल आया
कि ले ही लेता, पता नहीं बुढ़िया की गठरी में क्या है! अगर कुछ होता तो चौराहे पर छोड़ने की जरूरत न थी, लेकर अपने रास्ते लगता। अगर कुछ न होता तो चौराहे पर छोड़ देता। मैं भी बुद्धू हूं! गठरी ढो रही है तो कुछ होगा जरूर। और जब इतना बोझ ढो रही है तो कुछ होना ही चाहिए--सोना-चांदी हो, जेवर-जवाहरात हों, पता नहीं क्या हो!
लौटा। जाकर बुढ़िया से कहाः मां, क्षमा करना। भूल की मैंने, ऐसा मुझे करना न था, अशिष्ट था मेरा व्यवहार। ला दे तेरी गठरी, चौराहे पर छोड़ जाऊंगा।
वह बुढ़िया हंसी, उसने कहाः बेटा, जो तुझसे कह गया, वह मुझसे भी कह गया!
अब नहीं।
राधा मोहम्मद! जब प्रश्न की शुरुआत ही ऐसी हो कि इसे शिकायत मत समझना,
तो तेरे अचेतन में भी यह बात साफ है कि शिकायत है और शिकायत समझी जाएगी। है

तो समझी ही जाएगी। और तेरे प्रश्न में ही शिकायत नहीं है, तेरे चेहरे पर लिखी है, तेरी आंखों में लिखी है। और ऐसा भी नहीं है कि शिकायत अस्वाभाविक है; स्वाभाविक है।
राधा मोहम्मद वर्ष भर आश्रम में रही। अब मैं जानता हूं, एक बार आश्रम में रह जाना और अब उसे आश्रम के बाहर रहना पड़ रहा है। तो उसके कष्ट का भी मुझे अनुभव है। मैं जानता हूं, यह पीड़ापूर्ण है। और सब छोड़ कर राधा मोहम्मद आई आश्रम में। उसके पति की बड़ी नौकरी थी। कृष्ण मोहम्मद की बड़ी नौकरी थी। एयर इंडिया में बड़े पद पर थे। इटली में एयर इंडिया में बड़े अफसर थे। सब छोड़-छाड़ कर आश्रम के हिस्से हो गए। बड़ा त्याग था। बड़ी हिम्मत की थी। इस दृष्टि से भी त्याग था कि बड़ा पद छोड़ा, अच्छी नौकरी छोड़ी; काफी सुख-सुविधा से रहे, वह सब छोड़ा। बड़े बंगले छोड़े। यहां एक छोटे से कमरे में दो बच्चे, पति-पत्नी! इतना ही नहीं, मुसलमान परिवार से आते हैं। मुसलमान होकर भी हिम्मत जुटाई, जो कि जरा कठिन काम है। क्योंकि मुसलमान, कोई मुसलमान उनके घेरे से बाहर हो जाए तो महाशत्रु हो जाते हैं। तो सब तरह की बदनामी सही, सब तरह की मुसीबतें सहीं। मुसलमानों की धमकियां सहीं। कृष्ण मोहम्मद, राधा मोहम्मद को पत्र पर पत्र आते रहे धमकियों के कि हम जान से मार डालेंगे, तुमने दगा किया, तुमने धोखा किया, तुमने इस्लाम के साथ बगावत की। तो और भी कठिन था।
फिर साल भर मेरे पास रहना और फिर साल भर के बाद बाहर जाना और बाहर रहना कठिन तो है। शिकायत स्वाभाविक है।
लेकिन राधा, बाहर जाना पड़ा है तुम्हें अपने ही कारण! इसलिए शिकायत किसी और से मत करना, शिकायत करना तो अपने भीतर अपनी ही जिम्मेवारी से करना। धन छोड़ना आसान, समाज छोड़ना आसान, अहंकार छोड़ना सबसे कठिन है। साल भर सब तरह की कोशिश की यहां कि तुम दोनों का अहंकार छूट जाए, मगर वह न छूटा।
जिस काम में लगाया, उसी काम में अहंकार बाधा आया।
यह तो एक कम्यून है; यहां अगर अहंकारी इकट्ठे हो गए तो यह बिखर जाएगी। यहां तो समर्पित लोग चाहिए जो अहंकार को बिल्कुल ही छोड़ दें; जो इस परिवार के साथ बिल्कुल एक हो जाएं, तादात्म्य कर लें।
और ऐसा भी नहीं है, राधा, कि तेरा या कृष्ण मोहम्मद का समर्पण मेरे प्रति कम है। मेरे प्रति तुम्हारा समर्पण पूरा है। और मेरे प्रति तुम्हारे मन में कोई अहंकार का भाव नहीं है। लेकिन इस कम्यून में, इस आश्रम में, इस परिवार में सिर्फ मेरे प्रति तुम्हारा समर्पण हो तो पर्याप्त नहीं होगा। आश्रम में अब कोई चार सौ लोग हैं; अगर तुम्हारा समर्पण सिर्फ मेरे प्रति है और बाकी चार सौ लोगों के प्रति नहीं है तो अड़चन आएगी। क्योंकि मुझसे तो काम-धाम का नाता क्या है? सुबह मुझे सुन लिया, सांझ कभी मेरे पास आकर बैठ गए; यह तो सरल बात है। लेकिन चौबीस घंटे तो उन चार सौ लोगों से तुम्हें संबंध बनाने होंगे। अगर वहां अहंकार रहा तो हर जगह अड़चन आएगी। हरेक से विरोध होगा, हरेक से अड़चन होगी, हरेक से झंझट होगी। साल भर जब सब तरफ से यह मेरी समझ में आ गया कि तुम्हें कठिन है अभी अस्मिता को छोड़ना, तो तुम्हें बाहर भेजा। बाहर जान कर भेजा है। इसलिए नहीं भेजा है बाहर कि मैं चाहता हूं कि तुम बाहर ही रहो। बाहर जान कर भेजा है कि बाहर थोड़ी तकलीफ उठाओ, पीड़ा सहो, प्रेम की पीड़ा भोगो, और अनुभव करो कि आश्रम के भीतर जीना, इस ऊर्जा के क्षेत्र में जीना इतनी बड़ी बात है कि उसके लिए छोटे से अहंकार को छोड़ने में संकोच करने की कोई जरूरत नहीं है। जिस दिन तुम्हें यह अनुभव हो जाए, द्वार तुम्हारे लिए खुले हैं, सदा खुले हैं। मगर अब यह अनुभव हो तो ही द्वार के भीतर प्रवेश हो सकेगा। जब तक यह अनुभव न हो जाए, तब तक समझो कि बाहर की पीड़ा झेलनी पड़ेगी।
तुम्हारी शिकायत सही है। मैं तुम्हारे दुख को जानता हूं। जानता हूं इसीलिए तुम्हें बाहर भेजा है, ताकि तुम्हें साफ हो जाए, ताकि तुम चुनाव कर सको कि इतना दुख झेलना है? मुझसे वंचित होना है? या कि अहंकार छोड़ना है? अब विकल्प सीधे-सीधे हैं। और ध्यान रखना, यह मत सोचना कि अहंकार मेरे प्रति छोड़ना है; वह तो बहुत आसान है। दीक्षा के प्रति छोड़ना है, शीला के प्रति छोड़ना है, लक्ष्मी के प्रति छोड़ना है, और यहां सारे काम करने वाले लोग हैं, उनके प्रति छोड़ना है। तभी यह एक नया परिवार निर्मित हो सकेगा।

और यह तो अभी शुरुआत है, यह परिवार बड़ा होने वाला है। इसलिए अभी मैं लोग तैयार कर रहा हूं--ऐसे लोग जो केंद्र बन जाएंगे। फिर नये लोग आएंगे तो उनकी हवा में डूब जाएंगे, उनकी बाढ़ में डूब जाएंगे। जैसे ही पांच सौ लोग तैयार हो गए, समग्र रूप से समर्पित, कि जिनके भीतर अहंकार का कोई भाव ही नहीं, कि फिर तुम चमत्कृत होकर देखोगे। हजारों लोग प्रतीक्षा कर रहे हैं, जो आना चाहते हैं; मगर मैं उन्हें रोक रहा हूं। हजारों लोग आने के लिए आवेदन कर रहे हैं, लेकिन मैं उन्हें रोक रहा हूं। क्योंकि जब तक कम से कम पांच सौ लोगों का एक ऐसा परिवार निर्मित न हो जाए कि जिसमें एक नया आदमी आएगा तो डूबना ही पड़ेगा उसे। लेकिन अगर तुम्हारे भीतर ही कलह रही, अगर तुम्हारे भीतर भी दलबंदी रही, तो फिर वह नया आदमी भी आकर तुम्हारी कलह सीखेगा और दलबंदी सीखेगा। तब तक मैं उस नये आदमी को नहीं आने दूंगा। क्योंकि उसके जीवन को रूपांतरित कर सकूं तो ही उसे बुलाना ठीक है। एक बुद्ध-क्षेत्र निर्मित कर रहा हूं।
तुम्हें साल भर का अवसर दिया। तुम्हें बहुत कामों में बदला--एक काम से दूसरे काम, दूसरे से तीसरे काम। लेकिन सब जगह वही अड़चन आ जाती है, क्योंकि अड़चन तो तुम्हारे भीतर है, काम में नहीं है। और यह मत सोचना कि जब तुम्हारी किसी से कलह होती है तो उस कलह के लिए तुम तर्क नहीं खोज सकते हो; तर्क तो खोजे ही जा सकते हैं। और यह भी हो सकता है, तुम्हारे तर्क बिल्कुल ठीक ही हों। यह भी मैं नहीं कहता। लेकिन समर्पण का अर्थ ही फिर तुम नहीं समझे। गुरजिएफ ने जब अपना आश्रम बनाया तो किस तरह लोगों को शिक्षा दी। बैनेट ने लिखा है--उसके एक खास शिष्य ने--कि मैंने जिंदगी में कभी गड्ढे नहीं खोदे। लेखक, गणितज्ञ, विचारक! गुरजिएफ ने जो पहला काम मुझे दिया वह यह दिया कि बगीचे में गड्ढा खोदो। छह फीट गहरा गड्ढा। और जब तक पूरा न हो जाए, रुकना मत, खोदते ही जाना। सुबह से खोदना शुरू किया, सांझ हो गई, रात होने लगी तब बामुश्किल छह फीट पूरा हो पाया। टूट-टूट गया बैनेट, कि रोआं-रोआं थक गया। हाथ उठें न, कुदाली उठे न, लेकिन छह फीट पूरे करने हैं। गुरु ने पहला तो काम दिया है, उसे तो पूरा करना है। और इस आशा में कि जब छह फीट पूरा खुद गया गड्ढा कि अब गुरजिएफ बहुत प्रसन्न होगा, भागा, गुरजिएफ को बुला कर लाया। गुरजिएफ ने कहाः अब इसको वापस पूरो!
अब तुम सोच सकते हो इसकी तकलीफ! स्वभावतः प्रश्न उठेगाः यह क्या फिजूल की बकवास हुई! तो खुदवाया किसलिए? मगर पूछे कि चूके। पूछा तो नहीं उसने, लेकिन चित्त में तो प्रश्न उठा। गुरजिएफ ने कहा कि चित्त में भी नहीं। निष्प्रश्न होना। गड्ढा पूरो! जब तक गड्ढा न पुर जाए, सोने मत जाना। गड्ढा पूरो, खोदो, जैसा का तैसा, सुबह जैसी मैंने जगह छोड़ी थी और तुम्हें बताई थी, ठीक वैसी कर दो।
मन में हजार प्रश्न स्वभावतः उठेंगेः यह क्या पागलपन है! अगर गड्ढे
की जरूरत ही नहीं थी तो खुदवाया क्यों?
गड्ढा तो प्रयोजन ही नहीं है; प्रयोजन तो कुछ और है। प्रयोजन तो है कि तुम समर्पण सीखो।
तो मैं यह भी नहीं कहता कि राधा को या कृष्ण मोहम्मद को अड़चन न होती होगी। अड़चन होती होगी। अड़चन सुनियोजित है। अड़चन है ही इसलिए, क्योंकि अड़चन होगी तो ही तुम्हारा अहंकार उभर कर सतह पर आएगा। और उस सतह पर आए अहंकार को विसर्जित करना है। जिस दिन तुम्हारी तैयारी हो जाए, द्वार तुम्हारे लिए खुले हैं। मैं प्रतीक्षा करूंगा। लेकिन अब तैयारी हो जाए तो ही। नहीं तो वही भूल दोहराने से क्या फायदा होगा?
और मैं अति आनंदित हूं कि एक वर्ग सैकड़ों संन्यासियों का ऐसा निर्मित होता जा रहा है, जिस पर भरोसा किया जा सकता है कि उसके आधार पर हजारों लोगों को रूपांतरित किया जा सकेगा। जल्दी ही, यह जो छोटी सी बस्ती है संन्यासियों की, यह दस हजार की बस्ती हो जाएगी, जल्दी ही! बस तुम्हारे तैयार होने की देर है। तुम तैयार हुए कि मैंने निमंत्रण भेजा, कि लोग आने शुरू हुए। तुम भरोसा भी न कर सकोगे कि इतने लोग कहां छिपे बैठे थे और कैसे आने शुरू हो गए!
जिस दिन संन्यास शुरू हुआ था, उस दिन केवल सात लोगों ने संन्यास लिया था। आज केवल सात साल बाद कोई एक लाख संन्यासी हैं सारी दुनिया में। अगर

तुम तैयार हो गए--और तुम तैयार हो रहे हो, और राधा भी तैयार होगी और कृष्ण मोहम्मद भी तैयार होंगे, तैयार होना ही पड़ेगा। मेरे जैसे आदमी के हाथ में फंस गए तो भाग नहीं सकते। मैं दो कौड़ी के आदमियों को तो फंसाता ही नहीं; उनको तो जाल में लेता ही नहीं। लेता ही हूं मूल्यवान हीरों को। मगर फिर हीरों पर जब काट-छांट करनी होती है तो पीड़ा भी होती है। और जितना बहुमूल्य हीरा होता है, उतनी ही उस पर काट-छांट करनी पड़ती है, उतनी ही छैनी चलती है। तुम्हें पता है, कोहिनूर हीरा जब मिला था, तो उसका वजन जितना आज है, उससे तीन गुना ज्यादा था! बाकी वजन क्या हुआ? दो तिहाई वजन कहां गया? काट-छांट में चला गया। लेकिन जितना कटा, उतना बहुमूल्य होता गया। जितना निखारा गया, जितना साफ किया गया, उतना कीमती होता गया। तीन गुना वजन था, उसकी कोई कीमत न थी। आज एक तिहाई वजन है, आज दुनिया में सब से बहुमूल्य हीरा है।
तो जिन पर मेरी नजर है, उनको तो बहुत काटूंगा, बहुत छांटूंगा। और राधा, तुझ पर मेरी नजर है। छोटी-मोटी बातें छोड़ो। और अहंकार से छोटी कोई और बात नहीं। द्वार खुले हैं। तुम्हें बाहर सदा के लिए नहीं कर दिया गया है। सिर्फ एक अवसर दिया गया है कि अब तुम बाहर और भीतर का भेद देख लो, ताकि तुम्हें स्पष्ट हो जाए कि क्या चुनना है। अगर अहंकार चुनना है तो बाहर ही रहना होगा। फिर शिकायत मत करना। शिकायत मुझसे मत करना, फिर शिकायत अपने अहंकार से करना। और अगर तुम्हें भीतर रहना हो तो फिर अहंकार को छोड़ने की तैयारी दिखाओ--और बेशर्त, कोई शर्तबंदी नहीं, कि मुझे ऐसा काम मिलेगा तो ही मैं करूंगी। फिर कोई शर्तबंदी नहीं।
यहां जो पीएच डी हैं, वे बाथरूम साफ कर रहे हैं। तुम कभी सोच भी न सकोगे कि यह आदमी यूनिवर्सिटी में बड़े ओहदे पर था। जो डी लिट हैं, बर्तन मांज रहे हैं। तुम कभी सोच ही न सकोगे कि किसी विश्वविद्यालय के किसी विभाग में अध्यक्ष था या डीन था! यह सवाल ही नहीं है कि तुम्हारी योग्यता क्या है। तुम्हारी योग्यता का सवाल नहीं है, यह तो एक रासायनिक प्रक्रिया है... कि तुम्हें तुम्हारी योग्यता के अनुसार काम मिले, पद मिले, प्रतिष्ठा मिले, तो फिर यह तो बाहर की दुनिया ही यहां भी हुई। यहां तुम्हारी योग्यता, पद-प्रतिष्ठा का कोई मूल्य नहीं है। यहां तो सिर्फ एक बात का मूल्य है-- तुम्हारे समर्पण का; तुम्हारे बेशर्त समर्पण का!
और मैं जानता हूं कि राधा, तू कर पाएगी; कृष्ण मोहम्मद कर पाएंगे। मेरा भरोसा बड़ा है। देर-अबेर सही, मगर यह होना है। जल्दी ही तुम वापस परिवार में लौट आओगे। मगर सब तुम पर निर्भर है, कितनी देर लगानी, तुम तय कर लो। मगर इस बार जब भीतर आओ तो ख्याल रख कर आना कि फिर कोई शिकायत नहीं। सही भी हो शिकायत तो भी शिकायत नहीं। तुमसे जो काम ले रहा हो, वह गलत भी हो, तो भी सवाल नहीं है। उसकी गलती की फिकर मैं करूंगा। हो सकता है मैंने उसे सूचना ही दी हो कि तुम्हारे साथ गलत व्यवहार करे।
आखिर मैं काम कैसे करूंगा? मैं तो कमरे के बाहर निकलता नहीं। मैं तो
इस पूरे आश्रम में कभी घूम कर भी नहीं देखा हूं। अगर मुझे किसी का कमरा खोजना पड़े तो मैं खोज ही न पाऊंगा। मुझे यह भी पक्का नहीं है कि कौन कहां रहता है, कितने लोग रहते हैं आश्रम के भीतर। मैं काम कैसे करूंगा? मेरा काम का अपना ढंग है। लोगों के द्वारा मैं काम ले रहा हूं। तो ही काम बड़ा हो सकता है। काम इतना बड़ा है कि अगर मैं ही उसे करने चलूंगा सीधा-सीधा, तो बस दस-पांच लोगों की जिंदगी को बदल पाऊंगा। इरादा है लाखों लोगों की जिंदगी को बदलने का। और इसलिए काम की व्यवस्था अभी से ऐसी है कि मैं सीधा काम करता ही नहीं। मैं काम ले रहा हूं। और मुझे वाहन मिलते जा रहे हैं, जो काम को कर सकेंगे; जो कर रहे हैं और ठीक काम कर रहे हैं!
राधा, तू भी वाहन बन सकती है। मगर तेरी शर्तबंदी दिक्कत दे रही है। तेरा तर्क कठिनाई बन रहा है। पढ़ी-लिखी है, ओहदों पर रही है, प्रतिष्ठित रही है, कई भाषाओं की जानकार है। सब मुझे पता है। तेरा बहुत उपयोग है। और उससे तुझे कई बार लगता भी होगा कि मेरा कोई उपयोग क्यों नहीं किया जा रहा?
जब पहली बार तू इटली से यहां आई थी तो मैंने सोचा ही यह था कि थोड़े दिन में तू पक जाए तो तेरा बड़ा उपयोग है। क्योंकि यहां इतनी भाषाएं एक साथ जानने वाला कोई व्यक्ति नहीं है। तो यहां तो सारी दुनिया से लोग आ रहे

हैं। हमें ऐसे लोग चाहिए जो बहुत सी भाषाएं एक साथ जानते हों। लेकिन मुझे प्रतीक्षा करनी पड़ी, क्योंकि कुछ चीजें तेरे भीतर टूट जाएं तो ही तू मेरा माध्यम बन सकती है।
लेकिन और सब तो ठीक, अहंकार नहीं टूट रहा है। उसको छोड़ दे। आज छोड़ दे
तो आज वापस आ जा। थोड़ी देर लगानी हो तो थोड़ी देर लगा। देर हो तो तेरी तरफ से है, मेरी तरफ से नहीं है। और बाहर भेजा है तो सजा नहीं दी है। सजा तो मैं किसी को देता ही नहीं। दंड में मेरा भरोसा नहीं है। बाहर भेजा है तो सिर्फ एक अनुभव के लिए कि तू देख ले, कि अहंकार बचाना है तो फिर यह स्थिति है; और अगर मेरे प्रेम में जीना है और मेरी हवा में जीना है और मेरी सन्निधि को पाना है तो फिर अहंकार की कीमत चुकाने की तैयारी होनी चाहिए।
अकड़ छोड़! पकड़ छोड़!
अहंकार बड़ी सूक्ष्म चीज है--इतनी सूक्ष्म कि हमें उसका पता भी नहीं चलता। और ऐसे छुप कर काम करता है अहंकार कि दिखाई भी नहीं पड़ता।

मेरे गीत अधर में झूमें या मरघट ही में सो जाएं,
तुम उनको वरदान न देना,
मैं एकाकी ही गा लूंगा।

दीप जल रहे कब से मन के,
फिर भी रोती रात अंधेरी।
निर्मम स्वर कराहता पंछी,
दूर विहंसता खड़ा अहेरी।
मेरे थके हुए पांवों में पथ के शूल भले चुभ जाएं, तुम मुझको स्थान न देना,
मैं सारे जीवन रो लूंगा।

पलकों पर सावन का मेला,
आंखों की राहें अनजानी।
मचल-मचल सूखे अधरों से,
गीत सदा करते मनमानी।
चाहे स्वप्न मूर्ति बन जाए या स्मृति मुझको डस जाए, तुम अपना मधुमास न देना,
मैं अधरों के पट सी लूंगा।

अहंकार तो परमात्मा के सामने भी अकड़ता है!
मेरे गीत अधर में झूमें या मरघट ही में सो जाएं, तुम उनको वरदान न देना,
मैं एकाकी ही गा लूंगा।
मेरे थके हुए पांवों में पथ के शूल भले चुभ जाएं,
तुम मुझको स्थान न देना,
मैं सारे जीवन रो लूंगा।
चाहे स्वप्न मूर्ति बन जाए या स्मृति मुझको डस जाए,
तुम अपना मधुमास न देना,
मैं अधरों के पट सी लूंगा।
"मैं" तो परमात्मा के तक सामने खड़ा होकर अपने को बचाने की चेष्टा करता है।
लेकिन मेरा भरोसा है, क्योंकि मेरे प्रति राधा मोहम्मद और कृष्ण मोहम्मद का कोई अहंकार नहीं है। जब मेरे प्रति नहीं है तो मेरे इस बुद्ध-क्षेत्र के प्रति भी नहीं होना चाहिए।
तुमने बौद्ध भिक्षुओं की यह घोषणा सुनी न--बुद्धं शरणं गच्छामि! यह पहला सूत्र कि मैं बुद्ध की शरण जाता हूं। फिर दूसरा सूत्र क्या है? संघं शरणं गच्छामि! मैं बुद्ध के भिक्षुओं के संघ की शरण जाता हूं। जो ज्यादा कठिन है। बुद्ध जैसे प्यारे व्यक्ति की शरण जाने में क्या कठिनाई है? शरण जाने से बचने में कठिनाई है। कौन नहीं वे पैर पकड़ लेगा? पैर पकड़ने की

आकांक्षा कौन दबा पाएगा? कौन नहीं उन पैरों में सिर रख देगा? वह तो सरल है। तो बुद्धं शरणं गच्छामि, यह तो कोई भी कह सकता है। राधा मोहम्मद! कृष्ण मोहम्मद! तुम दोनों ने यह कह दिया है--बुद्धं शरणं गच्छामि! मगर संघं शरणं गच्छामि, बुद्ध के भिक्षुओं की, बुद्ध का जो संघ है, उसकी शरण जाता हूं--यह जरा कठिन है। क्योंकि संघ में बहुत लोग तुम जैसे ही हैं। संघ में बहुत लोग तुमसे भी पीछे होंगे। संघ में कोई तुमसे उम्र में कम होगा, कोई ज्ञान में कम होगा, कोई कुशलता में कम होगा। हजार तरह के लोग होंगे।
अब अगर एक सत्तर साल का बूढ़ा आदमी भी आकर बुद्ध से दीक्षा लेगा, तो बुद्ध के संघ में अगर सत्रह साल का युवक संन्यासी है तो उसके सामने भी उसे झुकना होगा। अगर सत्रह साल का युवक भिक्षु पहले संन्यास लिया है और सत्तर साल का व्यक्ति बाद में संन्यास लिया है, तो सत्तर साल के भिक्षु को सत्रह साल के संन्यासी के सामने झुकना होगा। उम्र शरीर की नहीं नापी जाएगी; उम्र दीक्षा से तय होगी, संन्यास से तय होगी। फिर स्वभावतः कोई सम्राट आकर संन्यास लेगा, बुद्ध के चरणों में तो झुक जाएगा; लेकिन बुद्ध के संघ में बहुत से दीन-हीन जन भी हैं, उसकी राजधानी के भिखमंगे भी संन्यासी हो गए हैं, वह उनके चरणों में कैसे झुकेगा? इसलिए दूसरा सूत्र पहले सूत्र से ज्यादा कठिन है और ज्यादा मूल्यवान है--संघं शरणं गच्छामि--कि मैं संघ की शरण जाता हूं।
और तीसरा सूत्र और भी महत्वपूर्ण है--धम्मं शरणं गच्छामि! बुद्ध तो एक, उनकी शरण जाता हूं; संघ जो मौजूद है अभी, उसकी शरण जाता हूं; धम्म, जितने लोगों ने पहले धर्म के मार्ग पर यात्रा की है और जितने लोग अभी धर्म की यात्रा कर रहे हैं और जितने लोग भविष्य में धर्म की यात्रा करेंगे, उन सबकी भी शरण जाता हूं। ऐसी शरणागति से ही कभी कोई बुद्ध-क्षेत्र निर्मित होता है।
यह तो रोज यहां की घटना है। लोग आकर मुझसे कहते हैं कि आपके प्रति हमारा समर्पण पूरा है, मगर हम हर किसी की नहीं सुन सकते!
फिर यह कैसा समर्पण पूरा हुआ? मैं कहता हूंः हर किसी की सुनो! तुम्हारा समर्पण मेरे प्रति पूरा है, मैं कहता हूंः हर किसी की सुनो! और तुम कहते हो कि हर किसी की नहीं सुन सकते। यह समर्पण कैसे पूरा हुआ?
एक युवती ने संन्यास लिया। उसने कहा कि बस अब सब समर्पण, आपके चरणों में सब समर्पण है! आप जो कहेंगे, वही करूंगी।
तो मैंने कहा कि बस, तू यहां ध्यान कर ले दस दिन, सीख ले, फिर अपने घर जा।
उसने कहाः घर तो कभी न जाऊंगी। मेरा तो समर्पण आपके प्रति है; जो कहेंगे, वही करूंगी!
फिर भी दोहरा रही है वह वही। मैंने उससे कहाः मैं जो कह रहा हूं वह तू सुन ही नहीं रही। मैं यह कह रहा हूं कि ध्यान करना सीख ले और घर वापस जा। उसने कहाः घर की तो आप बात ही मत करना। आप जो कहेंगे, वही करूंगी!
अब उसे यह समझ में ही नहीं आ रहा कि मैं कह रहा हूं कि तू घर जा! वह मुझसे कह रही है कि यह तो आप बात ही मत करना। नहीं गई घर। नहीं जाएगी मालूम होता है। अब तो कोई तीन वर्ष हो गए उसको, यहां से नहीं हटी। और अब भी कहती है कि समर्पण मेरा पूरा है। और मैं अभी भी उससे यही कहे चला जा रहा हूं--तू घर जा। उसके पिता के पत्र आते हैं, उसकी मां के पत्र आते हैं। वे रो-रो कर लिखते हैं कि एक ही लड़की है, उसे वापस पहुंचा दें। वह यहां आकर संन्यास से रहे, ध्यान करे, जो उसे करना हो, हमारी कोई बाधा नहीं है।
उसको मैंने और तरह से भी समझाने की कोशिश की कि तू जा तो तेरे पिता भी संन्यासी हो जाएंगे, तेरी मां भी संन्यासी हो जाएगी। तेरे जीवन में इतना रूपांतरण हुआ है!
मगर वह कहती है कि आपके चरण, आपकी शरण! मेरा समर्पण तो समग्र है। मगर उसके समग्र का अर्थ उसकी समझ में नहीं आता कि समग्र का अर्थ होता है कि अगर मैं कहूं कि घर लौट जाओ तो घर लौट जाओ। मैं कहूं कि नरक चले जाओ तो नरक चले जाओ। समर्पण बेशर्त होता है।

बेशर्त हो जाओ, राधा! होशियारियां छोड़ो! मेरे साथ होशियारी से संबंध नहीं बनेगा। और मुझसे बन भी गया तो संघ से न बनेगा। और संघ से न बना तो मुझसे भी टूटने लगेगा। जोड़ मुश्किल हो जाएगा।
एक विराट घटना घट रही है। उसमें छोटे-छोटे अहंकारों को गला दो। जब किसी बड़ी घटना में हम सम्मिलित होते हैं तो छोटी-छोटी बातों को नहीं ले जाते। तो ही यह विराट वृक्ष खड़ा हो सकता है, जिसकी छाया में अनंत-अनंत लोगों को विश्राम मिले; थकों को छाया मिले, शीतलता मिले; भटकों को ज्योति मिले। इस दीये में पतंगे की तरह आओ और जल जाओ। इससे कम में नहीं चल सकता है।

चौथा प्रश्नः मेरा जीवन कोरा कागज, कोरा ही रह गया।
प्रभु, आपने बार-बार कहा है कि प्रार्थना केवल अनुग्रह प्रकट करना है--कुछ मांगना नहीं। परंतु मन बिना मांगे नहीं रह पाता। मांगता हूं प्रभु--एक ऐसी प्यास जो तन-मन को धू-धू कर जला दे। क्या प्रभु मेरी मांग पूरी करेंगे?

अच्युत भारती! आग जलनी शुरू हो गई है। चिनगारी है अभी, सारा जंगल भी आग पकड़ लेगा। चिनगारी आ गई तो जंगल भी जलेगा। पहला फूल खिल गया तो वसंत के आगमन की खबर आ गई, और फूल भी खिलेंगे। जल्दी न करो।
और मैं जानता हूं, मन जल्दी करता है, मन धीरज नहीं बांधता। थोड़ा समय दो चिनगारी को--भभकने का, फैलने का। धू-धू करके भी जलेगी। लेकिन जितना अधैर्य करोगे उतनी ही देर हो जाएगी। यही अड़चन है। धीरज रखोगे, जल्दी हो जाएगी घटना; अधैर्य करोगे, देर लग जाएगी। अगर बहुत जल्दबाजी की तो बहुत देर लग जाएगी। और अगर बिल्कुल जल्दबाजी न की तो हुई ही है, अभी हुई, अभी हुई। समझता हूं तुम्हारी प्रार्थना। जिनके हृदय में भी चिनगारी पड़ती है, उनके भीतर यह भावना उठनी स्वाभाविक है।

चाहता हूं मैं न सावन की घटाएं,
चाहता हूं मैं न मधुवन की लताएं,
एक ही जलधार केवल चाहता हूं,
भावना का प्यार केवल चाहता हूं।

त्याग से भयभीत कुंठित साधनाएं, व्यंग्यमय परिहास मंडित मान्यताएं। कपट के परिधान में लिपटी अलंकृत, लूटने को सौम्य कलुषित भावनाएं।
लोक से भयभीत दीपक की शिखाएं, कुचलती अनुराग लज्जा की शिलाएं।
नत न हो सकतीं विनय के सामने जो, ऐंठती उत्तुंग गिरि कीशृंखलाएं। चाहता हूं मैं न वेदों की ऋचाएं, चाहता हूं मैं न प्रिय अभिव्यंजनाएं, सत्य की मनुहार केवल चाहता हूं, निष्कपट व्यवहार केवल चाहता हूं।

विजनतम आदीप्त गहरी कालिमाएं, सुखदतम सिंदूर संध्या लालिमाएं। शुभ्र शशि के भाल पर कालिख लगाती, विश्व से पीड़ित अपरिमित वेदनाएं।
प्रलय मेघों की घुमड़ती गर्जनाएं, रेत की उथली विभव सरि वंदनाएं।
राह में जब कंटकों की क्यारियां हों, भ्रमित करतीं चरण को काली दिशाएं।
चाहता हूं मैं न सपनों की निशाएं,

चाहता हूं मैं न यौवन की छटाएं, स्वप्न ही साकार केवल चाहता हूं, भय रहित अभिसार केवल चाहता हूं।

अहं के सौंदर्य की फैली छटाएं, दीनता को छल रहीं बल की भुजाएं। त्रस्त को असहाय पाकर खेल करतीं, शक्ति रंजित विभव की सोलह कलाएं।
छोड़ मानवता दनुज-सी अर्चनाएं, ईश कह पाषाण की आराधनाएं। मनुजता के वक्ष पर मंदिर बनाती,
भक्ति में अंधी छली अहमन्यताएं।
चाहता हूं मैं न सुख की संपदाएं,
चाहता हूं मैं न डसती वासनाएं,
मनुज का सत्कार केवल चाहता हूं,
हृदय का विस्तार केवल चाहता हूं।

उठती है प्रार्थना, उठती है अभीप्सा, स्वाभाविक है। उसके लिए अपने को दोष न देना। मगर एक ही बात ध्यान रहे--धीरज! खूब धीरज!
मौसमी फूल तो दो-चार सप्ताह में आ जाते हैं, मगर दो-चार सप्ताह में विदा भी हो जाते हैं। जल्दबाजी करोगे, मौसमी फूल जैसी घटनाएं घटेंगी--इधर आईं, उधर गईं; उनसे कुछ तृप्ति न होगी। अगर चाहते हो कि आकाश को छूते वृक्ष तुम्हारे भीतर पैदा हों, कि बदलियों से गुफ्तगू कर सकें, कि चांद-तारों की निकटता पा सकें, तो फिर धीरज, तो फिर अनंत धैर्य।
जल्दी भी क्या है? प्रार्थना है तो प्रतीक्षा और जोड़ो, बस। प्रार्थना
धन प्रतीक्षा। गहरी प्रार्थना, गहरी प्रतीक्षा। कह दो परमात्मा सेः जब तेरी मर्जी हो! तेरी मर्जी हो, फिर जब तेरी मर्जी हो! मैं पुकारता रहूंगा! मैं बहाता रहूंगा आंसू! मैं गाता रहूंगा गीत! मैं नाचता रहूंगा! फिर जब पक जाऊं, जब पात्र हो जाऊं, जब तुझे बरसना हो बरसना।
इसे ईश्वर पर छोड़ दो। फलाकांक्षा छोड़ दो, साधना आज भी फल ला सकती है। फलाकांक्षा छोड़ते ही फल लगने शुरू हो जाते हैं।

आखिरी प्रश्नः कुछ पूछना चाहता हूं, लेकिन पूछने जैसा कुछ भी नहीं लगता। बड़ी डांवाडोल स्थिति में हूं। अभी तो एक मस्ती घेर लेती है और अचानक फिर सब वीरान हो जाता है! कृपया मार्गदर्शन करें।

महेंद्र भारती! पूछने को कुछ है भी नहीं और फिर भी पूछने की आकांक्षा उठती है! प्रश्न नहीं हैं भीतर, एक प्रश्न-चिह्न है--मात्र कोरा प्रश्न-चिह्न! और वह प्रश्न-चिह्न तुम किसी भी प्रश्न के पीछे लगा दो; प्रश्न हल हो जाएगा, प्रश्न-चिह्न वैसा ही खड़ा रह जाएगा। वह प्रश्न-चिह्न तो तभी मिटता है जब आत्म-जागरण होता है, जब समाधि लगती है।
"समाधि" शब्द पर ध्यान देना। उसी धातु से बना है, उसी मूल से, जिससे समाधान। समाधि में समाधान है। समाधि में कोई उत्तर नहीं मिलता, ख्याल रखना। समाधि में प्रश्न-चिह्न गिर जाता है। वह जो सतत, शाश्वत प्रश्न-चिह्न हमारे प्राणों में बैठा है, जरूरी नहीं है कि वह किसी प्रश्न के पीछे ही लगे। अक्सर वह प्रश्न के पीछे लगता है, क्योंकि हम ही को अड़चन मालूम होती है। बिना प्रश्न के पीछे लगाए प्रश्न-चिह्न को सम्हालना, बड़ी झिझक मालूम होती है, बड़ा पागलपन मालूम होता है।
अब किसी से कहो, जैसा महेंद्र कह रहे हैं, कि "कुछ पूछना चाहता हूं, लेकिन कुछ पूछने जैसा लगता भी नहीं", तो लगता है कि यह बात तो जंचती नहीं। जब पूछने जैसा कुछ लगता ही नहीं तो क्या पूछना चाहते हो? ऐसा किसी से कहोगे तो वह समझेगा कि पागल हो गए कि नशे में हो?
मगर यही असलियत है। और चूंकि असलियत को प्रकट नहीं किया जा सकता, इसलिए हम मनगढ़ंत प्रश्न खड़े कर लेते हैं, ताकि प्रश्न-चिह्न की सार्थकता

मालूम पड़े। पूछते हैंः ईश्वर क्या है? मतलब नहीं है तुम्हें ईश्वर से कुछ भी। मतलब तो है प्रश्न-चिह्न से। लेकिन प्रश्न-चिह्न को अकेला ही खड़ा कर दें तो कोई भी कहेगाः पागल हो?
एक झेन फकीर मर रहा था। अचानक उसने आंख खोलीं और पूछा कि उत्तर क्या है?
शिष्य इकट्ठे थे। इधर-उधर देखने लगे कि उत्तर क्या है? प्रश्न तो पूछा
ही नहीं गया, उत्तर क्या खाक होगा! मगर जानते थे अपने गुरु को। जिंदगी भर से उसकी ऐसी आदतें थीं। बेबूझ था आदमी। सभी सदगुरु बेबूझ रहे हैं। अब यह भी आखिरी मजाकः प्रश्न पूछा ही नहीं, पूछता है--उत्तर क्या है?
एक शिष्य ने हिम्मत की। कहाः गुरुदेव, कम से कम जाते वक्त तो हमें दिक्कत में न डाल जाएं! आप तो चले जाएंगे, हम जिंदगी भर यही सोचते रहेंगे कि यह क्या मामला था--उत्तर क्या है! प्रश्न क्या है? पहले प्रश्न तो पूछें, फिर उत्तर!
मरते गुरु ने कहाः चलो ठीक, तो यही पूछता हूं--प्रश्न क्या है?
अगर ठीक से समझो तो मनुष्य की अंतरात्मा में कोई प्रश्न नहीं हैं, प्रश्न-चिह्न है। जिज्ञासा है। किसकी? किसी की भी नहीं। अभीप्सा है। किस दिशा में? किसी दिशा में नहीं। बस शुद्ध एक प्रश्न-चिह्न खड़ा है आत्मा में। लेकिन सीधे प्रश्न-चिह्न को पूछने में तो अड़चन होती है, तो हम उसके सामने कुछ प्रश्न जोड़ देते हैं--आत्मा क्या है? परमात्मा क्या है? मैं कौन हूं? सृष्टि किसने बनाई? फिर तुम हजार प्रश्न बना लेते हो। मगर गौर करना, सारे प्रश्न व्यर्थ हैं। तुम पूछना नहीं चाहते वे प्रश्न। तुम्हीं थोड़ा सोचोगे तो तुम कहोगेः मुझे लेना-देना क्या, किसने बनाई दुनिया! बनाई होगी या नहीं बनाई होगी, इससे मेरा क्या प्रयोजन है? इससे मेरी जिंदगी का क्या नाता है?
ठीक महेंद्र कि तुमने हिम्मत की और कहा कि कुछ पूछना चाहता हूं, लेकिन पूछने जैसा कुछ लगता नहीं। इसी हिम्मत से कोई सत्य के अन्वेषण में उतरता है।
प्रश्न-चिह्न है। और यह प्रश्न-चिह्न तभी मिटेगा जब तुम्हारे भीतर सारे विचार विदा हो जाएं। जब तक विचार रहेंगे, यह प्रश्न-चिह्न विचारों की ओट में अपने को बचाता रहेगा। यह विचार के छातों में अपने को बचाता रहेगा। जब कोई विचार न रह जाएंगे तो प्रश्न-चिह्न को मरना ही होगा, क्योंकि इसको भोजन मिलना बंद हो जाएगा। विचारों से भोजन मिलता है, पुष्टि मिलती है। एक प्रश्न हल हो जाता है, दूसरे प्रश्न पर जाकर प्रश्न-चिह्न बैठ जाता है; उसका शोषण करने लगता है; उसका खून पीने लगता है। उसकी तृप्ति हुई, वह तीसरे पर बैठ जाता है। वह नये-नये प्रश्न खोजता रहता है। वे नई-नई सवारियां हैं। लेकिन अगर कोई सवारी न मिले, अगर कोई विचार न मिले, तो प्रश्न-चिह्न अपने से गिर जाता है। विचारों के सहारे न रह जाएं तो प्रश्न-चिह्न अपने से भूमिसात हो जाता है।
ध्यान में मिटता है प्रश्न-चिह्न, ज्ञान में नहीं। ज्ञान में तो और बड़ा होता जाता है।
दरिया ठीक कहते हैंः ध्यान साध लो, ज्ञान की फिकर न करो। ज्ञान की फिकर की कि भटके। सब प्रश्न ज्ञान में ले जाएंगे। ध्यान में कौन ले जाएगा? निष्प्रश्न दशा। प्रश्न-चिह्न है, रहने दो। विचारों को विदा करो, प्रश्नों को विदा करो, प्रश्न-चिह्न को अकेला रहने दो। और तुम बड़े चकित होओगे, जैसे कि तुम सारे मंदिर के खंभे अलग कर लो तो मंदिर का छप्पर गिर जाए, ऐसे ही जिस दिन तुम सारे विचारों के खंभे अलग कर लोगे उस दिन प्रश्न-चिह्न का छप्पर गिर जाएगा। न रहेंगे प्रश्न, न रहेगा प्रश्न-चिह्न। न रहेगा बांस, न बजेगी बांसुरी। और जहां न प्रश्न हैं, न प्रश्न-चिह्न है, वहां समाधि का आविर्भाव है। उस समाधि में समाधान है। उसकी ही तलाश है। उसकी ही पीड़ा है। उसकी ही प्यास है।
तुम कहते होः "बड़ी डांवाडोल स्थिति में हूं।"
सभी हैं डांवाडोल स्थिति में। कोई कहता है, हिम्मत जुटाता है; कोई नहीं कहता। मगर सभी डांवाडोल स्थिति में हैं, सभी लड़खड़ा रहे हैं। क्योंकि मन की आदत ही डांवाडोल होना है। मन यानी डांवाडोल होना। अभी ऐसा, अभी ऐसा।

पल भर कुछ, पल भर कुछ। क्षण में क्रुद्ध, क्षण में करुणा से भरा। क्षण में प्रेम बह रहा, क्षण में घृणा उठ आई। फूल अभी फूल था, अब कांटा हो गया। कांटा अभी कांटा था, अब फूल हो गया। मन ऐसा ही चलता है। कभी थिर नहीं होता। थिर हो जाए तो मर जाए। अथिरता में ही उसका जीवन है।
और मन अथिर रहने के लिए हर चीज को खंडों में बांट देता है, हर चीज को दो में तोड़ देता है, तभी तो अथिर रह सकता है। अगर एक ही हो तो फिर अथिर कैसे होगा? इसलिए मन द्वंद्व बनाता है। मन द्वंद्वात्मक है। रात और दिन एक हैं; रात और दिन दो नहीं हैं; लेकिन मन दो कर लेता है। गर्मी-सर्दी एक हैं, इसीलिए तो एक ही थर्मामीटर से तुम दोनों को नाप पाते हो; लेकिन मन दो कर लेता है। सफलता-असफलता एक हैं, एक ही सिक्के के दो पहलू; लेकिन मन दो कर लेता है। जन्म और मृत्यु एक हैं, लेकिन मन दो कर लेता है। जिस दिन जन्मे, उसी दिन से मरना शुरू हो गया। जन्म की प्रक्रिया मृत्यु की प्रक्रिया है। जरा गौर से देखो, अस्तित्व एक है, लेकिन मन हर जगह दो कर लेता है। मन ऐसे ही है जैसे तुमने कांच का प्रिज्म देखा! कांच के प्रिज्म से सूरज की किरण को गुजारो; एक किरण, प्रिज्म से गुजरते ही सात हिस्सों में बंट जाती है, सात रंगों में टूट जाती है। ऐसे ही तो इंद्रधनुष बनता है। इंद्रधनुष हवा में लटकी हुई पानी की बूंदों के कारण बनता है। हवा में पानी की बूंदें लटकी होती हैं वर्षा के दिनों में और सूरज की किरणें उन पानी की बूंदों से गुजरती हैं। हवा के मध्य में लटकी हुई पानी की बूंदें प्रिज्म का काम करती हैं और सूरज की किरणें सात हिस्सों में टूट जाती हैं। और तुम एक सुंदर इंद्रधनुष आकाश में छाया हुआ देखते हो।
ऐसे ही मन है। मन हर चीज को दो में तोड़ देता है। मन से कोई भी चीज गुजारो, वह दो हो जाती है। प्रेम और घृणा एक ही ऊर्जा के नाम हैं, मन दो कर देता है। मित्रता और शत्रुता एक ही घटना के दो नाम हैं, मन दो कर देता है। मन की तो आदत ऐसी--

एक रात उजली है, एक रात काली है,
एक बनी मातम तो दूसरी दिवाली है।

एक सजी दुल्हन सी चांदनी लुटाती है,
एक दबे घावों को फिर-फिर सहलाती है।
एक रात तड़पाती जेठ की दुपहरी है,
एक रात वंशी की गुंजित स्वरलहरी है।

एक मुखर प्याला है, एक मूक हाला है, एक बनी पतझर तो दूजी हरियाली है।

एक लिए प्रियतम को मिलन गीत गाती है, एक विरह स्मृति सी मन को तड़पाती है।
एक रात दीपक सी ज्योति जगमगाती है, एक अंधकार पिए भावना जगाती है।

एक रात आहों की, एक रात भावों की,
एक जहर ज्वाला तो एक सुधा प्याली है।

एक रात रो-रो कर शबनम बिखराती है, एक शरद पूनम में डूबी मदमाती है।
एक रात सपनों की लोरियां सजाती है, एक रात दर्दीली नींद चुरा जाती है।

एक रात क्रंदन हैं, एक रात मधुबन है, एक रात मस्ती तो एक पीर वाली है।

एक रात गाती है ऊंचे प्रासादों में,

एक रात रोती है गंदे फुटपाथों में।
रात वही होती है, हर बात वही होती है,
रंग बदल कर केवल जीवन को धोती है।

एक रात बचपन है, एक रात यौवन है,
एक जरा झंझा तो एक मृत्यु व्याली है।

एक है, लेकिन दो होकर मालूम पड़ रहा है। इधर दूल्हे की बारात सज रही और उधर किसी की अरथी उठ रही। ये दो घटनाएं नहीं हैं; यह एक ही घटना है। यह सजती बारात, यह उठती अरथी--एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। यह मान, यह अपमान।
और मन दो करके फिर डांवाडोल होता है। जब दो हो गए तो यह करूं कि वह करूं! ऐसा करूं कि वैसा करूं! फिर हर चीज में खंडित हो जाता है मन। महेंद्र, ऐसा कुछ तुम्हारा ही मन नहीं है। सबका मन ऐसा है। मन का ऐसा स्वभाव है।
तुम कहते होः "बड़ी डांवाडोल स्थिति में हूं।"
जब तक मन को पकड़े रहोगे, डांवाडोल स्थिति रहेगी। साक्षी बनो! चुनो ही मत, सिर्फ देखो। सिर्फ मन के खेल देखो। मन के जटिल खेल पहचानो।
और धीरे-धीरे, साक्षी में जैसे ही ठहर जाओगे, वैसे ही मन का द्वंद्व विदा हो जाएगा। मन विदा हो जाएगा। सारा डांवाडोलपन चला जाएगा। चंचलता विलीन हो जाएगी। अथिरता खो जाएगी। तुम थिर हो जाओगे। और थिर होने में आनंद है। थिरता परमात्मा का स्वाद है।
आज इतना ही।

अमी झरत, बिगसत कंवल
नौवां प्रवचन

मेरे सतगुरु कला सिखाई

जाके उर उपजी नहिं भाई। सो क्या जाने पीर पराई।।
ब्यावर जाने पीर की सार। बांझ नार क्या लखे विकार।।
पतिब्रता पति को ब्रत जानै। बिभचारिन मिल कहा बखानै।।
हीरा पारख जौहरि पावै। मूरख निरख के कहा बतावै।।
लागा घाव कराहै सोई। कोतगहार के दर्द न कोई।।
रामनाम मेरा प्रान-अधार। सोई रामरस-पीवनहार।।
जन दरिया जानेगा सोई। प्रेम की भाल कलेजे पोई।।

जो धुनिया तो मैं भी राम तुम्हारा।
अधम कमीन जाति मतिहीना, तुम तो हौ सिरताज हमारा।।
काया का जंत्र, सब्द मन मुठिया, सुषमन तांत चढ़ाई।
गगन-मंडल में धुनिया बैठा, मेरे सतगुरु कला सिखाई।।
पाप-पान हरि कुबुधि-कांकड़ा, सहज-सहज झड़ जाई।
घुंडी गांठ रहन नहिं पावै, इकरंगी होए आई।।
इकरंग हुआ भरा हरि चोला, हरि कहै कहा दिलाऊं।
मैं नाहिं मेहनत का लोभी, बकसो मौज भक्ति निज पाऊं।।
किरपा करि हरि बोले बानी, तुम तो हौ मम दास।
दरिया कहै मेरे आतम भीतर, मेलौ राम भक्ति-बिस्वास।।

तुम रूप-राशि, मैं रूप-रसिक,
अवगुंठन खोलो, दर्शन दो!
मानस में मेरे आन बसो,
कुटिया मेरी जगमग कर दो!

युग-युग से प्यास लिए मन में,
फिरता आया इस-उस जग में,
ठहराव कहीं भी पा न सका,
अभिशप्त रहा हर जीवन में! क्षणभंगुर रूप दिखा इत-उत, हर जगती में, हर जीवन में, तृष्णा-ज्वाला जलती ही रही, हर जीवन में प्रतिपल मन में। अब द्वार तुम्हारे आया हूं, रूपसि, खोलो पट, दर्शन दो! तुम रूप-राशि, मैं रूप-रसिक, अवगुंठन खोलो, दर्शन दो!
मानस में मेरे आन बसो,
कुटिया मेरी जगमग कर दो!

हो मधुप कुसुम सा प्रणय-मिलन, रसमय पीड़ा का उद्वेलन,
परिणय हो प्राप्ति कामना का, प्राणों का प्राणों से मधुर मिलन! सुन पाया मन तव आवाहन,
रससिक्त, मदिर, मृदु उदबोधन, वंशी-ध्वनि का सा आवाहन,
ब्रज-वनिताओं सा उद्वेलन! हर्षित पर शंकित, व्याकुल मन, रूपसि, खोलो पट, दर्शन दो!

तुम रूप-राशि, मैं रूप-रसिक, अवगुंठन खोलो, दर्शन दो!
मानस में मेरे आन बसो,
कुटिया मेरी जगमग कर दो!

युग-युग की संचित आशाएं,
प्रियकर पावन अभिलाषाएं, चिर-सुख की सुंदर आशाएं,
चिर-शांति-मुक्ति अभिलाषाएं! तन, मन, प्राणों की निधियां ले, मृदु आदि-काल की सुधियां ले, दे सकता जो, वह सब कुछ ले, अपना जो कुछ, वह सब कुछ ले, मैं अर्घ्य लिए द्वारे आया,
रूपसि, खोलो पट, दर्शन दो!
तुम रूप-राशि, मैं रूप-रसिक,
अवगुंठन खोलो, दर्शन दो!
मानस में मेरे आन बसो,
कुटिया मेरी जगमग कर दो!

भक्त का हृदय एक प्रार्थना है, एक अभीप्सा है--परमात्मा के द्वार पर
एक दस्तक है। भक्त के प्राणों में एक ही अभिलाषा है--कि जो छिपा है वह प्रकट हो जाए, कि घूंघट उठे, कि वह परम प्रेमी या परम प्रेयसी मिले! इससे कम पर उसकी तृप्ति नहीं। उसे कुछ और चाहिए नहीं। और सब चाह कर देख भी लिया। चाह-चाह कर सब देख लिया। सब चाहें व्यर्थ पाईं। दौड़ाया बहुत चाहों ने, पहुंचाया कहीं भी नहीं।
जन्मों-जन्मों की मृग-तृष्णाओं के अनुभव के बाद कोई भक्त होता है।
भक्ति अनंत-अनंत जीवन की यात्राओं के बाद खिला फूल है। भक्ति चेतना की चरम अभिव्यक्ति है। भक्ति तो केवल उन्हीं को उपलब्ध होती है जो बड़भागी हैं।
नहीं तो हम हर बार फिर उन्हीं चक्करों में पड़ जाते हैं। बार-बार फिर कोल्हू के बैल की तरह चलने लगते हैं।
मनुष्य के जीवन में अगर कोई सर्वाधिक अविश्वसनीय बात है तो वह यह है
कि मनुष्य अनुभव से कुछ सीखता नहीं। उन्हीं-उन्हीं भूलों को दोहराता है।
भूलें भी नई करे तो भी ठीक; बस पुरानी ही पुरानी भूलों को दोहराता है। रोज-रोज वही, जन्म-जन्म वही। भक्ति का उदय तब होता है जब हम जीवन से कुछ अनुभव लेते हैं, कुछ निचोड़।
निचोड़ क्या है जीवन का? --कि कुछ भी पा लो, कुछ भी पाया नहीं जाता।
कितना ही इकट्ठा कर लो और तुम भीतर दरिद्र के दरिद्र ही रहे आते हो। धन तुम्हें धनी नहीं बनाता--जब तक कि वह परम धनी न मिल जाए, वह मालिक न मिले। धन तुम्हें और भीतर निर्धन कर जाता है। धन की तुलना में भीतर की निर्धनता और खलने लगती है।
मान-सम्मान, पद-प्रतिष्ठा, सब धोखे हैं, आत्मवंचनाएं हैं। कितना ही छिपाओ अपने घावों को, अपने घावों के ऊपर गुलाब के फूल रख दो; इससे घाव मिटते नहीं। भूल भला जाएं क्षण भर को, भरते नहीं। दूसरों को भला धोखा हो जाए, खुद को कैसे धोखा दोगे? तुम तो जानते ही हो, जानते ही हो, जानते ही रहोगे कि भीतर घाव है, ऊपर गुलाब का फूल रख कर छिपाया है। सारे जगत को भी धोखा देना संभव है, लेकिन स्वयं को धोखा देना संभव नहीं है।
जिस दिन यह स्थिति प्रगाढ़ होकर प्रकट होती है, उस दिन भक्त का जन्म होता है। और भक्त की यात्रा विरह से शुरू होती है। क्योंकि भक्त के भीतर एक ही प्यास उठती है अहर्निश--कैसे परमात्मा मिले? कहां खोजें उसे? उसका कोई पता और ठिकाना भी तो नहीं। किससे पूछें? हजारों हैं उत्तर देने वाले, लेकिन उनकी आंखों में उत्तर नहीं। और हजारों हैं शास्त्र लिखने वाले, लेकिन उनके प्राणों में सुगंध नहीं। हजारों हैं जो मंदिरों में, मस्जिदों में, गुरुद्वारों में प्रार्थनाएं कर रहे हैं, लेकिन उनकी प्रार्थनाओं

में आंसुओं का गीलापन नहीं है। उनकी प्रार्थनाओं में हृदय का रंग नहीं है--रूखी हैं, सूखी हैं, मरुस्थल सी हैं। और प्रार्थना कहीं मरुस्थल होती है? प्रार्थना तो मरूद्यान है; उसमें तो बहुत फूल खिलते हैं, बहुत सुवास उठती है। हां, बाहर की आरती तो लोगों ने सजा ली है, लेकिन भीतर कर दीया बुझा है। और बाहर तो धूप-दीप का आयोजन कर लिया है, और भीतर सब शून्य है, रिक्त है।
भक्त को यह पीड़ा खलती है। भक्त इस झूठी भक्ति से अपने मन को बहला नहीं सकता। ये खिलौने अब उसके काम के न रहे। अब तो असली चाहिए। अब कोई नकली चीज उसे न भा सकती है, न भरमा सकती है, तो गहन विरह की आग जलनी शुरू होती है। प्यास उठती है, और चारों तरफ झूठे पानी के झरने हैं। और जितनी झूठे पानी के झरने की पहचान होती है, उतनी ही प्यास और प्रगाढ़ होती है। एक ऐसी घड़ी आती है जब भक्त धू-धू कर जलती हुई एक प्यास ही रह जाता है। उस प्यास के संबंध में ही ये प्यारे वचन दरिया ने कहे हैं।
जाके उर उपजी नहिं भाई। सो क्या जाने पीर पराई।।
यह विरह ऐसा है कि जिस हृदय में उठा हो, वही पहचान सकेगा। यह पीर ऐसी है। यह अनूठी पीड़ा है! यह साधारण पीड़ा नहीं है।
साधारण पीड़ा से तो तुम परिचित हो। कोई है जिसे धन की प्यास है। और कोई
है जिसे पद की प्यास है। नहीं मिलता तो पीड़ा भी होती है। बाहर की पीड़ाओं से तो तुम परिचित हो। लेकिन भीतर की पीड़ा को तो तुमने कभी उघाड़ा नहीं। तुमने भीतर तो कभी आंख डाल कर देखा ही नहीं कि वहां भी एक पीड़ा का निवास है। और ऐसी पीड़ा का कि जो पीड़ा भी है और साथ ही बड़ी मधुर भी। पीड़ा है, क्योंकि सारा संसार व्यर्थ मालूम होता है। और मधुर, क्योंकि पहली बार उसी पीड़ा में परमात्मा की धुन बजने लगती है। पीड़ा--जैसे छाती में किसी ने छुरा भोंक दिया हो! ऐसा बिंधा रह जाता है भक्त।
लेकिन फिर भी यह पीड़ा सौभाग्य है। क्योंकि इसी पीड़ा के पार उसका द्वार खुलता है, उसके मंदिर के पट खुलते हैं। यह पीड़ा सूली भी है और सिंहासन भी। इधर सूली, उधर सिंहासन। एक तरफ सूली, दूसरी तरफ सिंहासन। इसलिए पीड़ा बड़ी रहस्यमय है। भक्त रोता भी है, लेकिन उसके आंसू और तुम्हारे आंसू एक ही जैसे नहीं होते।
हां, वैज्ञानिक के पास ले जाओगे परीक्षण करवाने, तो वह तो कहेगा कि एक
ही जैसे हैं। दोनों खारे हैं--इतना नमक है, इतना जल है, इतना-इतना क्या- क्या है, सब विश्लेषण करके बता देगा। भक्त के आंसुओं में और साधारण दुख के आंसुओं में वैज्ञानिक को भेद दिखाई न पड़ेगा।
इसलिए वैज्ञानिक परम मूल्यों के संबंध में अंधा है। तुम तो जानते हो आंसुओं आंसुओं का भेद। कभी तुम आनंद से भी रोए हो। कभी तुम दुख से भी रोए हो। कभी क्रोध से भी रोए हो। कभी मस्ती से भी रोए हो। तुम्हें भेद पता है। लेकिन भेद आंतरिक है; यांत्रिक नहीं है, बाह्य नहीं है। इसलिए बाहर की किसी विधि की पकड़ में नहीं आता।
फिर भक्त के आंसू तो परम अनुभूति है, जो हृदय के पोर-पोर से रिसती है। उसमें पीड़ा है बहुत, क्योंकि परमात्मा को पाने की अभीप्सा जगी है। और उसमें आनंद भी है बहुत, क्योंकि परमात्मा को पाने की अभीप्सा जगी है। परमात्मा को पाने की आकांक्षा का जग जाना ही इतना बड़ा सौभाग्य है कि भक्त नाचता है। यह तो केवल थोड़े से सौभाग्यशालियों को यह पीड़ा मिलती है। यह अभिशाप नहीं है, यह वरदान है। इसे वे ही पहचान सकेंगे जिन्होंने इसका थोड़ा स्वाद लिया।
जाके उर उपजी नहिं भाई।
और यह पीड़ा मस्तिष्क में पैदा नहीं होती। यह कोई मस्तिष्क की खुजलाहट नहीं है। मस्तिष्क की खुजलाहट से दर्शनशास्त्रों का जन्म होता है। यह पीड़ा तो हृदय में पैदा होती है। इस पीड़ा का विचार से कोई नाता नहीं है। यह पीड़ा तो भाव की है। इस पीड़ा को कहा भी नहीं जा सकता। विचार व्यक्त हो सकते हैं, भाव अव्यक्त ही रहते हैं। विचारों को दूसरों से निवेदन किया जा सकता है। और निवेदन करके आदमी थोड़ा हलका हो जाता है। किसी से कह लो, दो बात कर लो, मन का बोझ उतर जाता है। पर यह पीड़ा ऐसी है कि किसी से कह भी नहीं सकते। कौन समझेगा? लोग पागल समझेंगे तुम्हें।

कल एक जर्मन महिला ने संन्यास लिया। एक शब्द न बोल सकी। शब्द बोलने चाहे तो हंसी, रोई, हाथ उठे, मुद्राएं बनीं। खुद चौंकी भी बहुत, क्योंकि शायद पागल समझी जाए। कहीं और होती तो पागल समझी भी जाती। मैंने उससे कहा भी कि अगर जर्मनी में ही होती तू और किसी प्रश्न के उत्तर में ऐसा करती तो पागल समझी जाती। तू ठीक जगह आ गई। यहां तुझे पागल न समझा जाएगा। यहां तुझे धन्यभागी, बड़भागी समझा जाएगा। रोती है, डोलती है। हाथ उठते हैं, कुछ कहना चाहते हैं। ओंठ खुलते हैं, कुछ बोलना चाहते हैं। मगर विचार हो तो कह दो, भाव हो तो कैसे कहो?
भाव तो केवल वे ही समझ सकते हैं, जिन्होंने उस पीड़ा का थोड़ा अनुभव किया हो।
इसलिए सत्संग का मूल्य है। सत्संग का अर्थ हैः जहां तुम जैसे और दीवाने भी मिलते हैं। सत्संग का अर्थ हैः जहां चार दीवाने मिलते हैं, जो एक-दूसरे का भाव समझेंगे; जो एक-दूसरे के भाव के प्रति सहानुभूति-- सहानुभूति ही नहीं, समानुभूति भी अनुभव करेंगे; जहां एक के आंसू दूसरे के आंसुओं को छेड़ देंगे; और जहां एक का गीत दूसरे के भीतर गीत की गूंज बन जाएगा; और जहां एक नाच उठेगा तो शेष सब भी पुलक से भर जाएंगे; जहां एक ऊर्जा उन सबको घेर लेगी।
सत्संग अनूठी बात है। सत्संग का अर्थ है जहां पियक्कड़ मिल बैठे हैं।
अब जिन्होंने कभी पी ही नहीं है शराब, वे तो कैसे समझेंगे? और बाहर की शराब तो कहीं भी मिल जाती है। भीतर की शराब तो कभी-कभी, बहुत मुश्किल से मिलती है। क्योंकि भीतर की शराब जहां मिल सके, ऐसी मधुशालाएं ही कभी-कभी, सैकड़ों सालों के बाद निर्मित होती हैं। किसी बुद्ध के पास, किसी नानक के पास, किसी दरिया के पास, किसी फरीद के पास कभी सत्संग का जन्म होता है।
सत्संग किसी जाग्रत पुरुष की हवा है। सत्संग किसी जाग्रत पुरुष के पास तरंगायित भाव की दशा है। सत्संग किसी के जले हुए दीये की रोशनी है। उस रोशनी में जब चार दीवाने बैठ जाते हैं और हृदय से हृदय जुड़ता है और हृदय से हृदय तरंगित होता है, तभी जाना जा सकता है।
दरिया ठीक कहते हैं। और तुम जरा भी समझ लो इस पीर को, इस पीड़ा को, तो तुम्हारे जीवन में भी अमृत की वर्षा हो जाए। अमी झरत, बिगसत कंवल! झरने लगे अमृत और खिलने लगे कमल आत्मा का। मगर इस पीड़ा के बिना कुछ भी नहीं है। यह प्रसव पीड़ा है।
जाके उर उपजी नहिं भाई। सो क्या जाने पीर पराई।।

हर समय तुम्हारा ध्यान, प्रिये,
मन उद्वेलित, आकुल प्रतिपल,
छू पाती मन के तारों को,
मेरी निस्वर मनुहार विकल?
अनुरागमयी, कह दो, कह दो,
आश्वासन के दो शब्द सरस,
दो बूंद सही, मधु तो दे दो, घुल जाए मन में किंचित रस!
यह व्यथा कि जिसका अंत नहीं, यह तृषा कि पल भर चैन नहीं, मधु-घट सन्मुख, मधुदान नहीं! यह न्याय नहीं! यह न्याय नहीं! मधुदान उचित, प्रतिदान उचित, मन प्राण तृषित, अनुराग विकल! हर समय तुम्हारा ध्यान, प्रिये, मन उद्वेलित, आकुल प्रतिपल, छू पाती मन के तारों को,
मेरी निस्स्वर मनुहार विकल?

उठता है यह प्रश्न भक्त के मन में बहुत बार--कि जो मैं कह नहीं पाता, वह परमात्मा तक पहुंचता होगा? जो मैं बोल ही नहीं पाता, वह सुन पाता होगा? जो प्रार्थना मेरे ओंठों तक नहीं आ पाती, वह उसके कानों तक पहुंचती होगी? लेकिन जानने वाले कहते हैंः वे ही प्रार्थनाएं पहुंचती हैं केवल, जो तुम्हारे ओंठों तक नहीं आ पातीं। जो तुम्हारे ओंठ तक आ गईं, वे उसके कान तक नहीं पहुंचतीं। जो तुम्हारे शब्दों तक आ गईं, वे यहीं पृथ्वी पर गिर जाती हैं। जो निःशब्द हैं, उनमें ही पंख होते हैं। वे ही उड़ती हैं आकाश में। जो निःशब्द हैं, वे निर्भार हैं। शब्द का भार होता है। शब्द भारी होते हैं। शब्द पर गुरुत्वाकर्षण का प्रभाव होता है। शब्द को जमीन अपनी ओर खींच लेती है। यहीं तड़फड़ा कर गिर जाता है। उस तक तो निःशब्द में ही पहुंच सकते हो। उस तक तो शून्य में उठे हुए भाव ही यात्रा कर पाते हैं।
ब्यावर जाने पीर की सार।
कुछ दृष्टांत लेते हैं दरिया। सीधे-सादे आदमी हैं। धुनिया हैं। कुछ पढ़े-लिखे नहीं हैं बहुत। ठीक कबीर जैसे धुनिया हैं। लेकिन इन दो धुनियों ने न मालूम कितने पंडितों को धुन डाला है! कुछ बड़े-बड़े शब्द नहीं हैं, शास्त्रीय शब्द नहीं हैं--सीधे-सादे, लोक की समझ में आ सकें... ।
ब्यावर जाने पीर की सार।
कहते हैंः जिसने बच्चे को जन्म दिया हो, वह स्त्री जानती है प्रसव की पीड़ा को। और जिसने अपने हृदय में परमात्मा को जन्म दिया हो, वही जानता है भक्त की पीड़ा को।
ब्यावर जाने पीर की सार।
कठिन है। जिस स्त्री ने अभी बच्चे को जन्म नहीं दिया, वह समझे भी तो कैसे समझे? --कि नौ महीने बच्चे को गर्भ में ढोना, वह भार, वमन, उल्टियां। भोजन का करना मुश्किल। चलना, उठना, बैठना, सब मुश्किल। और फिर भी एक आनंद-मगनता!
तुमने गर्भवती स्त्री की आंखों में देखा? पीर नहीं दिखाई पड़ती, पीड़ा नहीं दिखाई पड़ती--एक अहोभाव, एक धन्यभाव। तुमने उसके चेहरे की आभा देखी? एक प्रसाद! गर्भवती स्त्री में एक अपूर्व सौंदर्य प्रकट होता है। उसके चेहरे से जैसे दो आत्माएं झलकने लगती हैं। जैसे उसके भीतर दो दीये जलने लगते हैं एक की जगह। देह कितनी ही पीड़ा से गुजर रही हो, उसकी आत्मा आनंदमग्न हो नाचने लगती है। मां बनने का क्षण करीब आया। फलवती होने का क्षण करीब आया। अब फूल लगेंगे, वसंत आ गया। और जैसे वसंत में वृक्ष नाच उठते हैं और मस्त हो उठते हैं, ऐसे ही गर्भवती स्त्री मस्त हो उठती है। यद्यपि कठिन है यात्रा, कष्टपूर्ण है यात्रा--नौ महीने... ।
और गर्भवती स्त्री की तो यात्रा नौ महीने में पूरी हो जाती है; लेकिन जिन्हें अपने भीतर बुद्धों को जन्म देना है, जिन्हें अपने भीतर परमात्मा को जन्म देना है, उसकी तो कोई नियत-सीमा नहीं है। नौ महीने लगेंगे, कि नौ वर्ष लगेंगे, कि नौ जन्म लग जाएंगे, कोई कुछ कह सकता नहीं। कोई बंधा हुआ समय नहीं है। तुम्हारी त्वरा, तुम्हारी तीव्रता, तुम्हारी तन्मयता, तुम्हारी समग्रता पर निर्भर है। कितने प्राणपण से जुटोगे, इस पर निर्भर है। नौ क्षण में भी हो सकता है, नौ महीने में भी न हो, नौ जन्म भी व्यर्थ चले जाएं। समय बाहर से निर्णीत नहीं है। समय तुम्हारे भीतर से निर्णीत होगा। कितने प्रज्वलित हो? कितने धू-धू कर जल रहे हो?
ब्यावर जाने पीर की सार। बांझ नार क्या लखे विकार।।
जिसने कभी बच्चे को जन्म नहीं दिया, उसे तो सिर्फ इतना ही दिखाई पड़ता होगा--कितनी मुसीबत में पड़ गई बेचारी! गर्भवती स्त्री को देख कर उसे लगता होगा--कितनी मुसीबत में पड़ गई बेचारी! उसे तो पीड़ा ही पीड़ा दिखाई पड़ती होगी। स्वाभाविक भी है। लेकिन पीड़ा में एक माधुर्य है, एक अंतर्नाद है, वह तो उसे नहीं सुनाई पड़ सकता। वह तो सिर्फ अनुभोक्ता का ही हक है, अधिकार है। पतिब्रता पति को ब्रत जानै।
जिसने किसी को प्रेम किया है। और जिसने किसी को ऐसी गहनता से प्रेम किया है कि उसके प्रेमी के अतिरिक्त उसे संसार में कोई और बचा ही नहीं है; जिसने सारा प्रेम किसी एक के ही ऊपर निछावर कर दिया है; जिसके प्रेम में इतनी आत्मीयता है, इतना समर्पण है कि अब इस प्रेम के बदलने का कोई उपाय

नहीं है; ऐसी शाश्वतता है कि अब कुछ भी हो जाए, जीवन रहे कि जाए, मगर प्रेम थिर रहेगा। जीवन तो एक दिन जाएगा, लेकिन प्रेम नहीं जाएगा। जीवन तो एक दिन चिता पर चढ़ेगा, लेकिन प्रेम का फिर कोई अंत नहीं है। जिसने किसी एक को इतनी अनन्यता से चाहा है, इतनी परिपूर्णता से चाहा है, वही जान सकता है प्रेम की, प्रीति की पीड़ा।
बिभचारिन मिल कहा बखानै।
लेकिन जिसने कभी किसी से आत्मीयता नहीं जानी, किसी से प्रेम नहीं जाना; जो क्षणभंगुर में ही जीया है... ।
वेश्या से पूछने जाओगे पतिव्रता के हृदय का राज, तो कैसे बताएगी? वह उसका अनुभव नहीं है। पतिव्रता का राज तो पतिव्रता से पूछना होगा। और फिर भी पतिव्रता बता न सकेगी। क्या बताएगी? गूंगे का गुड़! बोलो तो बोल न सको। हां, पतिव्रता के पास रहोगे तो शायद थोड़ी-थोड़ी झलक मिलनी शुरू हो। उसका अनन्य प्रेम-भाव देखो तो शायद झलक मिलनी शुरू हो। उसका समग्र समर्पण देखो तो शायद झलक मिलनी शुरू हो।
हीरा पारख जौहरि पावै। मूरख निरख के कहा बतावै।।
हीरा हो तो पारखी जान सकेगा। मूरख देख भी लेगा तो भी क्या बताएगा?
यह वचन प्यारा है। मैं तुमसे कहता हूंः परमात्मा को तुमने भी देखा है, मगर पहचान नहीं पाए। ऐसा कैसे हो सकता है कि परमात्मा को न देखा हो! ऐसा तो हो ही नहीं सकता। हीरा न देखा हो, यह हो सकता है। लेकिन परमात्मा न देखा हो, यह नहीं हो सकता। क्योंकि हीरे तो कभी कहीं मुश्किल से मिलते हैं। परमात्मा तो सब तरफ मौजूद है। वृक्षों के पत्ते-पत्ते में उसके हस्ताक्षर। कंकड़-कंकड़ पर उसकी छाप। पत्थर-पत्थर में उसकी प्रतिमा। पक्षी- पक्षी में उसके गीत। हवाएं जब वृक्षों से गुजरती हैं, तो उसकी भगवदगीता। और आकाश में जब बादल घिर आते हैं और गड़गड़ाने लगते हैं, तो उसका कुरान। और झरनों में जब कल-कल नाद होता है, तो उसके वेद! तुम बचोगे कैसे? और जब सुबह सूरज निकलता है, तो वही निकलता है। और जब रात चांद की चांदनी बरसने लगती है, तो वही बरसता है। मोर के नाच में भी वही है। कोयल की कुहू-कुहू में भी वही है। मेरे बोलने में वही है, तुम्हारे सुनने में वही है। उसके अतिरिक्त तो कोई और है ही नहीं।
ऐसा तो कभी पूछना ही मत कि परमात्मा कहां है। ऐसा ही पूछना कि परमात्मा कहां नहीं है। तो यह तो हो ही कैसे सकता है कि तुमने परमात्मा को न देखा हो? रोज-रोज देखा है। हर घड़ी देखा है। हर घड़ी उसी से तो मुठभेड़ हो जाती है!
कबीर से किसी ने कहा कि अब तुम परम ज्ञान को उपलब्ध हो गए; अब बंद कर दो
यह दिन-रात कपड़े बुनना और फिर बाजार बेचने जाना। शोभा भी नहीं देता। हजारों तुम्हारे शिष्य हैं, हम तुम्हारी फिकर कर लेंगे। तुम्हारा ऐसा खर्च भी क्या है? दो रोटी हम जुटा देंगे। हमारे मन में पीड़ा होती है कि तुम कपड़ा बुनो और फिर कपड़े बेचने बाजार जाओ।
लेकिन कबीर ने कहा कि नहीं-नहीं। फिर राम का क्या होगा?
उन्होंने पूछाः कौन राम?
उन्होंने कहाः वे जो ग्राहक में छिपे हुए राम आते हैं, उनके लिए कपड़े बुनता हूं।
कबीर जब बनारस के बाजार में बैठ कर और कपड़े बेचते थे, तो हर ग्राहक से कहते थेः राम! सम्हाल कर रखना। बहुत प्रेम से बुना है। झीनी-झीनी रे बीनी चदरिया! इसमें बहुत रस डाला है। इसमें प्राण उंडेले हैं।
गोरा कुम्हार ज्ञान को उपलब्ध हो गया, लेकिन घड़े बनाता रहा सो तो बनाता ही रहा। किसी ने कहा गोरा कुम्हार कोः अब तो बंद कर दो घड़े बनाने। तुम बुद्धत्व को उपलब्ध हो गए। इतने तुम्हारे शिष्य हैं।
गोरा कुम्हार ने कहाः मैं कुम्हार और परमात्मा भी कुम्हार। उसने घड़े बनाने बंद नहीं किए, मैं कैसे कर दूं? वह बनाए जाता है। मैं भी बनाए जाऊंगा। और घड़े किनके लिए बनाता हूं? उसके लिए ही बनाता हूं! जब तक हूं, जो भी सेवा बन सके उसकी... ।
गोरा को किसी ने कभी मंदिर जाते नहीं देखा, पूजा-प्रार्थना करते नहीं देखा; लेकिन घड़े बनाते जरूर देखा। और जब गोरा मिट्टी कूटता था, अपने पैरों

से मिट्टी रौंदता था, तो उसकी मस्ती देखने जैसी थी! सैकड़ों लोग देखने इकट्ठे हो जाते थे। मिट्टी क्या कूटता था, जैसे मीरा नाचती थी ऐसे ही नाचता था! ऐसा ही मस्त, ऐसा ही दीवाना! उस मिट्टी में भी मस्ती आ जाती होगी। उसके बनाए गए घड़ों में शराब भरने की जरूरत न पड़ती होगी--शराब भरी ही होती होगी। उनके सूनेपन में भी शराब भरी होती होगी। उनके खालीपन में भी रस भरा होता होगा।
हीरे को तो पारखी देखेगा, पारखी समझेगा।
मूरख निरख के कहा बतावै।
लेकिन किसी मूर्ख को दिखा दिया तो वह क्या बताएगा? देख भी लेगा तो भी चुप रहेगा। उसको तो कंकड़-पत्थर ही दिखाई पड़ते हैं।
आदमी को वही दिखाई पड़ता है जितनी उसकी देखने की क्षमता होती है।
हमारी सृष्टि हमारी दृष्टि से सीमित रहती है। जितनी बड़ी दृष्टि, उतनी बड़ी सृष्टि। जब दृष्टि इतनी असीम होती है कि उसकी कोई सीमा नहीं, तब सृष्टि खो जाती है और स्रष्टा दिखाई देता है। जब तुम्हारी दृष्टि असीम होती है, तो असीम से तुम्हारा साक्षात्कार होता है।

सघन आवेग के बादल हृदय-आकाश में जब,
सजल अनुभूति लेकर डोलते हैं।
रंगीली कल्पना के तब पिपासित भाव पंछी,
अधर में गीत सा पर खोलते हैं।

अधूरे विस्मरण सा शांतिमय वातावरण में, विचारों का पवन जब सहम कर निस्वास भरता।
नयन की पुतलियों में इंद्रधनुषी रंग लेकर, छली सपना अजाने चित्र सा बन कर उभरता।
जलन की वेदना से दमित नीरव नीड़ सूने,
व्यथा की टीस भर कर बोलते हैं।

सुहानी गंध जैसी प्राण में उच्छवास भरती, किसी की याद जब अमराइयों सा फूलती है।
उभरता मौन मधु उल्लास सावन सा सलोना,
मृदुल मन की मधुरता छंद बन कर झूलती है।
सुखद मन के सुकोमल शब्द ध्वनि के पेंग भर कर, सधी सी पंक्ति बन कर झूलते हैं।

तृषा रत जब कुंआरा क्षुब्ध घुटता मौन चातक, हरित धरती दुल्हन सी मांग भरती देखता है।
प्रणय की अर्चना में साधना-अंगार खाकर, प्रवासी स्वाति को लय में विलय हो टेरता है।
विरह की सांस में भर कर उदासी चिर मिलन की,
निलय में स्वप्न सतरंग घोलते हैं।

सघन आवेग के बादल हृदय-आकाश में जब,
सजल अनुभूति लेकर डोलते हैं।
रंगीली कल्पना के तब पिपासित भाव पंछी,
अधर में गीत सा पर खोलते हैं।

जैसे-जैसे तुम्हारे भाव की सघनता होती है, जैसे-जैसे तुम्हारे भाव की गहनता होती है, वैसे-वैसे अस्तित्व रहस्यमय होने लगता है। वैसे-वैसे पर्दे उठते हैं। वैसे-वैसे सत्य भी नग्न होता है। वैसे-वैसे प्रकृति अपने भीतर छिपे परमात्मा को प्रकट करने लगती है।
लागा घाव कराहै सोई।
जिसको घाव लगा है, वह कराहता है।
कोतगहार के दर्द न कोई।

तमाशा देखने वाले को तो कोई दर्द नहीं होता। तुम जिंदगी में अब तक तमाशा देखने वाले रहे हो। जिंदगी में डुबकी मारो। किनारे पर कब से खड़े हो! किनारे पर ही जीना है और किनारे पर ही मरना है? और यह घुमड़ता सागर तुम्हें निमंत्रण दे रहा है। और ये उठती हुई तरंगें, चुनौती हैं, कि छोड़ो अपनी नाव। नहीं कोई नक्शा है पास, माना। मगर नक्शा सिर्फ नामर्द पूछते हैं। मर्द तो अनंत में, अज्ञात में अपनी छोटी सी डोंगी लेकर उतर जाते हैं।
खोजने का आनंद इतना है कि उसमें अगर कोई खुद भी खो जाए तो हर्ज नहीं। खोजने का आनंद ही इतना है कि खुद को भी समर्पित किया जा सकता है। और यह भी समझ लेना, जो खुद को खोने को राजी नहीं है, वह कभी खोज नहीं पाएगा। जो इस बात के लिए राजी है कि अगर यह नौका डूब जाएगी मझधार में तो मझधार ही मेरा किनारा होगा--वही केवल परमात्मा के विराट सागर में अपनी नौका को छोड़ सकता है और वही कभी उसे पाने में समर्थ हो सकता है।
लागा घाव कराहै सोई। कोतगहार के दर्द न कोई।।
लेकिन लोग सिर्फ तमाशबीन हैं। वे बुद्धों को उतरते भी देखते हैं सागर में; तरंगों पर, लहरों पर जीतते भी देखते हैं; फिर भी किनारे पर ही खड़े देखते रहते हैं। दूर से नमस्कार भी कर लेते हैं, मगर पैर नहीं रखते। एक कदम नहीं उठाते। पैर रखना तो दूर, किनारे पर पैर गड़ा कर खड़े होते हैं कि किसी भूल-चूक के क्षण में, अपने बावजूद, कभी किसी दीवाने की बातों में आकर कहीं उतर न जाएं! तो जंजीरें बांध रखते हैं। पैरों में जंजीरें बांध देते हैं। अपने पर इतना भी भरोसा तो नहीं है। हो सकता है किसी की बात मन को आंदोलित कर दे, कोई तार छिड़ जाए भीतर, कोई सोया भाव जगा दे। और कहीं ऐसा हो जाए कि उतर ही न जाऊं! फिर उतर जाऊं तो पछताऊं। उतर जाऊं तो लौटने का भी तो पता नहीं कि लौट पाऊं।
इसलिए किनारे पर लोगों ने पैर गड़ा लिए हैं जमीन में। खूंटे गाड़ लिए हैं। खूंटों से जंजीरें बांध ली हैं। तुम जरा खुद ही गौर से देखो, तुमने कितनी जंजीरें बांध रखी हैं! और लोग जंजीरों के बहाने चुनौतियों को इनकार करते रहते हैं।
मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैंः संन्यास तो लेना है, मगर अभी नहीं
ले सकता। अभी तो बेटे का विवाह करना है। जब बेटे का विवाह हो जाएगा तब लूंगा। अभी संन्यास ले लूं, कहीं बेटे के विवाह में अड़चन न पड़े।
और कल अगर मौत आ गई तो क्या तुम सोचते हो कि बेटे का विवाह रुकेगा? तो क्या तुम सोचते हो कि तुम्हारी मौत से कुछ बाधा पड़ जाने वाली है? और मौत आ गई तो फिर क्या करोगे?
नहीं, लेकिन कोई यह सोचता ही नहीं कि मैं कभी मरने वाला हूं। लोग सोचते हैं कि सदा दूसरे मरते हैं। मौत हमेशा किसी और की होती है, मेरी नहीं। मैं तो सदा बचता हूं। यह तो कोई सोचता ही नहीं कि कल मौत हो सकती है। और जिसने यह नहीं सोचा है कि कल मौत हो सकती है, वह आज के निमंत्रण को स्वीकार न कर सकेगा, वह कल पर टालेगा। वह कहेगाः कुछ और थोड़ा काम-धाम निपटा लूं।
बुद्ध एक गांव से तीस साल तक गुजरे, कई बार गुजरे। वह उनके रास्ते में पड़ता था श्रावस्ती आते-जाते। उस गांव में एक वणिक था। तीस साल में बुद्ध नहीं तो कम से कम साठ बार उस गांव से गुजरे। लेकिन वह मिलने न जा सका सो न जा सका। जाना चाहता था। जवान था, तब से जाना चाहता था। बूढ़ा हो गया, तब तक नहीं गया। जिस दिन उसे खबर मिली कि अब बुद्ध प्राण छोड़ रहे हैं, देह छोड़ रहे हैं, उस दिन भागा हुआ पहुंचा।
लोगों ने पूछाः इस गांव से बुद्ध इतनी बार निकले, तू कभी गया नहीं?
उसने कहाः कोई न कोई बहाना मिल गया। आज मैं जानता हूं कि वे बहाने थे। कभी घर से निकल ही रहा था कि कोई ग्राहक आ गया।
उस समय कोई गुमाश्ता कानून तो था नहीं कि कितने बजे दुकान खोलनी है, कितने बजे दुकान बंद करनी है। जब तक ग्राहक आते रहें, दुकान खुली रहे। अब एक ग्राहक आ गया, बंद ही कर रहा था दुकान, तो उसने सोचा कि अब अगली बार जब बुद्ध निकलेंगे तब निपट लूंगा; यह ग्राहक अगली बार आए कि न आए! हाथ आए ग्राहक को छोड़ना!

कभी बुद्ध गांव आए, घर में मेहमान थे। तो इनकी सेवा करनी कि बुद्ध से मिलने जाऊं? कभी बुद्ध आए तो पत्नी बीमार थी। कभी बुद्ध आए तो बच्चा हुआ था घर में। कभी बुद्ध आए तो ऐसा, कभी बुद्ध आए तो वैसा... बेटी का विवाह था। कभी बुद्ध आए तो पड़ोस में कोई मर गया, तो उसकी अरथी में जाऊं कि बुद्ध को सुनने जाऊं? ऐसे आते ही रहे बहाने, आते ही रहे।
और ये सब तुम्हारे बहाने हैं, याद रखना। वह आदमी तुम्हारे सारे बहानों को इकट्ठा बता रहा है। तीस साल... और लोग चूकते गए! और कभी-कभी तो ऐसी छोटी-छोटी बातों से चूकते हैं जिसका हिसाब नहीं।
लक्ष्मी अभी दिल्ली गई। एक मंत्री से मिली। तो मंत्री ने कहाः मैं आया था आश्रम के द्वार तक। द्वार से मैंने झांक कर भीतर देखा तो वहां चार-छह लोग देखे जो मुझे पहचानते हैं। इसलिए द्वार से ही लौट पड़ा। दिल्ली से सिर्फ आश्रम के ही लिए आया था। लेकिन यह देख कर कि दो-चार आदमी वहां मौजूद थे, जो मुझे पहचानते हैं। तो अफवाह उड़ जाएगी, अखबारों में खबर पहुंच जाएगी।
और मेरे साथ नाम जोड़ना खतरे से खाली नहीं है। न मालूम कितने मंत्री खबर भेजते हैं कि हम समझते हैं और हम चाहते हैं कि किसी तरह आपके काम में किसी भी प्रकार से हम सहयोगी हो सकें; लेकिन हम प्रकट रूप से कुछ भी नहीं कर सकते। हम प्रकट रूप से यह कह भी नहीं सकते।
यहां न मालूम कितने संसद-सदस्य आए और गए। और अभी जब संसद में मेरे संबंध में विवाद चला, तो उनमें से एक भी नहीं बोला। मैंने पूरी फेहरिस्त देखी कि जो यहां आए और गए, उनमें से कोई बोला कि नहीं? जो यहां आए और गए, उनमें से एक भी नहीं बोला। यहां कह कर गए थे कि हम आपके लिए लड़ेंगे। लड़ने की तो बात दूर, बोले ही नहीं। क्योंकि यह भी पता चल जाए कि यहां आए थे, या मुझसे कुछ नाता है, या मुझसे कुछ संबंध है, या मुझसे कुछ लगाव है--तो खतरे से खाली बात नहीं है। जो बोले, उनमें से कोई यहां आया नहीं है। उनमें से किसी ने कोई मेरी किताब नहीं पढ़ी, मुझे सुना नहीं है।
अब यह बड़े मजे की बात है! घंटे भर विवाद चला, उसमें बोलने वाले एक भी मुझसे परिचित नहीं हैं। और जो परिचित हैं--और बहुत परिचित हैं--वे चुप रहे। दरवाजे से लौट जाए कोई--सिर्फ यह देख कर कि कोई पहचान के लोग दिखाई पड़ते हैं! खबर उड़ जाएगी। कैसे-कैसे बहाने आदमी खोज लेता है! और कैसे क्षुद्र बहानों के कारण कितनी अनंत संभावनाओं से वंचित रह जाता है। अब जो आदमी दिल्ली से यहां तक आया, कुछ न कुछ प्यास थी। लेकिन प्यास को दबा कर लौट गया।
और यह हमारी सदी तो तमाशबीनों की सदी है। दुनिया इतनी तमाशबीन कभी भी नहीं थी। आधुनिक टेक्नालॉजी ने आदमी को बिल्कुल तमाशबीन बना दिया। अगर तुम आदिवासियों से मिलने जाओ, तो जब उन्हें नाचना होता है, वे नाचते हैं। नाच देखते नहीं, नाचते हैं। और जब उन्हें गाना होता है तो गाते हैं, अपना अलगोजा बजाते हैं। लेकिन तुम्हें जब नाच देखना होता है तो तुम नाचते नहीं; तुम फिल्म देखने जाते हो। या किसी नर्तकी को निमंत्रित कर देते हो। या अगर टेलीविजन घर में है, तब तो कहीं जाने की जरूरत नहीं। और जब तुम्हें गीत सुनने का मन होता है तो तुम ग्रामोफोन रिकार्ड चढ़ा देते हो, या रेडियो खोल देते हो, या रिकार्ड प्लेयर। कोई गाता है, कोई नाचता है, तुम सिर्फ देखते हो। तुम सिर्फ तमाशबीन हो। फुटबाल का खेल, लाखों लोग चले देखने। क्रिकेट का खेल, लाखों लोग दीवाने हैं। खेलता कोई और है। पेशेवर खिलाड़ी, जिनका धंधा खेलना है।
मेरा एक संन्यासी है यहां। पेशेवर खिलाड़ी है। पेशेवर खिलाड़ी है, तो अमरीका ने उसे निमंत्रण दिया है कि तुम अमरीका ही आकर बस जाओ। तो वह अमरीका रहा। फिर किसी तरह मेरी सुगंध उसे लग गई। यहां चला आया। अब उसे जाना नहीं है। तो अब बड़ी मुश्किल है, वह रहे यहां कैसे? टेनिस का खिलाड़ी है, अदभुत खिलाड़ी है! तो यहां के टेनिस के खिलाड़ियों ने कहाः तुम फिकर मत करो! अगर तुम रहना चाहो, सरकार से हम सब इंतजाम करवाएंगे। हम सब इंतजाम करेंगे तुम्हारे रहने, खाने-पीने, तनख्वाह का। तुम यहीं रह जाओ। तुम्हारा रहना तो सौभाग्य की बात है।

अब सब चीज पेशेवर हो गई है! दो पहलवान लड़ रहे हैं, सारे लोग चले! अमरीका में लोग पांच-पांच, छह-छह घंटे टेलीविजन के सामने बैठे हैं। बस देख रहे हैं! धीरे-धीरे सब चीज देखने की होती जा रही है। अब प्रेम तुम करते नहीं; फिल्म में देख आते हो दो लोगों को प्रेम करते। अब तुम्हें करने की क्या झंझट? क्योंकि प्रेम की झंझटें हैं बहुत। फिल्म में देख आए, बात खत्म हो गई। निश्चिंत आकर सो गए।
यह सदी तमाशबीनों की सदी है। और जब सब चीजों के संबंध में तुम तमाशबीन
हो गए हो तो परमात्मा के संबंध में तो बहुत ही ज्यादा। क्योंकि परमात्मा तो आखिरी बात है। मुश्किल से उसकी खोज पर कोई निकलता है। अब तो यहां खोज का सवाल ही नहीं है। अब तो हर चीज कोई दूसरा तुम्हारे लिए कर देता है, तुम देख लो।
परमात्मा के संबंध में तो तुम्हें तमाशबीन नहीं रहना होगा। वहां तो भागीदार बनना होगा। वहां तो नाचना होगा, गाना होगा, रोना होगा, भाव-विभोर होना होगा। वहां तो संयुक्त होना होगा।
यहां लोग आते हैं। मैं उनसे पूछता हूंः कोई ध्यान किया?
वे कहते हैं कि नहीं, अभी तो हम सिर्फ देखते हैं।
क्या देखोगे? ध्यान कभी किसी ने देखा है? ध्यान कोई वस्तु है जो तुम देख लोगे?
नहीं; वे कहते हैं, हम दूसरों को ध्यान करते देखते हैं।
दूसरों को ध्यान करते देखते हो तुम, क्या देखोगे? कोई नाच रहा है, तो नाच दिखाई पड़ेगा, ध्यान थोड़े ही दिखाई पड़ेगा। ध्यान तो अंतर्दशा है। वह तो जो नाच रहा है, उसके अंतरतम में घटित होगा। तुम उसे नहीं देख सकोगे। तुम तो नाचने वाले को देख कर लौट आओगे। और तुम सोचोगे मन में--नाच और ध्यान! ये दोनों एक कैसे हो सकते हैं? नाच का ध्यान से क्या लेना-देना है?
तुमने नाचने वाले तो बहुत देखे हैं। नाच बिना ध्यान के हो सकता है। और ध्यान भी बिना नाच के हो सकता है। और ध्यान और नाच साथ-साथ भी हो सकते हैं। बुद्ध ने सिर्फ ध्यान किया, उसमें नाच नहीं है। मीरा नाची भी और ध्यान भी किया। उसमें दोनों संयुक्त हैं। मीरा बुद्ध से थोड़ा ज्यादा धनी है। उसके ध्यान में एक और लहर, एक और तरंग है। बुद्ध का ध्यान शांत है। बुद्ध संगमरमर की प्रतिमा की भांति शांत हैं। इसलिए यह कोई आकस्मिक नहीं है कि बुद्ध की ही प्रतिमाएं सबसे पहले बनीं और संगमरमर की बनीं। अब तुम मीरा की प्रतिमा कैसे बनाओगे संगमरमर की? बनाओगे भी तो झूठी होगी। मीरा की प्रतिमा बनानी हो तो पानी के फव्वारे से बनानी होगी। तब कहीं उसमें कुछ नाच जैसा भाव होगा। बुद्ध को भी तुम बैठा देख लोगे वृक्ष के नीचे सिद्धासन में, तो क्या ध्यान देखोगे? सिद्धासन दिखाई पड़ेगा, कि हाथ कहां रखे, कि पैर कहां रखे, कि रीढ़ सीधी है, कि सिर ऐसा है, कि आंख आधी खुली है कि पूरी बंद। मगर ध्यान कैसे देखोगे? यह तो बैठना है, यह तो आसन है। ऐसे तो कई बुद्धू बैठे हुए हैं और बुद्ध नहीं हो पाए हैं। यह तो तुम भी सीख सकते हो। यह तो थोड़ा सा अभ्यास करके तुम भी सिद्धासन मार कर बैठ जाओगे। मगर इससे तुम बुद्ध नहीं हो जाओगे। ध्यान तो अंतर की घटना है; देखी नहीं जा सकती, केवल अनुभव की जा सकती है।
लागा घाव कराहै सोई। कोतगहार के दर्द न कोई।
जिसको दर्द नहीं हुआ है, वह समझ ही नहीं पाएगा।
विवेक मुझे कहती थी, उसके पिता को कभी सिरदर्द नहीं हुआ। हुआ ही नहीं,
तो लाख कोई समझाए कि सिरदर्द क्या है, उसके पिता को समझ में नहीं आता। वे कहते हैंः सिरदर्द? कैसे समझाओगे, जिस आदमी को सिरदर्द हुआ ही नहीं? जिसको सिरदर्द नहीं हुआ, उसे तो सिर का भी पता नहीं चलता। सिरदर्द तो दूर की बात है। सिरदर्द में ही सिर का पता चलता है। नहीं; समझाना असंभव है।
तुम आंख वाले हो, अंधे की क्या दशा है, तुम कैसे समझोगे?
आंख वाले अक्सर सोचते हैं कि अंधे आदमी को अंधेरे ही अंधेरे में रहना होता होगा। तुम बिल्कुल गलत सोचते हो। अंधेरा भी आंख वाले का अनुभव है। अंधे को तो अंधेरा भी दिखाई नहीं पड़ सकता। फिर अंधेरे को भी नहीं देख सकता जो उसे क्या दिखाई पड़ता होगा? ख्याल रखना, आंख ही रोशनी देखती है, आंख ही

अंधेरा देखती है। अंधे को न रोशनी दिखाई पड़ती है, न अंधेरा दिखाई पड़ता है। फिर क्या दिखाई पड़ता है? अंधे को कुछ दिखाई ही नहीं पड़ता। आंख ही नहीं है। तुम सोचते हो कि बहरे को सन्नाटा सुनाई पड़ता होगा, तो तुम गलती में हो। सन्नाटा सुनने के लिए भी कान चाहिए। जैसे संगीत सुनने के लिए कान चाहिए, ऐसे सन्नाटा सुनने के लिए भी कान चाहिए। सन्नाटा भी कान का अनुभव है। तो बहरे को क्या सुनाई पड़ता होगा? कुछ भी सुनाई नहीं पड़ता। न उसे शब्द का पता है, न सन्नाटे का, न संगीत का, न शून्य का। वह अनुभव का जगत ही नहीं है उसका। कोई उपाय नहीं है उसको। अनुभव के अतिरिक्त कोई समझने का उपाय नहीं है।
लोग पूछते हैंः हम ईश्वर को समझना चाहते हैं और समझ लें तो फिर अनुभव
भी करें। उन्होंने तो पहले से ही एक गलत शर्त लगा दी। अनुभव करो तो समझ सकते हो। वे कहते हैंः हम समझ लें तो फिर अनुभव करें। लोग चाहते हैं कि पहले ध्यान को हम समझ लें तो फिर ध्यान करें। गलत शर्त लगा दी।
यह तो तुमने ऐसी शर्त लगा दी कि पहले तैरने को समझ लें तो फिर हम तैरना सीखें। अब तैरना तुम्हें कैसे समझाया जाए? गद्दा-तकिया बिछा कर उस पर तुम्हारे हाथ-पैर तड़फड़ाए जाएं?
मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन गया था तैरना सीखने। जो उस्ताद उसे
ले गए थे सिखाने, वे तो अपने कपड़े उतार रहे थे, तभी मुल्ला किनारे गया। सीढ़ियों पर जमी हुई काई थी, उसका पैर फिसल पड़ा। भड़ाम से नीचे गिरा। उठा और भागा घर की तरफ।
उस्ताद ने कहाः कहां जाते हो बड़े मियां? तैरना नहीं सीखना?
उसने कहा कि अब तो जब तक तैरना न सीख लूं, नदी के पास नहीं आऊंगा। यह तो भगवान की कृपा है कि पैर फिसला और पानी में नहीं पहुंच गया। जान बची और लाखों पाए, बुद्धू लौट कर घर को आए। उसने कहाः अब नहीं। अब तो तैरना सीख ही लूं, तभी पानी के पास कदम रखूंगा।
लेकिन तैरना कैसे सीखोगे? और बात तो तर्कयुक्त लगती है, कि आखिर तैरना बिना सीखे पानी में पैर रखना खतरे से खाली नहीं है। और ऐसे ही कुछ लोग हैं, वे कहते हैंः पहले हम ध्यान समझ लें, फिर हम ध्यान करें।
समझोगे कैसे?
वे कहते हैंः हम देखें दूसरों को ध्यान करते।
हां; देखोगे, कुछ दिखाई भी पड़ेगा। कोई पद्मासन लगा कर विपस्सना कर रहा है। कोई नाच कर सूफी मस्ती में डूबा हुआ है। कोई नाच रहा है और उमर खय्याम हो गया है। और कोई सिद्धासन में बुद्ध की तरह बैठा है। मगर ये तो बाहर की घटनाएं हैं जो तुम देख रहे हो। भीतर क्या हो रहा है? हो भी रहा है कि नहीं हो रहा है? यह तो जब तक तुम्हें न हो जाए, तब तक कोई उपाय नहीं है।
रामनाम मेरा प्रान-अधार।
जब तक राम-नाम ही तुम्हारे प्राण का आधार न हो जाए, तब तक तुम यह रस पी
न सकोगे।
सोई रामरस-पीवनहार।
वही पीएगा इसे जो हिम्मत करेगा अज्ञात में उतर जाने की, अनजान में, अपरिचित में जाने की। जो तमाशबीन नहीं है, जो जुआरी है। जो अपने को दांव पर लगा सकता है। जो जोखिम उठा सकता है। जो कहता है कि ठीक है, डूबेंगे तो डूबेंगे; मगर तैरना सीखना है तो पानी में उतरेंगे।
जन दरिया जानेगा सोई। प्रेम की भाल कलेजे पोई।।
वही जान सकेगा--केवल वही, जिसके कलेजे में प्रेम का भाला छिद गया हो।

अलिखित ही रही सदा
जीवन की सत्य-कथा,
जीवन की लिखित कथा
सत्य नहीं, क्षेपक है!
जीवन का विविध रूप,
जीवन का त्रिविध रूप;
जीवन की शाश्वत लय,
चिर-विरोध चिर-परिणय;

छोटे फल बरगद पर,
शैलखंड पद-पद पर,
जीवन की अक्षर गति,
जीवन की अंत नियति;
जीवन की रेणु क्षुद्र,
जीवन के शत समुद्र;
जीवन के गुण अगणित,
जीवन का गुण अविदित;
जीवन का महाकाव्य
अलिखित ही रहा सदा!
जीवन का खंडकाव्य
खंडसत्य, क्षेपक है!
अलिखित ही रही सदा
जीवन की सत्य-कथा,
जीवन की लिखित कथा
सत्य नहीं, क्षेपक है!

शास्त्र से न समझ सकोगे। शास्त्र तो क्षेपक है। एक कथा है; एक प्रतीक है; एक इशारा है। लेकिन इशारा तुम्हारे लिए काफी नहीं, जब तक कि तुम्हारे भीतर स्वाद न जन्मे। और स्वाद जन्मना जरा महंगा सौदा है।
प्रेम की भाल कलेजे पोई।
मरना पड़े, मिटना पड़े।
अहंकार को जाने दो, सूली पर चढ़ जाने दो--तो तुम्हारी आत्मा को सिंहासन मिले।

मैं मरने से पहले
मरना नहीं चाहता
यह जानते हुए भी कि
मुझ में लड़ने का
बहुत दम नहीं
लेकिन जीने की इच्छा
उगते सूरज से कम नहीं!

मैं मरने से पहले
मरना नहीं चाहता
यह जानते हुए भी कि
बहुत पास अंधेरा
कांप रहा है
लेकिन ख्याल के पेड़ से
पत्ते की तरह
झड़ना नहीं चाहता!
मैं मरने से पहले
मरना नहीं चाहता!

और वही जान पाता है परमात्मा को, जो मरने के पहले मर जाता है। मरते तो सभी हैं, लेकिन जीते-जी जो मर जाता है, उसके सौभाग्य की कोई सीमा नहीं है। जीते-जी जो "नहीं" हो जाता है, जो जीते-जी अपने भीतर शून्य हो जाता है, ना- कुछ, उसी शून्य में परमात्मा का पदार्पण है। और वही शून्य है जिसको दरिया कहते हैंः भाला!
प्रेम की भाल कलेजे पोई।
जो प्रेम के लिए अपने को निछावर कर देता है।
जो धुनिया तो मैं भी राम तुम्हारा।
दरिया कहते हैं कि मुझे मालूम है कि मैं ना-कुछ हूं, धुनिया हूं, दीन-हीन हूं; मगर इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता, क्योंकि मुझे दूसरी बात भी पता है--

... तो मैं भी राम तुम्हारा।
मैं तुम्हारा हूं! धुनिया सही, ना-कुछ सही, दीन-हीन सही; इसकी मुझे जरा
भी चिंता नहीं है। यह बात मुझे खलती नहीं है। क्योंकि हूं तुम्हारा। और तुम्हारे होने में सम्राट हूं। तुम्हारे होने में सारा साम्राज्य मेरा है।
अधम कमीन जाति मतिहीना...
बहुत गिरा हूं, पापी हूं। मुझसे बुरा आदमी खोजना कठिन है! बुरे को खोजने जाता हूं तो मुझसे बुरा नहीं पाता। जाति मतिहीना! मेरी बुद्धि है ही नहीं। मान ही लो कि मैं मतिहीन हूं।
कबीर ने कहा न, कि कभी कागज हाथ से छुआ नहीं। मसि कागद छुओ नहीं! कभी स्याही हाथ में ली नहीं। कबीर ने यह भी कहा हैः लिखा-लिखी की है नहीं, देखा- देखी बात।
तो न शास्त्र जानता हूं, न बहुत ज्ञानी हूं, न पांडित्य है कुछ। पक्का मान लो कि मतिहीन हूं। लेकिन इससे क्या फर्क पड़ता है? फिर भी मैं तुम्हारा हूं और तुम मेरे हो।
... तुम तो हौ सिरताज हमारा।
और तुम हो हमारे सिर पर, बस इतना बहुत है। न बुद्धि चाहिए, न श्रेष्ठ कुल चाहिए, न धन चाहिए, न पद चाहिए--तुम मिले तो सब मिला!
प्रेम की भाल कलेजे पोई।
जिसने भी प्रेम की भाल को कलेजे में उतर जाने दिया, वह ना-कुछ से सब कुछ हो जाता है; शून्य से पूर्ण हो जाता है।

विकल वेदना से व्याकुल मन तुम्हें पुकार उठा है।
आज न जाने फिर सुधियों का कैसा ज्वार उठा है।

सोती व्यथा जगी अंतर में नव-संदेश मिला है।
सुन कर मृदु झनकार हृदय में मादक सोम घुला है।
युगल पुष्प अवगुंठित कर से सौरभ युक्त खिला है।
रजत चांदनी के प्रकाश में अंधा तिमिर धुला है भूले आकर्षण के घावों में उदगार उठा है।
आज न जाने फिर सुधियों का कैसा ज्वार उठा है।

धुंधली प्रतिमाओं ने फिर से आज आवरण खोला।
बीते मधु क्षण का आलोड़न कुछ कानों में बोला।
चिर-परिचित अनजान हृदय की अठखेली मुस्काई।
मूक पवन ले मलय साथ छवि के द्वारे पर आई।
आमंत्रण के मादक स्वर में नव-गुंजार उठा है।
आज न जाने फिर सुधियों का कैसा ज्वार उठा है।

मुरझाए फूलों को अलि ने फिर वसंत में चूमा।
खंडहर सा अतीत का सपना झंझा बन कर झूमा।
किसने मन-मंदिर के छल से बंद द्वार खोला है।
मेरी अलसायी आंखों में फिर सपना घोला है।
स्वर्णिम लहरों में अपनापन हो साकार उठा है।
आज न जाने फिर सुधियों का कैसा ज्वार उठा है।

मिटो--और सुधि जन्मती है! मिटो--और सुरति उठती है! मिटो--और द्वार खुलता है! मिटो--और तुम मंदिर में प्रविष्ट हो गए! मिटो--और आ गया तीर्थ! मिटो--और वही स्थान काबा है, वही कैलाश, वही काशी! लेकिन अहंकार को लिए तुम जाओ काबा, तुम जाओ काशी, तुम्हें जहां जो करना हो तीर्थयात्राएं करो, तुम जैसे हो वैसे के वैसे वापस लौट आओगे।
सुना है मैंने कि कुछ यात्री तीर्थयात्रा को जाते थे। एकनाथ के पड़ोसी
भी तीर्थयात्रा को जाते थे। तो एकनाथ ने कहा कि भई, यह मेरी तुंबी है, इसको भी तुम तीर्थयात्रा करा लाओ। मैं तो जाने से रहा। इतनी लंबी यात्रा न कर

पाऊंगा। लेकिन मेरी तुंबी को ही स्नान करवा लाना। कम से कम यही पवित्र हो जाए। इसी को छाती लगा लूंगा।
ले गए तीर्थयात्री तुंबी को। हर जगह डुबकी दिलवा दी, एक क्या दस दिलवा दीं। तुंबी को डुबकी दिलवाने में क्या दिक्कत! घाट-घाट, तीर्थ-तीर्थ, सब जगह स्नान करवा कर ले आए। लेकिन तुंबी कड़वी थी। जब ले आए तो तुंबी काटी एकनाथ ने और उनको चखने को दी। थूक दिया उन्होंने, कड़वी तुंबी थी। कहा कि यह भी कोई चखवाने की चीज थी?
एकनाथ ने कहाः अंधो! कुछ तो समझो! यह तुंबी कड़वी थी। इतनी तीर्थयात्रा
कर आई--इतनी गंगा में, यमुना में, नर्मदा में, न मालूम कितनी जगह डुबकी खिलाई; यह तक मीठी नहीं हो पाई, जरा अपने भीतर देखो! तुम्हारा जो कड़वा था, वह अब भी कड़वा है।
असली क्रांति भीतर है, बाहर नहीं। असली तीर्थ भी भीतर है, बाहर नहीं। काया का जंत्र...
धुनिया हैं तो उनकी भाषा भी धुनिया की है। कहते हैंः काया का जंत्र... काया की धुनकी।
... सब्द मन मुठिया।
और वह जो शब्द सदगुरु से सुना है शून्य में, वह जो झनकार, वह जो हृदय की वीणा कर तार छिड़ गया है!
... सब्द मन मुठिया।
वह मेरा मुठिया है।
... सुषमन तांत चढ़ाई।
और जिसको योगी सुषुम्ना नाड़ी कहते हैं, वह मेरी तांत है।
गगन-मंडल में धुनिया बैठा...
मैं गरीब धुनिया, मगर गजब हो गया है कि मैं शून्य आकाश में विराजमान
हो गया हूं। मेरे पास कुछ ज्यादा नहीं था--काया का जंत्र--शरीर की धुनकी थी। सब्द मन मुठिया था। सुषमन तांत चढ़ाई। मगर मुझ दीन-हीन पर भी अपार कृपा हुई है। क्योंकि हूं तो आखिर राम तुम्हारा! तुम न फिकर करोगे तो कौन फिकर करेगा? तुमने मुझ धुनिया की भी फिकर की।
गगन-मंडल में धुनिया बैठा...
गगन-मंडल का अर्थ होता हैः शून्य-समाधि। जहां सब विचार शून्य हो गए, शांत हो गए। जब सब वासनाएं क्षीण हो गईं। जहां मन रहा ही नहीं। जहां कोरा आकाश रह गया। जहां निराकार रह गया!
गगन-मंडल में धुनिया बैठा...
कहते हैंः मैं खुद ही चमत्कृत हूं कि मुझ धुनिया को कहां बिठा दिया!
यह सिंहासन मेरे लिए? यह शून्य-समाधि मेरे लिए? बुद्ध के लिए थी, ठीक थी; राजपुत्र थे। महावीर के लिए भी ठीक थी; सम्राट थे। राम को भी ठीक होगी, कृष्ण को भी ठीक होगी; मगर मैं तो धुनिया!
अधम कमीन जाति मतिहीना।
और मुझे तुमने कहां बिठा दिया! अब समझ में आया कि मैं भी आखिर तुम्हारा उतना ही हूं जितने राम, जितने कृष्ण, जितने बुद्ध, जितने महावीर। तुम्हारी अनुकंपा में भेद नहीं। तुम्हारी करुणा समान बरसती है। जो भी अपने पात्र को खोल देता है, वही भर जाता है। मैं धुनिया भी भर गया।
गगन-मंडल में धुनिया बैठा, मेरे सतगुरु कला सिखाई।
और मेरे सदगुरु ने मुझे कला सिखा दी। क्या कला सिखा दी? --कि कैसे मिट जाऊं। मिटने की कला सिखा दी।
प्रेम की भाल कलेजे पोई।
सदगुरु के पास एक ही घटना घटनी चाहिए, तो ही समझना कि तुम सदगुरु के पास गए। सदगुरु के पास होना कोई भौतिक बात नहीं है, कि शरीर से पास रहे।
सदगुरु के पास होने का अर्थ है कि मिट कर पास रहे; न होकर पास रहे। अपने को पोंछ ही दिया। अपने को बचाया ही नहीं। अपने को पूरा-पूरा चरणों में चढ़ा दिया।
पाप-पान हरि कुबुधि-कांकड़ा, सहज-सहज झड़ जाई।
और तब चमत्कारों पर चमत्कार होते मैंने देखे हैं, दरिया कहते हैं। वह
जो कला गुरु ने सिखाई मिटने की, उस कला के सीखते ही--

पाप-पान हरि कुबुधि-कांकड़ा...
पाप-रूपी पत्ते अपने आप झड़ने लगे। जैसे पतझड़ आ गई हो! जिन्हें मैंने लाख-लाख बार छोड़ना चाहा था और नहीं छूट पाए थे; जिन्हें मैंने तोड़ा भी था तो फिर-फिर उग आए थे। वे पाप के पत्ते ऐसे झड़ गए जैसे पतझड़ आ गई। मेरे बिना झड़ाए झड़ गए। मेरे बिना काटे कट गए।
पाप-पान हरि कुबुधि-कांकड़ा...
धुनिए की भाषा है यह, ख्याल रखना। मेरे भीतर जो कुबुद्धि का कांकड़ा था, बिनौला था, वह कहां खो गया! खोजे से उसका पता नहीं चलता।
... सहज-सहज झड़ जाई।
मैं तो सोचता था कि बड़ा श्रम करना होगा। मगर सदगुरु ने ऐसी कला सिखाई,
जड़ ही काट दी, पत्ते-पत्ते नहीं काटे।
पत्ते-पत्ते जो काटते हैं, वे तुम्हें नीति की शिक्षा देते हैं। और नीति की शिक्षा से कोई कभी धार्मिक नहीं हो पाता है। यद्यपि जो धार्मिक हो जाता है, वह सदा नैतिक हो जाता है।
धर्म जड़ को काटता है; नीति पत्ते-पत्ते काटती है। नीति कहती हैः क्रोध
मत करो, लोभ मत करो। मगर लोग एकदम से लोभ छोड़ने को राजी नहीं, क्रोध छोड़ने को राजी नहीं। तो आचार्य तुलसी जैसे नैतिक लोग समझाते हैंः तो चलो अणुव्रत। पूरा नहीं छूटता तो थोड़ा-थोड़ा छोड़ो--अणुव्रत! थोड़ा सा क्रोध छोड़ो। थोड़ा सा मोह छोड़ो। थोड़ा और, थोड़ा और... धीरे-धीरे करके छोड़ देना। सब पत्ते एकदम नहीं कटते तो एक काटो, एक शाखा काटो, फिर दूसरी काटना।
लेकिन तुम्हीं पता है, शाखा काटोगे वृक्ष की, तो जहां काटोगे, वहां तीन शाखाएं निकल आती हैं! अणुव्रत साधोगे और महापाप प्रकट होंगे! इधर से सम्हालोगे, उधर से पाप बहने लगेंगे। जड़ नहीं काटी जब तक, तब तक कुछ भी न होगा।
पाप-पान हरि कुबुधि-कांकड़ा, सहज-सहज झड़ जाई।
जड़ के कटते ही... और जड़ क्या है? अहंकार जड़ है। मैं हूं, यह भाव जड़ है।
सत्संग में बैठने का अर्थ हैः मैं नहीं हूं, ऐसे बैठना। बस इतनी सी कला है।
बस इतना सा राज है। कुंजियां छोटी होती हैं। ताले कितने ही बड़े हों और कितने ही जटिल हों, कुंजियां तो छोटी सी होती हैं। यह छोटी सी कुंजी जीवन के अनंत रहस्यों के द्वार खोल देती है।
घुंडी गांठ रहन नहिं पावै, इकरंगी होए आई।।
वही धुनिया अपनी भाषा में समझाने की कोशिश कर रहा है।
घुंडी गांठ रहन नहिं पावै...
न तो कहीं गांठ रह जाती, न कहीं उलझन रह जाती धागों में। सब मिट जाती है।
... इकरंगी होए आई।
यह जो बहुरंगा मन है--यह करूं, वह करूं; यह भी कर लूं, वह भी कर लूं--यह
जो हजार-हजार दिशाओं में दौड़ता हुआ मन है, अचानक एक रंग का हो जाता है। मैं अपने संन्यासी को गैरिक रंग दे रहा हूं। मुझसे लोग पूछते हैंः क्या और रंग बुरे हैं?
नहीं; और रंग बुरे नहीं हैं। यह तो केवल सूचक है कि धीरे-धीरे एक रंग
के हो जाना है। कोई भी चुन सकता था। हरा चुनता, वह भी प्यारा रंग है-- वृक्षों का रंग है, सूफियों का रंग है! शांति का रंग है। शीतलता का रंग है। वह भी प्यारा रंग है। गैरिक चुना; वह सूरज का रंग है; आग का रंग है--जिसमें कोई पड़ जाए तो जल कर राख हो जाए। वह अहंकार को भस्मीभूत करने का रंग है। सफेद भी चुन सकता था। वह पवित्रता का रंग है, निर्दोषता का रंग है, कुंवारेपन का रंग है। सब रंग प्यारे हैं। काला भी चुन सकता था। वह गहराई का रंग है; असीमता का रंग है; शाश्वतता का रंग है। प्रकाश तो आता-जाता है, अंधेरा सदा रहता है। प्रकाश के लिए तो ईंधन की जरूरत पड़ती है; बाती लाओ, तेल लाओ। अंधेरे के लिए कोई जरूरत नहीं पड़ती। न बाती की, न तेल की। अंधेरे को बनाना ही नहीं पड़ता; वह है ही। प्रकाश आता-जाता है; अंधेरा सदा है। तो काला रंग भी चुन सकता था।
मगर एक रंग चुनना था, ताकि भीतर तुम्हें स्मरण बना रहे कि मन बहुरंगी है, सतरंगी है--इसे इकरंगी कर देना है; इसे एक रंग में रंग देना है।

फिर गैरिक ही चुना, क्योंकि वह चिता का रंग है, आग का रंग है। और सत्संग तो चिता है; वहां मरना सीखना है; मरने की कला सीखना है।
प्रेम की भाल कलेजे पोई।
वहां प्रेम की ज्वाला में भस्मीभूत हो जाना सीखना है।
इकरंग हुआ भरा हरि चोला, हरि कहै कहा दिलाऊं।
दरिया कहते हैंः और जिस दिन मैं एकरंग हुआ, उसी दिन मेरे भीतर हरि ही हरि भर गया। जब तक मैं बंटा था, हरि का पता न था। जब मैं अनबंटा हुआ, अखंड हुआ, एक हुआ--तत्क्षण वह अखंड मुझमें उतर आया।
इकरंग हुआ भरा हरि चोला...
तो पूरे देह में, तन-प्राण में हरि ही हरि भर गया।
... हरि कहै कहा दिलाऊं।
और फिर हरि मुझसे कहने लगेः क्या चाहिए, बोल? क्या दिला दूं?
अब यह भी कोई बात हुई! अब तो पाने को कुछ रहा नहीं। यही तो मजा है! जब पाने को कुछ नहीं होता, तब परमात्मा कहता हैः बोलो, क्या चाहिए? भिखमंगों को परमात्मा कुछ नहीं देता, सम्राटों को सब देता है। उससे दोस्ती करनी हो तो भिखमंगापन छोड़ना पड़ता है। इसलिए तो इस देश ने संन्यासी के लिए स्वामी नाम चुना। स्वामी का अर्थ होता हैः मालिक, सम्राट। मांग कर नहीं कोई उसके द्वार तक पहुंचता। मांगने में तो वासना है। जहां तक मांगना है, वहां तक प्रार्थना नहीं है। जहां तक मांगना है, वहां तक संसार। जहां सब मांगना छूट गया, जहां कुछ मांगने को नहीं--वहां अपूर्व घटना घटती है। परमात्मा कहता हैः बोलो, क्या चाहिए?
कबीर ने कहा है कि मैं हरि को खोजता फिरता था और मिलते नहीं थे। और जब
से मिले हैं, हालत बदल गई है। अब मेरे पीछे-पीछे घूमते हैं--कहत कबीर-कबीर! कहां जा रहे कबीर? क्या चाहिए कबीर? अब मैं लौट कर नहीं देखता, क्योंकि मुझे कुछ चाहिए नहीं। अब ये और एक झंझट का प्रश्न खड़ा करते हैं--क्या चाहिए? न मांगूं तो भी शोभा नहीं देता। न मांगूं तो ऐसा लगता है कि कहीं अशिष्टाचार न हो। सो मैं भागता हूं। और वे मेरे पीछे पड़े हैं--कहत कबीर-कबीर! कहां जा रहे? रुको! कुछ ले लो!
इकरंग हुआ भरा हरि चोला, हरि कहै कहा दिलाऊं।।
मैं नाहिं मेहनत का लोभी...
वे कहते हैंः मुझे कोई लोभ नहीं है। मुझे अब कुछ चाहिए नहीं है।
... बकसो मौज भक्ति निज पाऊं।
अब अगर नहीं ही मानते हो और कुछ मांगना ही है, मांगना ही पड़ेगा, जिद पर
ही पड़े हो, तो इतना ही करो कि मेरी भक्ति बढ़े, और बढ़े, कि मेरी मौज और बढ़े।
इतनी बढ़े, इतनी बढ़े कि निज को पा लूं।
इस संसार में सब स्वप्नवत है--सिर्फ एक तुमको छोड़ कर। इस संसार में सब दृश्य झूठे हैं--सिर्फ एक द्रष्टा को छोड़ कर।

दीपक की लौ कांपी,
परदों में लहर पड़ी!

शीशे में अनजाने तन के आभास हिले
अनदेखे पग में जादू के घुंघरू छमके
कालीनों में ऊनी फूल दबे और खिले
थाप पड़ी पहले कुछ तेजी से फिर थमके

किसने छेड़ी पिछले जन्मों में सुने हुए, एक किसी गाने की पहली रंगीन कड़ी!

अगहन के कोहरे से निर्मित हलके तन के टोने सहसा जैसे कमरे में घूम गए हाथों में ताजी कलियों के कंगन खनके कंधों पर वेणी के फूल-सांप झूम गए

दीपक के हिलते आलोकों को छेड़ गईं, चंपे की लहराती बांहें बड़ी-बड़ी!

इन बहकी घड़ियों की गहरी बेहोशी में जाने कब रात हुई, जाने कब बीत गई
मन के अंधियारे में उभरे धीमे-धीमे रंगों के द्वीप नये, वाणी की भूमि नई

मणियों के कूल नये जिन पर हम भूल गए, लक्ष्यहीन यात्राओं की वह सुनसान घड़ी!

नर्तन यह खींच कहां मुझको ले जाएगा क्या ये सब पिछली तट-रेखाएं छूटेंगी या दीपक गुल होगा, उत्सव थम जाएगा गीतों की सब कड़ियां सिसकी में टूटेंगी

जाने क्या होना है? सच है या टोना है? या यह भी खोना है? छलना की एक लड़ी!

परदों में लहर पड़ी,
दीपक की लौ कांपी।
यह संसार बस ऐसा है जैसे--
परदों में लहर पड़ी,
दीपक की लौ कांपी।
और दीवाल पर छायाएं कंप गईं! बस इतना, बस इससे जरा ज्यादा नहीं।
यहां मांगने योग्य क्या है? सिर्फ एक निजता सत्य है। सिर्फ एक आत्मा सत्य है। सिर्फ एक साक्षी सत्य है। परमात्मा अगर कहे--मांगो! तो बेचारा भक्त मांगे तो क्या मांगे? इतना ही मांगता है--
... बकसो मौज भक्ति निज पाऊं।
किरपा करि हरि बोले बानी, तुम तो हौ मम दास।
और जब तुम चुप हो जाओगे, तब परमात्मा बोलता है। जब तक तुम बोलते हो, तब
तक वह चुप है; या शायद बोलता है, लेकिन तुम्हारे बोलने के कारण तुम्हें सुनाई नहीं पड़ता।
किरपा करि हरि बोले बानी, तुम तो हौ मम दास।
दरिया कहै मेरे आतम भीतर, मेलौ राम भक्ति-बिस्वास।।
जैसे ही इतनी सी बात कह दी कि तुम मेरे दास हो, तुम मेरे हो, तुम मेरे अंग हो, कि तुम मेरी ही एक किरण हो, कि मेरी ही एक गंध हो--कि बस सब हो गया!
दरिया कहै मेरे आतम भीतर, मेलौ राम भक्ति-बिस्वास।।
उस घड़ी श्रद्धा जन्मी। उस घड़ी जाना परमात्मा है।
परमात्मा प्रमाणों से नहीं जाना जाता। कोई प्रमाण नहीं परमात्मा का सिवाय समाधि के अनुभव के।

छू गई है ज्योति मुझको,
मोम सा मैं गल रहा हूं!

मुझ पर असर होता नहीं था,
मैं कभी पाषाण सा था;
मैं समंदर में पड़ा बहता
बरफ--चट्टान सा था!
एक दिन किरणें पड़ीं सिर पर अचानक, जल रहा हूं!

यह बड़ी कड़वी, बड़ी
मीठी, बड़ी नमकीन भी है!

इस जलन में अमृत रस है,
साथ ही रस-हीन भी है!
हाथ पकड़ा है किसी ने,
और मैं भी चल रहा हूं!
छू गई है ज्योति मुझको,
मोम सा मैं गल रहा हूं!

परमात्मा तुम्हें छुए, इतना उसे अवसर दो। इतना कम से कम अपने भीतर द्वार-दरवाजा खुला रखो कि उसकी धूप आ सके, कि उसकी हवा आ सके, कि उसका स्पर्श तुम्हें मिल सके। फिर शेष सब, जो तुम जन्मों-जन्मों चाहे थे, मांगे थे, कल्पना की थी, घटना शुरू हो जाता है। और जिसने उसे जाना, क्षण भर को भी जाना, फिर लौटने का कोई उपाय नहीं है। फिर तो मस्त-मगन हो उसके गीत गाता है!

चांद अगर मिल सका न मुझको,
क्या होगा सारा उजियारा।
रूठ गए यदि तुम ही मुझसे,
फिर जीवन का कौन सहारा।

मैंने तो जीवन नौका की सौंपी है पतवार तुम्हीं को,
पार लगाओ या कि डुबा दो सारा है अधिकार तुम्हीं को।
सागर बीच कह रहे मुझसे मैं तेरे संग अब न चलूंगा, संभव नहीं हमारा मिलना इसीलिए अब मिल न सकूंगा।
माना चाह मधुर सा सपना,
माना मिलन असंभव अपना।
लेकिन तुम्हें छोड़ दूं कैसे,
तुम्हीं भंवर हो तुम्हीं किनारा।

मेरे नयनों के दीपक में ज्योति तुम्हारी ही पलती है, आशाओं की बाती बन कर याद तुम्हारी ही जलती है।
भूल नहीं पाता दो पल भी स्मृतियों की जलन चुभन को, आलिंगन का बंदीगृह ही भाता है अब मेरे मन को। इसमें कुछ अपराध न मेरा,
इसमें कुछ अपराध न तेरा,
मेरे ही अंतर्मन को जब,
भाता कारागार तुम्हारा।

तुम ही तो मेरे गीतों में कलित कल्पना की काया हो,
कंपित सी कोमल भावों में अनुभावों की अनुछाया हो।
तुम्हीं काव्य की अमर प्रेरणा तुम्हीं साधना का साधन हो, तुम्हीं शब्द हो तुम्हीं पंक्ति हो तुम्हीं सरस स्वर आराधन हो।
तुम्हीं सुधामय अमर प्रीति हो,
तुम्हीं मिलन का मधुर गीत हो।
बिना तुम्हारे रह जाएगा,
मेरा भाव सिंधु ही खारा।

चांद अगर मिल सका न मुझको,
क्या होगा सारा उजियारा।
रूठ गए यदि तुम ही मुझसे,
फिर जीवन का कौन सहारा।

और अभी परमात्मा तुमसे रूठा है, क्योंकि तुम परमात्मा से रूठे हो। तुम परमात्मा की तरफ पीठ किए खड़े हो। और इसलिए कितना ही उजाला हो, तुम्हारी जिंदगी अंधेरी रहेगी, अंधेरी ही रहेगी। उस चांद को पाए बिना कोई

उजियाला काम का नहीं है। उस परम धन को पाए बिना सब धन व्यर्थ। उस परम पद को पाए बिना सब पद व्यर्थ।
परमात्मा परम भोग है। उसको पाए बिना सब भोग, भोग के धोखे हैं।
हिम्मत करो! साहस करो! एक दिन ऐसी घड़ी आए कि तुम भी कह सको--
गगन-मंडल में धुनिया बैठा, मेरे सतगुरु कला सिखाई।
आ सकती है घड़ी। तुम्हारा अधिकार है। तुम्हारे भीतर छिपी हुई संभावना है। अभी बीज है माना; मगर बीज कभी भी फूल बन सकते हैं। और जब तक अमृत की वर्षा न हो और तुम्हारे बीज भीतर खिल कर कमल न बन जाएं, तब तक बैठना मत, तब तक चलना है, तब तक चलते ही चलना है। याद रखना--अमी झरत, बिगसत कंवल! अमृत झरे और कमल खिले--यह गंतव्य है।
आज इतना ही।

अमी झरत, बिगसत कंवल
दसवां प्रवचन

यह मशाल जलेगी

पहला प्रश्नः आपने एक प्रवचन में कहा है कि भारत अपने आध्यात्मिक मूल्यों में गिरता जा रहा है। कृपया बताएं कि आगे कोई आशा की किरण नजर आती है?

रामानंद भारती! आध्यात्मिक मूल्य सदा ही वैयक्तिक घटना है, सामूहिक नहीं। नैतिकता सामूहिक है; अध्यात्म वैयक्तिक। कोई समाज नैतिक हो सकता है, क्योंकि नीति बाहर से आरोपित की जा सकती है; लेकिन कोई समाज आध्यात्मिक नहीं होता। व्यक्ति आध्यात्मिक होता है। समाज की तो कोई आत्मा ही नहीं है तो अध्यात्म कैसे होगा? समाज के पास तो केवल व्यवहार है, अंतर्संबंध हैं। अंतर्संबंध नैतिक हो सकते हैं, अनैतिक हो सकते हैं; अच्छे हो सकते हैं, बुरे हो सकते हैं; पाप के हो सकते हैं, पुण्य के हो सकते हैं। अध्यात्म तो अतिक्रमण है। अध्यात्म तो वैसी चैतन्य की दशा है जहां न पाप बचता, न पुण्य; न लोहे की जंजीरें, न सोने की जंजीरें। जहां चित्त ही नहीं हो, वहां द्वंद्व कहां? वहां दुई कहां?
और निश्चित ही वैसा अध्यात्म भारत से खोता जा रहा है। बुद्ध, महावीर, कृष्ण, कबीर, दादू, दरिया, वैसे लोग कम होते जा रहे हैं, वैसी ज्योतियां विरल होती जा रही हैं, बहुत विरली होती जा रही हैं! धर्म के नाम पर पाखंड बहुत है, पांडित्य बहुत है। उसमें कोई कमी नहीं हुई; उसमें बढ़ती हुई है। लेकिन धर्म नहीं है। क्योंकि धर्म के लिए जो मौलिक आधार चाहिए, वे खो गए हैं।
पहली तो बात, देश बहुत गरीब हो, समाज बहुत गरीब हो, तो सारा जीवन, सारी ऊर्जा रोटी-रोजी में ही उलझी समाप्त हो जाती है। गरीब आदमी कब वीणा बजाए? कब बांसुरी बजाए? दीन-हीन, रोटी न जुटा पाए, तो अध्यात्म की उड़ानें कैसे भरे? अध्यात्म तो परम विलास है; वह तो आखिरी भोग है, आत्यंतिक भोग! चूंकि देश गरीब होता चला गया, उस ऊंचाई पर उड़ने की क्षमता लोगों की कम होती चली गई।
मेरे हिसाब में, जितनी समृद्धि हो, उतने ही बुद्धों की संभावना बढ़ जाएगी। इसलिए मैं समृद्धि के विरोध में नहीं हूं; मैं समृद्धि के पक्ष में हूं। मैं चाहता हूं यह देश समृद्ध हो। यह सोने की चिड़िया फिर सोने की चिड़िया हो। यह दरिद्रनारायण की बकवास बंद होनी चाहिए। लक्ष्मीनारायण ही ठीक हैं; उनको दरिद्रनारायण से न बदलो।
बुद्ध पैदा हुए तब देश सच में सोने की चिड़िया था। चौबीस तीर्थंकर जैनों के, सम्राटों के बेटे थे--और राम और कृष्ण भी, और बुद्ध भी। इस देश में जो महाप्रतिभाएं पैदा हुईं, वे सब राजमहलों से आई थीं। अकारण ही नहीं, आकस्मिक ही नहीं। जिसने भोगा है, वही विरक्त होता है। तेन त्यक्तेन भुंजीथा! वही छोड़ पाता है, जिसने जाना है, जीया है, भोगा है। जिसके पास धन ही नहीं है, उससे तुम कहो कि धन छोड़ दो! क्या खाक छोड़ेगा? जो संसार का अनुभव ही नहीं किया है, उससे कहो कि संसार छोड़ दो! कैसे छोड़ेगा?
अनुभव से मुक्ति आती है, अनुभव से विरक्ति आती है। राग का अनुभव वैराग्य के मंदिर में प्रवेश करा देता है। भोग में जितने गहरे उतरोगे, उतने ही तुम्हारे भीतर त्याग की क्षमता सघन होगी।
ये मेरी बातें उलटी लगती हैं, उलटबांसियां मालूम होती हैं। जरा भी उलटी नहीं हैं। इनका गणित बहुत सीधा-साफ है। जिस चीज को भी तुम भोग लेते हो, उसी की व्यर्थता दिखाई पड़ जाती है। जिस चीज को नहीं भोग पाते, उसमें रस बना रहता है, कहीं कोने-कातर में, मन के किसी अंधेरे में वासना दबकी पड़ी रहती है कि कभी अवसर मिल जाए तो भोग लूं। जाना तो नहीं है। हां, बुद्ध कहते हैं कि असार है। मगर तुमने जाना है कि असार है? और जब तक तुमने नहीं जाना कि असार है, तब तक लाख बुद्ध कहते रहें, किस काम का है? बुद्ध की आंख तुम्हारी आंख नहीं बन सकती। मेरी आंख तुम्हारी आंख नहीं बन सकती।

तुम्हारी आंख ही तुम्हारी आंख है, और तुम्हारा अनुभव ही तुम्हारा अनुभव है।
परमात्मा की तरफ जाने के लिए संसार सीढ़ी है। और भारत में आध्यात्मिकता की संभावना कम होती जाती है, क्योंकि भारत रोज-रोज दीन होता जाता है, रोज-रोज दरिद्र होता जाता है। और कारण? कारण हमारी धारणाएं हैं। पहली तो धारणा, हमने मान रखा है कि लोग गरीब और अमीर भाग्य से हैं।
यह बात नितांत मूढ़तापूर्ण है। न कोई अमीर है भाग्य से, न कोई गरीब है भाग्य से। गरीबी-अमीरी सामाजिक व्यवस्था की बात है। गरीबी-अमीरी बुद्धिमत्ता की बात है। गरीबी-अमीरी विज्ञान और टेक्नालॉजी की बात है। क्या तुम सोचते हो कि सब भाग्यशाली अमरीका में ही पैदा होते हैं? अगर तुम्हारे शास्त्र सही हैं तो सब भाग्यशाली अमरीका में पैदा होते हैं। और अब अभागे भारत में पैदा होते हैं। अगर तुम्हारे शास्त्र सही हैं तो भारत में सिर्फ पापी ही पैदा होते हैं, जिन्होंने पहले पाप किए हैं। और अमरीका में वे सब पैदा होते हैं, जिन्होंने पहले पुण्य किए।
तुम्हारे शास्त्र गलत हैं, तुम्हारा गणित गलत है। अमरीका समृद्ध इसलिए नहीं है कि वहां पुण्यवान लोग पैदा हो रहे हैं। अमरीका समृद्ध इसलिए है कि विज्ञान है, तकनीक है, बुद्धि का प्रयोग है। अमरीका समृद्ध होता जा रहा है, रोज-रोज समृद्ध होता जा रहा है। और तुम देखते हो, अमरीका में कितने जोर की लहर है अध्यात्म की! कितनी अभीप्सा है ध्यान की! कितनी आतुरता है अंतर्यात्रा की! हजारों लोग पश्चिम से पूरब की तरफ यात्रा करते हैं, इसी आशा में कि शायद पूरब के पास कुंजियां मिल जाएं। उन्हें पता नहीं, पूरब अपनी कुंजियां खो चुका है। पूरब बहुत दरिद्र है। और इन दरिद्र हाथों में परमात्मा के मंदिर की कुंजियां बहुत मुश्किल हैं।
तो पहली तो बात है कि भारत पुनः समृद्ध होना चाहिए। और समृद्ध होने के लिए जरूरी है कि गांधीवादी जैसे विचारों से भारत का छुटकारा हो। बिना बड़ी टेक्नालॉजी के अब यह देश समृद्ध नहीं हो सकता। अब इसकी संख्या बहुत है। बुद्ध के समय में पूरे देश की संख्या दो करोड़ थी। निश्चित देश समृद्ध रहा होगा--इतनी भूमि और दो करोड़ लोग। भूमि अब भी उतनी है और साठ करोड़ लोग! और यह सिर्फ अब भारत की बात कर रहा हूं, पाकिस्तान को भी जोड़ना चाहिए, बंगलादेश को भी जोड़ना चाहिए, क्योंकि बुद्ध के समय में दो करोड़ में वे लोग भी जुड़े थे। अगर उन दोनों को भी जोड़ लो तो अस्सी करोड़। कहां दो करोड़ लोग और कहां अस्सी करोड़ लोग! और इंच भर जमीन बढ़ी नहीं। हां, जमीन घटी बहुत। घटी इस अर्थों में कि इन ढाई हजार सालों में हमने जमीन का इतना शोषण किया, इतनी फसलें काटीं कि जमीन रोज-रोज रूखी होती चली गई। हमने जमीन का सब कुछ छीन लिया। वापस कुछ भी नहीं दिया। वापस देने की हमें सूझ ही नहीं है, लेते ही चले गए, लेते ही चले गए। जमीन दीन-हीन होती चली गई, उसके साथ हम दीन-हीन होते चले गए। और जितना ही समाज दीन-हीन होता है, उतने ज्यादा बच्चे पैदा करता है।
इस जगत में बड़े अनूठे हिसाब हैं! अमीर घर में बच्चे कम पैदा होते हैं, गरीब घर में बच्चे ज्यादा पैदा होते हैं। क्यों? अमीरों को अक्सर बच्चे गोद लेना पड़ते हैं। कारण हैं। जितनी ही जीवन में सुख-सुविधा होती है, जितना ही जीवन में विश्राम होता है, जितने ही जीवन में भोग के और-और अन्य-अन्य साधन होते हैं, उतनी ही कामवासना की पकड़ कम हो जाती है। जिनके पास और भोग के कोई भी साधन नहीं हैं, उनके पास बस एक ही मनोरंजन है--कामवासना, और कोई मनोरंजन नहीं है। फिल्म जाओ तो पैसे लगते; रेडियो, टेलीविजन, नृत्य, संगीत, सबमें खर्चा है। कामवासना बेखर्च मालूम होती है। तो गरीब आदमी का एक ही मनोरंजन है--कामवासना। तो गरीब आदमी बच्चे पैदा किए चला जाता है। जितने गरीब देश हैं, उतने और गरीब होते चले जाते हैं। जितने अमीर देश हैं, उतने और अमीर होते चले जाते हैं; क्योंकि अमीर देशों में बच्चे पैदा करना बहुत सोच-विचार कर होता है।
कम बच्चे चाहिए, ज्यादा विज्ञान चाहिए--और तुम्हारे चित्त में भौतिकवाद के प्रति जो विरोध है, उसका अंत चाहिए। क्योंकि अध्यात्म केवल भौतिकता के ही आधार पर खड़ा हो सकता है। मंदिर बनाते हो, स्वर्ण के शिखर चढ़ाते हो, मगर नींव में तो अनगढ़ पत्थर ही भरने पड़ते हैं, नींव में तो सोना

नहीं भरना पड़ता। जरूर जीवन के मंदिर में शिखर तो अध्यात्म का होना चाहिए, लेकिन बुनियाद तो भौतिकता की होनी चाहिए।
मेरे हिसाब में, भौतिकवादी और अध्यात्मवादी में शत्रुता नहीं होनी चाहिए, मित्रता होनी चाहिए। हां, भौतिकवाद पर ही रुक मत जाना। अन्यथा ऐसा हुआ कि नींव तो भर ली और मंदिर कभी बनाया नहीं। भौतिकवाद पर रुक मत जाना। भौतिकवाद की बुनियाद बना लो, फिर उस पर अध्यात्म का मंदिर खड़ा करो। भौतिकवाद तो ऐसे है जैसे वीणा बनी है लकड़ी की, तारों से। और अध्यात्मवाद ऐसे है जैसे वीणा पर उठाया गया संगीत। वीणा और संगीत में विरोध तो नहीं है। वीणा भौतिक है, संगीत अभौतिक है। वीणा को पकड़ सकते हो, छू सकते हो; संगीत को न पकड़ सकते, न छू सकते, सिर्फ अनुभव कर सकते हो। उस पर मुट्ठी नहीं बांध सकते।
अध्यात्म जीवन की बुनियाद नहीं बन सकता। और वही भूल भारत ने की। अध्यात्म को जीवन की बुनियाद बनाना चाहा, बिना वीणा के संगीत को लाना चाहा। हम चूकते चले गए।
पश्चिम की भूल है--वीणा तो बन गई है, लेकिन वीणा को बजाना नहीं आता; नींव तो भर गई है, लेकिन मंदिर के बनाने की कला भूल गई है, याद ही नहीं रहा कि नींव क्यों बनाई थी। पश्चिम ने आधी भूल की है, आधी भूल हमने की है। और फिर भी मैं तुमसे कहता हूंः पश्चिम की आधी भूल ही तुम्हारी आधी भूल से ज्यादा बेहतर है। नींव हो तो मंदिर बन सकता है; लेकिन सिर्फ मंदिर की कल्पनाएं हों और नींव न हो तो मंदिर नहीं बन सकता।
भारत को फिर से भौतिकवाद के पाठ सिखाने होंगे। और मैं तुमसे कहता हूं
कि वेद और उपनिषद भौतिकवाद विरोधी नहीं हैं। कहानियां तुम उठा कर देखो। जनक ने एक बहुत बड़े शास्त्रार्थ का आयोजन किया है। एक हजार गौओं, सुंदर गौओं को, उनके सींगों को सोने से मढ़ कर, हीरे-जवाहरात जड़ कर महल के द्वार पर खड़ा किया है कि जो भी शास्त्रार्थ में विजेता होगा, वह इन गौओं को ले जाएगा। ऋषि-मुनि आए हैं, बड़े विद्वान पंडित आए हैं। विवाद चल रहा है। कौन जीतेगा, पता नहीं! दोपहर हो गई, गौएं धूप में खड़ी हैं। तब याज्ञवल्क्य आया--उस समय का एक अदभुत ऋषि। रहा होगा मेरे जैसा आदमी! आया अपने शिष्यों के साथ--रहे होंगे तुम जैसे संन्यासी। महल में प्रवेश करने के पहले अपने शिष्यों से कहा कि सुनो, गौओं को घेर कर आश्रम ले जाओ! गौएं थक गईं, पसीने- पसीने हुई जा रही हैं। रहा विवाद, सो मैं जीत लूंगा।
हजार गौएं, सोने से मढ़े हुए उनके सींग, हीरे-जवाहरात जड़े हुए। याज्ञवल्क्य की हिम्मत देखते हो! यह कोई अभौतिकवादी है? और इसकी हिम्मत देखते हो! और इसका भरोसा देखते हो! यह भरोसा केवल उन्हीं को हो सकता है जिन्होंने जाना है। पंडित विवाद कर रहे थे। वे तो आंखें फाड़े, मुंह फाड़े रह गए--जब उन्होंने देखा कि गौएं तो याज्ञवल्क्य के शिष्य घेर कर ले ही गए! उनकी तो बोलती बंद हो गई। किसी ने खुसफुसाया जनक को कि यह क्या बात है, अभी जीत तो हुई नहीं है! लेकिन याज्ञवल्क्य ने कहा कि जीत होकर रहेगी, मैं आ गया हूं। जीत होती रहेगी, लेकिन गौएं क्यों तड़पें?
और याज्ञवल्क्य जीता। उसकी मौजूदगी जीत थी। उसके वक्तव्य में बल था, क्योंकि अनुभव था। अब जिसके आश्रम में हजार गौएं हों, सोने से मढ़े हुए सींग हों, उसका आश्रम कोई दीन-हीन आश्रम नहीं हो सकता। उसका आश्रम सुंदर रहा होगा, सुरम्य रहा होगा, सुविधापूर्ण रहा होगा।
आश्रम समृद्ध थे। उपनिषद और वेदों में दरिद्रता की कोई प्रशंसा नहीं है, कहीं भी कोई प्रशंसा नहीं है। दरिद्रता पाप है, क्योंकि और सब पाप दरिद्रता से पैदा होते हैं। दरिद्र बेईमान हो जाएगा, दरिद्र चोर हो जाएगा, दरिद्र धोखेबाज हो जाएगा। स्वाभाविक है, होना ही पड़ेगा।
समृद्धि से सारे सदगुण पैदा होते हैं, क्योंकि समृद्धि तुम्हें अवसर देती है कि अब बेईमानी की जरूरत क्या है? जो बेईमानी से मिलता, वह मिला ही हुआ है।
लेकिन एक समय आया इस देश का, जब पश्चिम से लुटेरे आए, सैकड़ों हमलावर आए--हूण आए, तुर्क आए, मुगल आए, फिर अंग्रेज, पुर्तगीज--और यह देश लुटता ही रहा, लुटता ही रहा! और यह देश दीन होता चला गया।

और ध्यान रखना, मनुष्य का मन हर चीज के लिए तर्क खोज लेता है। जब यह देश बहुत दीन हो गया, तो अब अपने अहंकार को कैसे बचाएं? तो हमने दीनता की प्रशंसा शुरू कर दी। हम कहने लगेः अंगूर खट्टे हैं। जिन अंगूरों तक हम पहुंच नहीं सकते, उनको हम खट्टे कहने लगे! और हम कहने लगेः अंगूरों में हमें रस ही नहीं है। जैसे हम दरिद्र हुए, वैसे ही हम दरिद्रता का यशोगान करने लगे। यह अपने अहंकार को समझाना था, लीपा-पोती करनी थी। और अब भी यह लीपा-पोती चल रही है।
इसे तोड़ना होगा। यह देश समृद्ध हो सकता है, इस देश की भूमि फिर सोना उगल सकती है। मगर तुम्हारी दृष्टि बदले तो। तुम्हारे भीतर वैज्ञानिक सूझ-बूझ पैदा हो तो। कोई कारण नहीं है दरिद्र रहने का। और एक बार तुम समृद्ध हो जाओ तो तुम्हारे भीतर भी आकाश को छूने की आकांक्षा बलवती होने लगेगी। फिर करोगे क्या? जब धन होता, पद होता, प्रतिष्ठा होती, सब होता है, फिर तुम करोगे क्या? फिर प्रश्न जीवन के--आत्यंतिक प्रश्न उठने शुरू होते हैं--मैं कौन हूं? ये भरे पेट ही उठ सकते हैं। भूखे भजन न होई गोपाला। यह भजन, यह कीर्तन, यह गीत, यह आनंद, यह उत्सव भरे पेट ही हो सकता है। और परमात्मा ने सब दिया है। अगर वंचित हो तो तुम अपने कारण से वंचित हो। अगर वंचित हो तो तुम्हारी गलत धारणाओं के कारण तुम वंचित हो।
अमरीका की कुल उम्र तीन सौ साल है। और तीन सौ साल की उम्र में आकाश छू लिया! सोने के ढेर लगा दिए! और यह देश कम से कम दस हजार साल से जी रहा है, और हम रोज दीन होते गए! रोज दरिद्र होते चले गए! यहां तक दरिद्र हो गए कि अपनी दरिद्रता को हमें सुंदर वस्त्र पहनाने पड़े--दरिद्रनारायण! हमें दरिद्रता के गुणगान गाने पड़े। हमने दरिद्रता को अध्यात्म बनाना शुरू कर दिया। जर्मनी का एक विचारक, काउंट कैसरलिंग, जब भारत से वापस लौटा तो उसने भारत की यात्रा की अपनी डायरी लिखी। उस डायरी में उसने जगह-जगह एक बात लिखी है जो बड़ी हैरानी की है। उसने लिखाः भारत जाकर मुझे पता चला कि दरिद्र होने में अध्यात्म है। भारत जाकर मुझे पता चला कि बीमार, रुग्ण, दीन-हीन होने में अध्यात्म है। भारत जाकर मुझे पता चला कि उदास, मुर्दा होने में अध्यात्म है।
तुमसे मैं कहना चाहता हूंः ऐसा चलता रहा तो कोई आशा की किरण नहीं है, रामानंद! आशा की एक किरण है--सिर्फ एक किरण--कि यह देश समृद्ध होने की अभीप्सा से भरे। फिर उस अभीप्सा से अपने आप अध्यात्म का जन्म होगा।

हवा में इन दिनों जहरीला सरूर है।
हर एक सर उठाए है
गोवर्धन परेशानियों के
हर एक अधमरा है
अनिश्चयों और बेहालियों से
हर एक है हर एक से नाराज
पर टहलता है होकर बगलगीर
रिश्ता आदमी का आदमी से
चकनाचूर है।
हवा में इन दिनों जहरीला सरूर है।

कोई बात है कि आदमी
सब सह कर भी बच रहता है
आंसुओं में हंस सकता है,
दुखों में भी नच सकता है
दुश्मनी के दायरों, दौरों में वह चीते की तरह है चौकन्ना अपनपे की हद पर जिसे
मर जाना मंजूर है।
हवा में इन दिनों जहरीला सरूर है।

हवा में बहुत जहर छाया हुआ है। प्रेम की जगह घृणा के बीज हमने बोए हैं--हिंदू के, मुसलमान के, ईसाई के, जैन के... ! खंड-खंड हो गए हैं। अध्यात्म अखंड हवा में पैदा होता है। हमने भाईचारा तक छोड़ दिया है, मैत्री तक भूल गए हैं, प्रार्थना कैसे पैदा होगी? हम प्रेम के दुश्मन हो गए हैं, प्रार्थना कैसे पैदा होगी? और मैं अगर प्रेम की बात करता हूं तो सारा देश गालियां देने को तैयार है।
प्रेम न करोगे तो तुम कभी प्रार्थना भी न कर सकोगे। क्योंकि यह प्रेम
का ही इत्र है प्रार्थना। पत्नी को किया प्रेम, पति को किया प्रेम, मित्र को किया, बेटे को, मां को, भाई को, पिता को, बंधु-बांधवों को, और सब जगह पाया कि प्रेम बड़ा है और प्रेम का पात्र छोटा पड़ जाता है। तुम उंडेलते हो, पात्र छोटा पड़ जाता है। पूरा तुम्हें झेल नहीं पाता। ऐसे अनेक-अनेक अनुभव होंगे, तब एक दिन तुम उस परम पात्र को खोजोगे--परमात्मा को--जिसमें तुम अपने को उंडेल दो, तुम छोटे पड़ जाओ, पात्र छोटा न पड़े, कि तुम पूरे के पूरे चुक जाओ। तुम सागर हो और छोटी-छोटी गागरों में अपने को उंडेल रहे हो; तृप्ति नहीं मिलती। कैसे मिलेगी? सागर को उंडेलना हो तो आकाश चाहिए। मगर सागर आकाश तक आए, इसके पहले बहुत गागरों का अनुभव अनिवार्य है।
प्रेम करो! जीवन की निसर्गता से विरोध न करो, जीवन का निषेध न करो। जीवन का अंगीकार करो, अहोभाव से अंगीकार करो। क्योंकि उसी अंगीकार से फिर एक दिन तुम परमात्मा को भी अंगीकार कर सकोगे। परमात्मा यहीं छिपा है-- इन्हीं वृक्षों में, इन्हीं लोगों में, इन्हीं पहाड़ों, इन्हीं पर्वतों में। तुम इस अस्तित्व को प्रेम करना सीखो। तुम्हारा तथाकथित धर्म तुम्हें अस्तित्व को घृणा करना सिखाता है। बाहर जो है निसर्ग, उसको भी घृणा करना सिखाता है और तुम्हारे भीतर जो है निसर्ग, उसे भी घृणा करना सिखाता है। निसर्ग को प्रेम करो, क्योंकि निसर्ग परमात्मा का घूंघट है। निसर्ग को प्रेम करो तो घूंघट उठा सकोगे।
आशा की किरण तो निश्चित है। आशा की किरण तो कभी नष्ट नहीं होती। रात कितनी ही अमावस की आ गई हो, सुबह तो होगी। सुबह तो होकर रहेगी। अमावस की रात कितनी ही लंबी हो, और कितना ही यह देश गलत धारणाओं में डूब गया हो, लेकिन फिर भी कुछ लोग हैं जो सोच रहे, विचार रहे, ध्यान कर रहे हैं। वे ही थोड़े से लोग तो धीरे-धीरे मेरे पास इकट्ठे हुए जा रहे हैं।

रोटी का मारा
यह देश
अभी कमल को
सही पहचानता है।

माना भूखा है, माना दीन-हीन है; मगर कुछ आंखें अभी भी आकाश की तरफ उठती हैं। कीचड़ बहुत है, मगर कमल की पहचान बिल्कुल खो गई हो, ऐसा भी नहीं है। लाख में किसी एकाध को अभी भी कमल पहचान में आ जाता है, प्रत्यभिज्ञा हो जाती है। नहीं तो तुम यहां कैसे होते? जितनी गालियां मुझे पड़ रही हैं, जितना विरोध, जितनी अफवाहें, उन सबके बावजूद भी तुम यहां हो। जरूर तुम कमल को कुछ पहचानते हो। लाख दुनिया कुछ कहे, सब लोकलाज छोड़ कर भी तुम मेरे साथ होने को तैयार हो। आशा की किरण है।

रोटी का मारा
यह देश
अभी कमल को
सही पहचानता है।
तल के पंक तक फैली
जल की गहराई से
उपजे सौंदर्य को
भूख के आगे झुके बिना
--धुर अपना मानता है।

रूखी रोटी पर तह-ब-तह
ताजा मक्खन लगा कर
कच्ची बुद्धिवाले कुछ लोगों के हाथ में थमा कर
कृष्ण-कृष्ण कहते हुए
जो उनका कमल
छीन लेना चाहते हैं
उनकी नियत को
भलीभांति जानता है।

भोले का भक्त है
फक्कड़ है
पक्का पियक्कड़ है
बांध कर अंगौछा
यहीं गंगा के घाट पर
दोनों जून छानता है;
किंतु मौका पड़ने पर
हर हर महादेव कहते हुए
प्रलयंकर त्रिशूल भी तानता है।

रोटी का मारा
यह देश
अभी कमल को
ठीक-ठीक पहचानता है।

पहचान बिल्कुल मर नहीं गई है। खो गई है, बहुत खो गई है। कभी-कभी कोई आदमी मिलता है--कोई आदमी, जिससे बात करो, जो समझे। मगर अभी आदमी मिल जाते हैं। भीड़ अंधी हो गई है, मगर सभी अंधे नहीं हो गए हैं। लाख, दो लाख में एकाध आंख वाला भी है, कान वाला भी है, हृदय वाला भी है। उसी से आशा है। अभी भी कुछ लोग तैयार हैं कि परमात्मा की मधुशाला कहीं हो तो द्वार पर दस्तक दें कि खोलो द्वार। अभी भी कुछ लोग तैयार हैं कि कहीं बुद्धत्व की संभावना हो तो हम उससे जुड़ जाएं, चाहे कोई भी कीमत चुकानी पड़े। अभी भी कुछ लोग तैयार हैं कि कहीं पियक्कड़ों की जमात बैठे तो हम भी पीएं, हम भी डूबें; चाहे दांव कुछ भी लगाना पड़े, चाहे दांव जीवन ही क्यों न लग जाए।
इसलिए आशा की किरण है, रामानंद! आशा की किरण नहीं खो गई है। निराश होने
का कोई कारण नहीं है। सच तो यह है, जितनी रात अंधेरी हो जाती है, उतनी ही सुबह करीब होती है। रात बहुत अंधेरी हो रही है, इसलिए समझो कि सुबह बहुत करीब होगी। लोग बहुत क्षुद्र बातों के अंधेरे में खो रहे हैं, इसलिए समझो कि अगर सत्य प्रकट हुआ, प्रकट किया गया, तो पहचानने वाले भी जुड़ जाएंगे, सत्य के दीवाने भी इकट्ठे हो जाएंगे। और सत्य संक्रामक होता है। एक को लग जाए, एक को छू जाए, तो फैलता चला जाता है। एक जले दीये से अनंत-अनंत दीये जल सकते हैं।
आशा है, बहुत आशा है। निराश होने का कोई कारण नहीं है। उसी आशा के भरोसे तो मैं काम में लगा हूं। जानता हूं कि भीड़ नहीं पहचान पाएगी, लेकिन यह भी जानता हूं कि उस भीड़ में कुछ अभिजात हृदय भी हैं, उस भीड़ में कुछ प्यासे हृदय भी हैं--जो तड़प रहे हैं और जिन्हें कहीं जल-स्रोत दिखाई नहीं पड़ता; जहां जाते हैं, पाखंड है; जहां जाते हैं, व्यर्थ की बकवास है; जहां जाते हैं, शास्त्रों का तोता-रटंत व्यवहार है, पुनरुक्ति है। वैसे कुछ लोग हैं। थोड़े से वैसे ही लोग इकट्ठे होने लगें कि संघ निर्मित हो जाए। संघ निर्मित होना शुरू हो गया है। यह मशाल जलेगी। यह मशाल इस अंधेरे को तोड़ सकती है। सब तुम पर निर्भर है!

दूसरा प्रश्नः आज के प्रवचन में अणुव्रत की आपने बात की। मेरा जन्म उसी परिवार से है जो आचार्य तुलसी के अनुयायी हैं। बचपन से ही आचार्य

तुलसी के उपदेशों ने कभी हृदय को नहीं छुआ। अभी उन्होंने अपना उत्तराधिकारी आचार्य मुनि नथमल को आचार्य महाप्राज्ञ नाम देकर बनाया है। वे ठीक आपकी ही स्टाइल में प्रवचन देते हैं, मगर उन्होंने भी कभी हृदय को नहीं छुआ। और आपके प्रथम प्रवचन को सुनते ही आपके चरणों में समर्पित होने का भाव पूरा हो गया और समर्पण कर दिया।
यह किस जन्म की प्यास थी जो आपका इंतजार कर रही थी? बताने की कृपा करें।

कृष्ण सत्यार्थी! आचार्य तुलसी को मैं भलीभांति जानता हूं। दो-तीन बार मिलना हुआ है। नितांत थोथापन है, और कुछ भी नहीं। कैसे हृदय को छुएंगे तुम्हारे? हृदय हो तो हृदय को छुआ जा सकता है। बस बातचीत है, शास्त्रों की व्याख्या है, विश्लेषण है। वह भी मौलिक नहीं; वह भी उधार, उच्छिष्ट। आचार्य तुलसी का निमंत्रण था मुझे, तो गया मिलने। कहाः एकांत में मिलेंगे। बहुत लोग उत्सुक थे कि दोनों की बात सुनें। मगर उन्होंने कहा कि नहीं, बस सिर्फ एक मेरे शिष्य मुनि नथमल रहेंगे, और कोई नहीं रहेगा। सब लोगों को विदा कर दिया गया। मैंने कहा भी कि हर्ज क्या है? और लोगों को भी रहने दें। वे भी सुनें, चुपचाप बैठे रहें। क्यों उन्हें वंचित करते हैं? बड़ी आशा से आए हैं। कोई सौ, डेढ़ सौ लोगों की भीड़ थी। मगर वे राजी नहीं हुए। मैं थोड़ा हैरान हुआ कि उन्हें क्या अड़चन है!
लेकिन पीछे पता चला कि अड़चन थी। लोग जब विदा हो गए तब उन्होंने पूछाः ध्यान के संबंध में समझाएं, ध्यान कैसे करूं? तब मेरी समझ में आया, दो सौ, डेढ़ सौ लोगों के सामने पूछना कि मैं ध्यान कैसे करूं, मुश्किल बात होती। उसका तो अर्थ होता कि अभी ध्यान हुआ ही नहीं। सात सौ जैन साधुओं के आचार्य हैं वे और हजारों तेरापंथियों के गुरु हैं। अभी गुरु को, आचार्य को ध्यान नहीं हुआ! यह तो खबर आग की तरह फैल जाती। इसे एकांत में ही पूछना जरूरी था। मैंने कहाः ध्यान नहीं हुआ आपको! तो फिर आप अब तक करते क्या रहे हैं? फिर लोगों को क्या समझा रहे हैं? जब आपको ही ध्यान नहीं हुआ तो लोगों को क्या समझाएंगे? लोगों को क्या बांटेंगे?
उन्होंने कहाः इसीलिए तो आपको निमंत्रित किया कि समझ लूं कि ध्यान कैसे करना है।
लेकिन वह बात भी झूठ थी। वह बात भी राजनीतिज्ञ की बात थी। आचार्य तुलसी में मुझे शुद्ध राजनीति दिखाई पड़ी। सीखने के लिए नहीं उन्होंने मुझे बुलाया था। प्रयोजन कुछ और था, वह पीछे साफ हुआ। वे मुझसे प्रश्न पूछने लगे ध्यान के संबंध में, मैं ध्यान के संबंध में उन्हें समझाने लगा और मुनि नथमल नोट लेने लगे।
मैंने बीच में कहा भी कि नोट लेने की कोई जरूरत नहीं है। आपको भी अवसर मिला है, आप भी चुपचाप बैठ कर समझ लें। मैं मौजूद हूं तब समझ लें। नोट लेने में ही समय खराब मत करें।
नहीं, लेकिन आचार्य तुलसी ने कहाः उन्हें नोट लेने दें, ताकि हमारे पीछे काम आ सकें।
समझ की कमी हो तो ही नोट की जरूरत है। नहीं तो नोट क्या लेना है! लेकिन प्रयोजन और ही था। तेरापंथियों का सम्मेलन था, कोई बीस हजार लोग इकट्ठे थे। दोपहर मुझे तेरापंथियों के सम्मेलन में बोलना था। मुनि नथमल ने सारे नोट ले लिए जो घंटे डेढ़ घंटे मेरी बात आचार्य तुलसी से हुई।
अचानक, कार्यक्रम का यह हिस्सा नहीं था; मुझे बोलना था, मेरे बोलने की घोषणा करने के पहले आचार्य तुलसी ने कहा कि मुझसे बोलने के पहले मुनि नथमल बोलेंगे। तब मुझे पता चला कि नोट्स लेने का प्रयोजन क्या था। मुनि नथमल ने शब्दशः, जो मेरी डेढ़ घंटे बात हुई थी, वह दोहरायी, शब्दशः!
न उन्हें ध्यान का पता है, न उनके गुरु को ध्यान का पता है--और ध्यान क्या है, यह समझाया! तब प्रयोजन साफ हुआ। प्रयोजन यह था कि मैं ध्यान के संबंध में लोगों को समझाऊंगा, उसके पहले मुनि नथमल बोलें, ताकि लोगों को जाहिर हो जाए कि ध्यान तो हम भी जानते हैं। कोई ऐसा नहीं कि हमारे मुनि ध्यान नहीं जानते।

लेकिन मुझे तो आप जानते हैं कि मुझे विरोधाभास में कोई अड़चन नहीं है। मैंने खंडन किया। दोनों चौंके। दोनों आंखें फाड़-फाड़ कर देखने लगे कि बात क्या हुई! जो मैं बोला था डेढ़ घंटे और जिसको मुनि नथमल ने दोहराया था तोते की तरह, उसका मैंने शब्दशः खंडन किया। एक-एक इंच खंडन किया। रात जब आचार्य तुलसी से फिर मिलना हुआ, उन्होंने कहा कि आप हैरान करते हैं! आपने ही तो ये बातें कही थीं।
मैंने कहाः अब आप समझे? मैंने कहा था लोगों को रहने दो। अगर लोग रहते
तो मैं खंडन न कर पाता। आप राजनीति खेले। मैं कोई राजनीतिज्ञ नहीं हूं, लेकिन राजनीतिज्ञों के खेल पहचान सकता हूं।
वे नोट्स किसलिए लिए गए थे, यह भी जाहिर हो गया। अचानक बिना पूर्व-कार्यक्रम के मुनि नथमल को क्यों मुझसे पहले बुलवाया गया, वह भी जाहिर हो गया। लेकिन एक अड़चन हुई। आखिर जब तुम किसी और की बात दोहराओ तो उसमें प्राण नहीं होते, उसमें बल नहीं होता। ओंठों पर ही होती है; उसमें तुम्हारे हृदय की धड़कन नहीं होती। उसमें तुम्हारे खून का प्रवाह नहीं होता। उसमें तुम्हारे रक्त की गर्मी नहीं होती।
तो मुनि नथमल ने दोहरा दिया, जैसे तोते दोहराते हैं--राम-राम, तोता- राम, सीता-राम! अब तोते को क्या लेना सीता से! क्या लेना राम से! उसे पता भी नहीं कि कौन सीता, कौन राम! मगर तोते को सिखा दिया तो तोता दोहराता है। अब तोते को तुम दोहराते सुन कर राम-राम सोचते हो कि तुम्हें एकदम से राम की याद आ जाएगी? कि तुम झुक कर तोते को प्रणाम करोगे? तो दोहराया तो उन्होंने और सोचा था इस आशा में कि जिस तरह लोग मेरी बात से आंदोलित होते हैं, प्रभावित होते हैं, झंकृत होते हैं--ऐसे ही झंकृत हो जाएंगे। कुछ झंकार न हुई। तो उसके लिए भी बहाना खोजा कि झंकार न होने का कारण यह है कि इतने लोग और मुनि नथमल बिना माइक के बोले। तब तक आचार्य तुलसी और उनके मुनि माइक से नहीं बोलते थे। क्योंकि जैन शास्त्रों में, माइक से बोलना चाहिए, इसका कोई उल्लेख नहीं है। तो उस दिन उन्होंने यह बहाना निकाला कि लोग इसलिए प्रभावित नहीं हुए। यद्यपि मुनि नथमल ने पूरी ताकत लगाई जितनी लगा सकते थे, मगर लोगों तक आवाज नहीं पहुंची। उसी दिन तेरापंथ में माइक से बोलने का मुनियों ने काम शुरू किया, कि शायद माइक की कमी थी।
आत्मा की कमी थी, माइक की कमी नहीं थी। माइक से भी तोते को बुलवाओगे तो माना कि बहुत लोगों तक शोरगुल पहुंचाएगा, ज्यादा लोगों तक खबर पहुंचेगी-- सीता-राम! सीता-राम! मगर तोता तोता है। तोते पर भरोसा नहीं किया जा सकता। और तोते की आंखों में दीये नहीं जलते। तोता बोलता तो है, मगर ऐसा नहीं लगता कि तोता समझता है।
आचार्य तुलसी ने, तुम कह रहे हो कि अब उन्हीं मुनि नथमल को अपना उत्तराधिकारी बना लिया है। तोते तोतों को खोज लेते हैं। यह बिल्कुल स्वाभाविक है। तुम उस घर में पैदा हुए, उस परिवार में पैदा हुए, फिर भी तुम्हें वे प्रभावित न कर पाए। कारण सीधा-साफ है। तुममें थोड़ी सी बुद्धि है, इसलिए। तुममें थोड़ी सी चमक है, तुममें थोड़ा विचार है, तुममें थोड़ी धार है--इसलिए। तुम अगर बिल्कुल बोथले होते तो तुम्हें प्रभावित करते। लेकिन तुम्हारे पास आंखें हैं देखने वाली और इसलिए प्रभावित नहीं कर पाए। तुम समझ सकते हो इतनी बात कि हृदय से आती है या सिर्फ ओंठों से। तुम इतनी बात पहचान सकते हो कि यह गीत अपना है या पराया या बासा।
तुम कहते हो कि वे आपकी ही स्टाइल में प्रवचन देते हैं।
वह भी सीखा हुआ है। यह जान कर तुम हैरान होओगे कि जो सर्वाधिक मेरे विरोध में हैं, वे सर्वाधिक मेरी किताबें पढ़ते हैं। जैन मुनियों के जितने आर्डर आश्रम को उपलब्ध होते हैं किताबों के लिए, उतने किसी और के नहीं। ऐसा कोई जैन मुनि कि जैन साध्वी नहीं जो मेरी किताबें न पढ़ती हो। लेकिन उन किताबों को पढ़ कर तुम यह मत सोचना कि वे कुछ समझते हैं, या उनके जीवन में कोई रूपांतरित होना है, या उनके जीवन में कोई क्रांति की अभीप्सा है। नहीं, उन किताबों को पढ़ते हैं ताकि प्रवचन दे सकें, ताकि शैली पकड़ में आ जाए। क्योंकि उन सबको ख्याल है कि मेरी शैली में कुछ बात होगी, इससे लोग प्रभावित हैं।

शैली में कुछ भी नहीं है। मेरे पास कोई शैली है? मेरे बोलने में कोई ढंग है? मेरे जैसा बेढंगा बोलने वाला देखा? मेरा बोलना वैसे ही है जैसे मैं कुछ दिन पहले तुम्हें उल्लेख किया था कि एक कवि ने एक जाट को देखा कि सिर पर खाट लिए जा रहा है। कवि बोलाः जाट रे जाट, तेरे सिर पर खाट!
और जाट भी कैसे चुप रह जाए! जाट ने कहाः कवि रे कवि, तेरी ऐसी की तैसी।
कवि ने कहाः काफिया नहीं बैठता, तुकबंदी नहीं बैठती।
जाट ने कहा कि तुकबंदी बैठे कि न बैठे, मुझे जो कहना था सो कह दिया।
ऐसा मेरे कहने का ढंग है। यह कोई शैली है? शैली के कारण नहीं तुम मुझसे जुड़ गए हो। जुड़ने के कारण आंतरिक हैं, बाह्य नहीं हैं। मेरे पास न तो शास्त्रीय शब्द हैं, न शास्त्रीय सिद्धांत हैं। न मैं संस्कृत जानता, न प्राकृत, न पाली, न अरबी, न लैटिन, न ग्रीक! लेकिन अपने को जानता हूं। परमात्मा को जानता हूं। और उस जानने में सब जान लिया गया।
एक जगह मैं बोल रहा था। मैंने कहा कि महावीर ने ऐसा कहा है। एक जैन पंडित खड़े हो गए। काशी की बात है। उन्होंने कहा कि ऐसा नहीं कहा है। आप सुधार करें।
मैंने कहाः मैं सुधार करने में भरोसा नहीं करता। अगर सुधार ही करना
हो तो आप अपनी किताब में जिसमें महावीर का वचन हो, वहां सुधार कर लेना।
वे तो एकदम भौचक्के खड़े रह गए। उन्होंने कहाः आप क्या कहते हैं? महावीर की वाणी में सुधार कर लेना!
मैंने कहा कि मैं अपने को जान कर बोल रहा हूं। अगर महावीर ने नहीं कहा
है, तो कहना चाहिए था, जोड़ दो। मैं गवाही हूं कि कहना ही चाहिए था।
नागपुर में था। एक प्रवचन में मैंने बुद्ध के जीवन की एक कहानी का उल्लेख किया। बौद्ध भिक्षु, एक प्रसिद्ध बौद्ध भिक्षु, मुझे मिलने आए सांझ। उन्होंने कहाः कहानी तो प्यारी थी, मगर मैं सब शास्त्र पढ़ गया, कहीं नहीं है। आप किस प्रमाण पर, किस आधार पर यह कहानी कहे?
मैंने कहाः कहानी खुद अपने में प्रमाण लिए है, स्वतः प्रमाण्य है। उन्होंने कहाः स्वतः प्रमाण्य?
मैंने कहाः नहीं घटी तो घटनी चाहिए थी।
कहानी छोटी सी थी कि बुद्ध एक गांव से गुजर रहे हैं। अभी बुद्धत्व उपलब्ध नहीं हुआ, उसके पहले की बात है। बस दो-चार दिन पहले की बात है। करीब ही करीब है सुबह। शायद भोर के पहले-पहले पक्षी जाग भी गए, आखिरी तारे डूबने भी लगे। प्राची लाल हो उठी है, बस सूरज निकला-निकला। ऐसे बस दो-चार दिन बचे हैं। और बुद्ध एक गांव से गुजर रहे हैं। आनंद साथ है। आनंद ने कोई प्रश्न पूछा है, उसका उत्तर दे रहे हैं। तभी एक मक्खी उनके सिर पर आ बैठी। तो उस मक्खी को हाथ से उड़ा दिया। दो कदम चले; फिर ठहर गए। फिर से हाथ माथे की तरफ ले गए। अब वहां कोई मक्खी नहीं है, वह तो कब की उड़ गई। फिर से मक्खी उड़ाई, जो है ही नहीं!
आनंद ने पूछाः आप क्या कर रहे हैं? पहली बार तो मक्खी थी, इस बार मैं कोई मक्खी नहीं देखता। आप किसको उड़ा रहे हैं?
बुद्ध ने कहाः पहली बार मैंने यंत्रवत उड़ा दी, वह भूल हो गई। मूर्च्छित उड़ा दी। तुमसे बात करता रहा और मक्खी उड़ा दी। ध्यानपूर्वक नहीं। हाथ की चोट भी लग सकती थी मक्खी को। मक्खी मर भी सकती थी। यह तो जागरूक चित्त का व्यवहार नहीं है। चूक हो गई। अब इस तरह उड़ा रहा हूं जिस तरह पहले उड़ानी चाहिए थी। अब ध्यानपूर्वक उड़ा रहा हूं। हालांकि मक्खी नहीं है, लेकिन अभ्यास तो हो जाए; फिर कभी मक्खी बैठे तो ऐसी भूल न हो। तो अब मक्खी नहीं है, लेकिन उड़ा रहा हूं ध्यानपूर्वक। मेरा पूरा हाथ ध्यान से भरा हुआ है। अब यंत्रवत नहीं उड़ा रहा हूं।
बौद्ध भिक्षु ने कहाः कहानी तो बड़ी प्यारी लगी, मगर लिखी कहां है?
मैंने कहाः लिखी हो या न लिखी हो। लिखा-लिखी की बात ही कहां है! लिख लो! और जल्दी ही मेरी किसी किताब में लिख जाएगी, फिर पढ़ लेना, अगर लिखे का ही भरोसा है।
नहीं, उन्होंने कहाः मेरा मतलब यह नहीं। मेरा मतलब यह कि ऐतिहासिक है
या नहीं?

मैंने कहाः इतिहास की अगर चिंता करने चलो, तब तो बुद्ध भी ऐतिहासिक हैं या नहीं, तय करना मुश्किल हो जाएगा। कृष्ण ऐतिहासिक हैं या नहीं, तय करना मुश्किल हो जाएगा। हुए भी इस तरह के लोग कभी या नहीं हुए, यह तय करना मुश्किल हो जाएगा। अगर इतिहास की ही चिंता करते हो तब तो बुद्ध भी सिद्ध नहीं होंगे।
और फिर, ये अंतर की घटनाएं इतिहास की रेत पर चरण-चिह्न नहीं छोड़तीं।
ये अंतर की घटनाएं तो जैसा दरिया कहते हैं--आकाश में जैसे पक्षी उड़े और पैरों के चिह्न न छूटें, कि पानी में मीन चले और पीछे कोई निशान न छूटे! इतिहास तो क्षुद्र की गणना करता है। इतिहास का कोई बड़ा मूल्य नहीं है। इतिहास तो व्यर्थ का हिसाब-किताब रखता है। मैं तो जो कह रहा हूं, वह इतिहास नहीं है, पुराण है। और पुराण समाप्त नहीं होता। पुराण एक प्रक्रिया है। बुद्ध आते रहेंगे और बुद्धों के जीवन में जोड़ते रहेंगे--नई कथाएं, नये बोध, नये प्रसंग, नये आयाम। हर बुद्ध अपने अतीत बुद्धों के जीवन में नये रंग डाल जाता है, नये जीवन डाल जाता है। फिर-फिर पुनः-पुनः पुनरुज्जीवित कर जाता है।
तुम्हारे पास अगर हृदय है, तो कोई उपाय ही नहीं है, तुम मेरे हृदय के साथ धड़कोगे। और वही हुआ, कृष्ण सत्यार्थी!
धर्म का कोई संबंध जन्म से नहीं है। काश, धर्म इतना आसान होता कि जन्म
से ही धर्म मिल जाता, तो सभी दुनिया में लोग धार्मिक होते--कोई ईसाई, कोई हिंदू, कोई मुसलमान! लेकिन जन्म से धर्म का कोई संबंध नहीं है। जन्म से धर्म का संबंध जोड़ना वैसा ही मूढ़तापूर्ण है, जैसे कोई किसी कांग्रेसी के घर में पैदा हो और कहे कि मैं कांग्रेसी हूं, क्योंकि मैं कांग्रेसी घर में पैदा हुआ। तो तुम भी हंसोगे कि पागल हो गए हो! कम्युनिस्ट के घर में पैदा हुए तो कम्युनिस्ट हो गए!
पैदा होने से विचार का कोई संबंध नहीं है। धर्म का भी कोई संबंध नहीं है। धर्म तो और गहरी बात है, निर्विचार की बात है। विचार तक का संबंध नहीं जुड़ता जन्म से तो निर्विचार का तो कैसे जुड़ेगा?
लेकिन तुम सौभाग्यशाली हो कि तुम लीक पर न चले। अन्यथा लोग लीक पर चलते हैं। लीक में सुविधा है। जहां सभी भीड़ चल रही है, जिस भीड़ में तुम पैदा हुए हो, अगर तेरापंथियों की भीड़ है तो चले तुम भी तेरापंथियों की भीड़ में, मुसलमानों की तो मुसलमानों की, हिंदुओं की तो हिंदुओं की--चले भीड़ में! भीड़ में सुविधा है, पिता भी जा रहे, मां भी जा रही, भाई भी जा रहे, मित्र भी जा रहे, परिवार, पड़ोस, सब जा रहा। अकेले तुम अलग-अलग चलो तो चिंता पैदा होती है, संशय जगते हैं, दुविधाएं उठती हैं--कि पता नहीं मैं ठीक कर रहा हूं कि गलत! भीड़ में यह रहता है, जब इतने लोग कर रहे हैं तो ठीक ही कर रहे होंगे। और मजा यह है कि उनमें से हरेक यही सोच रहा है कि जब इतने लोग कर रहे हैं तो ठीक ही कर रहे होंगे।
भीड़ में एक तरह की सुरक्षा है। लेकिन भीड़ तुम्हें भेड़ बना देती है। और
जो भेड़ बन गया, वह क्या परमात्मा को पाएगा! क्या सत्य को पाएगा! उसे पाने के लिए तो सिंह होना पड़ता है, सिंहनाद करना होता है। उसके लिए तो चलना पड़ता है अपना ही रास्ता बना कर।
हां, कभी-कभी जब तुम्हें किसी सिंह की दहाड़ सुनाई पड़ जाएगी, तो तुम्हारे भीतर सोया हुआ सिंह जग जाएगा। तोतों की बातें सुन कर ज्यादा से ज्यादा तुम तोते हो सकते हो, बस और कुछ नहीं हो सकता। सिंह की दहाड़ सुन कर शायद तुम्हारी छाती में सोई हुई, सोई जन्मों-जन्मों से जो प्रतिभा है, अंकुरित हो उठे।
तुमने उस बूढ़े सिंह की कहानी तो सुनी न, जिसने एक दिन देखा कि एक जवान सिंह भेड़ों के बीच घसर-पसर भागा जा रहा है! वह बड़ा हैरान हुआ, ऐसा चमत्कार कभी देखा न था! और भेड़ें उससे परेशान भी नहीं हैं, उसी के साथ भाग रही हैं। इस ब.ूढे सिंह को देख कर भाग रही हैं और जवान सिंह उन्हीं के बीच में भागा जा रहा है! बूढ़े से रहा न गया। दौड़ा, बामुश्किल पकड़ पाया। पकड़ा सिंह को। जवान सिंह रिरियाए, मिमियाए। क्योंकि संयोग से वह भेड़ों के बीच ही बड़ा हुआ था। उसकी मां एक छलांग लगा रही थी एक टीले से दूसरे टीले पर और बीच में ही बच्चे का जन्म हो गया। मां तो छलांग लगा कर चली गई, बच्चा गिर पड़ा नीचे

भेड़ों के एक झुंड में। उसी में बड़ा हुआ, घास-पात चरा। उन्हीं की भाषा सीखी, रिरियाना-मिमियाना सीखा, डरना-घबड़ाना सीखा। उसे याद भी आए तो कैसे आए कि मैं सिंह हूं! चेताए तो कौन चेताए! सारी भेड़ें भागती थीं सिंह को देख कर तो वह भी भागता था--अपने वालों के साथ। लेकिन इस बूढ़े सिंह ने उसे पकड़ा। वह गिड़गिड़ाए, पसीना-पसीना! जवान सिंह पसीना-पसीना! बूढ़ा कहे कि तू शांत तो हो। मगर वह कहेः मुझे छोड़ो! मुझे जाने दो! मेरे लोग जा रहे हैं! वे सब तेरापंथी चले! और तुम मुझे रोक रहे हो। मुझे जान बख्शो।
मगर बूढ़ा नहीं माना। उसे घसीट कर तालाब के किनारे ले गया और कहा कि झांक तालाब में! और देख मेरा चेहरा और तेरा चेहरा!
दोनों ने झांका, बस एक क्षण में क्रांति घट गई। एक दहाड़ उठी। उस जवान सिंह की छाती में सोई हुई गर्जना उठी। पहाड़ कंप गए, घाटियां गूंज उठीं। कुछ कहा नहीं, बस चेहरा दिखा दिया। जवान सिंह को दिखाई पड़ गया कि अरे, मैं भी भेड़ों में जी रहा था! मैं तो ऐसा ही हूं जैसे तुम! मैं तो वैसा ही हूं जैसा यह सिंह! बस इतना बोध!
सदगुरु का इतना ही काम है कि पकड़ ले तुम्हें। तुम चाहे कितने ही मिमियाओ-रिरियाओ, भागो, वह पकड़ कर तुम्हें ले ही जाए किसी दर्पण के पास। उसके सारे वक्तव्य दर्पण हैं। उसकी मौजूदगी दर्पण है। उसका सत्संग दर्पण है। वह तुम्हें अपना चेहरा पहचानने की व्यवस्था करा रहा है। और एक ही उपाय है कि वह अपनी अंतरात्मा तुम्हारे सामने उघाड़ कर रख दे, कि तुम देख सको कि अरे, यही तो मेरे भीतर भी है! और उठे हुंकार! और तुम भी भर जाओ ओंकार के नाद से! और तुम्हारे भीतर भी सिंह की गर्जना हो!
ऐसा ही कुछ हुआ होगा, कृष्ण सत्यार्थी! तुम पहली ही बार आए और समर्पित
हो गए, संन्यस्त हो गए। अब लौट कर जाओ तो भेड़ें तुम्हें बहुत दिक्कत देंगी। वे कहेंगी कि चलो तेरापंथ में वापस! यह तुम्हें क्या हुआ? होश गंवा दिया? सम्मोहित कर लिए गए? अपने परिवार का धर्म, अपना धर्म गंवाया? कुछ तो लोकलाज का सोचा होता। कुछ तो परिवार की प्रतिष्ठा की चिंता की होती! अगर संन्यस्त ही होना था तो आचार्य तुलसी से होते या मुनि नथमल से होते। तुम कहां इस उपद्रवी आदमी के हाथों में पड़ गए! यह तुम्हें भटकाएगा, यह तुम्हें खतरों में ले जाएगा।
घर जाओगे तो भेड़ें थोड़ी दिक्कत देंगी, तुम घबड़ाना मत। जब भी भेड़ें थोड़ी दिक्कत दें, तेरापंथी इकट्ठे हों, एकदम सिंहनाद करना। आचार्य तुलसी भी कंपेंगे और मुनि नथमल भी कंपेंगे।

तीसरा प्रश्नः मैं दुख से इतना परिचित हूं कि सुख का मुझे भरोसा ही नहीं आता है। एक दुख गया कि दूसरा आया, बस ऐसा ही सिलसिला चलता रहता है। क्या कभी मैं सुख के दर्शन पा सकूंगा? मार्ग दिखावें कि सुख पाने के लिए क्या करूं? मैं सब कुछ करने को तैयार हूं।

रामविलास! दुख अकेला नहीं आता। कोई दुख अकेला नहीं आता। क्योंकि कोई दुख अकेला नहीं जी सकता। दुख कीशृंखला होती है, जैसे जंजीरों कीशृंखला होती है। कड़ियों में कड़ियां पोई होती हैं। ऐसे दुख के पीछे दुख आते हैं। एक दुख दूसरे दुख को लाता है। और ऐसे ही सुख की भीशृंखला होती है। एक सुख दूसरे सुख को लाता है। तुम्हारे हाथ में है कि तुम कौन सीशृंखला को शुरू करो। अगर तुम अपने भीतर सुख जन्माओ तो बाहर भी तुम्हारे जीवन में सुख ही सुख फैल जाएगा।
जीसस का बड़ा प्रसिद्ध वचन है और बड़ा अनूठाः जिनके पास है, उन्हें और दिया जाएगा; और जिनके पास नहीं है उनसे वह भी छीन लिया जाएगा जो उनके पास है!
तर्कयुक्त नहीं मालूम होता। न्याययुक्त नहीं मालूम होता। होना तो दूसरी बात चाहिए। कहना था जीसस कोः जिनके पास नहीं है, उन्हें दिया जाएगा; और जिनके पास है, उनसे छीन लिया जाएगा। यह कहते तो बात न्याययुक्त मालूम होती। मगर यह क्या बात कही कि जिनके पास है, उन्हें और दिया जाएगा!
ठीक कहा लेकिन, जीवन का वही परम नियम है। तुम्हारे पास जो हो, वही तुम्हारे प्रति आकर्षित होने लगता है। अगर सुख है तो चारों तरफ से सुख की

धाराएं तुम्हारी तरफ बहने लगेंगी। अगर दुख है तो दुख की धाराएं बहने लगेंगी। और अगर तुम बाहर के दुखों को काटने में लग गए और यह याद ही न किया कि भीतर दुख का चुंबक तुमने बना रखा है, तो तुम काटते रहो बाहर दुख, इससे कुछ अंतर न पड़ेगा; दुख आते रहेंगे और तुम्हें और-और सताते रहेंगे। तुम्हारे चारों तरफ नरक निर्मित हो जाएगा।
लेकिन जड़ अगर समझ में आ जाए कि भीतर है, तो दुख को काट देना कठिन नहीं।
एक तलवार की चोट में दुख काटा जा सकता है। और मजे की बात, कि दुख के जाते ही जो शेष रह जाता है वही सुख है। सुख दुख के विपरीत नहीं है, सुख दुख का अभाव है। जहां दुख नहीं है, वहां जो रह गया शेष, वह सुख है। इसलिए सुख की कोई परिभाषा भी नहीं हो सकती। जैसे स्वास्थ्य की कोई परिभाषा नहीं हो सकती। पूछो चिकित्सकों से स्वास्थ्य की परिभाषा। वे कहेंगेः जो बीमार नहीं, वह स्वस्थ। अगर तुम जाओ अपने स्वास्थ्य का परीक्षण करवाने तो क्या तुम सोचते हो तुम्हारे स्वास्थ्य का कोई परीक्षण कर सकता है? परीक्षण तो तुम्हारी बीमारियों का किया जाता है, स्वास्थ्य का कोई परीक्षण हो ही नहीं सकता। अब तक कोई यंत्र नहीं है जो खबर दे सके कि यह आदमी स्वस्थ है। हां, हजार यंत्र हैं जो खबर देते हैं कि यह आदमी इस बीमारी, उस बीमारी से भरा है। जब सभी बीमारी बताने वाले यंत्र कह देते हैं कि कोई बीमारी नहीं, तो चिकित्सक कह देता है कि तुम स्वस्थ हो।
तो स्वास्थ्य का अर्थ हुआः बीमारी का अभाव। ऐसे ही सुख का अर्थ होता हैः दुख का अभाव।
सबसे बड़ा दुख क्या है? सबसे बड़ा दुख यह है कि तुम सदा सोचते हो कि दुख बाहर से आते हैं। यह सबसे मौलिक आधारभूत बात समझने की है। दुख बाहर से नहीं आते; तुम बुलाते हो तो आते हैं। कोई अतिथि बिना बुलाए नहीं आता। सब मेहमान तुम्हारे बुलाए आते हैं। हां, यह हो सकता है कि तुम जो प्रेम-पातियां लिखते हो दुख को, वे इतनी मूर्च्छा में लिखते हो कि तुम्हें पता ही नहीं चलता कि कब तुमने लिख भेजीं। बेहोशी में बुला लेते हो, फिर तड़पते हो।
मुल्ला नसरुद्दीन से कोई कह रहा थाः धन्य है वह युवक जिसकी मासिक आय केवल पचहत्तर रुपये हो, फिर भी वह एक भले आदमी की तरह जीवन बिता रहा हो। मुल्ला नसरुद्दीन ने कहाः इतने रुपये में वह और कर भी क्या सकता है?
दुख के खरीदने के लिए भी सुविधा चाहिए। दुख के खरीदने के लिए भी अवसर चाहिए, समय चाहिए, अनुकूलता चाहिए। दुख भी मुफ्त नहीं मिलता, बड़ा श्रम करना पड़ता है! सच तो यह है, सुख मुफ्त मिलता है और दुख मुफ्त नहीं मिलता। क्योंकि सुख तुम्हारा स्वभाव है, मिला ही हुआ है; सिर्फ दुख से आच्छादित न होने दो। और दुख पर-भाव है, मिला हुआ नहीं है, बाहर से पकड़ना पड़ता है।
तुम भी पकड़ने को उत्सुक हो दुख, क्योंकि दुख में बड़े न्यस्त स्वार्थ हैं। कई खूबी की बातें हैं दुख में, नहीं तो हर कोई पकड़े क्यों? बड़ी खूबी तो यह है कि दुखी आदमी पर सब दया करते हैं, सब सहानुभूति करते हैं। दुखी आदमी की सब सेवा करते हैं। दुखी आदमी की कोई निंदा नहीं करता। कोई ईर्ष्या नहीं करता दुखी आदमी से। जिससे जितना बने, दुखी की सेवा ही करते हैं सब। ये दुख की खूबियां हैं। तुम अगर रोओ तो लोग तुम्हारे आंसू पोंछते हैं। तुम अगर हंसो तो लोग एकदम ईर्ष्या से भर जाते हैं।
तुम्हारे मकान में आग लग जाए तो सारा मोहल्ला संवेदना प्रकट करने आता है। जरा गौर से देखना, उनकी संवेदना के भीतर बड़ा रस है, कि भीतर-भीतर वे कह रहे हैं कि धन्यवाद भगवान का, कि इसी का जला, अपना न जला; और जलना ही था, पाप का भंडाफोड़ होता ही है! भीतर वे यह कह रहे हैं, ऊपर यह कह रहे हैंः बड़ा बुरा हुआ, बड़ा बुरा हुआ! बड़ी सहानुभूति दिखा रहे हैं--कि फिर बन जाएगा, अरे मकान ही है! हाथ का मैल है पैसा तो, फिर कमा लोगे! अब दुखी न होओ, जो हुआ सो ठीक हुआ! चलो, कोई रहा होगा पिछले जन्म का पाप, कट गया, झंझट मिटी! मकान तो फिर बन जाएगा। बड़ी ऊंची ज्ञान की बातें करेंगे वे। सहानुभूति दिखाएंगे। लेकिन तुम अगर एक बड़ा मकान बना लो तो पड़ोस में से कोई नहीं आएगा तुम्हें धन्यवाद देने कि हम खुश हैं, हम प्रसन्न हैं कि तुमने बड़ा मकान बना लिया।
लोग, रास्ते पर मिल जाओगे तो कन्नी काट जाएंगे, बच कर निकल जाएंगे।

मैं कलकत्ते में एक घर में मेहमान होता था। कलकत्ते का सबसे सुंदर मकान है वह। बड़ा बगीचा है, सारा मकान संगमरमर का है। बच्चे हैं नहीं परिवार को और धन बहुत है। वे सदा, जब भी मैं उनके घर रुकता था, तो अपना मकान दिखलाते, बार-बार, कई दफा दिखला चुके थे। बगीचे में ले जाते, यह दिखलाते, वह दिखलाते।
एक बार मैं गया, उन्होंने मकान की बात ही न उठाई, तो मैं थोड़ा चिंतित हुआ। वे तो मकान ही मकान से भरे रहते थे। मैंने कहाः हुआ क्या तुम्हें? एकदम तुम बुद्धत्व को उपलब्ध हो गए, या क्या हुआ? मकान का क्या हुआ? कुछ बात ही नहीं करते इस बार मकान की! मैं तो इतने दूर से आता हूं यही बात सुनने।
उन्होंने कहाः अब बात ही नहीं करनी मकान की। अभी साल, दो साल बात ही नहीं कर सकता।
बात क्या है? आखिर बात के पीछे कुछ बात होगी!
उन्होंने कहाः बात यह है, देखते नहीं पड़ोस में!
उनसे बड़ा मकान उठ कर खड़ा हो गया है। और उनका दिल बैठ गया, उनकी छाती टूट गई।
मैंने उनसे कहाः तुम्हारा मकान तो जैसा है वैसा ही है, तुम क्यों परेशान हो रहे हो?
उन्होंने कहाः अब वैसा ही नहीं है, यह बड़ा मकान देखते हो!
तब मुझे याद आई अकबर की कहानी। उसने एक दिन अपने दरबार में एक लकीर खींची थी और कहा था दरबारियों कोः इसे बिना छुए छोटा कर दो। कोई न कर सका था। फिर उठा बीरबल, उसने एक बड़ी लकीर उस लकीर के नीचे खींच दी। उसे छुआ नहीं और वह छोटी हो गई।
मैं उनकी पीड़ा समझा। मैंने उनसे कहाः जाकर कम से कम पड़ोस के आदमी को धन्यवाद तो दे आओ।
उन्होंने कहाः धन्यवाद! कल आपका निमंत्रण है उसके घर, मुझे भी निमंत्रण दिया है। मैं भी जानता हूं कि क्यों दिया है। दिखलाने के लिए।
मैं आने वाला नहीं, आपको अकेले ही जाना पड़ेगा।
वे नहीं गए। इस संसार में दुखी आदमी के लिए सहानुभूति करने वाले लोग मिल जाते हैं। सुखी आदमी से सिर्फ ईर्ष्या करने वाले लोग मिलते हैं। तो दुख में एक न्यस्त स्वार्थ हो जाता है। तुम सहानुभूति में रस लेते हो। इसीलिए तो लोग अपने दुख की गाथाएं कहते हैं एक-दूसरे से, दुख की कहानियां सुनाते हैं। न सुनना चाहें, उनको भी सुनाते हैं।

एक कवि के यहां एक श्रोता फंसा
पहले तो वह उसे देख कर हंसा
फिर उसे दया आई
उसने फौरन दो कप चाय मंगाई
खुद भी पी, उसे भी पिलाई
उसके बाद कवि जी मूड में आए
तीन घंटे में बीस मुक्तक और इक्कीस गीत सुनाए श्रोता ने जाने के लिए कदम बढ़ाया
तो पीछे खड़े पहलवान का आदेशात्मक स्वर आयाः "उठने की कोशिश बेकार है, वहीं बैठे रहिए।" श्रोता ने पूछाः "आप कौन हैं?"
"मैं कवि जी का नौकर हूं,
इसी बात की तनख्वाह पाता हूं
जबरदस्ती गीत सुनवाता हूं
जब सुनने वाला बेहोश हो जाता है
तो उसे अस्पताल भी पहुंचाता हूं।" श्रोता बोलाः "दो घंटे और सुनता रहा तो प्राणपखेरू उड़ जाएंगे।"
पहलवान की आवाज आईः
"कवि जी पूरा काव्य नहीं सुनाएंगे

तो ये मर जाएंगे।"
एक घंटे बाद श्रोता ने कहाः "कवि जी आज्ञा दीजिए
अब हम घर जा रहे हैं।"
पहलवान की फिर आवाज आईः
"आप अभी से घबड़ा रहे हैं
इनके पिताजी भी कवि हैं
इसके बाद वे आ रहे हैं।"

फिर एक दुख के पीछे दूसरा दुख चला आता है। फिर बेटा गया तो पिताजी आ रहे हैं। लेकिन शुरुआत--तुम गए ही काहे को कवि जी के घर? और जब वे हंसे थे तभी क्यों न निकल भागे? और जब एक कप चाय पिलाई थी तब ही क्यों न चौंके? जब चाय पी ली तो फिर निकलना मुश्किल हो जाता है। फिर नमक खाओ तो बजाना भी पड़ता है, नहीं तो लोग कहते हैंः नमकहराम!
सावधानी पहले से बरतो। दुख का मूल कहां है? दुख का मूल है अहंकार में। मैं हूं, इस भाव में दुख का मूल है। यह सारी बीमारियों की जड़ है, सारी बीमारियां इसी के पत्ते हैं। और इसे तुम छोड़ते नहीं, इसे तुम पकड़ कर बैठे हो। और यह बिल्कुल सरासर झूठ है। तुम नहीं हो, परमात्मा है। मैं नहीं हूं, परमात्मा है। लहर समझ रही है अपने को कि मैं हूं, जब कि सागर है, लहर कहां? और फिर जब तुम झूठ को जीने लगते हो तो फिर उस झूठ को सम्हालने के लिए और न मालूम क्या-क्या झूठ इकट्ठे करने पड़ते हैं। एक झूठ को सम्हालने के लिए फिर हजार झूठों के टेके लगाने पड़ते हैं।
मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन मुझसे कह रहा थाः आज मैंने अपनी बीबी को घुटनों के बल चलवा दिया।
अच्छा! मैंने पूछाः हुआ क्या? कैसे यह हुआ? यह घटना तो बड़ी अनहोनी है। बीबियां घुटनों के बल पतियों को सदा चलवाती रहीं। तुमने कैसे चलवा दिया? नसरुद्दीन मुस्कुराया, उसने कहा कि आखिर हम भी कुछ हैं।
मैंने पूछा कि जब घुटनों के बल बीबी चली तो बोली क्या?
तो कहाः बोली, खाट के नीचे से निकलो तो देखती हूं तुम्हें!
एक झूठ कि मैं कुछ हूं। तो फिर पच्चीस झूठ इकट्ठे करने पड़ते हैं। झूठ झूठ के ही भोजन पर जीता है। तो मौलिक झूठ को पहचान लोः तुम नहीं हो। तुम इस विराट अस्तित्व के एक अंग हो। इस विराट के साथ अखंड हो, एक हो। भिन्न मानोगे, बस पीड़ा उठेगी। अभिन्न जानोगे, सुख ही सुख बरस जाएगा। अमी झरत, बिगसत कंवल!
मगर नहीं, लाख दिक्कतें आएं, तुम इस "मैं" को नहीं छोड़ते।
मुल्ला नसरुद्दीन का सुपुत्र काफी देर से मैदान में पत्थर बीन रहा था। मैं बहुत देर तक तो चुपचाप देखता रहा। फिर मैंने उससे पूछाः बेटे! यह क्या कर रहे हो?
कुछ नहीं, पत्थर बीन रहा हूं। पिताजी का कहना है कि मैदान के जितने पत्थर आज बीनोगे, उतनी ही टाफियां तुम्हें दूंगा। आपको मालूम नहीं, आज उन्हें इसी मैदान में कविता पढ़नी है--आज्ञाकारी पुत्र ने उत्तर दिया। पत्थर बिनवाए जा रहे हैं, क्योंकि पता है कविता का कि इधर तुमने कविता पढ़ी कि श्रोताओं ने पत्थर फेंके।
मुल्ला नसरुद्दीन जब भी कविता पढ़ने जाता है, तो पहले जाता है सब्जी बाजार में, जितने सड़े केले इत्यादि, टमाटर, सब खरीद लेता है। क्योंकि नहीं तो वही फिंकेंगे कवि-सम्मेलन में। लेकिन कविता पढ़ना नहीं छोड़ता।
वही दशा है तुम्हारी। अहंकार इतने दुख लाता है, इतने सड़े टमाटर तुम पर बरसते हैं--कहां अमी झरत! कहां बिगसत कंवल! सड़े टमाटर, केलों के छिलके, कंकड़-पत्थर। मगर अपनी सुरक्षा किए, जितने ही कंकड़-पत्थर बरसते हैं उतने ही अपने अहंकार को बचाए, कि कहीं चोट न खा जाए, सम्हाले जी रहे हो--सो दुख पा रहे हो।
तुम कहते होः "मैं दुख से इतना परिचित हूं कि सुख का मुझे भरोसा ही नहीं आता।"
मैं समझ सकता हूं, कैसे सुख का भरोसा आए? दुख ही दुख जाना है।

"एक दुख गया कि दूसरा आया। बस ऐसा ही सिलसिला चलता रहा है।"
चलता रहेगा, जब तक तुम जागोगे नहीं।
"क्या कभी मैं सुख के दर्शन पा सकूंगा?"
निश्चित पा सकते हो। कभी क्यों, अभी! लेकिन मूल जड़ काट दो।
"मार्ग दिखावें कि सुख पाने के लिए मैं क्या करूं? मैं सब कुछ करने को तैयार हूं।"
ईमान से कह रहे हो कि सब कुछ करने को तैयार हो? सब कुछ करने को मैं कह
भी नहीं रहा। मैं तो थोड़ा सा कुछ करने को कह रहा हूंः यह अहंकार जाने दो और फिर देखो। यह मैं-भाव क्षीण होने दो। अपने को अस्तित्व से भिन्न न समझो। दर्शक और दृश्य को एक होने दो। जितने बार हो सके, एक होने दो। सुबह सूरज उगता हो, देखते-देखते उसी में लीन हो जाओ। न वहां तुम रहो, न सूरज, बस एक ही घटना घट जाए--सूरज ही सूरज! कि सांझ सूरज को डूबते देखते हो, एक हो जाओ। कि फूल को खिलते देखते हो, कि दूर मत खड़े रहो, फूल के साथ खिलो। कि वृक्ष से गिरते पत्तों को देखते हो, कि दूर मत रहो, पत्तों के साथ गिरो। जितने अवसर मिलें चौबीस घंटे में, कोई अवसर मत चूको, जब कि तुम अपने को डुबा सको, मिटा सको, मिला सको। पिघलो, जैसे धूप में बर्फ पिघल जाए, ऐसे तुम इस सान्निध्य में पिघलो। उसी पिघलने से एक दिन तरल हो जाओगे। और तरल हो गए कि चल पड़े सागर की तरफ, कि चल पड़े सुख की तरफ। सुख तुम्हारा स्वभाव-सिद्ध अधिकार है।

आखिरी प्रश्नः मुझे वह इक नजर, इक जाविदानी सी नजर दे दे! बस एक नजर, जो अमृत को पहचान ले, प्रभु।

सत्संग! वह नजर रोज-रोज तुम्हें दे रहा हूं। और वह नजर थोड़ी-थोड़ी तुम्हें मिलनी शुरू भी हो गई है। इसीलिए प्रश्न उठा है। स्वाद लगता है तो और-और पाने की अभीप्सा जगती है। पूछता ही वही है ऐसे प्रश्न जिसकी जीभ पर एकाध बूंद अमृत की पड़ी। वह पड़ना शुरू हो गई है। बूंदा-बांदी होनी शुरू हो गई है। अब अपने को बचाना मत, छिपाना मत। ये जो अपूर्व अनुभव उतरने शुरू हो रहे हैं, इनको किसी तरह झुठलाना मत--कल्पना कह कर, स्वप्न कह कर, द्वार-दरवाजे बंद मत कर लेना।
लोग आनंद पर भरोसा नहीं करते। जब आता है आनंद तो भी उनको संदेह होता
है कि पता नहीं क्या हो रहा है! आनंद और मुझे! हो ही नहीं सकता। जरूर मैं किसी भ्रम में पड़ रहा हूं।
इसीलिए तो यहां आए लोग जैसे-जैसे आनंद में डूबते हैं, बाहर के लोग समझते हैं कि सम्मोहित हो गए। जब बाहर के दर्शक यहां आते हैं, पत्रकार यहां आते हैं, तो वे यही समझते हैंः ये सारे लोग सम्मोहित हो गए! इतनी मस्ती आदमी में होती ही कहां है! जरूर ये होश में नहीं हैं। ये किसी नशे में हैं, इनको कोई नशा करवा दिया गया है। स्थूल कि सूक्ष्म, कोई नशे में डुबा दिया गया है।
हजार लोग तुम्हें संदेह उठाएंगे तुम्हारे आनंद पर। तुम्हारी आंख जो पैदा होनी शुरू हुई है, उस आंख को लोग अंधा कहेंगे, क्योंकि यह प्रेम की आंख है और प्रेम को लोग अंधा कहते हैं। गणित को आंख वाला कहते हैं, तर्क को आंख वाला कहते हैं, बुद्धि को आंख वाला कहते हैं, हृदय को अंधा कहते हैं। तुम्हें लोग अंधा कहेंगे। तुम्हें लोग दीवाना कहेंगे। तुम्हें लोग पागल कहेंगे।
"सत्संग" की वैसी ही हालत हो रही है। घर के लोगों ने तो बिल्कुल पागल समझ लिया, तो सत्संग को घर छोड़ देना पड़ा। अभी कल मुझे खबर मिली कि अब "सत्संग" कोई मकान खोजते हैं, मगर कोई मकान किराए पर देने को राजी नहीं! पागलों को कोई मकान किराए पर देता है! क्या भरोसा क्या करो--नाचो, गाओ कि कूदो। कि लोग पूछते होंगेः कुंडलिनी ध्यान तो नहीं करोगे? सक्रिय ध्यान तो नहीं करने लगोगे? और दूसरे गैरिक दीवानों को तो घर में न ले आओगे? बाहर लोग इतने दुख में जी रहे हैं कि तुम्हारे जीवन में जब सुख की झलक आएगी, पहली बार फागुन आएगा, पहली बार फाग जन्मेगी, गुलाल उड़ेगी, तो लोग भरोसा नहीं करेंगे। और चूंकि तुम भी सदा लोगों पर भरोसा करते रहे हो,

तुम्हें भी बड़ी चिंता पैदा होगी--इतने लोग गलत तो नहीं हो सकते, कहीं मैं ही तो गलत नहीं हूं? अनेक-अनेक बार यह मन में शंका उठेगी।
सत्संग! आंख तो पैदा होनी शुरू हो गई है। मुझे तो दिखाई पड़ रही है कि आंख थोड़ी-थोड़ी खुलने लगी। हां, थोड़ा रंध्र ही अभी खुला है, मगर उतना ही क्या कम है! उतना खुला है तो और खुलेगा। जिनके पास है, उन्हें और दिया जाएगा।

आया फागुन
अकुलाया मन।
हवा करे अब
बंसी वादन।
झूम रहे हैं
पेड़ों के तन।
पतझड़ जीवन
आओ साजन।
तोड़ो आकर
कसते बंधन।
याद तुम्हारी
भरती सिहरन।
बड़ी हठीली
मन की दुल्हन।
युग से तड़पे
बन कर विरहन।
मिलो झूम कर
कहता फागुन।
आओ आओ
आया फागुन।

फागुन आ गया! नाचो! पद घुंघरू बांध नाचो!

मौसम ने लगा कर
मस्ती का दांव,
जगा दिया नयनों में
सुधियों का गांव।
छम-छम पैजनियां हैं,
पग-पग बहार की,
द्वारे दस्तक हुई
फागुनी बयार की।

पत्ते भी झूम-झूम
दे रहे ताल,
सजाया फूलों ने
महकता गुलाल,
मन में घुमड़ रही बातें
सौ-सौ प्यार की,
द्वारे दस्तक हुई
फागुनी बयार की।

बंसी पर थिरक उठे
फिर बिखरे बोल,
जल में पंछियों से
कर रहे किलोल।
चंचल अधरों पर
बातें आरपार की,

द्वारे दस्तक हुई
फागुनी बयार की।

द्वार पर दस्तक दी है फागुन ने, खोलो द्वार! थोड़ा तुमने खोला है, जरा
सा तुमने खोला है। उतने से रोशनी आनी शुरू हुई है। पूरे द्वार खोल दो! सब द्वार खोल दो! सब खिड़कियां खोल दो! यह चार दिन का जीवन है, इसे उत्सव से जीना है, इसे महोत्सव बनाना है। दुनिया पागल कहे तो कहने दो, क्योंकि यह परमात्मा के रास्ते पर पागल हो जाने से बड़ी और कोई बुद्धिमानी नहीं है, और कोई बड़ी प्रज्ञा नहीं है।

साथ हुए तुम,
लगे क्षण बहके-बहके,
पोर-पोर चंदन से महके।

तन को सिहराए है
धूप की कनी,
मांग का सिंदूर जब
हर छुअन बनी।
पारस स्पर्श
देह कंचन बन दहके।

बार-बार पर तौले
तितली सा मन
देहरी में उग आए
केशर के वन।
मन का हर फूल हंसा
जाने क्या कह के!

घट रही है अनघट घटना। छिटक मत जाना, भटक मत जाना। दिशा मिल गई है, अब नाक की सीध चले चलो। आंख मिल रही है, मिलती रहेगी। और यह आंख ऐसी है कि खुलती है, खुलती जाती है। इसका कोई अंत नहीं है। एक दिन यह सारा आकाश तुम्हारी आंख बन जाता है। एक दिन परमात्मा की आंखें तुम्हारी आंखें होती हैं।
यह बड़ी लंबी यात्रा है। मगर पहला कदम उठ गया है, तुम धन्यभागी हो। और बहुतों का भी उठ गया है, वे सब धन्यभागी हैं। मेरे पास बड़भागियों का मेला जुट रहा है।
आज इतना ही।

अमी झरत, बिगसत कंवल
ग्यारहवां प्रवचन

एक राम सारै सब काम

आदि अनादि मेरा साईं।
द्रष्ट न मुष्ट है अगम अगोचर। यह सब माया उनहीं माईं।।
जो बनमाली सींचै मूल। सहजै पीवै डाल फल फूल।।
जो नरपति को गिरह बुलावै। सेना सकल सहज ही आवै।।
जो कोई कर भान प्रकासै। तो निस तारा सहजहि नासै।।
गरुड़ पंख जो घर में लावै। सर्प जाति रहने नहिं पावै।।
दरिया सुमरै एकहि राम। एक राम सारै सब काम।।

आदि अंत मेरा है राम। उन बिन और सकल बेकाम।।
कहा करूं तेरा बेद पुराना। जिन है सकल जगत भरमाना।।
कहा करूं तेरी अनुभै-बानी। जिन तें मेरी सुद्धि भुलानी।।
कहा करूं यह मान बड़ाई। राम बिना सबही दुखदाई।।
कहा करूं तेरा सांख औ जोग। राम बिना सब बंदन रोग।।
कहा करूं इंद्रिन का सुक्ख। राम बिना देवा सब दुक्ख।।
दरिया कहै राम गुरमुखिया। हरि बिन दुखी राम संग सुखिया।।

आज मम हिय-अजिर में मन-भावनी क्रीड़ा करो तो।
दरस-रस-कसकनमयी तुम लगन-मधु पीड़ा भरो तो।

यह खड़ी है दरस-आशा एक कोने में लजीली,
परस-उत्कंठा उठी है झूमती-सी यह नशीली,
आज मिलने में कहो क्यों कर रहे हो हठ हठीली? मन-हरण-गज-गमन-गति से चरण मन-मंदिर धरो तो।
आज मम हिय-अजिर में मन-भावनी क्रीड़ा करो तो।

बहुत ही लघु हूं, परम अणु हूं, ससीमित, संकुचित हूं,
विवश हूं, गुणबद्ध हूं, गति-रुद्ध हूं, विस्मित, विजित हूं, किंतु आशा निखिल संसृति की लिए मैं चिरव्यथित हूं,
रुचिर पूर्ण रहस्य-उदघाटनमयी क्रीड़ा करो तो।
आज मम हिय-अजिर में मन-भावनी क्रीड़ा करो तो।

क्यों उलहना दे रहे हो कि यह है संकुचित आंगन,
गगन सम विस्तीर्ण कर देंगे इसे तव मृदु पदांकन,
आज सीमा ने दिया है तुम असीमित को निमंत्रण,
ढुल पड़ो, प्रेमेश, सीमित संकुचित व्रीड़ा हरो तो।
आज मम हिय-अजिर में मन-भावनी क्रीड़ा करो तो।

एक ही प्रार्थना है, एक ही निमंत्रण है, एक ही अभीप्सा है भक्त की--कि
यह मेरे छोटे से हृदय में, यह बूंद जैसे हृदय में तू अपने सागर को आ जाने दे। बूंद में सागर उतर सकता है। बूंद ऊपर से ही छोटी दिखाई पड़ती है। बूंद के भीतर उतना ही आकाश है, जितना बूंद के बाहर आकाश है। देर है अगर कुछ तो हार्दिक निमंत्रण की देर है। बाधा है अगर कुछ तो बस इतनी ही कि तुमने पुकारा नहीं।
परमात्मा तो आने को प्रतिपल आतुर है। पर बिन बुलाए आए भी तो कैसे आए?
और बिन बुलाए आए तो तुम पहचानोगे भी नहीं। बिन बुलाए आए तो तुम दुतकार दोगे।
तुम बुलाओगे प्राणपण से। रोआं-रोआं तुम्हारा प्रार्थना बनेगा, धड़कन-धड़कन तुम्हारी प्यास बनेगी। तुम प्रज्वलित हो उठोगे। एक ही अभीप्सा रह जाएगी तुम्हारे भीतर उसे पाने की। उसी क्षण क्रांति घट जाती है। उसी क्षण

उसका आगमन हो जाता है। वह तो आया ही हुआ था, बस तुम मौजूद नहीं थे। वह तो सामने ही खड़ा था, पर तुमने आंखें बंद कर रखी थीं। परमात्मा दूर नहीं है, तुम उससे बच रहे हो। परमात्मा दूर नहीं है, तुम सदा उसकी तरफ पीठ कर रहे हो।
और कारण है। तुम्हारा बचना भी अकारण नहीं है। बूंद डरती है कि अगर सागर उतर आया, तो मेरी बिसात क्या! मैं गई! अगर सागर आया तो मैं मिटी। वही भय--कि कहीं मैं मिट न जाऊं! वही भय--कि कहीं मैं समाप्त न हो जाऊं! कहीं मेरी परिभाषा ही अंत पर न आ जाए! मेरा अस्तित्व ही संकट में न पड़ जाए! इससे तुम पुकारते नहीं प्राणपण से। तुम प्रार्थना भी करते हो तो थोथी। तुम प्रार्थना भी करते हो तो झूठी। तुम प्रार्थना भी करते हो तो औपचारिक। और प्रार्थना कहीं औपचारिक हो सकती है? प्रेम कहीं उपचार हो सकता है? तुम्हारी औपचारिकता ही तुम्हारी उपाधि बन गई है, तुम्हारी बीमारी बन गई है। कब तुम सहज होकर पुकारोगे? कब तुम समग्र होकर पुकारोगे? और बार-बार नहीं पुकारना पड़ता है। एक पुकार भी काफी है। लेकिन तुम पूरे के पूरे उस पुकार में सम्मिलित होने चाहिए। जरा सा भी अंश तुम्हारा पुकार के बाहर रह गया, तो पुकार काम न आएगी।
पानी उबलता है, भाप बनता है, सौ डिग्री पर; निन्यानबे डिग्री पर नहीं।
एक डिग्री की कमी रह गई, तो भी पानी भाप नहीं बनेगा। तुम्हारे भीतर जरा सा भी हिस्सा संदेह से भरा रह गया, सकुचाया, अपने को बचाने को आतुर, अलग-थलग, तुम्हारी प्रार्थना में सम्मिलित न हुआ, तो तुम वाष्पीभूत न हो सकोगे। और वाष्पीभूत हुए बिना भक्त भगवान को नहीं अनुभव कर पाता है। भक्त को तो मिट ही जाना होता है। उसका निशान नहीं छूटना चाहिए। उसकी लकीर भी नहीं बचनी चाहिए। जैसे ही भक्त ऐसा मिट जाता है कि कुछ भी नहीं बचता उसका, जिसको कह सके "मेरा", जिसको कह सके "मैं"--उसी क्षण, तत्क्षण महाक्रांति घटती है! प्रार्थना पूर्ण होती है, परमात्मा उतरता है।
आज मम हिय-अजिर में मन-भावनी क्रीड़ा करो तो।
दरस-रस-कसकनमयी तुम लगन-मधु पीड़ा भरो तो।
यह खड़ी है दरस-आशा एक कोने में लजीली,
परस-उत्कंठा उठी है झूमती-सी यह नशीली,
आज मिलने में कहो क्यों कर रहे हो हठ हठीली?
मन-हरण-गज-गमन-गति से चरण मन-मंदिर धरो तो।
आज मम हिय-अजिर में मन-भावनी क्रीड़ा करो तो।
पुकारो उसे, कि आए और खेले तुम्हारे हृदय के आंगन में। कह दो कि आंगन छोटा है; मगर तुम्हारे आते ही बड़ा हो जाएगा। तुम पैर तो रखो, आंगन आकाश बन जाएगा। सागर आए तो, और बूंद समर्थ हो जाएगी सागर को भी अपने में समा लेने में। सच तो यह है, सागर बूंद को अपने में समाए कि बूंद सागर को अपने में समाए, यह एक ही बात को कहने के दो ढंग हैं।
उस परम अवस्था में--जिसकी तलाश है, जन्मों-जन्मों से जिसकी तलाश है--न
तो भक्त बचता है, न भगवान बचता है। क्या बचता है? भगवत्ता बचती है। एक तरफ से भगवान खो जाता है, एक तरफ से भक्त खो जाता है। जब भक्त ही खो जाता है तो भगवान कैसे बचेगा? भगवान तो भक्त की धारणा थी--कि मैं भक्त हूं तो तुम भगवान हो। भगवान तो भक्त की ही विचारणा थी। भक्त ही गया, भगवान भी गया। फिर जो बच रहता है, उसे हम क्या नाम दें?
मैं उसे नाम देता हूं भगवत्ता। सारा जगत चैतन्यमय हो उठता है। रोआं- रोआं परमात्ममय हो उठता है। कण-कण उस ब्रह्म की पुकार देने लगता है। पत्ते-पत्ते पर उसके हस्ताक्षर मिलने लगते हैं। उठो-बैठो, चलो-फिरो, फिर सब उसी में है। उठना उसमें, बैठना उसमें, चलना उसमें, सोना उसमें, जीना उसमें, मरना उसमें। फिर जीवन की सुगंध और है। मछली जो तड़पती थी सागर के किनारे पर पड़ी, उसे मिल गया अपना सागर। अब जीवन का रस और है, आनंद और है। और जब तक तुम्हारे जीवन में ऐसा महोत्सव न आ जाए, ठहरना मत। पड़ाव बहुत हैं और हर पड़ाव सुंदर है। लेकिन पड़ाव को पड़ाव समझना। रात रुक जाना, विश्राम कर लेना। याद रखना, सुबह उठना है और चल पड़ना है। पुकार दूर की है, पुकार अनंत की है। कुछ भी तुम्हें उलझाए न, कुछ भी तुम्हें अटकाए न। ऐसी

चित्त-दशा का नाम संन्यास है। उस परम की खोज में कोई भी चीज बाधा न बन सके।
ऐसी बेशर्त समर्पण की अवस्था का नाम संन्यास है।
दरिया के सूत्र प्यारे हैं।
आदि अनादि मेरा साईं।
प्रार्थना पूरी हो गई है। प्रार्थना फल गई। फूल लग गए प्रार्थना में।
वसंत आ गया। प्रार्थना के फूल से गंध उठने लगी है।
आदि अनादि मेरा साईं।
वह मेरा मालिक, वह मेरा स्वामी, दोनों है। प्रारंभ भी वही है, अंत भी वही है। बीज भी वही है, वृक्ष भी वही है। जन्म भी वही है, मृत्यु भी वही है।
मेरे उस परम प्यारे में सारे द्वंद्व एक हो गए हैं, सारे विरोध अपना विरोध छोड़ दिए हैं।
तुमने शायद महावीर की मूर्ति देखी हो ऐसी, या ऐसा चित्र देखा हो-- जैनों के घरों में मिल जाएगा, जैन मंदिरों में मिल जाएगा--जिसमें सिंह और भेड़ साथ-साथ बैठे हैं। जैन तो कहते हैं कि यह महावीर के प्रभाव का प्रतीक है। उनके भीतर की अहिंसा का ऐसा प्रगाढ़ वातावरण पैदा हुआ कि सिंह और भेड़ साथ बैठ सके। न तो भेड़ भयभीत है और न सिंह भेड़ को खाने को आतुर है।
मेरे देखे उस चित्र का अर्थ कुछ और है। यह महावीर की अहिंसा के संबंध में सूचक नहीं है चित्र। यह चित्र और भी बड़ी महिमा का है। यह प्रतीक है कि महावीर अब उस अवस्था में हैं, जहां सहज द्वंद्व समाप्त हो जाते हैं; जहां विपरीत एक हो जाते हैं; जहां शत्रुताएं लीन हो जाती हैं; जहां अतियों पर खड़े हुए, पास आ जाते हैं। यह महावीर की अहिंसा के प्रभाव को बताने के लिए नहीं है चित्र। क्योंकि महावीर की अहिंसा का अगर ऐसा प्रभाव होता, तो जिन लोगों ने महावीर के कानों में सलाखें ठोंक दीं, पत्थर मारे, उन लोगों पर अहिंसा का प्रभाव न हुआ? मनुष्यों पर प्रभाव न हुआ, सिंह पर और भेड़ पर प्रभाव हुआ? यह बात कुछ जंचती नहीं है। बात कुछ और ही है।
परम अवस्था में, जब भक्त भगवान में लीन होता है और भगवान भक्त में लीन होता है, जब बूंद और सागर का मिलन होता है और भगवत्ता शेष रह जाती है, तो उसमें कोई द्वंद्व नहीं रहता। वहां दिन और रात एक हैं। वहां हर तरह के द्वंद्व समाप्त हो जाते हैं। वह द्वंद्वातीत अवस्था है। वहां दो नहीं बचते। वहां दुई नहीं बचती। वहां बस एक बचता है। उस एक का ही गीत गाया है दरिया ने।
आदि अनादि मेरा साईं।
द्रष्ट न मुष्ट है अगम अगोचर। यह सब माया उनहीं माईं।।
न तो वह दिखाई पड़ता है। और ऐसा भी नहीं कह सकते कि वह गुप्त है। इस परम अवस्था में वह दिखाई भी नहीं पड़ता और दिखाई पड़ता भी है। तर्क की जो कोटियां हैं, अब काम नहीं आतीं। अब तर्कातीत वक्तव्य देने होंगे। यह वक्तव्य तर्कातीत है।
उपनिषद कहते हैंः वह दूर से भी दूर और पास से भी पास है।
पूछा जा सकता हैः अगर दूर से भी दूर है तो पास से भी पास कैसे होगा? और अगर पास से भी पास है तो फिर दूर से भी दूर कहने का क्या अर्थ?
सारे ज्ञानियों न विरोधाभासी वक्तव्य दिए हैं। विरोधाभासी वक्तव्य देने पड़े हैं। कोई उपाय नहीं है। परमात्मा को प्रकट करना हो तो कहना होगाः वह अंधेरा भी है, प्रकाश भी है। हमें अड़चन होती है। हमारे तर्क की तो कोटियां हैं--अंधेरा कैसे प्रकाश होगा? प्रकाश कैसे अंधेरा होगा? हमने तो खंड बांट रखे हैं, लेबल लगा रखे हैं, जन्म अलग है, मृत्यु अलग है। मगर सच में, जरा गौर से देखो, जन्म मृत्यु से अलग है? जरा भी अलग है? बिना जन्म के मृत्यु हो सकेगी? जन्म के साथ ही तो मृत्यु आ गई। जन्म शायद उसी सिक्के का दूसरा पहलू है, जिसका एक पहलू मृत्यु है।
दरिया कहते हैंः न तो उसे देख सकते हो, वह दृश्य नहीं है। लेकिन मुष्ट
भी नहीं है, गुप्त भी नहीं है। ऐसा भी नहीं है कि मुट्ठी में बंद है कि किसी को दिखाई न पड़े। वह दिखाई भी पड़ता है और दिखाई नहीं भी पड़ता है। इसका क्या अर्थ होगा? इस प्यारे विरोधाभासी वक्तव्य का क्या प्रयोजन है?
वह उन्हें दिखाई पड़ता है जो आंख बंद कर लेते हैं और उन्हें नहीं दिखाई पड़ता जो आंख खोले बैठे रहते हैं। आंख से देखने जो चलते हैं, उनके लिए

अगोचर; लेकिन हृदय से जो देखने चलते हैं, उनके लिए गोचर। जो बुद्धि से सोचते हैं, उनके लिए असंभव है उसका देखना। लेकिन जिनके जीवन में प्रेम की तरंगें उठने लगती हैं, उनके लिए इतना सरल, इतना सुगम--जितना सुगम कुछ और नहीं, जितना सरल कुछ और नहीं।
द्रष्ट न मुष्ट है अगम अगोचर।
उसे नापा नहीं जा सकता, इसलिए अगम्य है। कोई परिभाषा नहीं बन सकती। बुद्धि उसे समझ पाए, इसका कोई उपाय नहीं है। लेकिन सौभाग्य से तुम्हारे पास बुद्धि ही नहीं है, कुछ और भी है। बुद्धि से ज्यादा भी कुछ और तुम्हारे पास है। तुम्हारे पास एक हृदय भी है--अछूता, कुंवारा--जिसे तुमने छुआ नहीं, जिसका तुमने उपयोग नहीं किया। क्योंकि संसार में उसकी जरूरत नहीं है। संसार में बुद्धि काफी है।
इसलिए स्कूल से लेकर विश्वविद्यालय तक हम बुद्धि की शिक्षा देते हैं। पच्चीस वर्ष तक हम लोगों को बुद्धि में निष्णात करते हैं। उनके तर्क को धार देते हैं। और उनके हृदय को बिल्कुल मार देते हैं। उनके हृदय को हम छोड़ ही देते हैं। उसकी उपेक्षा हो जाती है। जैसे हृदय है ही नहीं!
यह ऐसे ही समझो, जैसे कोई हवाई जहाज किन्हीं नासमझों के हाथ में पड़ जाए और वे उसका उपयोग ठेले की तरह करने लगें। कर सकते हैं। म्युनिसिपल कमेटी का सारा कूड़ा-कर्कट भर कर गांव के बाहर फेंक देने का काम वायुयान से लिया जा सकता है। कुछ थोड़े ज्यादा समझदार हों तो शायद बस बना लें। लेकिन चले वह जमीन पर ही। जो आकाश में उड़ सकता था, उसे तुमने बस बना लिया है!
ऐसी ही मनुष्य की दशा है। बुद्धि तो जमीन पर चलती है, हृदय आकाश में उड़ता है। हृदय के पास पंख हैं, बुद्धि के पास पैर हैं। बुद्धि पार्थिव है। इसलिए जो लोग बुद्धि से ही सोचते हैं, उन्हें परमात्मा की कोई झलक भी न मिलेगी। स्वप्न में भी उसकी छाया न पड़ेगी। जो बुद्धि से ही सोचते हैं, वे तो एक न एक दिन इस नतीजे पर पहुंच जाएंगे कि ईश्वर नहीं है। उन्हें पहुंचना ही होगा। अगर वे ईमानदार हैं, तो उन्हें यह निष्कर्ष लेना ही होगा कि ईश्वर नहीं है। बुद्धि से सोचने वाले लोग--सिर्फ बुद्धि से सोचने वाले लोग--अगर कहते हों कि ईश्वर है, तो समझ लेना कि बेईमान हैं।
इस दुनिया में दो तरह के लोग हैं। यहां ईमानदार आस्तिक हैं; वह भी कोई अच्छी स्थिति नहीं है। बस दिखाई पड़ते हैं ईमानदार; ईमानदार हो नहीं सकते। पाखंड है ईमानदारी का। ऊपर-ऊपर है। सच तो कहना चाहिए कि इस जगत में बेईमान आस्तिक हैं। बुद्धि से सोचते हैं, बुद्धि से जीते हैं। ईश्वर के लिए भी प्रमाण जुटाए हैं। और ईश्वर का कोई प्रमाण नहीं हो सकता। वह स्वतःप्रमाण है। कौन उसके लिए गवाह होगा? कौन उसके लिए प्रमाण देगा? जो प्रमाण देगा, जो प्रमाण बनेगा, वह तो उससे भी बड़ा हो जाएगा। क्योंकि फिर तो प्रमाण पर निर्भर हो जाएगा ईश्वर। जो निर्भर होता है, वह छोटा हो जाता है। यहां तथाकथित ईमानदार आस्तिक ईमानदार नहीं हैं, हो नहीं सकते। क्योंकि उनकी आस्तिकता हृदय से नहीं उठी है--सिर्फ बौद्धिक है, संस्कारगत है, शिक्षण से मिली है।
तो मुझे कहने दो कि यहां दुनिया में बेईमान आस्तिक हैं। उनकी बड़ी संख्या है। उनकी भी बड़ी बुरी दशा है। आस्तिक और बेईमान! बेईमान होने से कैसे ईश्वर से संबंध जुड़ेगा? क्योंकि ईमान का अर्थ होता है धर्म। बेईमान का अर्थ होता है अधर्म। अधार्मिक आस्तिक।
और दूसरी तरफ ईमानदार नास्तिक हैं। बड़ी पहेली हो गई है मनुष्य के जीवन में। ईमानदार नास्तिक! वे कम से कम ईमानदार हैं, क्योंकि उनकी बुद्धि कहती है कि ईश्वर नहीं है। बुद्धि तर्क खोजती है और कोई तर्क नहीं पाती, तो वे कहते हैंः ईश्वर नहीं है। कम से कम इतनी ईमानदारी है। मगर उनकी ईमानदारी, उनका धर्म उन्हें नास्तिकता में गिराए दे रहा है। ईमानदार नास्तिक हो गए हैं, ईश्वर तक नहीं पहुंच पाते। बेईमान मंदिरों, मस्जिदों, गिरजों में प्रार्थनाएं-पूजाएं कर रहे हैं। उनकी सब प्रार्थनाएं-पूजाएं झूठी हैं, पाखंड हैं। क्योंकि उनका ईश्वर ही केवल बुद्धि की मान्यता है। एक तीसरे तरह के मनुष्य की जरूरत है। एक तीसरा मनुष्य अत्यंत अनिवार्य हो गया है। क्योंकि उसी तीसरे मनुष्य के साथ मनुष्यता का भविष्य जुड़ा है। वही एक आशा की किरण है। एक तीसरा मनुष्य, जो ईमानदार आस्तिक हो।

मगर तब हमें मनुष्य की पूरी प्रक्रिया बदलनी पड़े। हमें मनुष्य का पूरा ढांचा बदलना पड़े। हमें मनुष्य की बुद्धि को हृदय के ऊपर नहीं, हृदय को बुद्धि के ऊपर रखना पड़े।
इसी क्रांति का नाम रूपांतरण है। जिस दिन तुम भावना को विचार से ज्यादा मूल्य देने लगते हो, उस दिन तुम्हारे जीवन में धर्म की पहली-पहली झलक आई। जिस दिन तुम प्रेम को तर्क से ज्यादा मूल्यवान मानने लगते हो, उस दिन तुम्हारे पास परमात्मा का द्वार खुलने लगा। बुद्धि की आंख से अगोचर है, हृदय की आंख से गोचर है। बुद्धि खोजने चले, कोई थाह न पाएगी। और हृदय खोजने चले, तो तत्क्षण, अभी और यहीं! अथाह की भी थाह मिल जाती है। असंभव भी संभव हो जाता है।

जग गया, हां, जग गया वह सुप्त अश्रुत राग।
भर गया, हां, भर गया हिय में अमल अनुराग।
खुल गई, हां, खुल गई खिड़की नयन की आज;
धुल गई, हां, धुल गई संचित हृदय की लाज;
नेह-रंग भर-भर खिलाड़ी नैन खेलें फाग।
जग गया, हां, जग गया वह सुप्त अश्रुत राग।

दे रही, धड़कन हृदय की, द्रुत ध्रुपद की ताल; हिचकियों से उठ रही है स्वर तरंग विशाल; आह की गंभीरता में है मृदंग उमंग;
निठुर हाहाकार में है चंग-कारण रंग; रंग-भंग अनंग-रति का दे गया वह दाग।
जग गया, हां, जग गया वह सुप्त अश्रुत राग।

प्यार-पारावार में अभिसारिका सी लीन, बावरी मनुहार-नौका डुल रही प्राचीन, क्षीण, बंधन-हीन जर्जर गलित दारु-समूह, पार कैसे जाए? है यह प्रश्न गूढ़ दुरूह! स्वर-तरंगें बढ़ रही हैं, बढ़ रहा अनुराग। जग गया, हां, जग गया वह सुप्त अश्रुत राग।

मृदुल कोमल बाहु-वल्लरियां डुला कर, बाल,
कठिन संकेताक्षरों को आज करो निहाल;
आज लिखवा कर तुम्हारे पूजकों में नाम,
हृदय की तड़पन हुई है, सजनि पूरन काम,
राग के, अनुराग के अब खुल गए हैं भाग।
जग गया, हां, जग गया वह सुप्त अश्रुत राग।

तुम्हारे हृदय में एक गीत सोया पड़ा है, एक राग सोया पड़ा है। छेड़ते ही, जाग उठता है वह सोया राग। उस सोए राग का नाम ही भक्ति है। और भक्ति के लिए ही भगवान है। विचार के लिए नहीं, तर्क के लिए नहीं।
जग गया, हां, जग गया वह सुप्त अश्रुत राग।
जो कभी नहीं सुना था, जो सदा सोया रहा था, जग गया है।
भर गया, हां, भर गया हिय में अमल अनुराग।
और उसके जगते ही हृदय में प्रीति ही प्रीति का पारावार आ जाएगा। अमी झरत, बिगसत कंवल! झरने लगेगा अमृत! खिलने लगेंगे कमल!
खुल गई, हां, खुल गई खिड़की नयन की आज;
धुल गई, हां, धुल गई संचित हृदय की लाज;
नेह-रंग भर-भर खिलाड़ी नैन खेलें फाग।
जग गया, हां, जग गया वह सुप्त अश्रुत राग।
और जिस घड़ी तुम्हारा हृदय खुलता है, उमंग से भरता है, आंदोलित होता है, तरंगायित होता है, मदमस्त होता है, उस क्षण परमात्मा है। उस परमात्मा के लिए फिर कोई प्रमाण नहीं चाहिए। फिर सारी दुनिया भी कहे कि परमात्मा नहीं

है, तो भी तुम्हारे भीतर एक अडिग श्रद्धा का जन्म होता है, जिसे डुलाया नहीं जा सकता। शायद हिमालय हिल जाए, लेकिन तुम्हारे भीतर की श्रद्धा नहीं हिलेगी।
पर श्रद्धा का जन्म हृदय में होता है, इसे फिर-फिर दोहरा कर तुमसे कह दूं। विश्वास बुद्धि के होते हैं, श्रद्धा हृदय की। इसलिए विश्वास से संतुष्ट मत हो जाना। नहीं तो तुम कागज के फूलों से संतुष्ट हो गए। असली फूल तो हृदय की झाड़ी में लगते हैं।
द्रष्ट न मुष्ट है अगम अगोचर। यह सब माया उनहीं माईं।।
और एक बार उसकी झलक तुम्हें मिलने लगे, तो फिर सारे जगत में उसकी ही लीला है, उसका ही खेल है, उसकी ही माया है, उसका ही जादू है। वह चितेरा है, और ये सारे चित्र उसने रंगे हैं। वह संगीतज्ञ है, और ये सारे राग उसने छेड़े हैं। वह मूर्तिकार है, और ये सारी प्रतिमाएं उसने गढ़ी हैं। मगर एक बार उससे पहचान हो जाए। जब तक तुम्हारी उससे पहचान नहीं हुई, तब तक तुम उसकी प्रतिमाओं में उसकी छाप न पा सकोगे। कैसे पाओगे? दिखाई भी पड़ जाए तो प्रत्यभिज्ञा न होगी।
जो बनमाली सींचै मूल। सहजै पीवै डाल फल फूल।।
बहुत महत्वपूर्ण वचन है, सीधा-सरल। कहते हैं कि जो माली मूल को सींचता है, फिर सहज ही पत्तों को, फूल को, डालियों को रस मिल जाता है। कोई पत्ता- पत्ता नहीं सींचना पड़ता।
परमात्मा को खोजना नहीं पड़ता, कि जाएं वृक्ष में खोजें, पहाड़ में खोजें, नदी में खोजें, लोगों में खोजें। यह तो पत्ते-पत्ते खोजना हो जाएगा। ऐसे तो कब तक खोजोगे? जन्म-जन्म निकल जाएंगे और खोज न पाओगे। नहीं, बस मूल में खोज लो--और मूल तुम्हारे भीतर है! उसका मूल तुम्हारे हृदय में है। वहां पहचान लो। वहां की पहचान के बाद जब तुम आंख खोलोगे, चकित हो जाओगे, अवाक रह जाओगे! वही-वही है। सब तरफ वही है। और यह सहज हो जाएगा। इसके लिए कोई प्रयास न करने पड़ेंगे। ऐसा बैठ-बैठ कर मानना न पड़ेगा कि यह कृष्ण की मूर्ति है! दिखाई तो तुम्हें पड़ता है पत्थर, मानते हो कि मूर्ति है। जानते तुम भी भीतर हो कि पत्थर है, मानते मूर्ति हो।
एक झेन फकीर एक मंदिर में रात रुका। सर्द रात थी, बहुत सर्द रात थी। और फकीर बड़ा मस्त फकीर था--अलमस्त फकीर। थोड़े से ही ऐसे फकीर हुए हैं! उसका नाम था इक्कू। जापान में बुद्ध की मूर्तियां लकड़ी की बनाई जाती हैं। उसने उठा कर एक मूर्ति जला ली। रात सर्द थी और तापने के लिए लकड़ी चाहिए थी। अब रात, और लकड़ी खोजने जाए भी कहां? आग जली। मस्त होकर उसने आग सेंकी। मंदिर में आग जलती देख कर पुजारी जग गया कि मामला क्या है! एकदम आग जली, तेज रोशनी हुई। भागा आया। देखा, तो एक बुद्ध की मूर्ति तो गई! बहुत नाराज हुआ--कि यह तुमने क्या किया? भगवान बुद्ध की मूर्ति जला दी! तुम्हें शर्म नहीं आती? तुम्हें संकोच नहीं लगता? तुम होश में हो कि तुम पागल हो? और तुम बौद्ध भिक्षु हो!
इक्कू ने पास में पड़ी हुई अपनी लकड़ी उठाई और जल गई मूर्ति की राख में लकड़ी से कुछ कुरेदने लगा, खोदने लगा, खोजने लगा।
पुजारी ने पूछाः अब क्या खोज रहे हो? अब वहां राख ही राख है।
इक्कू ने कहा कि मैं भगवान की अस्थियां खोज रहा हूं।
पुजारी ने अपना सिर ठोंक लिया, उसने कहाः तुम मूढ़ हद दर्जे के हो! एक
तो मूर्ति जला दी, और अब लकड़ी की मूर्ति में अस्थियां कहां?
इक्कू ने कहाः तो फिर रात बहुत सर्द है और मंदिर में मूर्तियां बहुत हैं। दो-चार और उठा लाओ। जब अस्थियां ही नहीं हैं, तो भगवान कहां? तो भगवान कैसे? तुम भी जानते हो कि लकड़ी लकड़ी है। मानते भर हो कि भगवान है।
जानने और मानने में जब भेद होता है, तो तुम्हारे जीवन में पाखंड होता है। जब जानना और मानना एक हो जाते हैं, तो श्रद्धा का आविर्भाव होता है। जानना और मानना भिन्न हों तो समझना विश्वास। जानते तो तुम भलीभांति हो कि ये रामचंद्र जी जो खड़े हैं, रामचंद्र जी नहीं हैं। जानते तो तुम भलीभांति हो, मगर मानते हो कि रामचंद्र जी हैं। झुक कर नमस्कार कर लेते हो। चरण छू लेते हो। तुम्हारा जानना और मानना इतना भिन्न होगा तो तुम दो खंडों में नहीं टूट जाओगे? तुम्हारे भीतर द्वैत नहीं हो जाएगा? और तुम्हारे भीतर

कैसे धर्म का जन्म होगा? तुम तो एकाकार भी नहीं हो, तुम तो एक भी नहीं हो-- और एक की तलाश को चले हो! एक हो जाओ तो उस एक को खोजा जा सकता है। जब तक तुम दो हो, तब तक तुम द्वंद्व, द्वैत के जगत में ही डूबे रहोगे। इसी कीचड़ में फंसे रहोगे, इस कीचड़ के बाहर नहीं जा सकते।
ठीक कहते हैं दरिया--
जो बनमाली सींचै मूल। सहजै पीवै डाल फल फूल।।
सीधे-सादे आदमी हैं, सीधी-सादी भाषा में लेकिन बात गहरी से गहरी कह दी है। जो समझदार माली है, वह पत्तों को नहीं सींचता।
माओत्से तुंग ने अपने जीवन-संस्मरणों में लिखा है कि मेरी मां को बगिया से बड़ा प्रेम था। उसकी बड़ी प्यारी बगिया थी। दूर-दूर से लोग उसकी बगिया को देखने आते थे। उसके प्रेम, उसके श्रम का ऐसा परिणाम था कि इतने बड़े फूल हमारी बगिया में होते थे कि लोग चकित होते थे! देखने आते थे।
फिर मां बूढ़ी हो गई, बीमार पड़ी, तो उसकी चिंता बीमारी की नहीं थी, अपने मरने की भी नहीं थी; उसकी चिंता एक ही थी--मेरी बगिया का क्या होगा? माओ छोटा था। रहा होगा कोई बारह-तेरह साल का। उसने कहाः मां, तू चिंता न कर। तेरी बगिया में पानी डालना है न! पानी सींचना है न! वह मैं कर दूंगा।
और माओ सुबह से सांझ तक, बड़ी बगिया थी, पानी सींचता रहता। महीनों बाद
जब मां थोड़ी स्वस्थ हुई, उठने योग्य हुई, बाहर आकर देखा तो बगिया तो बिल्कुल सूख ही गई थी। एक फूल नहीं था बगिया में। फूल की तो बात छोड़ो, पत्ते भी जा चुके थे। सूखे नर-कंकालों जैसे वृक्ष खड़े थे। उसने माओ को कहा कि तू दिन भर करता क्या है? सुबह से सांझ तक पानी सींचता है। कुएं से रहट की आवाज मुझे सुनाई पड़ती है दिन भर। बगिया का क्या हुआ?
उसने कहाः मैं क्या जानूं बगिया का क्या हुआ! मैं तो एक-एक पत्ते को धोता था, एक-एक फूल को पानी देता था। मुझे पता नहीं, मैंने जितना श्रम कर सकता था, किया। मैं खुद ही हैरान था कि बात क्या है! एक पत्ता नहीं छोड़ा जिसको मैंने पानी न पिलाया हो।
मगर पत्तों को पानी नहीं पिलाया जाता, और न फूलों को पानी पिलाया जाता है। पत्तों और फूलों को पानी पिलाओगे तो बगिया मर जाएगी।
लेकिन इस माओ को क्षमा करना होगा। छोटा बच्चा है, माफ करना होगा। इसे क्या पता कि भूमि के गर्भ में छिपी हुई जड़ें हैं--अदृश्य--उन्हें पानी देना होता है। उन तक पानी पहुंच जाए तो दूर आकाश में बदलियों से बात करती हुई जो शाखाएं हैं, उन तक भी जल की धार पहुंच जाती है। पहुंचानी नहीं पड़ती, अपने से पहुंच जाती है। मूल को सम्हाल लो, सारा वृक्ष सम्हल जाता है।
मूल है तुम्हारे हृदय में। हृदय के अंतरगर्भ में छिपा है मूल।
अगर सच में ही खोजना हो परमात्मा को तो बुद्धि से मत खोजने निकलना।
अगर तय किया हो कि सिद्ध करना है कि परमात्मा नहीं है, तो बुद्धि से खोजने निकलना। बुद्धि बिल्कुल सम्यक है पदार्थ की खोज में; लेकिन चैतन्य की खोज में बिल्कुल ही असमर्थ है, नपुंसक है।
जो नरपति को गिरह बुलावै। सेना सकल सहज ही आवै।।
दरिया कहते हैंः सम्राट को निमंत्रण दे दिया, तो उसके वजीर, उसके दरबारी, उसके सेनापति, सब अपने आप उसके पीछे चले आते हैं। एक-एक को निमंत्रण भेजना नहीं पड़ता। बस सम्राट को बुला लो--राम को बुला लो--शेष सब अपने से हो जाता है। सब अपने आप चला आता है। सारा संसार, सारे संसार का वैभव, सारे संसार का सौंदर्य, सारे संसार की गरिमा उसकी छाया है। मलिक आ गया तो उसकी छाया भी आ जाएगी।
तुम कभी किसी की छाया को निमंत्रण तो नहीं देते, कि देते हो? कि किसी मित्र की छाया को कहते हो कि आना कभी मेरे घर भोजन करने! छाया को तो कोई निमंत्रण नहीं देता। छाया यानी माया; जो दिखाई पड़ती है कि है और है नहीं। लेकिन मित्र को निमंत्रण दे दो कि छाया अपने आप चली आती है। मालिक आ गया तो माया भी आ जाएगी। जब जादूगर ही आ गया तो उसका सारा जादू उसके साथ चला आया, उसके हाथों का खेल है।
लेकिन हम जीवन में ऐसा ही मूढ़तापूर्ण कृत्य किए चले जाते हैं। हम वैभव खोजते हैं, हम ऐश्वर्य खोजते हैं; ईश्वर को नहीं।

ये दोनों शब्द देखना कितने प्यारे हैं! एक ही शब्द के दो रूप हैं-- ईश्वर और ऐश्वर्य। ऐश्वर्य ईश्वर की छाया है। ईश्वर आ जाए तो ऐश्वर्य अपने से आ जाता है। मगर लोग ऐश्वर्य खोजते हैं। एक तो मिलता नहीं। और कभी भूले-चूके किसी तरह छाया को तुम पकड़ ही लो, तो ज्यादा देर हाथ में नहीं टिकती। कैसे टिकेगी? मालिक सरक जाएगा, छाया चली जाएगी।
एक गांव में एक अफीमची ने रात एक मिठाई के दुकानदार से मिठाई खरीदी। पुरानी कहानी है, आठ आने में काफी मिठाई आई। रुपया था पूरा; दुकानदार ने कहा कि फुटकर पैसे नहीं हैं, सुबह ले लेना। अफीमची अपनी धुन में था। फिर भी इतनी धुन में नहीं था कि रुपये पर चोट पड़े तो होश न आ जाए। थोड़ा-थोड़ा होश आया कि कहीं सुबह बदल न जाए। तो कुछ प्रमाण होना चाहिए। चारों तरफ देखा कि क्या प्रमाण हो सकता है। देखा एक शंकर जी का सांड मिठाई की दुकान के सामने ही बैठा हुआ है। उसने कहाः ठीक है। यही दुकान है। एक तो अपने को भी याद होना चाहिए कि किस दुकान पर। नहीं तो अपन ही सुबह कहीं और किसी की दुकान पर पहुंच गए तो झगड़ा-झांसा खड़ा हो जाए। यही दुकान है।
सुबह आया और आकर पकड़ ली दुकानदार की गर्दन और कहाः हद हो गई! मुझे तो रात ही शक हुआ था। मगर इतने दूर तक मैंने भी न सोचा था कि तू धंधा ही बदल लेगा आठ आने के पीछे! कहां हलवाई की दुकान, कहां नाईबाड़ा! वल्दीयत भी बदल ली! आठ आने के पीछे!
नाई तो कुछ समझा ही नहीं। उसने कहाः तू बात क्या कर रहा है? कहां का हलवाई, मैं सदा का नाई!
उसने कहाः तू मुझे धोखा न दे सकेगा। देख वह सांड, अभी भी अपनी जगह बैठा हुआ है! मैं भी निशान लगा कर गया हूं।
अब सांड का कोई भरोसा है! बैठा था हलवाई की दुकान के सामने सांझ को, सुबह बैठ गया नाई की दुकान के सामने।
तुम छाया को पकड़ते हो, छाया छिटकती है। इधर पकड़े, उधर छिटकी। आज है, कल नहीं है। तुम्हारी जिंदगी व्यर्थ की आपाधापी में व्यतीत हो जाती है-- छायाओं को पकड़ने में।
स्वामी राम ने लिखा है कि मैं एक घर के सामने से निकलता था, एक छोटा बच्चा अपनी छाया को पकड़ने की कोशिश कर रहा था। सुबह थी, सर्द सुबह! मां काम में लगी थी, बच्चा आंगन में धूप ले रहा था। उसको अपनी छाया दिखाई पड़ रही थी। तो वह छाया को पकड़ने के लिए आगे बढ़े, लेकिन खुद आगे बढ़े तो छाया भी आगे बढ़ जाए। जितनी बुद्धि बच्चे में हो सकती है, सब तरकीबें उसने लगाईं। इधर से चक्कर मार कर गया, उधर से चक्कर मार कर गया, लेकिन जहां से भी चक्कर मार कर जाए, वह छाया उसके साथ हट जाए। रोने लगा। उसकी मां ने उसे बहुत समझाया। राम खड़े होकर देखते रहे। यह खेल तो वही है जो पूरे संसार में हो रहा है, इसलिए राम खड़े होकर देखते रहे। उसकी मां ने बहुत समझाया कि पागल ऐसे छाया नहीं पकड़ी जा सकती! छाया तो हट ही जाएगी। मगर छोटे बच्चे को कैसे समझाओ? वह कहे कि मैं तो पकडूंगा, मैं पकड़ कर रहूंगा, कोई तरकीब होनी चाहिए।
आखिर राम आगे बढ़े। उन्होंने उस बच्चे की मां को कहा कि तू समझा न सकेगी, यह हमारा धंधा है। हम यही काम करते हैं। लोगों को यही समझाते हैं कि कैसे।
उस बच्चे का हाथ लिया, पूछा उससे कि तू क्या पकड़ना चाहता है? उसने कहा
कि वह छाया का सिर पकड़ना है। उस बच्चे का हाथ पकड़ कर उसके सिर पर रख दिया। बच्चे के ही सिर पर रख दिया! खिलखिला कर बच्चा हंसने लगा। उसने कहाः मैं जानता ही था कि कोई न कोई तरकीब होगी पकड़ने की। मां से कहने लगाः देख, पकड़ ली न छाया! अब हाथ अपने सिर पर पड़ा तो छाया के सिर पर भी पड़ गया।
ईश्वर को बुला लो, सब ऐश्वर्य चला आता है। जीसस का बड़ा प्रसिद्ध वचन है, मुझे बहुत प्यारा हैः सीक यी फर्स्ट दि किंगडम ऑफ गॉड, देन आल एल्स शैल बी ऐडिड अनटू यू। पहले ईश्वर के राज्य को खोज लो, फिर शेष अब अपने आप मिल जाएगा।
मगर हम उलटे लगे हैं। हम कहते हैं कि शेष सब पहले!

मेरे पास लोग आकर कहते हैं। वे कहते हैंः अभी नहीं, अभी तो संसार, घर-गृहस्थी, अभी तो सब पहले हम कर लें; संन्यास तो अंत में लेंगे। पहले शेष सब, फिर परमात्मा! पहले छाया पकड़ेंगे, फिर छाया के मालिक को पकड़ेंगे।
यह संसार बड़ा बचकाना है! तुम जरा अपनी ही तरफ सोचो। दौड़े रहते बाहर पकड़ने के लिए, क्या-क्या नहीं पाना चाहते हो! मिलता कभी कुछ? हाथ लगता कभी कुछ? और तुम्हारे भीतर संपदाओं की संपदा है! तुम्हारे भीतर साम्राज्यों का साम्राज्य है!
जो नरपति को गिरह बुलावै। सेना सकल सहज ही आवै।।
कौन सी सेना है इस सम्राट की? एक और अर्थ में भी यह सूत्र महत्वपूर्ण है। कुछ लोग क्रोध को वश में करने में लगे हैं, कुछ लोग लोभ को वश में करने में लगे हैं, कुछ लोग काम को वश में करने में लगे हैं। और-और हजार बीमारियां हैं। लेकिन जानने वाले कहते हैंः बस राम, एक औषधि है। रामबाण औषधि है! बीमारियां कितनी ही हों, तुम राम की औषधि पी लो, कि सब व्याधियों से, सब उपाधियों से छुटकारा हो जाएगा। तुम राम-नाम की समाधि लगा लो।
तुम क्रोध को सीधे-सीधे न जीत सकोगे। क्योंकि जिसके भीतर राम का दीया नहीं जला, उसके भीतर क्रोध न होगा तो और क्या होगा? वह क्रुद्ध है ही! क्रुद्ध है जीवन पर। क्रुद्ध है, क्यों मैं हूं, इस पर। क्रुद्ध है, क्यों संसार ऐसा है, इस पर। क्रुद्ध है, पूछता है कि कुछ भी न होता तो क्या हर्जा था? अगर मैं न होता तो क्या बिगड़ा जाता था? क्रुद्ध है हर छोटी-छोटी चीज पर। हां, कभी-कभी क्रोध फूट पड़ता है, लेकिन ऐसे क्रोध उसके भीतर सघन है, पकता ही रहता है। कभी-कभी मवाद बहुत हो जाती है तो बाहर आ जाती है, अन्यथा भीतर क्रोध सड़ाता ही रहता है उसे।
तुम जब कभी-कभी क्रुद्ध होते हो तो यह मत सोचना कि क्रोध का कारण मौजूद हो गया, इसलिए क्रुद्ध हो गए। क्रोध तो तुम्हारे भीतर मौजूद ही था। बारूद तो भीतर तैयार ही थी। बाहर तो निमित्त मिल गया, एक बहाना, एक जरा सी चिनगारी, कि विस्फोट हो गया।
बुद्ध ने कहा हैः सूखे कुएं में बांधो बाल्टी रस्सी में और डालो। खड़खड़ाओ खूब, खींचो, पानी भर कर नहीं आएगा। भरे कुएं में बाल्टी डालो, ज्यादा खड़खड़ाने का सवाल ही नहीं है, तुम्हारे डालते ही बाल्टी भर जाती है। खींचो, जल से भरी आ जाएगी। क्या तुम सोचते हो बाल्टी डालने के पहले कुएं में पानी न था? पानी न होता तो बाल्टी में आता ही कैसे? पानी तो भरा ही था, इसीलिए बाल्टी में आ गया।
किसी ने तुम्हें गाली दी--गाली यानी बाल्टी डाली तुम्हारे भीतर, खड़खड़ाई--तुम्हारे भीतर क्रोध हो ही न तो बाल्टी खाली लौट आएगी। तुम्हारे भीतर क्रोध भरा हो तो बाल्टी भरी लौट आएगी। गालियां बाल्टियां हैं। परिस्थितियां बाल्टियां हैं। मनःस्थिति तुम्हारे भीतर जैसी है, वही भर कर आ जाएगा। वही बाल्टी किसी गंदे नाले में डालोगे तो गंदा जल आएगा और किसी स्वच्छ सरोवर में डालोगे तो स्वच्छ जल आएगा। बुद्ध में वही बाल्टी डालोगे तो बुद्धत्व को लेकर आएगी।
निमित्त बाहर है, लेकिन मूल कारण भीतर है। जब तक तुम भीतर सोए हो, प्रभु का स्मरण नहीं हुआ, भीतर गहरी नींद में पड़े हो और राम की सुध नहीं आई, अपनी सुध नहीं आई--तब तक तुम कितना ही लड़ो क्रोध से, मोह से, माया से, जीत न सकोगे। एक तरफ से दबाओगे, दूसरी तरफ से उभर कर रोग खड़ा हो जाएगा। रोग दबाने से नहीं मिटते। रोगों का मूल कारण मिटाना होता है। तुम तो रोगों के ऊपरी लक्षणों से लड़ रहे हो।
सारी दुनिया में यही चल रहा है, लोग लक्षणों से लड़ रहे हैं। लोग जाकर कसम ले लेते हैं मंदिर में कि अब क्रोध न करेंगे। क्या तुम सोचते हो कसम लेना क्रोध को रोक पाएगी? काश, इतना आसान होता! काश, कसमों से बातें हल होतीं! लोग व्रत ले लेते हैं--अणुव्रत, महाव्रत! काश, व्रतों के लेने से जीवन रूपांतरित होता होता! व्रत टूटते हैं, और कुछ भी नहीं होता। और ध्यान रखना, लिए गए व्रत जब टूटते हैं तो भयंकर हानि पहुंचाते हैं।
इसलिए मैं तुमसे कहता हूंः व्रत तो कभी लेना ही मत। क्योंकि पहली तो बात यह हैः व्रत लेने से कभी कोई रूपांतरण नहीं होता। अगर तुम समझ ही गए हो

कि क्रोध व्यर्थ है, तो व्रत थोड़े ही लेना पड़ेगा, बात खतम हो गई, तुम समझ गए कि क्रोध व्यर्थ है।
तुम दीवाल से निकलने की कोशिश थोड़े ही करते हो; दरवाजे से निकलते हो। क्योंकि तुम जानते हो कि दीवाल है, सिर टूटेगा। वह जो शंकराचार्य को मानने वाला मायावादी है, जो कहता है कि सब माया है, वह भी दीवाल से नहीं निकलता। पुरी के शंकराचार्य भी दरवाजा खोजते हैं! महाराज, आप तो कम से कम दीवाल से निकल जाओ! सब माया है, दरवाजा भी माया है, दीवाल भी माया है; अब माया माया में क्या भेद है? जब दीवाल है ही नहीं, सिर्फ आभासती है, तो निकल ही जाओ न! मगर वहां सिद्धांत काम नहीं आते। वह उनको भी पता है। कहते हैंः ब्रह्म सत्य, जगत मिथ्या। मानते कुछ और हैंः जगत सत्य, ब्रह्म मिथ्या! कहां का ब्रह्म!
यह जो तुम्हारी व्रतों की परंपरा है, यह संभव ही इसलिए हो पाती है कि नासमझी है। क्रोध है और क्रोध जलाता है, दग्ध करता है, पीड़ा देता है, घाव बनाता है--तो कसम खा लेते हो। मगर कसम से कैसे क्रोध रुकेगा? क्या करोगे तुम कसम खाकर? जब क्रोध उठेगा झंझावात की तरह, तब तुम क्या करोगे? दबा लोगे, घोंट लोगे, पी जाओगे। मगर यह पीया गया क्रोध तुम्हारे भीतर जहर बन कर घूमेगा, तुम्हारे रोएं-रोएं में समा जाएगा। निकल जाता तो अच्छा ही था, वमन हो जाता, जहर बाहर निकल जाता व्यवस्था से। अब यह तुम्हारी व्यवस्था का अंग हो जाएगा।
तुम्हारे मुनि ऐसे ही अकारण ही तो दुर्वासा नहीं हो जाते। क्रोध को खूब दबाते हैं, तब दुर्वासा हो जाते हैं। फिर छोटी-मोटी बात, कि भभके। जरा सी बात, जिस बात से कोई भी न भभकता, साधारणजन भी न भभकता, उस बात से भी दुर्वासा भभक जाते हैं। और ऐसे भभकते हैं कि एकाध जन्म नहीं बिगाड़ते, आगे के दो-चार जन्म बिगाड़ देने का अभिशाप दे देते हैं!
तुम्हारे ऋषि-मुनि अभिशाप देते रहे? ऋषि और मुनि और अभिशाप? ऋषि और मुनि का जीवन तो आशीर्वाद होना चाहिए, बस आशीर्वाद। अभिशाप?
लेकिन अभिशाप का कारण है--वे दबाए गए क्रोध, ईर्ष्याएं, वैमनस्य, हिंसाएं, वे सब कहां जाएंगी? वे सब इकट्ठी होती हैं, सघन होती हैं। कामवासनाएं दबा कर बैठ जाते हैं तो चित्त कामवासनाओं से ही भर जाता है। फिर चित्त में कामवासनाओं के ही विचार उठते हैं, फिर कुछ और नहीं उठता।
फिर ऊपर वे कितना ही राम-राम जपें और माला कितनी ही तेजी से फेरें... तेजी से फेरते हैं ताकि भीतर जो हो रहा है वह पता न चले, उलझे रहें किसी तरह, लगे रहें। मगर उससे कुछ फर्क नहीं पड़ता। वह जो भीतर हो रहा है, वह हो रहा है। भीतर एक फिल्म चल रही है उनके।
जितनी अश्लील फिल्में तुम्हारे ऋषि-मुनि देखते हैं, उतनी अश्लील फिल्में कोई नहीं देखता। कोई देख ही नहीं सकता! अश्लील फिल्में देखने के लिए कुछ अर्जन करना होता है; कामवासना का खूब दमन करना होता है। किस इंद्र को पड़ी है कि रूखे-सूखे बैठे एक ऋषि, ऐसे ही मरे-मराए, अब इनको और क्या मारना है, कि इनके पास भेजता अप्सराओं कि जाओ और नाचो! कोई अप्सराओं को दंड देना है? कोई अप्सराओं का कसूर है?
न कोई अप्सराएं कहीं से आतीं, न कहीं जातीं; ऋषि-मुनियों के भीतर ही दबी हुई जो कामवासना है, यह इतनी भयंकर हो उठती है कि इसका प्रक्षेपण शुरू हो जाता है। मनोविज्ञान कहता है कि किसी भी वासना को दबा लो तो उसका हैलूसिनेशन, उसका प्रक्षेपण शुरू हो जाता है। तुम उसी को देखने लगोगे बाहर। पहले रात सपनों में देखोगे, फिर खुली आंख देखने लगोगे, दिवा- स्वप्नों में देखने लगोगे। और फिर तो तुम्हारे सामने इतनी स्पष्ट होने लगेंगी तस्वीरें, जितना दमन बढ़ता जाएगा उतनी तस्वीरें स्पष्ट होती जाएंगी। जब दमन पूर्ण होगा तो तस्वीरें थ्री-डायमेंशनल हो जाएंगी, बिल्कुल यथार्थ मालूम होंगी। ऋषि-मुनियों की मैं गलती नहीं कहता। उन्होंने बराबर थ्री-डायमेंशनल अप्सराएं देखीं--जिनको तुम छू सकते हो, जिनसे बात कर सकते हो। दबाया भी खूब था, अर्जन किया था।
व्रत लेकर तुम करोगे क्या? व्रत लेने से समझ बढ़ेगी? समझ ही होती तो व्रत लेते क्यों? और समझ ही बढ़ सकती है तो व्रत लेने की कोई जरूरत न पड़ेगी।
तुम मंदिर में जाकर कसम तो नहीं खाते कि मैं कसम खाता हूं कि रोज कचरा अपने

घर में सुबह इकट्ठा करके बाहर कचरेघर में फेंकूंगा! रोज फेंकूंगा, नियम से फेंकूंगा; कसम खाता हूं, कभी नियम नहीं तोडूंगा! तुम अगर ऐसी कसम खाओ तो तुम्हारे मुनि महाराज भी थोड़े हैरान हों कि यह भी क्या कसम है!
नरेंद्र के पिता थोड़े झक्की हैं। मस्त हैं, लोग झक्की समझते हैं। वे
गए तीर्थयात्रा को। वे चल पड़ते हैं जब उनकी मौज होती है, बिना किसी को खबर किए। बताते हैं कि पूरब जा रहे हैं, चले जाते हैं पश्चिम, ताकि घर वाले उनका पीछा न कर सकें और पता न लगा सकें कि कहां हैं। निश्चिंत भाव से! पहुंच गए जैन तीर्थ--शिखरजी। वहां किसी दिगंबर जैन मुनि के दर्शन किए। वहां और भी लोग थे, सब नियम ले रहे थे। क्योंकि जैन मुनियों का वह खास काम है--व्रत लो! तीर्थयात्रा की, अब व्रत लेकर जाओ; अब यहां कसम खाओ इस तीर्थ-स्थल में। सब ले रहे थे। कोई कसम खा रहा था कि रात्रि-भोजन का त्याग करूंगा। कोई कह रहा था कि अब नमक नहीं खाऊंगा। कोई कह रहा था कि अब घी का उपयोग नहीं करूंगा। कोई कुछ, कोई कुछ। जब उनका नंबर आया तो उन्होंने कहा कि महाराज, कसम खाता हूं कि अब से बीड़ी पीऊंगा।
झक्की हैं, मगर बात बड़े पते की कही उन्होंने! मुनि भी थोड़े चौंके। जिंदगी हो गई उनको भी लोगों को व्रत दिलवाते, मगर यह व्रत! पूछा कि होश में हो? यह कैसा व्रत!
तो उन्होंने कहा कि दूसरे तो व्रत कई लेकर देखे, टूट जाते हैं; यह व्रत ऐसा है, कभी नहीं टूटेगा। और व्रत के न टूटने से आत्मा में बल आता है।
यह बात गहरी है! जब भी व्रत टूटता है तो आत्मा निर्बल होती है। यह बात बड़ी मनोवैज्ञानिक है। कभी-कभी झक्की बड़ी गहरी बातें कह जाते हैं। बड़ी दूर की बातें कह जाते हैं। क्योंकि उन्हें फिकर तो होती नहीं है कि क्या कह रहे हैं। जैसा उन्हें सूझता है वैसा कह देते हैं। लोकलाज की फिकर नहीं। लोकलाज की फिकर हो तो कोई ऐसी कसम खाए कि कल से बीड़ी पीएंगे! और तब से वे बीड़ी पीते हैं, नियमपूर्वक पीते हैं। धार्मिक नियम हो गया! अब तो उनसे कोई छुड़वा भी नहीं सकता। व्रत उन्होंने ऐसा लिया, जो पूरा हो सके। परमात्मा अगर कहीं होगा तो जरूर उन पर प्रसन्न होगा कि कम से कम एक व्रतधारी तो है। हालांकि यह अणुव्रत है, बीड़ी कोई बड़ी चीज नहीं है। छोटा ही व्रत है, मगर पूरा तो कर रहे हैं, नियम से पूरा कर रहे हैं।
लोग व्रत ले लेते हैं और टूट-टूट जाते हैं। परिणाम क्या होता है? एक आत्महीनता पैदा होती है। एक व्रत लिया, फिर टूट गया, पूरा न हो सका। ग्लानि पैदा होती है। अपने ही प्रति निंदा पैदा होती है। अपराध-भाव पैदा होता है। और इस जगत में सब से बुरी बात है अपराध-भाव पैदा हो जाना। जिसके मन में अपना ही सम्मान न रहा, उसके जीवन में परमात्मा की तलाश करनी बड़ी असंभव हो जाएगी। जिसका आत्म-गौरव खंडित हो गया; जिसे यह समझ में आ गया कि मैं दो कौड़ी का भी नहीं हूं--जो भी करता हूं वही टूट जाता है; जो भी करना चाहता हूं वही नहीं कर पाता हूं--उसके जीवन में तो पैर लड़खड़ा जाएंगे। वह तो यह आशा ही छोड़ देगा कि मैं कभी परमात्मा को पाने का अधिकारी हो सकता हूं। तुम लाख उससे कहो कि आत्मा में परमात्मा छिपा है, तुम ठोंक-ठोंक कर समझाओ उसे कि तुम्हारा स्वभाव ही मोक्ष है, निर्वाण है; पर नहीं उसे कुछ समझ में आएगा। वह तो अपने को तुमसे कहीं ज्यादा भलीभांति जानता है। वह जानता है कि छोटे- छोटे काम तो सधते नहीं। तीस साल हो गए, धूम्रपान छोड़ना चाहता हूं, वह नहीं छूटता। और मुझसे क्या होगा! मैं तो पापी हूं! नरक ही मेरा स्थान है! स्वर्ग की आशा करना ही व्यर्थ है! उसके जीवन में गहन निराशा पैदा हो जाती है। और इस सबके पीछे मौलिक कारण क्या है? मौलिक कारण यह है कि तुम पत्तों-पत्तों पर जाते हो, जड़ नहीं काटते।
दरिया ठीक कहते हैंः जो नरपति को गिरह बुलावै।
ध्यान को पकड़ो! ध्यान है निमंत्रण परमात्मा के लिए। आने दो राम की थोड़ी झलक तुम्हारे भीतर। और उस झलक के साथ ही तुम पाओगेः जो छोड़ना था, सदा छोड़ना था, छूट गया; और जो पकड़ना था, सदा पकड़ना था, अपने आप हाथ में आ गया है।
न छोड़ना पड़ता है कुछ, न तोड़ना पड़ता है कुछ, न पकड़ना पड़ता है कुछ। जीवन में एक सहज सरलता से क्रांति घटनी शुरू हो जाती है। और सहज क्रांति का सौंदर्य ही और है।
जो कोई कर भान प्रकासै। तो निस तारा सहजहि नासै।।

जिसके भीतर प्रकाश हो गया, उसके भीतर रात का आखिरी तारा अपने आप डूब जाता है, डुबाना नहीं पड़ता। सुबह सूरज निकल कर घोषणा नहीं करता कि भाइयो एवं बहनो! अब रात समाप्त हो गई! अब तारागण अपने-अपने घर जाएं! इधर सूरज निकला, उधर तारे गए, निकलता ही निकलता... सूरज का निकलना और तारों का जाना एक साथ, युगपत घटित होता है। सूरज निकल कर अंधेरे से निवेदन नहीं करता कि अब आप अपने घर पधारिए।
अलबर्ट आइंस्टीन के संबंध में मैंने सुना है। भुलक्कड़ स्वभाव का आदमी था। अक्सर ऐसा हो जाता है, जो लोग जीवन की बड़ी गहन समस्याओं में उलझे होते हैं, उन्हें छोटी-छोटी बातें भूल जाती हैं। जो आकाश, चांद-तारों में उलझे होते हैं, उन्हें जमीन भूल जाती है। इतनी विराट समस्याएं जिनके सामने हों, उनके सामने कई दफे अड़चन हो जाती है। जैसे एक बार यह हुआ कि उसको लगा, अलबर्ट आइंस्टीन को, कि आ गई बीमारी जिसके लिए डाक्टर ने कहा था। डाक्टर ने उसको कहा था कि कभी न कभी, डर है, तुम्हारी रीढ़ कमजोर है, तो यह हो सकता है कि बुढ़ापे में तुम्हें झुक कर चलना पड़े, तुम कुबड़े हो जाओ। एक दिन उसे लगा, सुबह ही सुबह बाथरूम में से निकलने को ही था, कि आ गया वह दिन। वहीं बैठ गया। घंटी बजा कर पत्नी को बुलाया, कहा कि डाक्टर को बुलाओ, लगता है मैं कुबड़ा हो गया। चलते ही नहीं बन रहा है मुझसे। सिर सीधा करते नहीं बन रहा है। रीढ़ झुक गई है।
डाक्टर भागा आया। डाक्टर ने गौर से देखा और कहा कि कुछ नहीं है, आपने ऊपर का बटन नीचे लगा लिया है। अब उठना चाहते हो तो उठोगे कैसे?
आकाश की बातों में उलझा हुआ आदमी अक्सर, इधर-उधर के बटन हो जाएं, कोई आश्चर्य की बात नहीं।
एक मित्र के घर अलबर्ट आइंस्टीन गया था, मित्र ने निमंत्रण दिया था। फिर गपशप चली। खाना चला, गपशप चली। मित्र घबड़ाने लगा, रात देर होने लगी, ग्यारह बज गए, बारह बज गए। आइंस्टीन सिर खुजलाए, जम्हाई ले, घड़ी देखे, मगर जो बात कहनी चाहिए--कि अब मैं चलूं--वह कहे ही नहीं। एक बज गया, मित्र भी घबड़ा गया कि यह क्या रात भर बैठे ही रहना पड़ेगा! अब अलबर्ट आइंस्टीन जैसे आदमी से कह भी नहीं सकते कि अब आप जाइए, इतना बड़ा मेहमान! और देख भी रहा है कि जम्हाई आ रही है अलबर्ट आइंस्टीन को, आंखें झुकी जा रही हैं, घड़ी भी देखता है; मगर बात जो कहनी चाहिए वह नहीं कहता। आखिर मित्र ने कहा कि कुछ परोक्ष रूप से कहना चाहिए। तो उसने कहा कि मालूम होता है आपको नींद आ रही है, जम्हाई ले रहे हैं, घड़ी देख रहे हैं, काफी नींद मालूम होती है आपको आ रही है।
अलबर्ट आइंस्टीन ने कहा कि आ तो रही है, मगर जब आप जाएं तो मैं सोऊं। मित्र ने कहाः आप कह क्या रहे हैं? यह मेरा घर है!
तो अलबर्ट आइंस्टीन ने कहाः भलेमानुष! पहले से क्यों नहीं कहा? चार घंटे से सिर के भीतर एक ही बात भनक रही है कि यह कब कमबख्त उठे और कहे कि अब हम चले! इतनी दफे घड़ी देख रहा हूं, फिर भी तुम्हें समझ में नहीं आ रहा। मैं यही सोच रहा कि बात क्या है? जम्हाई भी लेता हूं, आंख भी बंद कर लेता हूं, सुनता भी नहीं तुम्हारी बात कि तुम क्या कह रहे हो। और यह भी देख रहा हूं कि तुम भी जम्हाई ले रहे हो, घड़ी तुम भी देखते, जाते क्यों नहीं? कहते क्यों नहीं कि अब जाना चाहिए?
आदमी करीब-करीब एक गहरे विस्मरण में जी रहा है, जहां उसे अपने घर की याद ही नहीं है; जहां उसे भूल ही गया कि मैं कौन हूं; जहां उसे भीतर जाने का मार्ग ही विस्मृत हो गया है। और इसलिए सारी अड़चन पैदा हो रही है। एक काम कर लोः भीतर उतरना सीख जाओ। और भीतर ज्योति जल ही रही है, जलानी नहीं है--बिन बाती बिन तेल! वह दीया जल ही रहा है।
जो कोई कर भान प्रकासै।
और जिसके भीतर प्रकाश हो गया--
तो निस तारा सहजहि नासै।।
गरुड़ पंख जो घर में लावै। सर्प जाति रहने नहिं पावै।।
इसलिए अंधेरे से मत लड़ो, प्रकाश को लाओ। और तुम अंधेरे से लड़ रहे हो! अंधेरे से लोग लड़े जा रहे हैं। कोई कहता हैः कामवासना मिटा कर रहेंगे। कोई कहता हैः क्रोध मिटा कर रहेंगे। कोई कहता हैः लोभ मिटा कर रहेंगे।

तुम मिट जाओगे, लोभ नहीं मिटेगा, कामवासना नहीं मिटेगी। तुम अंधेरे
से लड़ रहे हो; ये सब नकार हैं। दीया जलाओ! इसलिए मैं कहता हूंः ध्यान, ध्यान और ध्यान! सिर्फ दीया जलाओ और शेष सब चीजें अपने आप विदा हो जाएंगी।
दरिया सुमरै एकहि राम। एक राम सारै सब काम।।
जिसको मैं ध्यान कह रहा हूं, उसको दरिया कहते हैं राम का सुमिरण। एक
ही बात है।
एक राम सारै सब काम।
फिर इतने-इतने उपद्रव, जो तुम अलग-अलग उलझे हुए हो और पागल हुए जा रहे हो, ये सब सम्हल जाते हैं।
आदि अंत मेरा है राम।
दरिया कहते हैंः जब से जाना, जब से जागा, तब से एक बात साफ हो गई कि वही मेरा प्रारंभ है, वही मेरा अंत है, वही मेरा मध्य है।
उन बिन और सकल बेकाम।
उनके बिना और सब व्यर्थ है।

मेरे इस सूने जीवन में
तुम आशा बन कर आते हो!

आ जाती जब नैराश्य-निशा,
छा जाता है तम आस-पास,
जीवन का पथ छिप-छिप जाता, हो जाता मेरा मन उदास,
ऐसे में तुम राका-शशि से
आ मंद-मंद मुस्काते हो!

जीवन के इस सूने नभ में
घनघोर घटा छा जाती है,
सज-धज कर नूतन साज सजा
जब अमा-निशा आ जाती है,
ऐसे में तुम खद्योत बने
जगमग जग ज्योति जगाते हो!

जीवन के नीरव सपनों को
दुख-शिशिर शून्य कर जाता है, दावा की जलती लपटों से
जब मृदु उपवन जल जाता है, ऐसे में तुम ऋतुराज बने
कोयल सी कूक सुनाते हो!

आतुर जग के सब साज क्षणिक
नश्वरता का नर्तन होता,
यह देख चकित हो मेरा मन
जग की नादानी पर रोता,
तब तुम्हीं प्रेरणा-राग छेड़
नवजीवन-गीत सुनाते हो!

उसकी तरफ आंख उठाओ। अमी झरत, बिगसत कंवल! उसकी तरफ हृदय को खोलो--और मृत्यु गई, अंधकार गया, पाप गया!
कहा करूं तेरा बेद पुराना।
सुनो, क्रांति का उदघोष है दरिया के इस वचन में!
कहा करूं तेरा बेद पुराना।
क्या करूं तेरे वेद का और तेरे पुराण का? मुझे तो तू ही चाहिए! ये खिलौने देकर मुझे न समझा। तू मुझे इतना नासमझ न समझ। पंडितों को भुला लिया, भुला ले। मैं कोई पंडित नहीं हूं।

कहा करूं तेरा बेद पुराना। जिन है सकल जगत भरमाना।।
वेद और पुराण में सारा जगत उलझा हुआ है--कोई कुरान में, कोई बाइबिल में, कोई धम्मपद में। सारा जगत उलझा हुआ है। लोग शब्दों के जाल में लगे हैं; शब्दों की खाल निकाल रहे हैं। बात में से बात निकालते जाते हैं। बड़ा विवाद खड़ा किया हुआ है। फुर्सत ही नहीं है किसी को राम की तरफ नजर उठाने की।
सिगमंड फ्रायड के जीवन में उल्लेख है कि जीवन के अंतिम वर्ष में उसने अपने सारे सहयोगियों को, सारे मित्रों को, शिष्यों को अपने घर निमंत्रित किया, शायद ये आखिरी दिन हैं अब। सारी दुनिया में उसके शिष्य थे, वे सब इकट्ठे हुए। खास-खास! उनको भोजन पर आमंत्रित किया। फ्रायड बैठा है, भोजन चल रहा है, विवाद छिड़ गया। फ्रायड के ही किसी सिद्धांत के संबंध में विवाद छिड़ गया कि फ्रायड का क्या मतलब है। एक कहता कुछ, दूसरा कहता कुछ, तीसरा कहता और ही कुछ। तू-तू मैं-मैं होने लगी। बात यहां तक बढ़ गई कि मार-पीट हो जाए, ऐसी संभावना आ गई।
फ्रायड ने जोर से टेबल पीटी और कहा कि सज्जनो, मैं अभी जिंदा हूं, यह तुम भूल ही गए। मैं मर जाऊं, फिर तो यह गति होगी, मुझे पता है; मगर मेरे सामने यह गति कर रहे हो तुम! मैं मौजूद हूं, तुम मुझसे पूछते भी नहीं कि आपका क्या प्रयोजन है! कम से कम, जब तक मैं मौजूद हूं, तब तक तो मुझसे पूछ लो। आपस में ही लड़े जा रहे हो!
परमात्मा सदा मौजूद है, उससे ही पूछो। क्या वेद, पुराण, कुरान में उलझे हो? जो मोहम्मद के कान में गुनगुना गया, वह तुम्हारे कान में भी गुनगुनाने को राजी है। जो वेद के ऋषियों के हृदय में तरंगें उठा गया, तुम पर उसकी अनुकंपा कुछ कम नहीं है। तुम भी उसके उतने ही हो। देखा नहीं, दरिया ने कहा कि "जो मैं धुनिया तो भी हूं राम तुम्हारा।" माना कि धुनिया हूं, इससे क्या होता है? हूं तो तुम्हारा! तुम मेरे उतने ही हो जितने किसी और के! मैं तुम्हारा उतना ही हूं जितना कोई और तुम्हारा। दीन-हीन सही, अपढ़-अज्ञानी सही; लेकिन हूं तो तुम्हारा! बस इतना ही काफी है। तो भरोसा है कि तुम्हारी अनुकंपा मुझ पर उतनी ही है जितनी किसी और पर।
कहा करूं तेरा बेद पुराना। जिन है सकल जगत भरमाना।।
कहा करूं तेरी अनुभै-बानी। जिन तें मेरी सुद्धि भुलानी।।
और सभी कहते हैं कि अनुभव की वाणी है। वेद भी यही कहते, धम्मपद भी यही कहता, कुरान, बाइबिल भी यही कहते कि सब अनुभव की वाणी है। और मेरी सुधि इन सब अनुभवियों की वाणी में भटक गई। मुझे मेरा पता ही नहीं मिल रहा है। इतने सिद्धांत, इतने सिद्धांतों के जाल, इनमें से बाहर निकलना मुश्किल हुआ जा रहा है। मछली की तरह फंस गया हूं सिद्धांतों के जाल में।
और यह भी नहीं कहते दरिया कि यह अनुभव की वाणी न होगी। लेकिन किसी दूसरे के अनुभव की वाणी तुम्हारा अनुभव नहीं बनती। नहीं बन सकती है! अनुभव हस्तांतरणीय नहीं है। अनुभव जैसे ही तुमसे कहा गया, झूठ हो जाता है। मेरा अनुभव मेरा अनुभव है, कोई उपाय नहीं है कि इसे मैं तुम्हारे हाथ में दे दूं। देना चाहता हूं, तो भी कोई उपाय नहीं है। जैसे ही शब्दों में बांधूंगा, आधा तो मर जाएगा। और फिर तुम तक पहुंचते-पहुंचते, जो आधा बचा है, वह भी मर जाएगा। और तुम जो समझोगे, वह कुछ और ही होगा। तुम वही समझोगे तो तुम समझ सकते हो। तुम्हारी अपनी अपेक्षाएं हैं। तुम्हारी अपनी धारणाएं हैं। तुम्हारा अपना बंधा हुआ चित्त है। तुम्हारे पास एक मन है; उस मन से ही तुम सुनोगे।
मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन एक होटल में ठहरा था। ट्रेन पकड़नी थी। भागा-भागा नीचे आया, टैक्सी में सामान रखा। सब सामान रख गया, एक नजर डाली, तभी देखा कि छाता भूल आया है ऊपर ही। फिर भागा। चौथी मंजिल, पुराने दिनों की कहानी, लिफ्ट भी नहीं। चढ़ा सीढ़ियां हांफता-हांफता, जब तक अपने कमरे पर पहुंचा, तब तक वह कमरा किसी और को दिया जा चुका था। तो ताले के छेद में से देखा कि भीतर क्या हो रहा है। छाते का क्या हुआ! मगर भीतर एक रंगीन दृश्य है। छाता-वाता भूल गया। एक नया-नया विवाहित जोड़ा हनीमून मनाने आया है। पति पूछ रहा है पत्नी सेः ये प्यारी-प्यारी आंखें, ये मीनाक्षी जैसी आंखें, किसकी हैं? मुल्ला आतुर होकर सुनने लगा, सांस रोक कर सुनने लगा।

पत्नी ने कहाः तुम्हारी! तुम्हारी! और किसकी?
और यह सुए जैसी लंबी नाक, यह किसकी है?
तुम्हारी! तुम्हारी! और किसकी?
और ये लाल सुर्ख ओंठ? ... और ऐसी यात्रा चलने लगी पूरे शरीर पर, पूरा भूगोल... ! इधर मुल्ला की ट्रेन, इधर नीचे खड़ी टैक्सी, वह भोंपू बजा रहा, और इधर भूगोल रसपूर्ण से रसपूर्ण हुआ जा रहा। और छाता! उसकी तुम मुसीबत समझ सकते हो। आखिर उससे रहा नहीं गया, जब भोंपू बहुत बजा और उसने देखा घड़ी में कि अब चूकने की स्थिति है, जोर से दरवाजा खटखटाया और कहा कि एक बात मेरी भी सुन लो, जब छाते का नंबर आए तो ख्याल रखना, वह मेरा है!
अपनी-अपनी चित्त की धारणा है। अब वह छाता ही छाता छाया हुआ है!
तुम जब सुनते हो कुछ तो तुम खाली थोड़े ही सुनते हो, शून्य थोड़े ही सुनते हो, मौन थोड़े ही सुनते हो। हजार तुम्हारे विचार हैं--हिंदू है, मुसलमान है, ईसाई है, सब वहां खड़े हैं। जो तुमने पढ़ा है, सुना है, गुना है, सब वहां खड़ा है। उस सब भीड़-भाड़ में से जब अनुभव की वाणी गुजरती है, खंड-खंड हो जाती है, टुकड़े-टुकड़े हो जाती है। उस पर न मालूम कैसे-कैसे रंग चढ़ जाते हैं, न मालूम कैसे-कैसे ढंग चढ़ जाते हैं! तुम तक पहुंचते-पहुंचते कुछ का कुछ हो जाता है।

एक मकड़ी के उलझते हुए जालों की तरह।
जिंदगी हो गई अनबूझ सवालों की तरह।
छलछलाती है भरी आंख किसी खंडहर की,
कोई अहसास गुजरता है कुदालों की तरह।
जब से देखे हैं फटे पांव पहाड़ों के कहीं,
हर नदी दिखती है रिसते हुए छालों की तरह।
रोज सहता हूं कोई दर्द जलावतनी का, दौरे-ताजीर में आजाद ख्यालों की तरह।
मैं तेरे शहर में जब भी गया हूं, पाया है, कोई आवाज उफनती है उबालों की तरह।
दफन हैं ख्वाब कई जेहन के तहखाने में,
जुल्म के वक्त जमींदोज रिसालों की तरह।
दीखता है मुझे हर शख्स पिटे मोहरे सा,
दौर ये है किसी शतरंज की चालों की तरह।
अंधेरी रात सचाई का गला घोंट रही,
कोई फरेब उभरता है उजालों की तरह।

तुम्हारे शास्त्र फरेब हैं। और ऐसा नहीं है कि जिन्होंने कहा है, वे अनुभवी नहीं थे। जिन्होंने कहा है, वे अनुभवी थे। बुद्ध ने धम्मपद में अपने को उंडेल दिया है, और पर्वत के प्रवचन में जीसस ने अपने प्राण डालने की चेष्टा की है, और भगवदगीता में कृष्ण ने गा दिया है गीत जितनी श्रेष्ठता से गाया जा सकता है। मगर तुम तक पहुंचते-पहुंचते कुछ का कुछ हो जाता है।
एक मकड़ी के उलझते हुए जालों की तरह।
जिंदगी हो गई अनबूझ सवालों की तरह।
अंधेरी रात सचाई का गला घोंट रही,
कोई फरेब उभरता है उजालों की तरह।
शब्द बड़े फरेब सिद्ध हुए हैं। शब्दों से सावधान! शून्य को गहो, मौन को पकड़ो। क्योंकि मौन में ही, शून्य में ही परमात्मा तुमसे बोलेगा, तुम्हारा वेद जन्मेगा, तुम्हारा कुरान जन्मेगा, तुम्हारी बाइबिल पैदा होगी! और जब तुम्हारी होगी, अपनी होगी, निजता की होगी, तुम्हारे हृदय का उस पर रंग होगा, तुम्हारी धड़कन होगी उसमें, तुम उसमें सांस लेते हुए होओगे--वैसा जीवंत सत्य ही मुक्त करता है। उधार सत्य मुक्त नहीं करते, बंधन बन जाते हैं।
और चिंता न करना कि तुम अपढ़, तुम अज्ञानी, तुम्हारे वचन वेद जैसे शुद्ध कैसे हो पाएंगे? चिंता न करना कि तुम्हारी वाणी में बुद्ध जैसी

प्रखरता कैसे होगी? चिंता न करना। तुतलाया भी तुमने, तो भी अगर सत्य तुम्हारा है, तो बुद्धों के स्फटिक मणियों जैसे दिए गए सत्य भी तुम्हारे तुतलाते सत्यों के सामने फीके पड़ जाएंगे। तुम्हारा अपना अनुभव ही... । अंधे से कितनी ही प्रकाश की बातें करो, क्या होगा? और बड़े से बड़े महाकवि प्रकाश के गीत गाएं अंधे के सामने, तो क्या होगा? और अंधे की आंख खुले और अंधा रोशनी को देख ले, सब हो जाएगा।

मेरा स्वर सीमित रहने दो!
कसो न इतने तार, टूट कर
ही रह जाए जीवन-वीणा!
इसके जर्जर तारों का स्वर,
अस्फुट है अस्फुट ही रहने दो! मेरा स्वर सीमित रहने दो!

नहीं साध मेरी स्वर-लहरी, धरती अंबर को छू पाए!
केवल इसे तुम्हीं सुन पाओ, इसको अपने तक रहने दो!
मेरा स्वर सीमित रहने दो!

मेरी इस निरीहता की निज
क्षमता से तुलना मत करना! मेरे अंतर की साधों को,
निज पर अवलंबित रहने दो!
मेरा स्वर सीमित रहने दो!

मैंने अपनी श्रद्धा से प्रिय,
तुमको पूजित देव बनाया!
तुम केवल इतना ही कर दो,
मुझको भी कुछ तो रहने दो!
मेरा स्वर सीमित रहने दो!

चिंता न करना, तुम्हारा स्वर सीमित होगा, मगर तुम्हारा हो! तुतलाया हो, मगर तुम्हारा हो! अनगढ़ हो, मगर तुम्हारा हो! तो मुक्तिदायी है। नहीं तुम गा सकोगे गीत उपनिषदों जैसे। दरिया नहीं गा सके। नहीं गा सकोगे तुम गीत बुद्धों जैसे। चिंता नहीं है। यह प्रश्न कला का नहीं है, न भाषा का है, न व्याकरण का है, न शैली का है, न छंद का है। यह प्रश्न तो आत्म-अनुभव का है। और दूसरों की वाणी में अगर उलझ गए और दूसरों की वाणी को ही अगर अपनी वाणी मान लिया, तो फिर तुम्हारा सत्य तुम्हें कभी भी न मिलेगा। फिर तुम उलझे रहोगे मकड़ी के जालों में। सब सिद्धांत, सब शास्त्र मकड़ी के जाले हैं। सावधान!
कहा करूं यह मान बड़ाई। राम बिना सबही दुखदाई।।
दरिया कहते हैंः बहुत सम्मान मिलता है, मान मिलता है; लेकिन इस सबका कोई मूल्य नहीं है। राम के बिना कुछ भी मिल जाए, दुख ही लाता है, सुख नहीं लाता।
कहा करूं तेरा सांख औ जोग।
सांख्य भारत में पैदा हुआ सबसे ज्यादा सूक्ष्म शास्त्र है, सबसे ज्यादा बारीक दर्शन है। तो कहते हैंः क्या करूं तेरे सांख्य का और क्या करूं तेरे योग का? योग भारत में पैदा हुआ अभ्यास का सबसे ज्यादा वैज्ञानिक क्रम है। सांख्य विचार का और योग अभ्यास का। सांख्य मनन का और योग साधन का। ये चरमोत्कर्ष हैं। मगर दरिया कहते हैंः मेरे किस काम के? जब तक मेरे भीतर सांख्य पैदा न हो, जब तक मेरा योग न जन्मे, जब तक मेरा तुझसे योग न हो, जब तक तू मेरा सांख्य न बने--तब तक मैं राजी नहीं।
कहा करूं तेरा सांख औ जोग। राम बिना सब बंदन रोग।।

तेरे बिना तो मैंने सारी वंदनाओं को रोग जाना है, सारी प्रार्थनाओं
को दो कौड़ी का माना है। तू है तो सब है, तू नहीं तो कुछ भी नहीं।

इंद्रधनुषी सांझ के सूने क्षणों में,
प्रार्थना में झुक गया है शीश मेरा!

शांत हलचल हो गई सूने गगन की,
शांत हलचल हो गई है व्यथित मन की,
राग-रंजित सी दिशाएं शांत नीरव,
विकल पांखी ले चुके तरु पर बसेरा!

प्रार्थना में कुछ न कहने को हृदय की बात,
प्रार्थना में मन नहीं है रूप-गुण-लय-स्नात,
शेष केवल शांत नीरव तृप्ति-सुख का भाव,
छू नहीं सकता जिसे मन का अंधेरा!

इंद्रधनुषी सांझ के सूने क्षणों में,
प्रार्थना में झुक गया है शीश मेरा!

न तो शब्दों की कोई बात है प्रार्थना, न क्रियाकांड का इससे कोई संबंध है। भाव के, प्रेम के किसी क्षण में कहीं भी सिर झुक जाए, वहीं प्रार्थना हो जाती है। मगर राम की प्रतीति के बिना कैसे झुके सिर? कहां झुके सिर? राम की उपस्थिति के बिना कैसे यह अनुग्रह का भाव पैदा हो, कि सिर झुकाऊं, कि धन्यवाद दूं?
इसलिए तुम्हारी प्रार्थनाएं सिर्फ औपचारिकताएं हैं। तुम समय खराब कर रहे हो तुम्हारी प्रार्थनाओं में। पंडित-पुजारियों के साथ तुम जीवन का अमूल्य अवसर व्यर्थ कर रहे हो। अपने एकांत में, अपने ही ढंग से पुकारो! अपने एकांत में, अपने ही ढंग से, उससे दो बातें कर लो। दो बातें करनी हों तो दो बातें कर लो; न करनी हों, चुप बैठ रहो, मौन बैठ रहो। और प्रार्थना को कोई बंधी-बंधाई लकीर मत बनाना, कि वही-वही प्रार्थना रोज दोहरा रहे हैं। वह मुर्दा हो जाएगी, यांत्रिक हो जाएगी। इतना भी नहीं कर सकते क्या? परमात्मा से कहने को दो शब्द रोज उसी क्षण नहीं खोज सकते? वहां भी तुम तैयार किए हुए, पूर्व-नियोजित शब्दों का ही व्यवहार जारी रखोगे? कम से कम उससे तो हार्दिकता का नाता जोड़ो!
कहा करूं इंद्रिन का सुक्ख। राम बिना देवा सब दुक्ख।।
दरिया कहते हैंः मैंने तो सिवाय दुख के और कुछ भी नहीं पाया। इंद्रियों ने आशाएं बहुत दीं, आश्वासन बहुत दिए, वचन बहुत दिए, मगर वचन पूरे न किए। हर इंद्रिय ने कहा सुख दूंगी और हर इंद्रिय ने दुख दिया।
इस संसार में हर नरक के दरवाजे पर स्वर्ग की तख्ती लगी है। स्वर्ग की तख्ती देख कर तुम भीतर चले जाते हो। तुम्हारा तख्तियों पर बड़ा भरोसा है।
फिर भीतर फंस गए, फिर निकलना आसान नहीं। कब समझोगे? कितनी बार तो उलझ चुके हो! ऐसे भी तो बहुत देर हो चुकी है, अब जागो!
राम बिना देवा सब दुक्ख।
राम के बिना सिवाय दुख के और कुछ भी नहीं देखा है।

मैं एक बूंद जिस सागर की,
वह सागर अब तक पा न सकी!

जाने किस क्षण किस रवि ने निज
उत्तप्त किरण से वाष्प बना,
मुझको सागर से अलग किया,
दिखला अनुपम मोहक सपना!
मैं उड़ी छोड़ भू, अंबर में, पाने जीवन का नव-विकास,

था ज्ञात किसे बन जाएगा,
क्षण भर का उड़ना चिर प्रवास! जो छोड़ चली सागर असीम,
उस सागर में फिर आ न सकी।
मैं एक बूंद जिस सागर की,
वह सागर अब तक पा न सकी!

क्या ज्ञात मुझे कब तक मुझको
जग में यों ही भ्रमना होगा, क्या ज्ञात मुझे कब तक क्या-क्या जग में स्वरूप धरना होगा!
पर इतना दृढ़ विश्वास मुझे
जो सागर उस दिन छोड़ चली,
उसकी लहरों में एक दिवस
फिर लय जीवन अपना होगा!
विश्वास मुझे यह चिर महान,
यद्यपि अब तक पथ पा न सकी!
मैं एक बूंद जिस सागर की,
वह सागर अब तक पा न सकी!

सुख है क्या? तुम्हारे बीच और अस्तित्व के बीच छंद का छिड़ जाना सुख है। तुम्हारे बीच और अस्तित्व के बीच नृत्य का छिड़ जाना सुख है। तुम्हारे बीच और अस्तित्व के बीच जब कोई विरोध नहीं होता, तब सुख है। सुख एक संतुलन है, एक संगीत है, एक समन्वय है, एक लयबद्धता है! बूंद जब तक सागर में एक न हो जाए, तब तक सुख नहीं। राम सागर है, तुम बूंद हो।
दरिया कहै राम गुरमुखिया। हरि बिन दुखी राम संग सुखिया।।
कहते हैंः बस एक बात, एक पते की बात आखिर में कह देते हैं; सारे गुरुओं
ने यही कही है। सारे गुरुओं का सार यूं कह देते हैं। सारे गुरु-मुखों से यही गंगा निकली है--
हरि बिन दुखी राम संग सुखिया।
जो राम के बिना है, वह दुख में जी रहा है, नरक में जी रहा है; जो राम के साथ है, वह सुख में जी रहा है, वह स्वर्ग में जी रहा है। और चाहो तो अभी राम के साथ हो जाओ। चाहो तो इसी क्षण राम के साथ हो जाओ। चाहो तो इसी क्षण तुम्हारा जीवन एक गीत बने, एक नृत्य बने, एक उत्सव बने। चाहो तो इसी क्षण हजार-हजार फूल खिलें!

सतरंगी सपनों ने
पाया है जीवन।

यादों के झूले में
आकर कोई झूला,
आंगन में हंसता
गुलमोहर फूला।
फूलों से महका है
छोटा सा आंगन।

सिंदूरी संध्या में
कोयल की कूकें,
उठ आईं जियरा में
मीठी-सी हूकें
आएगा कब वो
मदमाता सावन।
मौसम ने छेड़ा है
सपनीले मन को,

छू कर जगाया है
सोए यौवन को।
सदियों से प्यासा है
मेरा ये उपवन!

पुरवा के झोंकों से
उड़ता है आंचल,
रह-रह कर होती है
सांसों में हलचल।
जैसे किसी ने
थामा है दामन।
सतरंगी सपनों ने
पाया है जीवन।

अभी उतर आएं सारे इंद्रधनुष तुम्हारे प्राणों में! अभी! शास्त्र छोड़ो, शब्द छोड़ो--शून्य गहो! हिंदू, मुसलमान, ईसाई होना छोड़ो--भक्त बनो! अमी झरत, बिगसत कंवल!
आज इतना ही।

अमी झरत, बिगसत कंवल
बारहवां प्रवचन

नया मनुष्य

पहला प्रश्नः मेरे आंसू स्वीकार करें! जा रही हूं आपकी नगरी से। कैसे
जा रही हूं, आप ही जान सकते हैं। मेरे जीवन में दुख ही दुख था। कब और कैसे क्या हो गया, जो मैं सोच भी नहीं सकती थी; अंदर-बाहर खुशी के फव्वारे फूट रहे हैं! आपने मेरी झोली अपनी खुशियों से भर दी है। मगर हृदय में गहन उदासी है और जाने का सोच कर तो सांस रुकने लगती है। आप हर पल मेरे रोम-रोम में समाए हुए हैं। मुझे बल दें कि जब तक आपका बुलावा नहीं आता, मैं आपसे दूर रह सकूं।

प्रेम शक्ति! मनुष्य का स्वयं से जुड़ जाना--और बस सुख के फव्वारे फूटने शुरू हो जाते हैं! मनुष्य का स्वयं से टूटे रहना--और जीवन विषाद है, दुख है, नरक है। सुख बाहर से नहीं आता।
मैंने तेरी झोली सुखों से नहीं भर दी है; तेरी झोली सदा से ही सुखों से भरी रही है। सुख हमारा स्वभाव है। पर नजर नहीं जाती! लोक-लोक में भटकती है दृष्टि, अपने पर नहीं जाती। और सबको हम देखते हैं, अपने को बिना देखे रह जाते हैं। सब जगह खोजते हैं, हर कोने-कातर में तलाशते हैं--बस एक अपने अंतस्तल में नहीं खोजते।
मैंने तेरी झोली खुशियों से नहीं भर दी है; सिर्फ तेरी आंखें तेरी भरी हुई झोली की तरफ मोड़ दी हैं! एक झलक मिल जाए कि फिर सारा अस्तित्व एक महोत्सव है।
और बड़ी आश्चर्य की बात तो यह है कि प्रत्येक व्यक्ति का यह स्वरूप-सिद्ध अधिकार है! तुम पैदा हुए हो आनंद के एक गीत होने को! तुम्हारी वीणा तैयार है कि छेड़ो और संगीत जन्मे। मगर वीणा पड़ी रह जाती है, संगीत पैदा नहीं होता। भीतर आंख नहीं जाती। गीत बीज ही रह जाते हैं, कभी फूल नहीं बन पाते। सारी पृथ्वी दुख में है। जैसे दुख में तू थी प्रेम शक्ति, वैसे दुख में सारे लोग हैं। और दुख अस्वाभाविक है। दुख अप्राकृतिक है। दुख होना नहीं चाहिए--और है। सुख होना चाहिए--और नहीं है। ऐसी विडंबना है।
लेकिन स्वभावतः, जब पहली दफे अपने भीतर सुख के फव्वारे फूटते हैं तो हमें भरोसा ही नहीं आता कि ये हमारे ही भीतर फूट रहे हैं! इसलिए हम सदा सोचते हैंः कहीं और से यह जलधार आई है। मेरे पास तू है तो स्वभावतः जब तेरा स्वभाव अंगड़ाई लेगा और जब तेरे भीतर पड़ी हुई प्रसुप्त संभावनाएं वास्तविक बनेंगी, तो नजर मुझ पर जाएगी, लगेगा कि मैंने कुछ किया है।
उस भूल में मत पड़ना। क्योंकि अगर कोई दूसरा सुख दे सके तो कोई दूसरा सुख छीन भी ले सकता है। अगर मैंने तेरी झोली भर दी तो कोई तेरी झोली लूट भी ले सकता है। फिर तो हम परवश हो गए।
सदगुरुओं ने सदा यही कहा हैः न तो सुख दिया जा सकता है, न लिया जा सकता है। चोर चुरा नहीं सकते, लुटेरे लूट नहीं सकते। मृत्यु भी नहीं छीन सकती, लुटेरों की तो बात ही क्या है!
लेकिन तेरा भाव ठीक है, तेरा भाव प्रीतिपूर्ण है। तू दुख ही दुख में जीयी है, तेरे दुख का मुझे पता है। पहली बार जब तू आई थी तब की तेरी आंखें और आज की तेरी आंखें, एक ही व्यक्ति की आंखें नहीं हैं। जब तू आई थी तो तेरी आंखें गहन विषाद से दबी थीं, एक अमावस की रात थी तेरी आंखों में। अब पूरा चांद खिला है, चांदनी ही चांदनी है! तुझे भी भरोसा नहीं आता कि इतना रूपांतरण कैसे हो गया?
लेकिन फिर भी मैं तुझे याद दिलाता हूंः मेरे किए रूपांतरण नहीं हुआ है, रूपांतरण तेरे भीतर ही हुआ है। मैं उसका कारण नहीं हूं, निमित्त भला होऊं। निमित्त और कारण का यही फर्क है। निमित्त का अर्थ होता है--बहाना। मेरे बहाने तेरी नजर अपने भीतर चली गई। किसी और बहाने भी जा सकती थी। कारण सुनिश्चित होता है। सौ डिग्री तक पानी को गरम करोगे तो ही भाप बनेगा; यह कारण है। किसी और तरह से भाप नहीं बन सकता। यह निमित्त नहीं है, यह कारण

है। लेकिन सुबह उगते सूरज को देख कर भी भीतर सूरज उग सकता है। झील में खिले कमल को खुलते देख कर तेरे भीतर का कमल भी खुल सकता है। रात तारों से भरी हो और तेरे भीतर का आकाश भी तारों से भर सकता है।
नानक के जीवन में ऐसा हुआ। रात है और दूर जंगल में पपीहा पी-कहां, पी- कहां, पी-कहां की पुकार लगा रहा है। और बस चोट पड़ गई! पपीहा सदगुरु हो गया। पपीहा ने भर दी झोली नानक की सुखों से। चोट पड़ गईः पी-कहां! याद आ गई, अपने पिया की याद आ गई! अपने पिया के गांव की याद आ गई। पुकारने लगेः पी-कहां! मां ने समझा कि पागल हो गए हैं। आकर कहा, लेकिन आनंद के आंसू बह रहे हैं और एक ही रट लगी हैः पी-कहां! और मां ने कहाः अब सो भी जाओ, थोड़ा विश्राम कर लो! यह क्या लगा रखा है?
तो नानक ने कहाः जब तक पपीहा चुप न हो, तब तक मैं कैसे चुप हो जाऊं? पपीहा भी अभी पुकारे जा रहा है। और उसका पिया तो शायद बहुत दूर भी न होगा। और मेरे पिया का गांव तो कहां है, मुझे पता नहीं; शायद जिंदगी भर मुझे पुकारना होगा।
तो पपीहा से भी झोली भर गई। निमित्त! निमित्त कुछ भी हो सकता है।
नानक के जीवन में दूसरा निमित्त भी है। एक नवाब के घर नौकरी लगा दी बाप ने। ये ज्यादा साधु-सत्संग करते, इसको बचाने की जरूरत थी, बिगड़ न जाए। और बिगड़ने के सब आसार थे। सब तरह से बचाने की कोशिश की। पहले धंधे में लगाया। भेजा कि जा पास के शहर से कंबल खरीद ला, सर्दी के दिन आते हैं, अच्छी बिक्री हो जाएगी, कुछ लाभ हो जाएगा। अब तू जवान हो गया है, अब कुछ कर। यह राम को लिए बैठा कब तक... क्या होने वाला है? और ख्याल रखना, कमाई करनी है! कमाई पर ध्यान रहे। कंबल खरीदने हैं और कमाई करनी है। और नानक नाचते हुए वापस लौटे। कंबल तो एक भी न था। पिता ने पूछाः कंबलों का क्या हुआ?
कहाः कमाई करके लौटा हूं।
तो रुपये कहां हैं?
तो नानक ने कहाः रुपये! रास्ते में देखा फकीरों का एक झुंड, वृक्षों
के नीचे ठहरा था। सर्द रात! बांट दिए कंबल। मैंने कहा कि इससे बड़ी कमाई और क्या होगी! पुण्य लेकर लौटा हूं, पुण्य ही तो कमाई है न! पुण्य ही तो असली संपदा है न!
ऐसे बेटे से परेशान हो गए होंगे, तो नवाब के घर लगा दिया एक नौकरी पर। नौकरी भी ऐसी जिसमें ज्यादा कुछ उपद्रव नहीं। कुछ पैसे का लेन-देन भी नहीं। सैनिकों के लिए रोज अनाज तौल कर दे देना है। बस वही एक दिन निमित्त हो गया, प्रेम शक्ति! कारण तो इसको नहीं कह सकते।
ख्याल रखना, कारण और निमित्त का भेद तुम्हें समझा रहा हूं। तौल रहे थे
एक दिन, रोज तौलते थे; रोज नहीं हुआ, उस दिन हो गया। अगर कारण होता तो रोज होता। पानी तो रोज तुम गरम करो सौ डिग्री तक तो भाप बनेगा; ऐसा नहीं कि कभी बने, कभी न बने; कभी मौज तो बने, कभी मौज नहीं तो न बने; कभी कहे कि रहने दो, आज बनना ही नहीं भाप।
निमित्त हो तो स्वतंत्रता होती है। कारण में कोई स्वतंत्रता नहीं है, कारण में बंधन है। कारण बिल्कुल जड़ है।
तौल रहे थे एक सैनिक को आटा। तौला, तराजू में डाला--एक, दो, पांच, छह, दस, ग्यारह, बारह... और जब तेरह पर आए तो हिंदी में तो तेरह है, पंजाबी में तेरा। तो बस जैसे ही "तेरा" कहा कि परमात्मा की याद आ गई--पी-कहां! फिर भूल ही गए, फिर धुन बंध गई। इसको कहते हैं भजन! इसको कहते हैं भजन!! धुन बंध गई--तेरा! तेरा!! तौलते गए, चौदह आए ही न। तौलते ही जाएं--तेरा! तेरा!! सैनिक भी थोड़ा चौंका। और लोग भी खड़े थे, वे भी चौंके। उन्होंने नवाब को खबर दी कि वह आदमी पागल हो गया है। वह तौले जा रहा है, न मालूम सबको दिए जा रहा है और कह रहा है--तेरा!
नवाब ने पूछा कि क्या हुआ? लेकिन देखा, नवाब को यह देख कर भी लगा कि इस आदमी को पागल कहना ठीक नहीं। और अगर यह पागलपन है तो शुभ है। आंखों से आंसुओं की धार बह रही है। आनंदमग्न नानक! और नवाब से भी कहने लगे कि आज घट गई घड़ी, जिसकी प्रतीक्षा थी! आज उसकी याद आ गई तौलते-तौलते!
यह निमित्त है। रोज तौलते थे, नहीं हुआ। आज कोई भाव-दशा ऐसी तरंग में
थी कि हो गया।

प्रेम शक्ति, तू भी सुन रही है यहां, और भी लोग सुन रहे हैं; बहुतों की झोली भर गई, बहुतों की नहीं भरी। और मैं तो एक सा ही उंडेल रहा हूं। यह निमित्त है, कारण नहीं। अगर कारण हो, तो जो यहां आए, उसकी झोली भर जानी चाहिए; जो यहां आए, आनंदमग्न हो जाना चाहिए। जरूरी नहीं है। कुछ तो खिन्न होकर लौटते हैं, कोई नाराज होकर लौटते हैं, कोई दुश्मन होकर लौटते हैं। तेरी झोली फूलों से भर गई, कमलों से भर गई। मैंने नहीं भरी है; सिर्फ निमित्त हूं। "पी-कहां" की मैंने आवाज दी और तूने सुन ली। "तेरा" की संख्या आई और तेरे भीतर सोई हुई कोई स्मृति जग गई जन्मों-जन्मों की।
तूने पूछा हैः "मेरे आंसू स्वीकार करें।"
स्वीकार हैं तेरे आंसू, क्योंकि वे आंसू दुख के नहीं हैं, आनंद के हैं। क्योंकि वे आंसू संताप के नहीं हैं, संतोष के हैं। क्योंकि वे आंसू परम तृप्ति के हैं। और इस जगत में जब आंसू तृप्ति के होते हैं, आनंद के होते हैं, अहोभाव के होते हैं, तो उनसे सुंदर कोई फूल नहीं होते। अमी झरत, बिगसत कंवल! उन आंसुओं में अमृत भी झरता है और कमल भी विकसित होते हैं।
इस जगत में आंसू से सुंदर कुछ भी नहीं है, अगर वह आनंद में डूबा हुआ हो। आंसू इस जगत की सबसे बड़ी कविता है, महाकाव्य है! सबसे बड़ा संगीत है! सबसे बड़ी प्रार्थना है, अर्चना है, पूजा है। सब पूजा के थाल दो कौड़ी के हैं। जिसके थाल में आंसू हैं आनंद के, उसकी अर्चना पहुंचेगी। पहुंच गई! चलने के पहले पहुंच गई! बोले नहीं कि पहुंच गई! पाती लिखी नहीं कि पहुंच गई!
तू कह रही हैः "जा रही हूं आपकी नगरी से।"
अब जाना नहीं हो सकता, क्योंकि मेरी नगरी कोई स्थान में आबद्ध नहीं है। मेरी नगरी तो प्रेम-नगरी का ही दूसरा नाम है। प्रेम का कोई संबंध स्थान से नहीं है, काल से नहीं है। तू जहां रहेगी, मेरी नगरी में रहेगी। और मैं चाहता हूं कि लोग जाएं दूर-दूर, ताकि मेरी नगरी फैले। ले जाओ प्रेम का यह रंग, उंडेलो! ले जाओ आनंद की यह गुलाल, उड़ाओ!
तुझे नाम भी मैंने दिया है--प्रेम शक्ति! क्योंकि मेरे लिए प्रेम से बड़ी कोई और शक्ति नहीं है। प्रेम परमात्मा है। बांटो! जब तुम्हारी झोली भर जाए तो बांटना सीखो। क्योंकि जितना तुम बांटोगे, उतनी झोली भरती जाएगी। यह जीवन का अंतस का गणित बड़ा अनूठा है। बाहर की दुनिया में, बाहर के अर्थशास्त्र में, तुम अगर बांटोगे तो आज नहीं कल दीन-दरिद्र हो जाओगे। मुल्ला नसरुद्दीन ने एक भिखारी को किसी धुन में आकर पांच रुपये का नोट दे दिया। मस्ती में था। लाटरी हाथ लग गई थी। आज दिल देने का था। भिखमंगे को भी भरोसा नहीं आया। उसने भी उलट-पुलट कर नोट देखा कि असली है कि नकली! फिर मुल्ला नसरुद्दीन की तरफ देखा। नसरुद्दीन ने भी उसे गौर से देखा। आदमी भला मालूम पड़ता है, चेहरे से सुशिक्षित भी मालूम पड़ता है, संस्कारी मालूम पड़ता है, कुलीन मालूम पड़ता है; कपड़े भी यद्यपि फटे हैं, पुराने हैं, मगर कभी कीमती रहे होंगे। पूछाः यह तेरी हालत कैसे हुई?
वह भिखमंगा हंसने लगा। उसने कहाः यही हालत आपकी हो जाएगी। ऐसे ही मैं बांटता था। बाप तो बहुत छोड़ गए थे, मगर मैंने लुटा दिया। आप भी अब ज्यादा दिन फिकर न करो। और जब यह हालत हो जाए तो मेरे झोपड़े में आ जाना; वहां जगह काफी है। ऐसे ही बांटते रहे तो ज्यादा देर नहीं है, यह हालत आ जाएगी आपकी भी।
बाहर की दुनिया में अगर बांटोगे तो घटता है। भीतर की दुनिया में नियम उलटा हैः रोकोगे तो घटता है; बांटोगे तो बढ़ता है।
अध्यात्म का अर्थशास्त्र और है, गणित और है। तुम्हारे भीतर प्रेम उठे
तो द्वार-दरवाजे बंद करके उसे भीतर छिपा मत लेना, अन्यथा सड़ जाएगा; अन्यथा जहरीला हो जाएगा, विषाक्त हो जाएगा। झरने बहते रहें तो स्वच्छ रहते हैं, ताजे रहते हैं। प्रेम उठे, बांटना! और बांटते समय शर्तें मत लगाना, क्योंकि शर्तें बांटने में बाधा बनती हैं। आनंद उठे, लुटाना! दोनों हाथ उलीचिए! फिर यह भी फिकर मत देखना कि कौन पात्र है, कौन अपात्र है। यह तो कंजूस देखते हैं पात्र और अपात्र।
मेरे पास लोग आ जाते हैं और पूछते हैंः न आप पात्र देखते, न अपात्र, आप किसी को भी संन्यास दे देते हैं!

मैं कहता हूंः मैं लुटा रहा हूं! पात्र-अपात्र... मैं कोई कंजूस हूं? इसको देंगे, उसको देंगे, इसको नहीं देंगे; यह आदमी ऐसा सुबह पांच बजे उठता है कि नहीं, तो देंगे; ब्रह्ममुहूर्त में उठता है तो देंगे। क्या बकवास लगा रखी है? सात बजे उठेगा तो संन्यासी नहीं हो सकता? दिन भर भी सोया रहे तो भी संन्यासी हो सकता है। निशाचर हो तो भी चलेगा। क्योंकि संन्यास का क्या संबंध कब सोकर उठे, कब नहीं उठे? संन्यास का तो कुछ आंतरिक भाव-दशा से संबंध है। जो जागे में भी जागा रहे!
दरिया ने कहा न--जागे में जो जागे! सोए में तो जागेगा ही--जागे में जो जागे!
जागता ही रहे। चौबीस घंटे जिसके भीतर जागरण का सिलसिला हो जाए। फिर
कब उठता है, कब नहीं उठता, क्या फर्क पड़ता है? उसके लिए सभी मुहूर्त ब्रह्ममुहूर्त हैं, क्योंकि ब्रह्म से जुड़ा है, और कोई मुहूर्त हो ही नहीं सकते।
तो मैं पात्र-अपात्र नहीं देखता। पात्र-अपात्र कंजूस देखते हैं। आनंद जब फलता है, कौन पात्र-अपात्र देखता है! बादल जब घिरते हैं तो पापियों के घर पर भी उतने ही बरसते हैं जितने पुण्यात्माओं के घर पर। और फूल जब खिलते हैं तो एक-एक नासापुट की परीक्षा नहीं करते--कि पापी का है कि पुण्यात्मा का! कि किसके नासापुट तक सुगंध को भेजें और किसके नासापुट तक जाती-जाती सुगंध को वापस लौटा लें! और जब दीया जलता है तो रोशनी सबको मिलती है, बेशर्त!
तेरी झोली भरी, प्रेम शक्ति, बांटना! लुटाना! बेशर्त बांटना! और चकित होकर तू पाएगी, अवाक तू रह जाएगी कि जितना बांटा जाता है, उतना बढ़ता है। इधर तुम बांटो, उधर भीतर के अनंत स्रोत बहने शुरू हो जाते हैं। कुएं और हौज का यही फर्क है। हौज में से कुछ निकालोगे तो हौज खाली हो जाती है। कुएं में से कुछ निकालोगे तो कुआं नया हो जाता है, खाली नहीं; नई जलधार बह रही है! पांडित्य हौज जैसा है, प्रज्ञा कुएं जैसी है। तेरे भीतर प्रज्ञा का जन्म हो रहा है, बोध का जन्म हो रहा है, ध्यान की पहली हवाएं आने लगी हैं, वसंत के पहले-पहले फूल खिल गए हैं। सूचक हैं, बड़े सूचक हैं! बांटो! जितना बांट सको, उतना कम है।
और मेरी नगरी से जाने का कोई उपाय नहीं है। मेरी नगरी तो हृदय की नगरी है। प्रेम शक्ति, तू उसमें सम्मिलित हो गई है, उसका अंग हो गई है, भाग हो गई है, उसमें लीन हो गई है। अब टूटने का कोई उपाय नहीं है, टूटना असंभव है। प्रेम कभी टूटता है? जो टूट जाए, जानना कि प्रेम ही न था; कुछ और रहा होगा, तुमने प्रेम समझ लिया होगा। वह भ्रांति थी। प्रेम कभी टूटता नहीं। और प्रेम जब आनंद से जुड़ जाता है, तब तो कोई टूटने की संभावना ही नहीं है।
तू कहती हैः "आपकी नगरी से जा रही हूं। कैसे जा रही हूं, आप ही जान सकते हैं।"
यह सच है। दूर जाना रोज-रोज संन्यासियों को कठिन होता जाता है, रोज-रोज कठिन होता जाता है। इसलिए जल्दी व्यवस्था कर रहा हूं कि जो यहां सदा ही रह जाना चाहें, वे सदा ही यहां रह जाएं। और तेरे लिए तो पहले से ही इंतजाम किया हुआ है। जैसे ही नया कम्यून बनेगा, जो लोग सबसे पहले प्रवेश करेंगे, उनमें तू भी होने वाली है। तू चुन ली गई है।
तूने लिखाः "आपने मेरी झोली अपनी खुशियों से भर दी। अंदर-बाहर खुशी के फव्वारे फूट रहे हैं। मगर हृदय में गहन उदासी है और जाने का सोच कर तो सांस रुकने लगती है।"
स्वाभाविक है। जो मुझसे जुड़ेंगे, उनकी सांसें मेरी सांसों से जुड़ गईं। मुझसे दूर होना पीड़ादायी होगा। लेकिन सम्हालना। इस पीड़ा में डूबना नहीं। इस पीड़ा को चुनौती समझना। इस पीड़ा को भी विकास का एक आधार बनाना, एक सीढ़ी बनाना।

मेरे जीवन का दर्द न गाएगा
चाहे जितना भी मन घबड़ाएगा
मुझको कुछ ध्यान तुम्हारा भी तो है

वैसे तो घायल दिल कुछ गाता ही दुनिया को अपना दर्द सुनाता ही पर फूट न पाएंगे अब स्वर मेरे मर्यादा ने सी दिए अधर मेरे अधरों पर कोई गीत न आएगा
जो तुम्हें दूर से पास बुलाएगा संयम का मुझे सहारा भी तो है

मुझको दीवाना किया बहारों ने अहसान किया है मुझ पर तारों ने जिसकी मुझको हर बात सुहाती है चांदनी गीत मुझ पर बरसाती है तुम कहां चांद के पास न जाऊंगा अंधियारे में चुप हो सो जाऊंगा मुझ पर अहसान तुम्हारा भी तो है

चांदनी सभी को पास बुलाती है मैं ही क्या सारी दुनिया गाती है कुछ तो गीतों से मन बहलाते हैं कुछ घाव समय से खुद भर जाते हैं बेहोशी है चंदन की छांहों में है मौन अगर फूलों के गांवों में जीने के लिए इशारा भी तो है

जो फूलों औ" भ्रमरों पर छाई है कांटों ने वह तकदीर बनाई है
पर फूल जिसे भी पास बुलाते हैं
कांटे खुद उनकी राह बनाते हैं
कैसे न सभी अवरोधों पर छाऊं
क्या करूं तुम्हारे द्वार न जो आऊं
तुमने फिर मुझे पुकारा भी तो है

पुकार तुझे दे दी गई है। पुकार तूने सुन भी ली है। आना जल्दी ही हो जाएगा। जल्दी ही एक बुद्ध-क्षेत्र निर्मित होने की तैयारी में लगा है, जहां चाहता हूं कम से कम पांच से लेकर दस हजार संन्यासियों का आवास हो। दस हजार लोग आनंदमग्न हो एक इतनी बड़ी ऊर्जा को पैदा कर सकेंगे, जो सारी पृथ्वी की हवा को बदल दे। अगर एक अणु-विस्फोट हिरोशिमा जैसे बड़े नगर को पांच क्षणों में विनष्ट कर सकता है, एक लाख लोगों को राख कर सकता है, तो दस हजार आत्माओं का आनंद-विस्फोट इस सारी पृथ्वी पर एक नये युग का सूत्रपात हो सकता है।
एक नये मनुष्य को जन्म देना है। तुम सब बड़भागी हो, क्योंकि उस नये मनुष्य को जन्म देने में तुम्हारा हाथ होगा, तुम्हारे हाथ की छाप होगी। कठिनाइयां तो आएंगी। प्रेम शक्ति, मेरी तरफ से निमंत्रण तो मिल गया है। आना भी तुझे है। आना भी पड़ेगा। आना ही होगा। आए बिना कोई उपाय नहीं है।
लेकिन अड़चनें भी होंगी, बाधाएं भी पड़ेंगी। परिवार है, समाज है, संबंधी हैं, सब तरह की बाधाएं होंगी। उन सब बाधाओं को भी बहुत आनंद से स्वीकार करना; वे भी तुम्हारे अंतर-विकास में सहयोगी हैं।

छिप-छिप कर चलती पगडंडी धनखेतों की छांव में।

अनगाए कुछ गीत गूंजते
हैं किरनों के हास में,
अकुलाई सी एक बुलाहट
पुरवा की हर सांस में;

सूनापन है उसे छेड़ता छू आंचल के छोर को, जलखाते भी बुला रहे हैं बादल वाली नाव में!

अंग-अंग में लचक, उठी ज्यों
तरुणाई की भोर में,
नभ के सपनों की छाया को
आंज नयन की कोर में;
राह बनाती अपनी कुस-कांटों में संख-सिवार में, कांदों-कीच पड़े रह जाते लिपट-लिपट कर पांव में!

पांतर पार धुंवारी भौंहों
की ज्यों चढ़ी कमान है,
मार रहा यह कौन अहेरी
सधे किरन के बान है?
रोम-रोम ज्यों चुभे तीर, टूटी सीमा मरजाद की, सुध-बुध खो चल पड़ी अचीन्हे अपने पी के गांव में!

रुनझुन बिछिया झींगुर वाली
किंकिन ज्यों बक-पांत है,
स्वयंवरा बन चली बावरी
क्या दिन है, क्या रात है?
पहरू से कुछ पीली कलंगी वाले प.ेड बबूल के
बरज रहे, री पांव न धरना भोरी कहीं कुठांव में;
अपना ही आंगन क्या कम जो चली पराए गांव में!

बहुत बबूलों जैसे लोग, बबूल के वृक्षों जैसे कांटों भरे लोग रुकावट डालेंगे, बाधा डालेंगे। अज्ञात यात्रा पर निकलते यात्री को सभी भयभीत, डरे हुए लोग रोकना चाहते हैं। उनके भी रोकने के पीछे कारण है। जब कोई एक व्यक्ति भीड़ से छूटता है, भेड़ों की भीड़ से छूटता है और चल पड़ता है किसी अनजानी पगडंडी पर... और मैं एक अनजानी पगडंडी हूं! मेरा निमंत्रण अज्ञात का निमंत्रण है। मैं तुम्हें किसी एक ऐसे लोक में ले चलना चाहता हूं जिसकी तुम्हें कोई भी खबर नहीं है और मैं चाहूं भी तो भी उसका कोई प्रमाण नहीं दे सकता। तुम जाओगे तो ही जानोगे; अनुभव करोगे तो ही पहचानोगे; पीओगे तो ही स्वाद पाओगे। स्वाद के पहले मैं कोई प्रमाण नहीं दे सकता, कोई गारंटी भी नहीं दे सकता। कोई उपाय नहीं है गारंटी देने का।
मेरे साथ चलने के लिए हिम्मत चाहिए, दुस्साहस चाहिए। तो हजार तरह की बातें लोग कहेंगे। लोग समझेंगे पागल। लोग समझेंगे स्वच्छंद। लोग समझेंगे उच्छृंखल। लोग सब तरह की अड़चनें पैदा करेंगे। उन अड़चनों को भी, प्रेम शक्ति, बड़ी प्रीति से, बड़े आनंद से, बड़े अहोभाव से स्वीकार करना। क्योंकि मेरे देखे, राह में पड़ी सारी बाधाएं सीढ़ियां बन सकती हैं, बननी ही चाहिए; वही तो जीवन की कला है।
तूने कहाः "आप हर पल मेरे रोम-रोम में समाए हुए हैं। मुझे बल दें कि जब
तक आपका बुलावा नहीं आता, मैं आपसे दूर रह सकूं।"
बुलावा तो दे ही दिया गया है। दूर रहने की अब कोई जरूरत भी नहीं है। दूरी अब दूरी मालूम होगी भी नहीं। एक तो निकटता होती है शरीर की। और यह हो सकता है कि तुम किसी के पास बैठे हो, शरीर से लगा है शरीर, और फिर भी हजारों कोस का फासला हो! और यह भी हो सकता है कि हजारों कोस की दूरी हो और फासला जरा भी न हो। जीवन ऐसा ही रहस्य है। यह सीधे-सीधे गणित से हल नहीं होता। हजारों मील की दूरी पर भी प्रेमी पास ही होते हैं और शरीर से शरीर लगाए हुए लोग भी अगर प्रेम में नहीं हैं तो दूर ही होते हैं। प्रेम निकटता है। और वैसे प्रेम का तेरे भीतर जन्म हो गया है। तो दूर, कितने दूर रहेगी? सामीप्य बना ही रहेगा। मैं अब तुझे छाया की तरह घेरे ही रहूंगा। मैं एक गंध की तरह तेरे चारों तरफ मौजूद ही रहूंगा। तेरी श्वास-श्वास में स्मृति उठती रहेगी, सुरति जगती रहेगी। चिंता लेने की कोई भी जरूरत नहीं है।

और ज्यादा देर भी नहीं है। सारी बाधाओं के बावजूद भी संन्यासियों का ग्राम तो बसेगा ही। जल्दी ही बसेगा! क्योंकि वह काम मेरा नहीं है, वह काम परमात्मा का है; उसमें बाधा पड़ नहीं सकती।
और जितनी बाधाएं पड़ेंगी, उतना ही लाभ होगा। शायद जितनी देर हो रही है,
वह भी जरूरी है। और तुम पक जाओ। और तुम परिपक्व हो जाओ। लेकिन जिस घड़ी तुम राजी हो, उसी घड़ी नया ग्राम बस जाएगा। और कोई बाधा रुकावट नहीं डाल सकती। और ऐसा विराट प्रयोग पृथ्वी पर पहले कभी हुआ नहीं है कि दस हजार संन्यासियों ने एक जगह रह कर, एक प्रेम में आबद्ध होकर, संयुक्त प्रार्थना का, ध्यान का स्वर उठाया हो। उसकी जरूरत हो गई है अब। यह पृथ्वी अत्यंत डांवाडोल है। यहां घृणा की शक्तियां तो बहुत प्रबल हैं और प्रेम की शक्ति बहुत क्षीण हो गई है। यहां प्रेम को प्रज्वलित करना है। यहां प्रेम की बुझती-बुझती लौ को उकसाना है, सम्हालना है, मशाल बनानी है। और दस हजार लोग अगर सब भांति समर्पित होकर, अलग-अलग न रह कर एक विराट ऊर्जा का स्तंभ बन जाएं, तो इस पृथ्वी को बचाया जा सकता है, इस पृथ्वी पर नये मनुष्य का सूत्रपात हो सकता है। होना ही चाहिए। मनुष्य बहुत दिन तक अंधेरे में जी लिया, अब रोशनी को लाने का कोई महत आयोजन आवश्यक है।
प्रेम शक्ति, तेरे लिए निमंत्रण है, बुलावा है। तुझे उस महत आयोजन में सम्मिलित होना है। थोड़ी-बहुत देर लगे तो उसे भी आनंद से, गीत गाकर, प्रेम से गुजार लेना। उसे भी स्वागत करके गुजार लेना। विषाद की भाषा ही मेरे संन्यासी छोड़ दें। आनंद की भाषा बोलो। आनंद की भाषा जीओ। विषाद से सारे संबंध तोड़ लो। इस जगत में विषाद-योग्य कुछ भी नहीं है, क्योंकि परमात्मा सब जगह मौजूद है, कण-कण में भरा है, कण-कण में बह रहा है। होना ही इतना बड़ा आनंद है कि किसी और आनंद की आवश्यकता नहीं है। श्वास लेना ही इतना बड़ा आनंद है, किस और आनंद की आकांक्षा करो! अभीप्सा करो!

दूसरा प्रश्नः मैं परमात्मा को पाना चाहता हूं, क्या करना आवश्यक है?

सहजानंद! पहली बात, परमात्मा को पाने की चेष्टा भी अहंकार का हिस्सा है। क्यों पाना चाहते हो परमात्मा को? क्या जरूरत आ पड़ी है? कौन सी अड़चन हो रही है? कुछ लोग धन पाना चाहते हैं, कुछ लोग पद पाना चाहते हैं, तुम परमात्मा पाना चाहते हो! जिनके पास धन है, जिनके पास पद है, उनको भी हराना चाहते हो? उनको भी तुम कहना चाहते होः अरे तुम क्षुद्र सांसारिक जीव, मैं आध्यात्मिक! मैं छोटी-मोटी चीजों की तलाश नहीं करता, मैं सिर्फ परमात्मा को खोजता हूं!
अहंकार के रास्ते बड़े सूक्ष्म हैं। एक बात ख्याल में रखनाः जहां चाह है, वहां अहंकार है। परमात्मा को चाहा नहीं जाता, परमात्मा को पाया जरूर जाता है; लेकिन परमात्मा को चाहा नहीं जाता। और परमात्मा को पाने की शर्त यही है कि चाह नहीं होनी चाहिए, कोई चाह नहीं होनी चाहिए--न धन की, न पद की, न परमात्मा की; चाह मात्र नहीं होनी चाहिए। जहां सब चाहें गिर जाती हैं, वहां जो शेष रह जाता है वही परमात्मा है। परमात्मा की चाह में और धन की चाह में कुछ भी भेद नहीं है। जरा भी भेद नहीं है। चाह तो चाह है। चाह का स्वभाव तो एक है। तुमने चाह किस चीज पर लगाई--किसी ने अ पर लगाई, किसी ने ब पर लगाई, किसी ने स पर लगाई--इससे क्या फर्क पड़ेगा? चाह के विषय से चाह के स्वभाव में अंतर नहीं पड़ता। चाह तो चाह ही रहती है। वह तो वासना ही है। वह तो मन का ही खेल है। वह तो अहंकार की ही दौड़ है। वह तो महत्वाकांक्षा है।
परमात्मा जरूर मिलता है, लेकिन उन्हें मिलता है जिनके चित्त में कोई चाह नहीं होती। जहां चाह नहीं, वहां चित्त नहीं। जहां चाह नहीं, वहां तुम नहीं।
जरा सोचो! जरा क्षण भर को ध्याओ। अगर कोई चाह न हो तो तुम बचोगे? एक सन्नाटा रहेगा। एक विराट शून्य तुम्हारे भीतर होगा। एक गहन मौन होगा। लेकिन तुम न होओगे। उसी गहन मौन में, उसी शून्य में परमात्मा का पदार्पण होता है, आविर्भाव होता है। सच तो यह है, वही शून्य पूर्ण है। चाह बाधा डाल रही है। चाह व्याघात डाल रही है।

तुम चाहें तो बदल लेते हो, लेकिन चाह नहीं छोड़ते। सांसारिक चाहों की जगह पारलौकिक चाहें आ जाती हैं। साधारण चाहों की जगह असाधारण चाहें आ जाती हैं। मगर चाहें जारी रहती हैं। और जहां चाह है, वहां बाधा है। जहां चाह है, वहां दीवाल है। अचाह में सेतु है।
तो सहजानंद! पहली बात, परमात्मा को चाहो मत। अगर पाना है तो चाहो मत।
अब दूसरी बात तुमसे कह दूंः मन बहुत चालाक है। मन कहेगाः अच्छा! मन कहेगाः ठीक सहजानंद, अगर पाना है तो चाहो मत! चाह छोड़ दो अगर पाना है!
तो मन यह भी कर सकता है कि चाह छोड़ने में लग जाए, क्योंकि पाना है। मगर
यह चाह का नया रूप हुआ। यह पीछे के दरवाजे से चाह आ गई। तुमने बाहर के दरवाजे से विदा किया कि नमस्कार! मेहमान पीछे के दरवाजे से आ गया।
समझना होगा, चाह की विकृति समझनी होगी, ताकि चाह पीछे के दरवाजे से न आ जाए। चाह जब पीछे के दरवाजे से आती है तो और भी खतरनाक हो जाती है, क्योंकि अब की बार वह मुखौटे ओढ़ कर आती है। सामने के दरवाजे पर तो स्थूल होती है; पीछे के दरवाजे पर सूक्ष्म हो जाती है। और चूंकि तुम्हारे पीछे से आती है, पीठ के पीछे छिपी होती है, इसलिए तुम देख भी नहीं पाते। आंख के सामने हो तो दुश्मन बेहतर, कम से कम सामने तो है! दुश्मन पीछे छिपा हो तो तुम बड़े असहाय हो जाते हो। तुम्हारे साधु-संत इसी तरह की चाह से पीड़ित हैं। तुम्हारी चाह सामने खड़ी है, बाजार में खड़ी है; उनकी चाह उनके पीछे छिपी है, पीठ के पीछे छिपी है। उन्हें दिखाई ही नहीं पड़ती। वे लौट कर खड़े भी हो जाएं तो भी कोई फर्क नहीं पड़ता, क्योंकि चाह उनकी पीठ से ही ज.ुड गई है। वे जब भी लौटते हैं, चाह उनकी पीठ के पीछे पहुंच जाती है। चाह उनके सामने कभी आती नहीं, उन्हें कभी दिखाई पड़ती नहीं।
तो दूसरी बात, कहीं चाह को ऐसे मत बचा लेना कि मैंने कहा कि अगर पाना
है तो चाह छोड़नी होगी। मैं यह नहीं कह रहा हूं। पाना घटता है जब चाह नहीं होती। छोड़ने को नहीं कह रहा हूं। छोड़ोगे तो तुम तभी जब तुम्हें कोई और बड़ी चाह मिलने को हो, नहीं तो तुम छोड़ोगे कैसे? एक कांटे को निकालना हो तो दूसरे कांटे से निकालते हैं। और यही हालत चाह की है। एक चाह निकालनी है, दूसरी चाह से निकालते हैं। और ध्यान रखना, कमजोर कांटे को निकालना हो तो भी जरा मजबूत कांटा चाहिए। तो पहली चाह को निकालना हो तो और जरा मजबूत चाह चाहिए, जो उसे निकाल बाहर कर दे। मगर दूसरी चाह में फंस गए।
चाह को समझना है। न निकालना है, न त्यागना है--सिर्फ समझना है। चाह का स्वभाव समझना है कि चाह का स्वभाव क्या है? चाह करती क्या है?
चाह कुछ काम करती है। पहली बातः तुम्हें कभी वर्तमान में नहीं जीने देती, हमेशा भविष्य में रखती है--कल! चाह का अस्तित्व कल में है। और कल कभी आता नहीं। इसलिए चाह कभी पूरी होती नहीं। तुम आज हो, चाह कल है। इसलिए चाह तुम्हें अपने साथ ही एक नहीं होने देती, तोड़ कर रखती है, तुम्हें खंडों में बांट देती है।
सत्य अभी है, यहीं है--और चाह तुम्हें कल में अटकाए रखती है। ऐसे तुम सत्य से वंचित रह जाते हो, अस्तित्व से वंचित रह जाते हो, परमात्मा से वंचित रह जाते हो, अपने से वंचित रह जाते हो। द्वार है वर्तमान में और चाह टटोलती है भविष्य में; वहां सिर्फ दीवाल है और दीवाल है।
चाह को समझो। चाह का अर्थ क्या है? चाह का अर्थ यह है कि तुम जैसे हो, उससे संतुष्ट नहीं हो। तुम परमात्मा को क्यों चाहते हो? क्योंकि पत्नी से संतुष्ट नहीं हो, पति से संतुष्ट नहीं हो, बेटे से संतुष्ट नहीं हो, भाई से संतुष्ट नहीं हो। संसार से असंतुष्ट हो, इसलिए परमात्मा को चाहते हो। तुम्हारे परमात्मा की चाह के पीछे सिर्फ तुम्हारा असंतोष छिपा है।
और वहीं भूल हो गई। परमात्मा उन्हें मिलता है जो संतुष्ट हैं। परमात्मा उन्हें मिलता है जिनके जीवन में गहन परितोष है; जो ऐसे परितुष्ट हैं कि परमात्मा न मिले तो भी चलेगा; जो इतने परितुष्ट हैं कि परमात्मा न मिले तो कोई अड़चन नहीं है। उनको परमात्मा मिलता है!
परमात्मा का नियम करीब-करीब वैसा है जैसा बैंक का नियम होता है। अगर तुम्हारे पास रुपये हैं, बैंक रुपये देने को राजी होता है। अगर तुम्हारे पास रुपये नहीं हैं, बैंक मुंह फेर लेता है--कि रास्ता लगो, कहीं और जाओ। जिसकी साख है बाजार में, उसको बैंक रुपये देता है। उसको जरूरत नहीं है

रुपये की, इसीलिए रुपये देते हैं। ये बड़े अजीब नियम हैं, मगर यही नियम हैं! जिसको रुपये की कोई जरूरत नहीं है, बैंक उनके पीछे घूमता है। बैंक के मैनेजर खुद आते हैं कि कुछ ले लें, कि कुछ हमारी सेवा ले लें। और जिसको जरूरत है, वह बैंकों के चक्कर लगाता है, उसे कोई देता नहीं।
परमात्मा का नियम भी कुछ ऐसा ही है। तुम अगर संतुष्ट हो, परमात्मा कहता हैः ले ही लो मुझे, आ जाने दो मुझे भीतर। तुम्हारे संतोष में अपना घर बनाना चाहता है।
संतोष में ही तुम मंदिर होते हो। और मंदिर का देवता द्वार पर दस्तक देता है, कि आ जाने दो। अब तुम राजी हो गए। अब तुम मंदिर हो, अब मैं आ जाऊं और विराजमान हो जाऊं। सिंहासन बन चुका, अब खाली रखने की कोई जरूरत नहीं है।
लेकिन तुम हो असंतोष की लपटों से भरे हुए। मंदिर तो है ही नहीं; तुम एक चिता हो, जो धू-धू कर जल रही है। परमात्मा आए तो कहां आए?
तुम कहते होः "मैं परमात्मा को पाना चाहता हूं।"
क्यों पाना चाहते हो? जरा कारणों में खोजो। अजीब-अजीब कारण हैं। किसी
की पत्नी मर गई, वे परमात्मा की तलाश में लग गए। किसी का दिवाला निकल गया, मूंड़ मुड़ाए भये संन्यासी! अब दिवाला ही निकल गया है तो अब करना भी क्या है दुकान पर रह कर! अब संन्यासी होने का ही मजा ले लो!
लोग जरा कारण तो देखें कि किसलिए परमात्मा को खोजने निकलते हैं! तुमने देखा, जब तुम दुख में होते हो तब परमात्मा की याद करते हो। जब तुम सुख में होते हो, तब? तब बिल्कुल भूल जाते हो।
और मैं तुमसे यह कहना चाहता हूं कि सुख में पुकारो तो आए; दुख में पुकारो तो नहीं आएगा। क्योंकि दुख की पुकार ही झूठी है। दुख की पुकार सांत्वना के लिए है, सहारे के लिए है। दुख की पुकार में तुम परमात्मा का शोषण कर लेना चाहते हो, उसका उपयोग कर लेना चाहते हो, उसकी सेवा लेना चाहते हो। जब तुम सुख से भरो, तब पुकारो।
मैं अपने संन्यासियों को कहना चाहता हूंः जब तुम आनंदित होओ, तब प्रार्थना करो। दुख को क्या उसके द्वार पर ले जाना! द्वार-दरवाजे बंद करके दुख को रो लेना; क्या परमात्मा के चरणों में चढ़ाना! हां, जब आनंद उठे, मग्न भाव उठे, तो नाचना, तो पहन लेना पैरों में घूंघर, तो देना थाप मृदंग पर! उत्सव में उससे मिलन होगा, क्योंकि उत्सव में ही तुम अपनी पराकाष्ठा पर होते हो। उत्सव के क्षण में ही तुम्हारे भीतर के सारे द्वंद्व चले जाते हैं, तुम निर्द्वंद्व होते हो। उत्सव के क्षण में ही तुम्हारे भीतर दीया जलता है, रोशनी होती है।
और जो उत्सव से भरा है, उससे कौन गले नहीं लगना चाहता! परमात्मा भी उससे गले लगना चाहता है जो उत्सव से भरा है। रोती शक्लों से तुम भी बचते हो, परमात्मा भी बचता है। आखिर उस पर भी कुछ दया करो! उसका भी कुछ ध्यान रखो! और तुम एक ही नहीं हो, जमीन भरी है रोती लंबी शक्लों से, उदास शक्लों से। परमात्मा इनसे बचता है, मैं तुमसे कह देना चाहता हूं! ये जहां पहुंच जाते हैं, परमात्मा वहां से भाग निकलता है।
परमात्मा तो वहां आता है जहां कोई गीत गूंजता है, कहीं नाच होता है, कहीं वीणा के स्वर छेड़े जाते हैं। परमात्मा तो वहां आता है जहां मौज तरंगें लेती है। परमात्मा तो वहां आता है जहां प्रेम हिलोरें लेता है। परमात्मा तो वहां आता है जहां तुम्हारी आत्मा का कमल खिलता है।
परमात्मा अपने से आ जाएगा, तुम चिंता ही न करो। तुम मत परमात्मा को खोजो; मैं तुम्हें एक ऐसी राह बताता हूं कि परमात्मा तुम्हें खोजे। और तब मजा और है। खोज सकता है परमात्मा तुम्हें--तुम शांत होओ, आनंदित होओ, प्रफुल्लित होओ, मस्त होओ। खोजना ही पड़ेगा उसे।

साधना देवत्व की करता रहा मैं,
पर हृदय का शून्य ही भरने न पाया।

नील अंबर के निलय का,
रह गया संधान करता।

प्रश्न के उत्तर न आया,
रह गया अनुमान करता।
कृपणता के कूट से भी,
शिखर तक चढ़ने न पाया।
सामने मंजिल खड़ी थी,
पांव पर बढ़ने न पाया।

अर्चना पुरुषत्व की करता रहा मैं, किंतु भय का बीज ही मरने न पाया।

खोखले गुंफन में कस कर,
वासना का शव उठाए।
आत्मा की घुटन पीकर,
नैन मेरे छटपटाए।
खो गया निर्वाण पावन,
भटक अंधी सी गली में।
लग गए कुछ कीट काले,
शुद्ध काया की कली में।

कामना अमरत्व की करता रहा मैं, वासना का वेग ही थिरने न पाया।

चाहता था विश्व सारा,
फूल मुझ पर ही चढ़ाए।
मान कर प्रतिमान मुझको,
प्रेम का चंदन लगाए।
किंतु मन दुर्भावनाओं
में फंसा, अस्तित्व कह कर।
मूढ़ता मेरी स्वयं ही,
छल गई व्यक्तित्व बन कर।

वांछना अखिलत्व की करता रहा मैं,
किंतु सबसे प्यार करना ही न आया।

छोड़ो परमात्मा की फिकर! खोजोगे भी कहां उसे? उसका पता-ठिकाना भी तो नहीं है। उसके रंग-रूप का भी तो कोई निर्णय नहीं है। मिल भी जाए अचानक तो पहचानोगे कैसे? कोई तस्वीर नहीं है उसकी, कोई आकृति नहीं, आकार नहीं उसका, कोई नाम-धाम नहीं उसका। कहां जाओगे? कैसे तलाशोगे? किससे पूछोगे? है तो सभी जगह है, तो फिर खोजने की कोई जरूरत नहीं है। और नहीं है तो कहीं भी नहीं है, तो फिर भी खोजने की कोई जरूरत नहीं है। खोजने का कोई सवाल ही नहीं है। खोज छोड़ो। खोज में दौड़ है। दौड़ में तनाव है। खोज में मन है। मन में अहंकार है। खोज छोड़ो।
ध्यान का इतना ही अर्थ है कि घड़ी दो घड़ी रोज सब खोज छोड़ कर चुपचाप बैठ जाओ, कुछ भी न करो। कुछ भी न करो! मस्त बैठे--अलमस्त! डोलो! कोई गीत उठ आए, सहज गुनगुनाओ। बांसुरी बजानी आती हो, बांसुरी बजाओ। कि अलगोजे पर तान छेड़ दो। कुछ भी न आता हो, एड़ा-टेढ़ा नाच सकते हो, नाचो! बैठ तो सकते ही हो!
एक घंटा अगर चौबीस घंटे में तुम सब खोज, सब चाह छोड़ कर बैठ जाओ, जैसे न कुछ करने को है, न कुछ करने योग्य है, तो ऐसे बैठते-बैठते-बैठते तुम्हारे मन में एक दिन एक ऐसा सन्नाटा आ जाएगा, जिससे तुम अपरिचित हो। वह सन्नाटा परमात्मा के आगमन की खबर है। उसके पीछे ही परमात्मा चला आ रहा है। गहन शांति होगी, शून्य होगा। और उसी के पीछे पूर्ण भर आएगा।
सहजानंद! पूछते होः "क्या करना आवश्यक है?"
कुछ भी करना आवश्यक नहीं है। क्योंकि परमात्मा है ही, बनाना नहीं है, निर्माण नहीं करना है। उघाड़ना भी नहीं है--उघड़ा ही है। नग्न खड़ा है। सिर्फ

तुम्हारी आंखें बंद हैं। और आंखें बंद कैसे हैं? चाह के कारण बंद हैं।
वासना के कारण बंद हैं। कामना के कारण बंद हैं। यह मिल जाए, वह मिल जाए--ये सब विचार की परतों पर परतें तुम्हारी आंखों को अंधा किए हैं।
नहीं कुछ चाहिए; जो है, पर्याप्त है--ऐसे भाव में डुबकी मारो! जो है, जरूरत से ज्यादा है--ऐसे परितोष को सम्हालो। जो है, उसके लिए धन्यवाद दो। जो नहीं है, उसकी मांग न करो। और मैं तुम्हें आश्वासन देता हूंः परमात्मा तुम्हें खोजता आ जाएगा। निश्चित आ जाएगा! ऐसा ही सदा खोजता आया है।

तीसरा प्रश्नः आपके प्रवचन में सुना कि एक जैन मुनि आपकी शैली में बोलने की कोशिश करते हैं, तोते की भांति। पर यह मुनि ही नहीं, बहुत-बहुत से महानुभावों को यही करते देख रहे हैं। चुपके-चुपके वे आपकी किताबें पढ़ते हैं, फिर बाहर घोर विरोध भी करते हैं। और बुरा तो बहुत तब लगता है, जब आपके विचारों को अपना कह कर बताते हैं, छपवाते हैं--फिर इतराते हैं। ऐसे तथाकथित प्रतिभाशालियों के पाखंड को सहा नहीं जाता, तो क्या करें?

माधवी भारती! यह स्वाभाविक है। इससे चिंतित होने की कोई भी आवश्यकता नहीं है। इस तरह परोक्ष रूप से वे मुझे स्वीकार कर रहे हैं। अभी परोक्ष किया है स्वीकार, हिम्मत बढ़ते-बढ़ते किसी दिन प्रत्यक्ष भी स्वीकार कर सकेंगे। और ऐसे धोखा कितने दिन तक दे सकते हैं? लाखों लोग मेरी किताबें पढ़ रहे हैं, मेरे वचन सुन रहे हैं; उन्हीं के बीच बोलेंगे, कब तक यह धोखा चला सकते हैं? इसकी चिंता न करो।
और यह बिल्कुल स्वाभाविक है। जब भी कोई चीज लगती है कि लोगों को आकर्षित कर रही है, तो उसकी नकलें पैदा होनी स्वाभाविक हैं। असली सिक्के हैं, इसलिए नकली सिक्के होते हैं। असली सिक्के न हों तो नकली सिक्के भी मिट जाएं।
और जरूरी है कि वे मेरा विरोध करें, क्योंकि अगर वे विरोध न करें और फिर मेरी बातों को दोहराएं, तब तो बिल्कुल पकड़े जाएं। तो पहले विरोध करते हैं, ताकि एक बात तो साफ हो गई कि वे मेरे विरोधी हैं; ताकि कोई शक भी न कर सके कि वे जो कह रहे हैं, वह घूम-फिर कर मेरी ही बातें कह रहे हैं।
मैंने जिन मुनि की बात की, मुनि नथमल--मैं तो उनका नाम रखता हूंः मुनि थोथूमल! बिल्कुल थोथे! सब उधार! लेकिन दोहराने में कुशल हैं। दोहराने की भी एक कुशलता होती है। सभी नहीं दोहरा सकते। और दोहराना कोई आसान काम नहीं है, बड़ा कठिन काम है। अपनी बात कहनी तो बड़ा आसान है; अड़चन ही नहीं होती कुछ, अपनी ही बात है, सहज आती है।
तो मुनि थोथूमल का तो मैं बहुत सम्मान करता हूं। सम्मान इसलिए करता हूं कि वे बिल्कुल दोहरा लेते हैं। बड़ी मेहनत करनी पड़ती होगी। बड़ा श्रम उठाना पड़ता होगा। उनकी कुशलता तो माननी होगी। और तेरापंथ के जैन साधुओं में सदियों से एक प्रयोग जारी रहा; वह स्मृति का प्रयोग हैः शतावधान। उसमें स्मृति को निखारने की कोशिश की जाती है। और ज्यादा से ज्यादा चीजें कैसे याद रखी जाएं, इसके प्रयोग किए जाते हैं। सौ चीजें इकट्ठी याद रखी जा सकें, जैसे तुम सौ नाम लो तो जैन मुनि सौ ही नाम इकट्ठे दोहरा देगा उसी क्रम में, जिस क्रम में तुमने लिए थे। तुम खुद ही भूल जाओगे कि ये सौ नाम मैंने किस क्रम में लिए थे। तुम्हें फेहरिस्त रखनी पड़ेगी मेल रखने के लिए कि मुनि जब कहे तो मिला लूं कि ठीक। लेकिन तेरापंथ में यह प्रक्रिया जारी रही है। स्मृति का एक प्रयोग है। याददाश्त को निखारने की एक अभ्यास-व्यवस्था है। पुराने दिनों में इसका उपयोग भी था, क्योंकि शास्त्र छपते नहीं थे, लोगों को याद रखना पड़ते थे। सदियों तक लोगों ने शास्त्र याद रखे सिर्फ स्मृति के बल पर। तो उसी पुरानी प्रक्रिया को अभी भी दोहराए चले जा रहे हैं। अब कोई जरूरत नहीं है। मगर उसका उपयोग और तरह से भी हो सकता है। जब घंटे, डेढ़ घंटे मैं आचार्य तुलसी से बात किया और मुनि थोथूमल ने पूरी की पूरी बात, वैसी की वैसी शब्दशः दोहरा दी, तो एक बात तो माननी होगी कि स्मृति सुंदर है, स्मृति अच्छी है। बुद्धि नहीं है!
बुद्धि और स्मृति का कोई अनिवार्य नाता नहीं है। सच तो यह है, अगर तुम्हें अपनी ही बात कहनी है तो स्मृति की कोई जरूरत ही नहीं रहती। तुम

कभी भी कह सकते हो, तुम्हारी ही बात है। जब तुम्हें सत्य ही कहना है तो स्मृति की कोई जरूरत नहीं रहती। झूठ बोलने वाले आदमी को स्मृति को निखारना पड़ता है, क्योंकि उसे याद रखना पड़ता है कि झूठ बोला हूं, किससे बोला हूं, क्या बोला हूं, कहीं उसके विपरीत कुछ न बोल जाऊं, उससे भिन्न कुछ न बोल जाऊं! उसे सब तरह की चिंता रखनी पड़ती है।
जो दूसरों की बातें दोहराते हैं, उन पर दया करो, उनके श्रम पर दया करो।
उनकी मेहनत बड़ी है। माधवी, नाराज होने की कोई जरूरत नहीं है।
नाराजगी आती है, यह स्वाभाविक है।
मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन मुझसे कह रहा था कि मेरे भाई से मेरी लड़ाई हो
गई और आज जरा बात ज्यादा हो गई। बातचीत तो कई दफे हुई थी, आज हाथापाई हो गई।
ऐसा मुझे क्रोध आया कि दो-चार चांटे रसीद कर दिए। अब चित्त जरा मलिन है।
मैंने कहाः आखिर मामला क्या हुआ? तुम दोनों में तो काफी बनती है।
कहाः उसी बनती-बनती के कारण तो यह उपद्रव बढ़ता गया।
मुल्ला नसरुद्दीन बोलाः अजी, सालों से वह मेरे कपड़े पहन रहा था।
जुड़वां भाई हैं। मेरे जूते काम में ला रहा था। मैं कुछ नहीं बोला। यहां तक कि मेरी प्रेयसी भी उसने मुझसे छीन ली, फिर भी मैं कुछ नहीं बोला। बैंक से मेरे नाम से पैसे निकाल लाता है, फिर भी मैं बरदाश्त करता रहा। मेरे नाम से लोगों से पैसा उधार ले लेता है, जो मुझे चुकाने पड़ते हैं। लेकिन बरदाश्त की भी एक हद्द होती है। कल वह मेरे दांत लगा कर मेरी ही खिल्ली उड़ाने लगा! फिर मैंने रसीद कर दिए दो हाथ। एक सीमा होती है हर चीज की।
तो माधवी, तेरा दुख मैं समझा, तेरी पीड़ा समझा। ऐसा पाखंड मेरे संन्यासियों को अखरता है। क्योंकि मेरे संन्यासी जानते हैं मैं क्या कह रहा हूं और जब वे सुनते हैं उन्हीं बातों को किन्हीं से दोहराया जाता... । और इतनी भी ईमानदारी नहीं कि स्पष्ट कह सकें कि ये विचार कहां से आए हैं। न केवल इतनी ईमानदारी नहीं, इतनी सौजन्यता भी नहीं कि कम से कम विरोध न करें।
लेकिन विरोध के पीछे भी तर्क है। विरोध करने से पक्का हो जाता है कि
ये विचार कम से कम मेरे तो नहीं हो सकते। जिसका विरोध कर रहे हैं, उसके तो नहीं हो सकते।
बर्ट्रेंड रसेल ने लिखा है कि अगर कहीं किसी की जेब कट जाए और जो आदमी बहुत जोर से चोरी के खिलाफ बोले और कहे--मारो, पकड़ो, किसने जेब काटा! उसको पकड़ लेना; जहां तक संभावना है उसी ने काटा है। उसको एकदम पकड़ लेना।
यह ठीक बात है। इसको मैं अनुभव से जानता हूं। मेरे गांव में, मेरे बचपन में ज्यादा कुछ चीजें चुराने को थीं भी नहीं। लेकिन तरबूज-खरबूज नदी पर होते; और उनको चुराना भी आसान है; क्योंकि रेत में ही बागुड़ लगाई जाती है, कहीं से भी बागुड़ को रेत से उखाड़ लो, कोई उखाड़ने में भी अड़चन नहीं है, रेत ही है, कहीं से भी घुस जाओ बागुड़ में। तो दो-चार मित्र घुस जाते थे। लेकिन मैंने एक बात बहुत जल्दी सीख ली कि अगर आ जाए मालिक तो भागना नहीं है। बाकी तो भागते थे, मैं चिल्लाता थाः पकड़ो! मैं कभी नहीं पकड़ा गया। क्योंकि मालिक समझता कि अपने साथ में है, यह आदमी अपने साथ में है। स्वभावतः जब मैं भाग ही नहीं रहा हूं तो बात जाहिर है कि मैंने चोरी नहीं की है।
मेरे विरोध में वे बोलते हैं; वह सिर्फ भूमिका है, ताकि फिर वे मेरी बातों को दोहराएं तो तुम्हें कल्पना में भी यह बात न उठ सके कि चोरी की गई है। लेकिन वे कितनी ही व्यवस्था से दोहराएं और कितना ही शब्दशः दोहराएं, मेरी बातों के आधार-स्तंभ उनके जीवन-आधार-स्तंभों से भिन्न ही नहीं, विपरीत हैं। इसलिए अगर तुम गौर से देखोगे तो उनके मुंह से मेरी बातें अत्यंत फूहड़ हो जाती हैं। और उन्हें उनमें कुछ-कुछ मिलाना पड़ता है, नहीं तो उनकी जीवन-दृष्टि से तालमेल नहीं बैठेगा।
अब जैसे मैं जीवन का पक्षपाती हूं, तुम्हारे साधु-संन्यासी जीवन-विरोधी हैं। मेरी सारी बातों की संगति जीवन के प्रेम से जुड़ी है और उन सबके विचारों का आधार, जीवन त्याज्य है, इस बात पर खड़ा है। अब मेरी बातें दोहराएंगे तो बड़ी अड़चन आती है। उसमें विसंगति आती है। तो या तो मेरी बातों

को तोड़ना-मरोड़ना पड़ता है, यहां-वहां से जोड़ना पड़ता है; और या फिर मेरी बातें स्पष्ट रूप से ही उनके मुंह पर एकदम अर्थहीन हो जाती हैं।
मुल्ला नसरुद्दीन पोस्ट आफिस गया और पोस्ट मास्टर के पास जाकर उसने कहा कि जरा मेरा यह कार्ड लिख दें, पता लिख दें इस पर।
पोस्ट मास्टर ने पता लिख दिया।
धन्यवाद! नसरुद्दीन ने कहाः अब जरा चार पंक्तियां मेरी खैरियत की भी लिख दें।
पोस्ट मास्टर ऐसे तो प्रसन्न नहीं था कि इस काम के लिए पोस्ट मास्टर नहीं है, लेकिन अब यह बूढ़ा आदमी, अब पता लिख ही दिया, चार पंक्तियां और। किसी तरह झुंझलाते हुए उसने चार पंक्तियां और लिख दीं और फिर पूछाः और कुछ?
मुल्ला नसरुद्दीन ने कहाः बस एक पंक्ति और लिख दें, इतना और लिख दें
कि गंदे और फूहड़ हैंडराइटिंग के लिए क्षमा करना।
ऐसी ही हालत हो जाती है। मैं जो कह रहा हूं, उसका मेरे साथ एक तारतम्य है, उसका एक तालमेल है। मैं जो कह रहा हूं वे मेरे वीणा के तार हैं; उन तारों को लेकर तुम किसी और वाद्य में जोड़ दोगे, बेसुरे हो जाएंगे, फूहड़ हो जाएंगे। मैं जो कह रहा हूं वह एक पूरी जीवन-दृष्टि है, एक पूरा जीवन-दर्शन है। उसमें से तुमने कुछ भी टुकड़े निकाले, चाहे वे टुकड़े कितने ही प्रीतिकर लगते हों, उनके संदर्भ से उनको अलग किया कि वे बेजान हो जाएंगे।
तुम्हें एक बच्चे की आंखें बड़ी प्यारी लगती हैं--शांत, निर्मल, निर्दोष! इससे यह मत सोचना कि बच्चे की आंखें निकाल लोगे और टेबल पर सजा कर रखोगे तो बहुत अच्छी लगेंगी। खून-खराबा हो जाएगा। सारी सादगी बच्चे की आंखों की, निर्दोषता खो जाएगी। मुर्दा हो जाएंगी आंखें, पथरा जाएंगी। वह तो उसके पूरे व्यक्तित्व के साथ ही उनका तालमेल है, संगति है, संदर्भ है। और पूरे प्राणों से उनका जोड़ है।
मेरा एक-एक शब्द मेरी पूरी जीवन-दृष्टि से जुड़ा हुआ है। उसे तुम तोड़
ले सकते हो। उसको तुम अलग-अलग वाद्यों पर बजाने की कोशिश कर सकते हो।
लेकिन बात जमेगी नहीं।
मुल्ला नसरुद्दीन ने बढ़िया सा कपड़ा खरीदा और सूट सिलवाने के लिए एक दर्जी के पास गया। दर्जी ने कपड़ा लेकर मापा और कुछ सोचते हुए कहाः कपड़ा कम है। इसका एक सूट नहीं बन सकता।
वह दूसरे दर्जी के पास चला गया। उसने माप लेने के बाद कहाः आप दस दिन बाद आइए और सूट ले जाइए।
निश्चित समय पर मुल्ला नसरुद्दीन दर्जी के पास गया। सूट तैयार था। अभी सिलाई के पैसे चुका ही रहा था कि दुकान में दर्जी का पांच वर्षीय लड़का प्रविष्ट हुआ। उस बच्चे ने बिल्कुल उसी कपड़े का सूट पहन रखा था, जिसका मुल्ला नसरुद्दीन ने सूट बनवाया था। मुल्ला चौंका। उसने कहाः मामला क्या है? तुमने कपड़ा चुराया है!
थोड़ी सी बहस के बाद दर्जी ने स्वीकार कर लिया। अब मुल्ला नसरुद्दीन पहले दर्जी के पास गया और फुंकारते हुए बोलाः तुम तो कहते थे कि कपड़ा कम है, पर तुम्हारे प्रतिद्वंद्वी दर्जी ने उसी कपड़े से न केवल मेरा बल्कि अपने लड़के का भी सूट बना लिया!
दर्जी धीरज से सुनता रहा। फिर कुछ सोचते हुए बोलाः लड़के की उम्र क्या है?
पांच वर्ष।
दर्जी चहक कर बोलाः मैं भी कहूं कि कारण क्या है। श्रीमान, मेरे लड़के
की उम्र अठारह वर्ष है।
एक संदर्भ में बात लग जाए, दूसरे संदर्भ में न लगे। लगती ही नहीं! मैं
भी देखता हूं, मेरे पास लोग भेज देते हैं, मेरे संन्यासी लेख भेज देते हैं, किताबें भेज देते हैं कि ये बिल्कुल बातें आपसे चुराई हुई हैं। कहीं उनका तालमेल नहीं बैठता। लेकिन इस आशा में कि ये बातें लाखों लोगों को प्रभावित कर रही हैं तो इन बातों में कुछ बल है, इसलिए इन बातों को कहीं भी डाल दो तो शायद लोग प्रभावित होंगे।

मैं उन सब थोथूमलों से कह देना चाहता हूंः बातों में बल नहीं होता, बल व्यक्तित्व में होता है। बातों में क्या होता है? शब्द तो मैं वही बोल रहा हूं जो तुम सब बोलते हो। कुछ ज्यादा शब्द मुझे आते भी नहीं। शब्दों की कोई बहुत बड़ी संख्या भी मेरे पास नहीं है। मेरी शब्दावली बहुत छोटी है। अगर तुम हिसाब लगाने बैठो तो चार सौ, पांच सौ शब्दों से ज्यादा शब्द मैं उपयोग में नहीं लाता। लेकिन टर्न-ओवर काफी है! असली सवाल टर्न-ओवर है।
शब्द तो मैं कोई अनूठे नहीं बोल रहा हूं--कामचलाऊ हैं, रोजमर्रा के हैं, बातचीत के हैं। लेकिन पीछे कोई और है। शब्दों के पीछे निःशब्द का प्राण है। शब्दों के पीछे शून्य का संगीत है। शब्दों के पीछे साक्षात्कार है।
मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन आया और अपने यात्रा के किस्सों को बढ़ा-चढ़ा
कर लोगों को सुनाने लगा। और मुझे पता है, वह कहीं गया नहीं है। मेरे सामने ही सुनाने लगा। कहने लगाः अमरीका गया, इंग्लैंड भी गया, अफ्रीका भी गया। अफ्रीका के जंगली देश देखे। बर्फानी देशों में भी फंसा। ऐसा शिकार किया, वैसा किया।
मैं चुपचाप सुनता रहा। मैंने उससे इतना ही पूछा कि नसरुद्दीन, फिर तो आपको भूगोल की अच्छी-खासी जानकारी हो गई होगी?
उसने कहाः जी नहीं, मैं वहां गया ही नहीं।
तुम्हें जब कोई थोथूमल मिल जाएं तो उनसे जरा कुछ पूछा करो, कि भैया, भूगोल गए? वे कहेंगेः नहीं, वहां गए ही नहीं।
नाराज मत होना, माधवी। मजा लो! इन सब बातों का भी मजा लो। यह सब भी होता है। यह सब स्वाभाविक है। ये अच्छे लक्षण हैं। ये इस बात के लक्षण हैं कि जो मेरे विरोध में हैं, वे भी अपने को मुझसे बचा नहीं पा रहे हैं। किताबों में छिपा-छिपा कर किताबें पढ़ रहे हैं।
मेरे एक मित्र जैनों के एक बड़े संत कानजी स्वामी को मिलने गए। वे कुछ
पढ़ रहे थे, उन्होंने जल्दी से किताब उलटा कर रख दी। मेरे मित्र को गैरिक वस्त्रों में देखा, माला देखी, बस एकदम मेरे खिलाफ बोलने लगे। इसीलिए तो तुमको गैरिक वस्त्र और माला पहना दी है। जैसे सांड एकदम बिचक जाता है न लाल झंडी देख कर, ऐसे लोगों को बिचकाने के लिए तुम्हें यह लाल झंडी दे दी है कि जहां देखी झंडी कि वे बिचके एकदम! एकदम मेरे खिलाफ बोलने लगे!
लेकिन मेरे मित्र को वह किताब देख कर शक हुआ। उलटी तो रख दी थी उन्होंने, लेकिन तुम देखते हो, मैं दोनों तरफ फोटो छपवा देता हूं! उलटी भी रखोगे तो कैसे रखोगे? उन्होंने कहाः आप खिलाफ तो बड़ा बोल रहे हैं, फिर यह किताब क्यों पढ़ रहे हैं? अगर ये व्यर्थ की ही बातें हैं तो आप समय खराब क्यों कर रहे हैं? सार्थक बातें क्यों नहीं पढ़ते? समयसार पढ़िए, जैन शास्त्र पढ़िए, यह क्यों किताब... आप समय खराब कर रहे हैं? और क्या मैं देख सकता हूं यह किताब? क्योंकि मुझे शक है कि तीन दिन से आपको सुन रहा हूं, वह इसी किताब में से बोला जा रहा है।
हालांकि सब विकृत हो जाता है। हो ही जाएगा। तुम किसी सुंदर से सुंदर गीत से शब्द चुन लो तो उन शब्दों में सौंदर्य नहीं रह जाता। सौंदर्य सदा संपूर्ण संदर्भ में रहता है। एक फूल तुम तोड़ लो वृक्ष से, तोड़ते ही मर जाता है। वृक्ष में जीवंत था, रसधार बहती थी।
मगर यह चलेगा। इसको रोकने का एक ही उपाय हैः मेरी किताबों को ज्यादा
से ज्यादा लोगों तक पहुंचाओ। इसको रोकने का एक ही उपाय हैः लोग मुझसे ज्यादा से ज्यादा परिचित हो जाएं। यह अपने आप रुक जाएगा। या तो रुकेगा या फिर जिन लोगों को यह बात ठीक ही लग रही है, उनको हिम्मतपूर्वक स्वीकार करना पड़ेगा।
मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैंः फलां मुनि महाराज बस आपकी ही बात बोलते हैं।
मैंने कहाः मेरा नाम लेते हैं कभी?
कहाः नाम आपका कभी नहीं लेते! मगर बात तो आपकी ही बोलते हैं। किताब तो आपकी ही पढ़ते हैं।
तो मैंने कहाः जब तक वे मेरा नाम न लें, तब तक समझना कि बेईमान हैं।
किताब पढ़ना और बात मेरी बोलना... । लेकिन इस तरह की भ्रांति खड़ी करना कि वह

बात उनकी है। मुझे कुछ अड़चन नहीं है, लेकिन इससे वे खुद ही धोखा खा रहे हैं। खुद भी जो लाभ उठा सकते थे, वह भी नहीं उठा पा रहे हैं।
और दूसरों को कब तक धोखा दोगे? थोड़े से लोगों को थोड़े दिन धोखा दिया जा सकता है, लेकिन कब तक? धोखे टूट जाते हैं। धोखे टूट कर ही रहेंगे।
अब मेरे एक लाख संन्यासी हैं सारी दुनिया में। ये जगह-जगह धोखे तोड़ेंगे। और ये एक लाख पर रुकने वाले नहीं हैं, ये जल्दी दस लाख हो जाएंगे। यह फैलता हुआ... जैसे पूरे जंगल में आग लग गई है! एक चिनगारी से लगी है, मगर पूरा जंगल जल उठा है! कितनी देर तक यह धोखाधड़ी चलेगी?
इसलिए, माधवी, इसकी चिंता में मत पड़ो। इतराने दो, बोलने दो, दोहराने दो। तोते हैं, इन पर नाराज होना नहीं चाहिए। तोते हैं, तोतों के साथ तोतों जैसा व्यवहार करो, बस। बुद्धि नाममात्र को नहीं है। ग्रामोफोन रिकार्ड हैं--हिज मास्टर्स वाइस। वह हिज मास्टर्स वाइस वालों ने भी खूब तरकीब की-- चोंगे के सामने कुत्ते को बिठा दिया! क्योंकि कुत्ते से ज्यादा सेवक और मालिक का कौन है? हिज मास्टर्स वाइस! मालिक कहे कि पूंछ हिलाओ, तो पूंछ हिलाता है। मालिक कहे कि भौंको, तो भौंकता है। कभी-कभी कुत्ता संदेह में होता है तो दोनों करता है।
तुमने देखा, तुम किसी के घर गए, कुत्ता सामने मिला। और कुत्ते को पक्का नहीं है कि मालिक के दोस्त हो कि दुश्मन हो, अपने हो कि पराए हो, कि तुमसे कैसा व्यवहार करना! तो कुत्ता दोनों काम करता है--भौंकता भी है, पूंछ भी हिलाता है। यह राजनीति है। वह देख रहा है कि जैसी स्थिति होगी, जिस तरफ ऊंट करवट लेगा, उसी तरफ हम भी हो जाएंगे। पूंछ से जय-जयकार बोल रहा है। पूंछ से कह रहा है जिंदाबाद, मुंह से कह रहा है मुर्दाबाद! और देख रहा है, प्रतीक्षा, कि स्थिति साफ हो जाए कि मामला क्या है! फिर घर का मालिक आ गया और तुम्हें गले लगा लिया, भौंकना बंद हो गया, पूंछ हिलती रही। घर का मालिक आ गया और उसने कहाः आगे बढ़ो, और दरवाजा देखो! कि पूंछ हिलना बंद हो जाएगी कुत्ते की, भौंकना बढ़ जाएगा!
अभी ये जो लोग मेरी बातें दोहरा रहे हैं, ये दोहरी स्थिति में हैं-- भौंकते भी हैं, पूंछ भी हिलाते हैं। इनको अभी पक्का नहीं है कि मैं जो कह रहा हूं, उसके साथ क्या निर्णय लेना? क्या मान कर चल पड़ना? इतना साहस करना? बिन माने भी नहीं रह सकते। कुछ बात है कि दिल में चोट भी करती है। कुछ बात है कि झकझोरती भी है।
कितने साधु-संन्यासियों और मुनियों के पत्र आते हैं कि हम छोड़ने को राजी हैं। हम इस जाल से छूटना चाहते हैं। लेकिन क्या आपके आश्रम में जगह मिलेगी?
अब मैं जानता हूं, ये जो जैन मुनि हैं, हिंदू साधु हैं, ये किसी काम के नहीं हैं। और मेरा आश्रम सृजनात्मक होने वाला है। इनको बिठा कर वहां क्या करेंगे? कोई मक्खियां मरवानी हैं? किस काम के हैं? ज्यादा से ज्यादा सेवा ले सकते हैं, और तो कुछ काम के हैं नहीं।
और इनकी आदतें खराब हो गई हैं, क्योंकि इनकी सेवा चल रही है। कुछ गुण नहीं हैं, कुछ प्रतिभा नहीं है। कोई इसलिए पूजा जा रहा है कि उसने मुंह पर पट्टी बांध रखी है। कोई इसलिए पूजा जा रहा है कि वह नग्न खड़ा है। कोई इसलिए पूजा जा रहा है कि वह अपने बाल लोंचता है, केश-लुंज करता है। कोई इसलिए पूजा जा रहा है कि वह उपवास करता है। मगर इन बातों का मेरे आश्रम में तो कोई मूल्य नहीं है। तुम कितना ही केश लोंचो, कोई खड़े होकर देखेगा भी नहीं, कोई फिकर भी नहीं करेगा--लोंचते रहो, तुम्हारी मर्जी! लोग समझेंगे कि कैथार्सिस कर रहे, कि सक्रिय ध्यान की कोई भाव-मुद्रा आ गई, कि करो भाई, कि कुंडलिनी ऊर्जा शायद सिर में पहुंच गई! यहां कौन तुमको समझेगा कि तुम केश-लुंज कर रहे हो? और कोई तुम्हारे पैर नहीं छुएगा।
यहां तुम उपवास करोगे तो कोई तुम्हें सम्मान नहीं मिलेगा। क्योंकि भूखे मरने में कौन सा समादर है? न तो ज्यादा खाने में कुछ है, न कम खाने में कुछ है। सम्यक आहार! जितना जरूरी है, उतना सदा लेना उचित है। तुम यहां नंगे खड़े हो जाओगे, कि धूप सहोगे, कि सर्दी सहोगे, लोग समझेंगे कि थोड़े झक्की हो। और काम के तो तुम कुछ भी नहीं हो।

और मैं नहीं चाहता कि मेरा संन्यासी गैर-सृजनात्मक हो। गैर-सृजनात्मक होने के कारण ही इस संसार में संन्यास की प्रतिष्ठा नहीं बन पाई। यहां तो कुछ करना होगा। यहां जितने संन्यासी हैं--तीन सौ संन्यासी आश्रम में हैं, शायद भारत के किसी आश्रम में तीन सौ संन्यासी नहीं हैं-- लेकिन सब कार्य में संलग्न हैं। कुछ बनाने में लगे हैं। और स्वभावतः कुछ ऐसा बनाना है जो कि सांसारिक न बना सकते हों, तो तुम्हारी कुछ खूबी है। जैसे ही संन्यासियों का गांव बसेगा, तुम देखोगे कि हम इस देश को हजार तरह की सृजनात्मक दिशाएं दे सकते हैं। छोटी से लेकर बड़ी चीजों तक हम बना सकते हैं। बनानी हैं, क्योंकि यह देश गरीब है, इसको समृद्ध करना है। छोटे-छोटे काम इस देश के जीवन में क्रांति ला सकते हैं। जरा-जरा सी बात से बहुत फर्क हो जाता है।
फिर इस जगत को सुंदर बनाने के अतिरिक्त और धार्मिक आदमी का कृत्य क्या होगा? जैसा तुम आए थे वैसा ही संसार को मत छोड़ जाना। थोड़ा सुंदर बना जाना। थोड़ा गीत की एक कड़ी जोड़ जाना। संगीत का एक स्वर जोड़ जाना। नृत्य की एक धुन बजा जाना।
तो मैं इन मुनियों को लेकर यहां करूं क्या? तो अड़चन है। छोड़ कर आने को
कई उनमें से राजी हैं। बात उनके हृदय को छुई है। लेकिन रहना जिनके बीच है... क्योंकि रोटी-रोजी उन पर निर्भर है।
तुम जान कर चकित होओगे कि तुम्हारे साधु-संन्यासियों से ज्यादा गुलाम इस देश में और कोई भी नहीं है। उसकी गुलामी बड़ी गहरी है। वह रोटी- रोजी पर निर्भर है। तुम उसे खिलाओ तो खाए, तुम उसे पिलाओ तो पीए। उसे तुमने बिल्कुल अपंग बना दिया है। और जितना अपंग होता है, उतना ही उसको तुम समादर देते हो। तो मेरी बात उसकी समझ में भी आ जाए तो भी सवाल यह है कि छोड़े कैसे? छोड़े तो फिर उसका हो क्या? तुम चकित होओगे यह जान कर कि गृहस्थ व्यक्ति अपने घर छोड़ने में इतनी ज्यादा चिंता अनुभव नहीं करता जितना जैन मुनि अनुभव करेगा अपना मुनि-वेश त्यागने में, क्योंकि वह तो बिल्कुल ही समाज-निर्भर है। उसके पास और तो कोई गुणवत्ता नहीं है, सिवाय इसके कि वह मुनि है तो सम्मान मिलता है।
एक जैन मुनि ने छोड़ दिया मुनि-वेश। मैं हैदराबाद में था। उन्हें मेरी बात ठीक लगी। उन्होंने मुनि-वेश छोड़ कर, मैं जहां रुका था, वहां आ गए। उनका बड़ा समादर था। मगर जैन बड़े नाराज हो गए--स्वभावतः कि जिसको इतना समादर दिया, वह इस तरह धोखा कर जाए! दगाबाजी हो गई यह तो। तो वे उनको मारने के पीछे पड़े, कि उनकी पिटाई करनी है। उन्हीं की पिटाई! पहले एक तरह की सेवा की थी, अब दूसरी तरह की सेवा करनी है।
मैंने उनको कहा भी कि तुम्हें इससे क्या प्रयोजन? उस आदमी को मुनि रहना था तो रहा, नहीं रहना तो नहीं रहा। तुम क्यों पीछे पड़े हो? तुम्हें मुनि होना हो, तुम हो जाओ।
उन्होंने कहाः नहीं, हम ऐसे नहीं छोड़ देंगे। इससे हमारे धर्म का अपमान होता है। उनका धर्म को छोड़ कर जाना और लोगों के मन में संदेह पैदा करता है।
मैं एक सभा में बोलने गया तो वे भी, भूतपूर्व जैन मुनि, मेरे साथ गए। पुरानी आदत मंच पर बैठने की, तो वे मेरे साथ मंच पर चले गए। बस जैन खड़े हो गए। उन्होंने कहा कि पहले इनको मंच से नीचे उतारा जाए। इनको हम मंच पर न बैठने देंगे।
मैंने कहा कि मुझे तुम बैठने दे रहे हो, मैं तुम्हारा कभी मुनि नहीं रहा, न कभी होने की आशा है। तो इस बेचारे ने क्या बिगाड़ा है? यह कम से कम भूतपूर्व मुनि है, कुछ तो रहा है।
नहीं, लेकिन उन्होंने कहा कि इन्हें तो उतारना ही पड़ेगा। इन्हें हम मंच पर बरदाश्त ही नहीं कर सकते। इन्होंने धोखा दिया है।
जैनों को तुम अहिंसात्मक समझते हो, उतने अहिंसात्मक नहीं हैं। वे उनको खींचने लगे। किसी ने पैर पकड़ लिया, किसी ने हाथ पकड़ लिया। मगर मुनि भी मुनि! वे मंच पकड़ें!
मैंने कहाः हद हो गई! अब तुमने मुनि-वेश छोड़ दिया, कम से कम मंच छोड़ दो! चलो इन बेचारों का मन भर दो, इन्हीं के पास बैठ जाओ जाकर। इनको काफी दिन

कष्ट दिया मंच पर बैठ कर, इनको नीचे बिठा रखा; अब इनको भी थोड़ा मजा ले लेने दो, इन्हीं के बीच बैठ जाओ, क्या बिगड़ेगा?
मगर वे मंच न छोड़ें। उनका भी सम्मान का सवाल। और उनका समाज उनके पैर न छोड़े। इस खींचातानी में मैंने कहा कि फिर मैं यहां से चला। फिर आप लोग निपटें। इसमें कोई अर्थ नहीं है। यह बिल्कुल पागलपन है। तुम भी पागल हो, तुम्हारा मुनि भी पागल है। वह चाहता है कि पुराना ही सम्मान मिले। वह कैसे मिलेगा? जिस कारण से वे सम्मान देते थे, वह कारण खतम हो गया। और तुममें इतनी भलमनसाहत नहीं है कि बैठा रहने दो बेचारे को, क्या बिगाड़ रहा है! मंच बड़ा है, बैठा है एक कोने में, बैठा रहने दो। तुम भी बरदाश्त नहीं कर सकते! जैन मुनि या हिंदू संन्यासी... हिंदू संन्यासी यहां आ जाते हैं कभी। कहते हैंः आने का तो मन होता है, मगर फिर हिंदू...
मैं अमृतसर गया। एक हिंदू संन्यासी और सारे लोगों के साथ मेरे स्वागत
को आ गए। मेरी किताबें पढ़ीं, मेरे प्रेम में थे। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के लोगों ने मेरे विरोध में स्टेशन पर एक हंगामा खड़ा किया था, कोई दो सौ स्वयंसेवक काले झंडे लेकर इकट्ठे हुए थे। ठीक है, उसमें तो कुछ हर्जा नहीं। झंडे तुम्हारे हैं। तुम्हें काले लेना हों, काले लो। सफेद लेना हों, सफेद लो। तुम्हारी मौज, मेरा क्या बनता-बिगड़ता है! वे चिल्लाते रहे, शोरगुल मचाते रहे। मैं तो चला गया। लेकिन उस हिंदू संन्यासी को पकड़ लिया उन लोगों ने--कि तुम क्यों स्वागत के लिए आए? हिंदू संन्यासी होकर, हिंदुत्व का अपमान!
जब दूसरे दिन वह संन्यासी मुझे मिलने आए तो पट्टी इत्यादि बंधी। मैंने कहाः तुम्हें क्या हुआ?
उन्होंने कहाः यह आपका स्वागत करने जाने का फल है।
मैंने कहाः पर उन्होंने मुझे नहीं चोट पहुंचाई, तुम्हें क्यों चोट पहुंचाई?
उन्होंने कहा कि चोट इसलिए पहुंचाई कि मैं हिंदू संन्यासी, हिंदू होकर और मैं ऐसे व्यक्ति के स्वागत को गया जो सारे हिंदू धर्म की जड़ें काट रहा है!
न मालूम कितने संन्यासी आना चाहते हैं! एक मुसलमान फकीर ने लिखा था कि आना चाहता है, लेकिन मुसलमानों का डर लगता है। जैन आना चाहते हैं, जैनों का डर लगता है। हिंदू आना चाहते हैं, हिंदुओं का डर लगता है।
मेरी बातें तो उनकी समझ में आ रही हैं। तो उनकी हालत ऐसी हो गई है कि मेरी बात समझ में आती है, प्रभावित करती है, हृदय को छूती है, तो जाने- अनजाने निकल भी जाती है। मगर तभी उनको ख्याल आता है अपने सुनने वाले श्रावकों का और तत्क्षण वे मेरा विरोध भी करने लगते हैं। मेरा विरोध भी करना पड़ेगा उनको, अगर उनके बीच रहना है। और मेरी बात से भी नहीं बच सकते, क्योंकि बात में कुछ बल है जो उनके प्राणों को स्पर्श कर रहा है।
माधवी, इस सबमें दुखी होने की कोई भी जरूरत नहीं है। आनंदित हो! यह सब स्वाभाविक है।

आखिरी प्रश्नः आपको सुनते-सुनते आंसू क्यों बहने लगते हैं?

विजय सत्यार्थी! आनंद हो तो आंसू न बहें तो और क्या बहे? तुम्हारा हृदय मेरे हृदय से मेल खाए तो आंसू अभिव्यक्ति न करें तो और कैसे अभिव्यक्ति हो?
मुझे समझ न किसी दीदाए-गरीब का अश्क
जो लब तक आ न सकी है, वो इल्तिजा मैं हूं
वे तुम्हारी प्रार्थनाएं हैं! वह तुम्हारी दीनता नहीं है तुम्हारे आंसू। वे तुम्हारी प्रार्थनाएं हैं, वे तुम्हारी इल्तिजाएं हैं। तुम्हारा हृदय कुछ निवेदन करना चाहता है। शब्द नहीं मिलते। भाषा छोटी पड़ जाती है। कैसे कहो? आंखें गीली हो जाती हैं! वह गीलापन तुम्हारे प्रेम का प्रतीक है।

जितनी अधरों में कैद हुई पीड़ा,

उतना नैनों से जल रह-रह छलका।

जब हर अभाव का भाव बना पाहुन, द्वारे से लौटा गीतों का सावन।
हर सांस घुटी मलयानिल को छूकर, पतझार हुआ कलियों का उन्मीलन।
जितनी संपुट में बंद हुई आशा, उतना मन का भंवरा रह-रह तड़पा।
जितनी अधरों में कैद हुई पीड़ा, उतना नैनों से जल रह-रह छलका।

जब घने हो गए संयम के ताले, रिस-रिस कर फूटे अंतर के छाले।
उन्माद लिए व्याकुलता सी छाई, हाथों से छूटे मदिरा के प्याले।
जितनी बंधन में लाज बंधी मन की, उतना क्वांरा आंचल रह-रह ढलका।
जितनी अधरों में कैद हुई पीड़ा।
उतना नैनों से जल रह-रह छलका।

जब चाह लुटी हर लौटी पाती में, सब स्वप्न जले दीपक की बाती में।
अंगारों सी स्मृतियां शेष रहीं,
ज्वालामुखियों सी लेटी छाती में।
जितना सपनों का बिंब हुआ धूमिल,
उतना दीपक का छल रह-रह झलका।
जितनी अधरों में कैद हुई पीड़ा,
उतना नैनों से जल रह-रह छलका।

एक प्रेम का जन्म हो रहा है। मेरे पास इस सत्संग में, इस बुद्ध-ऊर्जा
के क्षेत्र में एक प्रेम का जन्म हो रहा है। तुम्हारे हृदय गीत गा रहे हैं, नाच रहे हैं, गुनगुना रहे हैं।
जितनी अधरों में कैद हुई पीड़ा,
उतना नैनों से जल रह-रह छलका।
प्रेम की एक सघन पीड़ा तुम्हारे भीतर इकट्ठी हो रही है। और जब बादल सघन होंगे तो बरसेंगे। आंसू से ज्यादा बहुमूल्य अभिव्यक्ति का कोई उपाय नहीं है। प्रेम को जितनी सरलता से, जितनी सुगमता से आंसू कह जाते हैं, और कोई भी नहीं कह पाता।
विजय सत्यार्थी! शुभ हो रहा है। सदभाग्य है। अभागे हैं वे, जिनकी आंखें गीली नहीं हो पातीं। अभागे हैं, क्योंकि उनके हृदय गीले नहीं हैं।
आज इतना ही।

अमी झरत, बिगसत कंवल
तेरहवां प्रवचन

अमी झरत, बिगसत कंवल

नाम बिन भाव करम नहिं छूटै।
साध संग औ राम भजन बिन, काल निरंतर लूटै।
मल सेती जो मल को धोवै, सो मल कैसे छूटै।
प्रेम का साबुन नाम का पानी, दोए मिल तांता टूटै।
भेद अभेद भरम का भांडा, चौड़े पड़-पड़ फूटै।
गुरुमुख सब्द गहै उर अंतर, सकल भरम से छूटै।
राम का ध्यान तू धर रे प्रानी, अमृत का मेंह बूटै।
जन दरियाव अरप दे आपा, जरा मरन तब टूटै।

राम नाम नहिं हिरदे धरा। जैसा पसुवा तैसा नरा।।
पसुवा नर उद्यम कर खावै। पसुवा तो जंगल चर आवै।।
पसुवा आवै पसुवा जाए। पसुवा चरै व पसुवा खाए।।
रामध्यान ध्याया नहिं माईं। जनम गया पसुवा की नाईं।।
रामनाम से नाहिं प्रीत। यह सब ही पसुवों की रीत।।
जीवत सुख दुख में दिन भरै। मुवा पछे चौरासी परै।।
जन दरिया जिन राम न ध्याया। पसुवा ही ज्यों जनम गंवाया।।

अमी झरत, बिगसत कंवल।
अमृत झरता है, निश्चित झरता है। कमल भी खिलते हैं, निश्चित खिलते हैं।
पर भूमिका निर्मित करनी जरूरी है।
घास-पात भी उगता है उसी भूमि में, जहां गुलाब के फूल खिलते हैं। दोनों में एक अर्थ में कुछ भेद नहीं। दोनों एक ही भूमि से रस लेते हैं। और दोनों में कितना भेद है फिर भी! एक घास-पात ही रह जाता है, एक गुलाब का फूल पृथ्वी का काव्य बन जाता है। अगर गुलाब के फूलों को देख कर परमात्मा का प्रमाण तुम्हें नहीं मिला, तो कहीं और न मिल सकेगा। अगर गुलाब का फूल देख कर तुम अचंभित न हुए, चमत्कृत न हुए, अवाक न हुए, ठिठक न गए, मन एक क्षण को निर्विचार न हो गया--तो सब मंदिर-मस्जिद व्यर्थ हैं।
मगर एक ही भूमि से घास-पात पैदा होता है, उसी भूमि से गुलाब पैदा होते हैं, दोनों में रस एक बहता है; लेकिन रूपांतरण बड़ा भिन्न है। दोनों के बीज होते हैं, दोनों को सूरज चाहिए, दोनों को पानी चाहिए, दोनों को भूमि चाहिए। दोनों की जरूरतें बराबर हैं। फिर भेद कहां पड़ जाता है?
भेद माली में है। घास-पात को उखाड़ फेंकता है; गुलाबों को सम्हाल लेता है, जमा लेता है।
संसार तो यही है; इसी में कोई बुद्ध हो जाता है और इसी में कोई व्यर्थ
जी लेता है। भेद तुम्हारा है। माली को जगाओ! माली सोया पड़ा है और तुम्हारी बगिया में घास-पात उग रहा है। जहां फूल होने थे, जहां सुगंध होनी थी, वहां केवल सड़ांध है जीवन की। जो ऊर्जा आकाश की तरफ यात्रा करती, वह अंधी, खड्डों में, खोहों में भटक रही है। जो ऊर्जा अमृत बनती, वही जहर हो गई है। जो सिंहासन बनती, वही सूली हो गई है।
कैसे यह माली जागे? कौन सी पुकार इस माली को उठा देगी? उस पुकार का नाम
ही राम-नाम है; कहो उसे प्रार्थना, कहो उसे ध्यान!

बीहड़ विश्व-विजन-पथ में चल
चरण शिथिल हो गए हमारे!
कैसे गाऊं गीत तुम्हारे?

घनीभूत पीड़ा का कलरव
दूर न मुझसे पल भर रहता,
अधरों में नित प्यास जगा कर

आंसू घन सा बरसा करता,
धूमिल संध्या विरह घोल कर मौन पिलाती आंसू खारे!
कैसे गाऊं गीत तुम्हारे?

स्वप्न-सृजन भी कभी न होता चाहे चंदा मुस्काता हो,
सुधि का दीप न जल पाता है चाहे शलभ मचल गाता हो,
आशाओं का मौन निमंत्रण
पहुंच न पाता सुधि के द्वारे! कैसे गाऊं गीत तुम्हारे?

झूठे विश्वासों के बल पर मरु को पार कौन करता है?
जीवन-राह बिना पहचाने
आगे चरण कौन धरता है?
थके पाल के पंख संजो कर
पहुंचा कोई नहीं किनारे!
कैसे गाऊं गीत तुम्हारे?

एक ही प्रश्न महत्वपूर्ण है, पूछ लेने जैसा है, रोएं-रोएं में कंपित
कर लेने जैसा है--कैसे तुम्हारा गीत गाऊं? कैसे तुम्हें पुकारूं? कैसे तुम मेरे मन-मंदिर में विराजमान हो जाओ? कैसे तुम्हारा जागरण, तुम्हारी ऊर्जा, तुम्हारी चेतना मेरा भी जागरण बने, मेरी भी ऊर्जा बने, मेरी भी चेतना बने? मेरे भीतर सोया मालिक, मेरे भीतर सोया माली कैसे जगे? कि मेरी बगिया में भी फूल हों, चंपा के हों, चमेली के हों, गुलाब के हों और अंततः कमल के फूल खिलें! यह मेरा जीवन कीचड़ ही न रह जाए।
यह कीचड़ कमल में रूपांतरित होनी चाहिए। और यह कमल में रूपांतरित हो सकती है। कीमिया कठिन भी नहीं है। जरा सी जीवन में समझ की बात है। बेसमझे सब व्यर्थ हो जाता है। और जरा सी समझ--बस जरा सी समझ--और मिट्टी सोना हो जाती है। अमी झरत, बिगसत कंवल! एक थोड़ी सी क्रांति, एक थोड़ी सी चिनगारी। नाम बिन भाव करम नहिं छूटै।
उस चिनगारी का इशारा कर रहे हैं दरिया कि जब तक तुम्हारा कर्ता का भाव
न छूट जाए, तब तक तुम परमात्मा को स्मरण न कर सकोगे; या परमात्मा का स्मरण कर लो तो कर्ता का भाव छूट जाए। कर्ता के भाव में ही हमारा अहंकार है। कर्ता का भाव ही हमारे अहंकार का शरणस्थल है--यह करूं, वह करूं; यह कर लिया, वह कर लिया; यह करना है, वह करना है। कृत्य के पीछे ही, कृत्य के धुएं में ही छिपा है तुम्हारा दुश्मन। और अगर इस अहंकार के कारण ही तुमने मंदिर में पूजा की और मस्जिद में नमाज पढ़ी और गिरजे में घुटने टेके, सब व्यर्थ हो जाएगा, क्योंकि वह अहंकार इन प्रार्थनाओं से भी पुष्ट होगा। क्योंकि ये प्रार्थनाएं भी उसी मूल भित्ति को सम्हाल देंगी, नई-नई ईंटें चुन देंगी-- मैं कर रहा हूं!
प्रार्थना की नहीं जाती, प्रार्थना होती है--वैसे ही जैसे प्रेम होता है। प्रेम कोई करता है? कर सकता है? कोई तुम्हें आज्ञा दे कि करो प्रेम! जैसे सैनिकों को आज्ञा दी जाती है--बाएं घूम, दाएं घूम। ऐसे आज्ञा दे दी जाए--करो प्रेम!
दाएं-बाएं घूमना हो जाएगा, देह की क्रियाएं हैं; मगर प्रेम? प्रेम तो कोई क्रिया ही नहीं है, कृत्य ही नहीं है। प्रेम तो भेंट है विराट की ओर से। प्रेम तो अनंत की ओर से भेंट है। उन्हें मिलती है जो अपने हृदय के द्वार को खोल कर प्रतीक्षा करते हैं। प्रेम तो वर्षा है। अमी झरत! यह तो ऊपर से गिरता है, आकाश से, इसलिए इशारा है।
इस छोटे से सूत्र में "अमी झरत, बिगसत कंवल" दो बातों का इशारा है। एक
कि अमृत तो आकाश से झरता है और कमल जमीन पर खिलता है। आकाश से परमात्मा

उतरता है और भक्त पृथ्वी पर खिलता है। भक्त के हाथ में नहीं है कि अमृत कैसे झरे, लेकिन भक्त अपने पात्र को तो फैला कर बैठ सकता है! भक्त बाधाएं तो दूर कर सकता है! पात्र ढक्कन से ढका रहे, अमृत बरसता रहे, तो भी पात्र खाली रह जाएगा। पात्र उलटा रखा हो, तो भी पात्र खाली रह जाएगा। पात्र फूटा हो तो भरता-भरता लगेगा और भर नहीं पाएगा। कि पात्र गंदा हो, जहर से भरा हो, कि अमृत उसमें पड़े भी तो जहर में खो जाए। पात्र को शुद्ध होना चाहिए, जहर से खाली।
और ज्ञान, पांडित्य--जहर है। जितना तुम जानते हो, उतने ही बड़े तुम अज्ञानी हो। क्योंकि जानने से भी तुम्हारा अहंकार प्रबल हो रहा है कि मैं जानता हूं! जितने शास्त्र तुम्हारे पात्र में हों, उतना ही जहर है।
पात्र खाली करो। पात्र बेशर्त खाली करो। क्योंकि उस खाली शून्यता में
ही निर्दोषता होती है, पवित्रता होती है।
और तुम्हारे पात्र में बहुत छेद हैं, क्योंकि बहुत वासनाएं हैं। पूरब
ले जाती एक वासना, पश्चिम ले जाती एक वासना, दक्षिण ले जाती, उत्तर ले जाती। छेद ही छेद हैं, जिनमें से तुम्हारी जीवन-धारा बहती जाती है, क्षीण होती जाती है। एक ही वासना को बचने दो, ताकि पात्र का एक ही मुंह रह जाए। सारी वासनाओं को, सारे छिद्रों को एक ही मुंह में समाहित कर दो। एक परमात्मा को पाने की अभीप्सा बचने दो। एक सत्य को पाने की गहन आकांक्षा, एक त्वरा, एक तीव्रता! भभक उठो मशाल की तरह! एक आकाश को छू लेने की आकांक्षा! तो सारे छिद्र बंद हो जाएं।
और पात्र को उलटा मत रखो। छिद्र भी बंद हों, पात्र शुद्ध भी हो और उलटा रखा हो... और लोग पात्र को उलटा रखे हैं। संसार की तरफ तो उनकी आंखें हैं और परमात्मा की तरफ पीठ है; यह पात्र का उलटा होना है। संसार सन्मुख और परमात्मा के विमुख।
परमात्मा के सन्मुख होओ, संसार की तरफ पीठ करो। और मैं नहीं कह रहा हूं कि संसार छोड़ दो या भाग जाओ, लेकिन पीठ करके काम करते रहो। मगर पीठ रहे। आंखें अटकाएं न संसार पर। संसार ही सब कुछ न हो। दुकान भी करो, बाजार भी जाओ, काम भी करो। परमात्मा ने जो दिया है, जहां तुम्हें छोड़ा है, उन सारे कर्तव्यों को निभाओ। मगर एक बात ध्यान रहे--आंख उस शाश्वत पर अटकी रहे! चाहे चलो जमीन पर, मगर याद आकाश की बनी रहे। फिर कोई चिंता नहीं है। फिर तुम्हारा पात्र प्रभु की तरफ उन्मुख है। फिर देर नहीं लगेगी, अमृत झरेगा। और अमृत झरे तो क्षण भर नहीं लगता कमल के खिलने में। जैसे सुबह उगा सूरज और खिला कमल! इधर उगा सूरज, उधर पंखुड़ियां खिलीं। इधर बरसा अमृत, उधर तुम्हारे भीतर का कमल खिला। तुम्हारे भीतर के कमल के खिलने का नाम ही प्रार्थना है। प्रार्थना में ही तुम फूल बनते हो। प्रार्थना के बिना जीवन शूल ही शूल है।
नाम बिन भाव करम नहिं छूटै।
ये एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। या तो प्रभु का स्मरण करो... ।
कैसे प्रभु का स्मरण करो? जाएं मंदिर में? बजाएं मंदिर की घंटियां? पूजा के थाल सजाएं? बहुत लोग कर रहे हैं, ईश्वर-स्मरण नहीं आ रहा है। क्या करें? शास्त्र कंठस्थ करें? तोते बन जाएं? बहुत लोग बन गए हैं, ईश्वर-स्मरण नहीं आ रहा है। पंडितों से ईश्वर की जितनी दूरी है, उतनी पापियों से भी नहीं। पापी भी अपनी किसी गहन पीड़ा के क्षण में परमात्मा को याद करता है। पंडित कभी नहीं करता। परमात्मा के संबंध में बकवास करता है। परमात्मा के संबंध में दूसरों को समझा देता होगा, कि शास्त्र लिखता होगा बड़े-बड़े, लेकिन परमात्मा की याद नहीं करता। पापी तो कभी रोता भी है। जार-जार रोता भी है! ग्लानि से भी भरता है। पीड़ा भी उठती है। किन्हीं क्षणों में आकाश की तरफ हाथ उठा कर कहता भी है कि कैसे मुझे छुटकारा हो? कब मुझे बचाओगे?
और इसलिए मैं तुमसे कहता हूंः पापी की प्रार्थनाएं भी पहुंच जाएं, पंडितों की प्रार्थनाएं नहीं पहुंचतीं, क्योंकि पंडितों की प्रार्थनाएं प्रार्थनाएं ही नहीं होतीं। हां, पंडित की प्रार्थना शुद्ध होती है--भाषा, व्याकरण, छंद, मात्रा, सब तरह से। और पापी की प्रार्थना तो ऐसी होती है जैसे छोटे बच्चे का तुतलाना, न भाषा है, न अभिव्यक्त करने की क्षमता है। पंडित की प्रार्थना बड़ी मुखर होती है, पापी की प्रार्थना मौन होती है।

तुम पंडित मत बनना। उस तरह से कोई परमात्मा को कभी याद नहीं किया है।
और तुम औपचारिक मत बनना। सीख मत लेना कि प्रार्थना कैसे की जाए। यह कोई कवायद नहीं है, न कोई योगाभ्यास है, कि सिर के बल खड़े हो गए, कि सर्वांगासन लगा लिया, कि मयूरासन लगा लिया। ये कोई शरीर के अभ्यास नहीं हैं। प्रार्थना तो बड़ा संवेदनशील हृदय अनुभव कर पाता है।
तो संवेदना जहां बढ़े, उन-उन क्षणों को साधो। संवेदना जहां बढ़े, उन-उन क्षणों में डूबो। आकाश तारों से भरा है--और तुम मंदिर में बैठे हो? और उसका सारा मंदिर अपनी सारी शोभा से आकाश को सजाए है, उसका मंडप सजा है तारों से-- और तुम आदमी की बनाई हुई दीवालों को देख रहे हो? लेट जाओ पृथ्वी पर, पृथ्वी भी उसकी है। देखो आकाश के तारों को, लीन हो जाओ। द्रष्टा और दृश्य कुछ क्षण को एक हो जाएं। न वहां कोई तारे हों, न यहां कोई देखने वाला हो। करीब आओ, निकट आओ, और निकट, और निकट--इतने समीप कि तारे तुममें डूब जाएं, तुम तारों में डूब जाओ। या कि सुबह उगते सूरज को देख कर, या किसी पक्षी को सांझ आकाश में उड़ते देख कर, या किसी झरने की कल-कल आवाज, या सागर में उठती हुई तरंगों का नाद, या किसी मोर का नृत्य, या किसी कोयल की कुहू-कुहू! ऐसे तो तुम किसी दिन शायद प्रार्थना को उपलब्ध हो जाओ, अगर तुम इन संवेदनाओं के स्रोतों को उपयोग करो तो।
प्रार्थना कवि-हृदय में उठती है। कवि बनो! प्रार्थना चाहती है एक कलात्मक जीवन-दृष्टि; एक सौंदर्य का बोध। सौंदर्य को परखो तो तुम्हारी आंख किसी दिन परमात्मा को भी परख लेगी, क्योंकि सौंदर्य में परमात्मा की झलक है। सुनो संगीत को और डूबो। मंदिर-मस्जिदों में कुछ भी नहीं मिलेगा। इतना विराट अस्तित्व तुम्हें चारों तरफ से घेरे खड़ा है! वृक्ष इतने हरे हैं--और तुम इनकी हरियाली में नहीं डुबकी मारते! और फूल इतने सुवासित हैं-- और तुम इनके पास नाचते भी नहीं कभी! यह अस्तित्व इतना प्यारा है! तुम इस दृश्य अस्तित्व को प्रेम नहीं कर पाते, तुम अदृश्य परमात्मा को कैसे प्रेम कर पाओगे? जो इतना निकट है, इतना समीप है, उससे तुम ऐसे खड़े हो दूर-दूर; तो जो दृश्य ही नहीं है, उससे तो तुम्हारा कोई नाता कभी न बनेगा।
और मैं तुमसे यह कहना चाहता हूंः अगर तुम दृश्य से नाता बना लो, तो इसी में अदृश्य छिपा है। इन्हीं फूलों में कहीं परमात्मा झांकता हुआ मिलेगा। इन्हीं तारों में किसी दिन तुम उसकी रोशनी की झलक पा लोगे। इसी उड़ते हुए पक्षी के पंखों में कभी तुम्हें परमात्मा की विराट योजना का अनुभव हो जाएगा। यह सारा अस्तित्व इतने अपूर्व आयोजन में आबद्ध है। यह कोई दुर्घटना नहीं है। यह कोई संयोग भी नहीं है। यहां बड़ा संगीत है! अहर्निश संगीत का नाद उठ रहा है। उस नाद को सुनो। उस नाद को पहचानो।
और ख्याल रखना, दृश्य से ही शुरू करो। अदृश्य से तो कोई शुरू कर नहीं सकता। जो अदृश्य से शुरू करेगा, झूठ होगा उसका प्रारंभ। क्योंकि अदृश्य पर तुम भरोसा ही कर सकते हो, विश्वास कर सकते हो; जाना तो नहीं है। जो दिखाई पड़ रहा है, क्यों न हम उसी पर चरण रखें और उसकी सीढ़ियां बनाएं? और मैं तुमसे कहता हूं, तुम्हें परमात्मा की याद आने लगेगी। असंभव है कि न याद आए।
संवेदनशील बनो। हृदय को थोड़ा तरल बनाओ। कठोरता छोड़ो। पत्थर की तरह अकड़े मत खड़े रहो। सदियों-सदियों से तुम्हारे साधु-संन्यासियों ने पत्थर होने को तपश्चर्या समझा है! सब चीजों से अछूते खड़े रहना है, दूर खड़े रहना है, अपने को किसी चीज में डुबाना नहीं है--इसको साधना समझा है! यह साधना नहीं है, क्योंकि यह तुम्हें परमात्मा के निकट न लाएगी।
तो एक तो रास्ता यह है--संवेदनशील बनो, ताकि धीरे-धीरे जो स्थूल आंखों
से नहीं दिखाई पड़ता, वह संवेदनशील सूक्ष्म आंखों से दिखाई पड़े; जो हाथों से नहीं छुआ जाता, वह हृदय से छू लिया जाए। या दूसरा उपाय है कि यह जो कर्ता का भाव है, यह छोड़ दो। यह मैं कर्ता हूं, यह भाव छोड़ दो। कुछ लोग दुकान करते हैं, कुछ लोग त्याग करते हैं; भाव वही का वही है। कुछ लोग धन इकट्ठा करते हैं, कुछ लोग धन का त्याग करते हैं; भाव वही का वही है। कोई ऐसे अकड़ा है, कोई वैसे अकड़ा है। कोई दाएं, कोई बाएं। इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता। अकड़ नहीं मिटती। रस्सी जल भी जाती है तो भी ऐंठ नहीं जाती।

वही तुम्हारे तथाकथित महात्माओं के साथ हो जाता है; रस्सी जल भी गई, मगर ऐंठ नहीं जाती। पहले धन कमाते थे, अब पुण्य कमा रहे हैं; मगर खाता-बही जारी है! हिसाब लगा कर रखा हुआ है। कर्ता नहीं जाता। और कर्ता न जाए तो उस महाकर्ता का आगमन कैसे हो? जब तुम खुद ही कर्ता बने बैठे हो, उसके लिए जगह ही तुम्हारे भीतर नहीं है। ये दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। अगर एक हो जाए तो दूसरा अपने से हो जाता है। अगर तुम बहुत गहन रूप से संवेदनशील हो जाओ तो कर्ता का भाव अपने आप मर जाता है, क्योंकि यह झूठ है भाव। संवेदनशीलता के समक्ष यह असत्य टिक नहीं सकता, बह जाएगा। संवेदना की आएगी बाढ़ और ले जाएगी सारा कूड़ा-कर्कट। उसी कूड़ा-कर्कट में तुम्हारा यह कर्ता का भाव भी बह जाएगा। तुम्हें छोड़ना भी न पड़ेगा, बह जाएगा। एक दिन तुम अचानक पाओगे कि तुम नहीं हो। और जिस दिन तुमने पाया कि मैं नहीं हूं, उसी दिन पाया कि परमात्मा है।
या फिर कर्ता का भाव छोड़ दो, तो कर्ता का भाव छूटते ही तुम संवेदनशील
हो जाओगे। यह कर्ता का भाव ही तुम्हें पत्थर बनाए हुए है। इस कर्ता के भाव की पर्त ही तुम्हारे चारों तरफ लोहे की दीवाल की तरह खड़ी हो गई है। गलो, पिघलो, बहो!
नाम बिन भाव करम नहिं छूटै।
प्रभु-स्मरण आने लगे तो कर्ता का भाव छूट जाता है; या कर्ता का भाव छूट जाए तो प्रभु-स्मरण आने लगता है। ज्ञानी नहीं पाता, तपस्वी नहीं पाता। या तो ध्यानी पाता है या प्रेमी पाता है। और ध्यानी वह है जो पहले कर्ता का भाव छोड़ता है और तब परमात्मा को पाता है। और प्रेमी वह है जो पहले संवेदनशील होता है, प्रीति से भरता है, परमात्मा को स्मरण करता है, और उसी स्मरण में कर्ता का भाव छूट जाता है। बस दो ही विकल्प हैं, सिर्फ दो ही विकल्प हैं। ज्यादा चुनाव करने का उपाय भी नहीं है, तुम्हें जो रुच जाए। अगर तुम्हारे पास काव्यपूर्ण हृदय हो, एक चित्रकार की मनोदशा हो, एक संगीतज्ञ का झुकाव हो, तो भक्त बन जाओ। और अगर तुम्हारे पास ये कोई झुकाव न हों, गणितज्ञ की दृष्टि हो, गद्य की तुम्हारी जीवन-शैली हो, भाव नहीं बुद्धि और विचार पर तुम्हारा आग्रह हो--तो ध्यानी बन जाओ।
ध्यान में बुद्धि मिट जाती है, भाव में हृदय डूब जाता है। कहीं से टूटो, कहीं से द्वार खोलो। तुम्हारे भीतर दो द्वार हैं। एक द्वार है जो ध्यान से खुलता है, वह बुद्धि के द्वार से खुलता है। और एक द्वार है जो प्रेम से खुलता है, वह हृदय से खुलता है। मगर दोनों द्वार एक ही मंदिर में ले आते हैं।
और जल्दी करो, कहीं इस जिंदगी के ख्वाब में, कहीं इन क्षुद्र सपनों में ही सारी ऊर्जा, सारा समय व्यतीत न हो जाए।
जिंदगी यह कह के दी, रोजे-अजल, उसने मुझे--
यह हकीकत गम की ले, और राहतों के ख्वाब देख।
सृष्टि के प्रारंभ ने यह जिंदगी हमसे साफ-साफ कह कर दी है...
जिंदगी यह कह के दी, रोजे-अजल, उसने मुझे--
यह हकीकत गम की ले...
यह दुख तुझे देता हूं।
... और राहतों के ख्वाब देख।
और सपने देता हूं बड़े सुंदर। उन सपनों से राहत मिलती रहेगी। दुख तू भोगता रहेगा, सपने राहत देते रहेंगे। सपने मलहम-पट्टी करते रहेंगे, दुख घाव बनाते रहेंगे। और ऐसे ही हम बिता रहे हैं। जिंदगी दुख है और सपनों की आशा है। कल कुछ होगा, कल जरूर कुछ होगा!
कल न कभी कुछ हुआ है, न होगा। जो आज हो रहा है, वही कल भी होगा। अगर बदलना हो तो आज बदलो, अन्यथा कल भी बिन बदला रह जाएगा। कुछ करना हो तो अभी करो, इस क्षण करो। क्योंकि इसी क्षण से आने वाले क्षण की शुरुआत है, जन्म है। इसी क्षण के गर्भ में आने वाला क्षण छिपा है।
साध संग औ राम भजन बिन, काल निरंतर लूटै।
जीवन के इन सपनों में ही खोए रहे तो मौत तुम्हें लूटती ही रहेगी, लूटती ही रहेगी। तुम इकट्ठा करोगे और मौत लूटेगी। कितनी बार तो इकट्ठा किया और कितनी बार मौत ने लूटा। कब चेतोगे?

साध संग औ राम भजन बिन...
साध-संग का अर्थ हैः जहां राम को याद करने वाले लोग इकट्ठे हुए हों; जहां उसकी याद चल रही हो; जहां अदृश्य को छूने का अभियान चल रहा हो। साध-संग का अर्थ हैः जिन्होंने कुछ-कुछ घूंट पीए हों; जिन्हें थोड़ी मस्ती आ गई हो और आंखों पर लाली छा गई हो; जिन्हें जीवन, जितना तुम जानते हो, उससे ज्यादा दिखाई देने लगा हो; जिनकी आंख थोड़ी पैनी हो गई हो; जिनकी प्रतिभा में थोड़ी धार आ गई हो; जो थोड़े से जागने लगे हों, करवट लेने लगे हों; सुबह जिनकी करीब हो, नींद टूटने को हो या टूट गई हो; ऐसे लोगों की संगति में बैठो। क्योंकि जागों के पास बैठोगे तो ज्यादा देर सो न पाओगे। सोयों के पास बैठे तो बहुत संभावना है कि तुम भी सो जाओगे। सब चीजें संक्रामक होती हैं।
तुमने कभी ख्याल किया, तुम्हारे पास बैठा हुआ आदमी उबासी लेने लगे और तुम्हें याद ही नहीं आता कि कब तुमने भी उबासी लेनी शुरू कर दी! तुम्हारे पास बैठा आदमी झपकी लेने लगे और तुम्हारी आंखों में तंद्रा उतरने लगती है। मनुष्य इतना टूटा नहीं है एक-दूसरे से, जुड़ा है। हमारे भाव एक-दूसरे को आंदोलित करते हैं। चार लोग प्रसन्न बैठे हों, तुम उदास आए थे, लेकिन उनकी हंसी, उनका आनंद, और तुम्हारी उदासी भूल गई; तुम भी हंस उठे। और चार लोग उदास बैठे थे, तुम हंसते चले आते थे, बड़े प्रसन्न थे, और उनकी उदासी के घेरे में आए, उनकी उदासी के ऊर्जा-क्षेत्र में आए, कि तुम भी उदास हो गए। हम अलग-थलग नहीं हैं, हम जुड़े-जुड़े हैं। हम छोटे-छोटे द्वीप नहीं हैं, हम महाद्वीप हैं। हम एक-दूसरे को आंदोलित करते हैं। हम एक-दूसरे में प्रवेश किए हुए हैं।
इसलिए साध-संग का मूल्य है। जहां जागे लोग बैठे हों, वहां बैठ कर सोना मुश्किल हो जाएगा। जहां परमात्मा की याद चल रही हो, वहां तुम भी धीरे-धीरे टटोलने लगोगे। और जहां इतनी मस्ती हो परमात्मा की याद के कारण, तुम्हारे भीतर अभीप्सा न उठेगी कि कब होगा वह सौभाग्य का दिन कि ऐसी मस्ती मेरी भी हो? दरिया को देख कर तुम्हारा दिल डांवाडोल नहीं होगा? कबीर के पास बैठ कर तुम्हारे भीतर का कबीरा जागने नहीं लगेगा? मीरा की झनकार सुन कर तुम सोए ही रहोगे? तुम पत्थर नहीं हो। कहते हैं पत्थर की हुई अहिल्या भी राम के चरण के स्पर्श से पुनरुज्जीवित हो उठी। साध-संग! पत्थर भी प्राणवान हो जाए, तुम प्राणवान न हो सकोगे? तुम अहिल्या से भी ज्यादा पत्थर हो गए हो? नहीं; इतना पत्थर न कोई कभी हुआ है और न कभी हो सकता है। हमारा मौलिक रूप कभी भी नष्ट नहीं होता। कितने ही सो जाओ, पर्त दर पर्त कितने ही दब जाओ, कितने ही खो जाओ, मगर हीरा तुम्हारा है। और पर्त दर पर्त कितना ही खोया हो, तोड़ा जा सकता है।
साध-संग का अर्थ हैः जहां हथौड़ी चल रही है; जहां पर्तें तोड़ी जा रही हैं; जहां बीज फूट रहे हैं, अंकुरित हो रहे हैं; जहां नया-नया आविर्भाव हो रहा है। जहां तुम देखते हो कि अभी जो पास में सोया था, वह जाग गया; अभी जो रोता था, हंसने लगा; अभी जो उदास था, नाचने लगा। तुम्हारे पैरों में भी ताल बजने लगेगा। तुम्हारे हाथ भी थपकी देने लगेंगे।
प्रीतिकर संगीत को सुन कर तुम्हारे पैर थिरकते हैं या नहीं? प्रीतिकर संगीत को सुन कर तुम ताली बजाने लगते हो या नहीं? प्रीतिकर संगीत को सुन कर तुम डोलने लगते हो या नहीं? बस साध-संग उस परमात्मा का संगीत है। जहां गाया जा रहा हो, वैसे अवसरों को चूकना मत, क्योंकि वही एक संभावना है। पृथ्वी परमात्मा से बहुत खाली हो गई है। अब तो कहीं जहां सत्संग चल रहा हो, जीवंत सत्संग चल रहा हो, उन अवसरों को चूकना मत।
लेकिन होता यह है कि लोग मुर्दा तीर्थों पर इकट्ठे होते हैं। कभी वहां सत्संग था, यह बात सच है, नहीं तो तीर्थ ही न बनता। जब मोहम्मद जिंदा थे तो काबा तीर्थ था; अब नहीं है, अब सिर्फ पत्थर है। जब बुद्ध जीवित थे तो गया तीर्थ था; अब नहीं है, अब तो सिर्फ याददाश्त है। समय के पत्थर पर छोड़े गए अतीत के चिह्न मात्र हैं। बुद्ध तो जा चुके, पैरों के चिह्न हैं। पैरों के चिह्नों की तुम कितनी ही पूजा करो, तुम बुद्ध न हो जाओगे। यह तो बुद्धों के पास ही क्रांति घटती है।

लेकिन मनुष्य का दुर्भाग्य ऐसा है कि जब तक उसे खबर मिलती है, जब तक उसे खबर मिलती है, तब तक बुद्ध विदा हो जाते हैं। जब तक वह अपने को राजी कर पाता है, तब तक बुद्ध विदा हो जाते हैं। जब तक वह आता है, आता है, आता है, टालता है, टालता है, फिर कभी आता है--तब तक तीर्थ तो रह जाता है, लेकिन तीर्थंकर जा चुका होता है। फिर पत्थर पूजे जाते हैं। फिर सदियों तक पत्थर पूजे जाते हैं।
साध-संग! पत्थर की मूर्तियों से साथ करने से कुछ भी न होगा।
और ध्यान रखना, परमात्मा महा करुणावान है। ऐसा कभी भी नहीं होता पृथ्वी पर कि दो-चार दीये न जलते हों। ऐसा कभी नहीं होता कि कहीं न कहीं तीर्थ न जन्मता हो। ऐसा कभी नहीं होता कि कहीं न कहीं अमृत न झरता हो और कमल न खिलते हों। जरा तलाशो! जरा पुरानी धारणाओं को छोड़ कर तलाशो! मिल जाएगा तुम्हें तीर्थ।
और नहीं तो मौत तुम्हें लूटेगी। या तो साधुओं के साथ अपने को लुटा दो, नहीं तो मौत तुम्हें लूटेगी। और साधुओं के साथ लुटने में तो एक मजा है, क्योंकि जो लुटता है वह कूड़ा-कचरा है और जो मिलता है वह हीरे-जवाहरात है। और मौत के हाथ लुटने में बड़ी पीड़ा है। क्योंकि जिसको हीरे-जवाहरात समझा था, था तो नहीं, मौत उस कचरे को ले जाती है और हमें तड़पाती छोड़ जाती है। इतना तड़पाती छोड़ जाती है और हीरों की ऐसी आसक्ति और ऐसी आकांक्षा छोड़ जाती है--कचरा ही था, मगर हम तो हीरा समझ कर पकड़े थे--कि हम मरते वक्त उसी कचरे की फिर आकांक्षा को लेकर मरते हैं। और उसी आकांक्षा में से हमारा नया जन्म होता है। फिर दौड़ शुरू हो जाती है।
तुमने एक बात ख्याल की, मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि रात्रि जब तुम सोते हो, तो तुम्हारा जो आखिरी, बिल्कुल आखिरी ख्याल होता है, वही सुबह उठते वक्त तुम्हारा पहला ख्याल होगा। नहीं सोचा हो तो प्रयोग करके देखना। इसमें तो किसी मनोवैज्ञानिक से पूछने जाने की जरूरत नहीं है। रात बिल्कुल आखिरी-आखिरी, जब नींद आने ही लगी, आने ही लगी, आ ही गई--तब तुम्हारा जो आखिरी ख्याल हो, जरा उसको ख्याल में रख लेना। और सुबह नींद टूटी-टूटी, बस टूट ही रही है, होश आया कि नींद टूट गई--तत्क्षण देखना, तुम चकित होकर हैरान हो जाओगेः जो आखिरी ख्याल था रात, वही पहला ख्याल होता है सुबह। यही जिंदगी का भी राज है। मरते वक्त जो आखिरी ख्याल होता है, वह गर्भ में जाते वक्त पहला ख्याल हो जाता है। क्योंकि मौत भी एक लंबी नींद है। अगर तुम धन की वासना में मरे, तो बस पैदा होते से ही धन की वासना तुम्हें फिर पकड़ लेगी।
इसलिए तो बच्चों-बच्चों में इतना भेद है। कोई छोटा बच्चा ही संगीत में ऐसा कुशल हो जाता है कि भरोसा नहीं आता। बीथोवन के संबंध में कहा जाता है कि जब वह सात साल का था तो उसने अपने देश के बड़े-बड़े संगीत महारथियों को पानी पिला दिया। सात ही साल का था! तो हम कहते हैं प्रतिभाएं ऐसे लोगों को। लेकिन सात साल के बच्चे में यह प्रतिभा आकस्मिक नहीं है, क्योंकि न बाप संगीतज्ञ थे, न मां संगीतज्ञ थी, न घर का वातावरण संगीत का था। सच तो यह है, बाप भी खिलाफ था, मां भी खिलाफ थी, परिवार भी खिलाफ था--कि यह क्या दिन-रात मचा रखा है! पढ़ना-लिखना है कि नहीं? होमवर्क करना है कि नहीं? और बीथोवन है कि लगा है अपनी धुन में! सात वर्ष की उम्र में ऐसी अनूठी प्रतिभा! वैज्ञानिकों के पास और सुलझाने-समझाने का उपाय भी नहीं है। लेकिन हमारे पास उपाय है। यह मरते क्षण संगीत को ही पकड़ कर मरा होगा। शायद मरते वक्त भी इसके हाथ में वाद्य रहा होगा। शायद मर जाने के बाद ही इसके हाथ से वाद्य छीना गया हो।
कोई बच्चे जन्म से ही गणितज्ञ हो जाते हैं। कोई बच्चे जन्म से ही चोर
हो जाते हैं--जिनके घर में सब कुछ है, जिन्हें चोरी की कोई जरूरत नहीं है; लेकिन चोरी बिना उनसे नहीं रहा जाता।
मैं विश्वविद्यालय में शिक्षक था। मेरे एक मित्र प्रोफेसर, बहुत संपन्न परिवार के थे, लेकिन एक ही लड़का और एक ही परेशानी--चोरी! सब है। जो चाहिए, उसे देने को राजी हैं। लड़के के लिए कार लेकर दी है, लड़के को कमरा अलग दिया हुआ है। लड़के की सारी सुविधाएं पूरी की हैं। और चुराए क्या वह? छोटी- मोटी चीजें! किसी का बटन ही चुरा ले। अगर तुम्हारा कोट टंगा है, बटन ही तोड़

ले। किसी के घर भोजन करने जाए, चम्मच ही खीसे में सरका ले। बिल्कुल फिजूल, जिनका कोई आर्थिक मूल्य नहीं है। समझा-समझा कर परेशान हो गए। वह माने ही नहीं। मुझे उन्होंने कहा कि क्या करना?
ऐसे लोगों से मेरी दोस्ती बड़े जल्दी बन जाती है। उनके लड़के को मैंने कुछ कहा नहीं, लेकिन उससे मैत्री बनाई। वह किसी से कहना तो चाहता ही था, क्योंकि उसके लिए यह चोरी नहीं थी। दुनिया इसे चोरी समझती हो, वह इसमें रस लेता था। वह कहता थाः आज फलाने को धोखा दिया, आज उसको रास्ते पर लगा दिया। जब मुझसे उसकी दोस्ती हो गई तो वह मुझे आ-आ कर सुनाने लगा कि बड़े बुद्धिमान बने हैं, आज वाइस चांसलर के घर भोजन करने गया था, मार दी चम्मच! बैठे रहे बुढ़ऊ सामने, समझ न पाए। नजर रखे हुए थे, क्योंकि सबको पता है। मगर आखिर मैं भी अपने काम में कुशल हूं।
मैंने कहाः कभी तू अपनी चीजें तो दिखा, तूने कहां सब छिपा रखी हैं!
उसने कहाः मैंने एक अलमारी में सब बंद कर रखी हैं, आप आएं। और मय इतिहास के!
उसकी अलमारी देखने जैसी थी। छोटी-छोटी चीजें--बटन, चम्मच, माचिस, सिगरेट की डिब्बी, खाली डिब्बी! सबके नीचे उसने लिख रखा था--प्रोफेसर का लड़का था--कि फलां-फलां प्रोफेसर को फलां-फलां दिन धोखा दिया! इस-इस तारीख को इस-इस समय उनकी जेब से यह डिब्बी मार दी! उसने उनको सजा कर रखा था। उसने बड़े गौरव से मुझे दिखाया।
मरा होगा चोर। चोरी के भाव में ही दबा-दबा मरा होगा। वह भाव साथ चला आया है। देह तो छूट जाती है, चित्त साथ चला आता है। अब सब है, इसलिए चोरी का कोई कारण नहीं है, तो चोरी के लिए नया कारण खोज रहा है, उसमें रस ले रहा है, उसको भी अहंकार की पूर्ति बना रहा है--कि देखो, किसको धोखा दिया!
मैंने सुना है, एक पादरी ने, एक दयावान पादरी ने रात की सर्दी में एक आदमी को जेलखाने से निकलते देखा। वह अपनी कार से निकल ही रहा था। कोई जेलखाने से कैदी छोड़ा गया था। उसे बड़ी दया आ गई। उसने गाड़ी रोकी और उसको कहा कि तुम्हें कहां जाना है? अब इतनी रात, तुम कहां रास्ता खोजोगे? कितने दिन जेल में रहे?
उसने कहाः मैं कोई बारह साल जेल में था।
किसलिए जेल गए?
चोरी के कारण जेल गया।
बिठाया उसने अपने पास। कहाः तुम्हारे घर छोड़ देता हूं। कहां तुम्हारा
घर है, तुम्हें ले चलता हूं।
जब घर चोर को उतारने लगा वह और चोर से उसने कहा कि अगर कभी कोई जरूरत पड़े तो मेरे पास निस्संकोच चले आना, पास ही मेरा चर्च है। चोर को भी दया आई, उसने खीसे से एक मनी-बैग निकाला और कहा कि यह आपका मनी-बैग। रास्ते में मार दिया उसने! उसी पादरी का जो उसके घर छोड़ने जा रहा है! मगर बारह वर्ष का अभ्यासी। उसने कहा कि धन्यवाद-स्वरूप आपका यह मनी-बैग आपको वापस देता हूं।
तब पादरी को ख्याल आया कि उसकी जेब खाली है। पादरी ने कहाः बारह वर्ष जेल में रहे, फिर भी चोरी नहीं छूटी?
उसने कहाः छोड़ने की बात कर रहे हो, वहां महागुरुघंटालों के साथ रहा,
और सीख कर लौटा हूं। वहां मुझसे भी पहुंचे-पहुंचे लोग थे। मैं तो कुछ भी नहीं था, एक सिक्खड़ समझो। उन्होंने मुझे और कलाएं सिखा दी हैं। अब देखना है कि कोई मुझे कैसे पकड़ता है!
मनुष्य का चित्त अदभुत है, दंड से भी कुछ अंतर नहीं पड़ते। मैं नहीं सोचता कि नरकों से जो लोग लौटते होंगे, अगर कहीं कोई नरक है और दंड पाकर लौटते होंगे, तो कुछ सुधर कर लौटते होंगे। किसी पुराण में ऐसा उल्लेख तो नहीं है, कि नरक से कोई लौटा और सुधर कर लौटा। नरक से लौटता होगा तो और महा शैतान होकर लौटता होगा, क्योंकि नरक में तो एक से एक सदगुरु, एक से एक पहुंचे हुए पुरुष उपलब्ध होते होंगे जो उसकी भूल-चूक बता देते होंगे, कि कहां-कहां तू भूल-चूक कर रहा था, क्यों पकड़ा गया! अब दुबारा नहीं पकड़ाएगा। पादरी को तो छोड़ दो, नरक के चोर को अगर परमात्मा भी मिल जाए तो वह जेब काट

ले। इस सिफत से काटे कि उसको भी पता न चले। सिफत का भी मजा हो जाता है। कुशलता का भी मजा हो जाता है।
ख्याल रखना, इस जिंदगी में तुम जो भी पकड़े रहते हो, जरा गौर कर लो एक बार, उसमें सार्थक कुछ है?
मामूरिए-फना की कोताहियां तो देखो!
इक मौत का भी दिन है दो दिन की जिंदगी में।
और जरा यह भी तो गौर करो, असार संसार की संकीर्णता तो देखो!
मामूरिए-फना की कोताहियां तो देखो!
इस असार संसार की कंजूसी पर भी तो ख्याल करो।
इक मौत का भी दिन है दो दिन की जिंदगी में।
यह दो दिन की तो जिंदगी है कुल, उसमें एक मौत का दिन भी तय है। और बाकी
एक दिन तुम व्यर्थ में गंवा दोगे। राम-भजन कब होगा? साध-संगत कब होगी?

अंधकारमय दुर्गम पथ है,
अंत कहां है?
मैं क्या जानूं!
मैं जीवन की ज्योति जलाए,
आशाओं के दीप लिए।
चलता ही जाता हूं प्रतिदिन, सांसों में उल्लास लिए।
सदा पराजय प्रगति बनी है, जीत कहां है?
मैं क्या जानूं!

अनजाना हर मार्ग-प्रदर्शक इंगित करता मुझको मौन।
नहीं जानता मैं किसका हूं, नहीं जानता मेरा कौन।
स्नेह किया है मैंने केवल, रीत कहां है?
मैं क्या जानूं!

गहन साधना अर्चन पूजन,
धूप दीप नैवेद्य नहीं।
निश्छल उर ही मेरा वंदन,
मन-वाणी में भेद नहीं।
कर्म साधना मेरा जीवन,
कीर्ति कहां है?
मैं क्या जानूं!

दूर लक्ष्य की किरण देख कर, बढ़ते मेरे व्याकुल पांव। दूरी से मैं रहा अपरिचित, तम में डूबा था हर गांव।
मैंने तो चलना सीखा है,
नीति कहां है?
मैं क्या जानूं!

शूलों ने सिखलाई गरिमा,
कर सुषमों पर शाश्वत छांह। फूलों ने बतलाई महिमा,
पाकर शूलों की हर राह।
छलना ही सौगात मनोहर,
प्रीति कहां है?

मैं क्या जानूं!

एक अंधेरा है!
अंधकारमय दुर्गम पथ है,
अंत कहां है?
मैं क्या जानूं!
टटोलते हम चल रहे हैं। अंधेरे में जो भी मिल जाता है, बटोरते हम चल रहे हैं। न पता है कि क्या हम बटोर रहे हैं, न पता है कि क्यों हम बटोर रहे हैं, न पता है कि कहां हम जा रहे हैं, न पता है कि क्यों हम जा रहे हैं, न पता है कि मैं क्यों हूं। न हमारी प्रीति के लक्ष्य का कोई हमें बोध है, न हमारी प्रीति के अर्थ का हमें कोई बोध है। कुछ हो रहा है। पानी की लहरों पर जैसे लकड़ी का टुकड़ा तिर रहा हो, ऐसे हम तिर रहे हैं। न कोई दिशा है, न कोई गंतव्य है। ऐसी स्थिति में तुमने जो भी पकड़ रखा है, इस अंधेपन में और अंधेरे में तुमने जो भी संग्रह कर रखा है--मौत लूट लेगी।
साध संग औ राम भजन बिन, काल निरंतर लूटै।
मल सेती जो मल को धोवै, सो मल कैसे छूटै।
और लोग मल से ही मल को धोने में लगे हैं। बीमारी से ही बीमारी को सुधारने में लगे हैं। तुम सोचते हो कि धन कम है, इसलिए परेशान हो रहे हो; थोड़ा और ज्यादा हो जाए तो ठीक हो जाएगा। जिनके पास थोड़ा और ज्यादा है, उनसे भी तो पूछ लो! वे सोच रहे हैंः थोड़ा और ज्यादा हो जाए तो ठीक हो जाएगा। और भी हैं जिनके पास थोड़ा और ज्यादा है, उनसे तो पूछ लो! लोग ऐसे ही सोचते हैंः और थोड़ा ज्यादा हो जाए। इतने से न हुआ, और ज्यादा से कैसे हो जाएगा? लाख जिसके पास हैं वह बेचैन है--उतना ही बेचैन है जितना करोड़ जिसके पास हैं।
जिसके पास लाख हैं वह करोड़ चाहता है, जिसके पास करोड़ हैं वह अरब चाहता है।
बेचैनी का अनुपात एक जैसा है। तुम मल से मल को धोने में लगे हो।
मल सेती जो मल को धोवै, सो मल कैसे छूटै।
प्रेम का साबुन नाम का पानी, दोए मिल तांता टूटै।
दो चीजें जमा लो तो यह तांता टूट जाए, यह चौरासी का तांता टूट जाए। यह भटकाव मिटे।
प्रेम का साबुन नाम का पानी...
दरिया तो सीधे-सादे आदमी हैं, तो गांव के प्रतीकों में बोल रहे हैं। मगर प्रतीक प्यारे हैं और सार्थक हैं, उदबोधक हैं।
प्रेम का साबुन नाम का पानी...
सबसे महत्वपूर्ण बात ख्याल में रखनी यह है कि जब तुम साबुन से कपड़ा धोते हो तो सिर्फ साबुन से कपड़ा धोने से कुछ नहीं होगा; फिर साबुन को भी पानी से धोना पड़ेगा। इसलिए अकेला प्रेम काफी नहीं है। प्रेम को परमात्मा से जोड़ कर प्रार्थना बनाना पड़ेगा। नहीं तो साबुन तो खूब रगड़ ली कपड़े पर, फिर पानी से धोया नहीं, तो साबुन ही गंदगी हो जाएगी।
और ऐसा ही हुआ है। मैं तो प्रेम के निरंतर गुणगान गाता हूं। मेरी बात
को गलत मत समझ लेना। प्रेम महत्वपूर्ण है। साबुन बड़ा जरूरी है। अकेले पानी से ही धोते रहोगे तो भी कुछ नहीं होने वाला है। साबुन जरूरी है, तो ही कटेगा मैल। लेकिन जब साबुन मैल काट दे तो मैल को भी धो डालना है और साबुन को भी धो डालना है।
दुनिया में दो तरह के लोग हैं। जिनको तुम संसारी कहते हो वे प्रेम का साबुन तो खूब रगड़ रहे हैं, रगड़े ही जा रहे हैं, कपड़े का तो पता ही नहीं रहा है, साबुन की पर्तों पर पर्तें जम गई हैं। और जिनको तुम संन्यासी समझते रहे हो अब तक, पुराने ढब के संन्यासी, साबुन तो छूते ही नहीं, साबुन की तो दुकान देख कर ही एकदम भागते हैं, साबुन नहीं, वे पानी से ही रगड़ रहे हैं। अकेले पानी से जन्मों-जन्मों की जमी हुई कीचड़ और जन्मों-जन्मों का जमा हुआ मैल कटने वाला नहीं। इसलिए दुनिया में धर्म पैदा नहीं हो पाया। आधे-आधे लोग हैं। कुछ लोग साबुन रगड़ रहे हैं; उनसे साबुन ही साबुन की बास आती है, मगर कोई स्वच्छता नहीं मालूम होती। और एक तरफ लोग पानी से ही धो रहे हैं; साबुन की तो बास नहीं आती, मगर अकेले पानी से धोने से जमा हुआ, जन्मों- जन्मों का जमा हुआ मैल कटता नहीं है।

मेरा संन्यासी दोनों का उपयोग करे, यह मेरी आकांक्षा है। प्रेम के साबुन से धोओ जीवन को, लेकिन राम के जल को भूल मत जाना। और जिस दिन प्रेम का साबुन और राम-नाम का जल, दोनों का तुम उपयोग कर लेते हो, उस दिन प्रार्थना फलती है। जब प्रेम राम से ज.ुड जाता है तो प्रार्थना बन जाता है। और प्रार्थना पवित्र करती है।
भेद अभेद भरम का भांडा, चौड़े पड़-पड़ फूटै।
और फिर तुम्हारे ये सिद्धांत इत्यादि--भेद और अभेद, द्वैत-अद्वैत, द्वैताद्वैत, न मालूम कितने सिद्धांत! इन सबका भांडा फूट जाता है। फिर तो कोई सिद्धांत की चर्चा करने की जरूरत नहीं रह जाती। यह तो अनुभवहीन सैद्धांतिक अनुमानों में पड़े रहते हैं। सब सिद्धांत अनुमान हैं, अनुभव नहीं। और अनुभव का कोई सिद्धांत नहीं है। अनुभव इतना बड़ा है कि सिद्धांतों में ढाला नहीं जा सकता है।
खुशी के सैकड़ों खाके बनाए अहले-दुनिया ने।
मगर जब खद्दो-खाल उभरे वही तस्वीरे-गम आई।
आदमी ने बड़ी तस्वीरें बनाई हैं, सैकड़ों खाके और नक्शे बनाए हैं--आनंद कैसा होना चाहिए, परमात्मा कैसा है, आत्मा कैसी है, मोक्ष कैसा है। मगर जब भी तुम जरा कुरेद कर देखोगे तो तुम पाओगे कि वहां कुछ भी नहीं है।
खुशी के सैकड़ों खाके बनाए अहले-दुनिया ने।
मगर जब खद्दो-खाल उभरे वही तस्वीरे-गम आई।
हर चीज के पीछे तुम आदमी के दुख को छिपा हुआ पाओगे, जरा कुरेदो। चमड़ी
के बराबर भी मोटाई नहीं है तुम्हारे सिद्धांतों की; जरा कुरेदो और खून झलक आएगा, दुख का खून बहने लगेगा। आदमी दुखी है और दुख को बचाने के लिए न मालूम कैसे-कैसे सिद्धांतों का आवरण लेता है। लोग दुख के कारण परमात्मा को मानते हैं, नरक को मानते हैं, स्वर्ग को मानते हैं, पाप-पुण्य को मानते हैं, जन्म-पुनर्जन्म को मानते हैं। दुख के कारण। सुख में सब भूल जाते हैं।
तुम जरा सोचो, तुम्हारी जिंदगी में कोई दुख न हो, तुम परमात्मा को याद करोगे? मौत भी छीन ली जाए तुमसे, तुम परमात्मा को याद करोगे? किसलिए याद करोगे? क्यों याद करोगे?
अब वैज्ञानिक कहते हैं कि जल्दी ही ऐसी घड़ी आ जाएगी कि आदमी के शरीर
को मरने की जरूरत न रहेगी। क्योंकि आदमी के शरीर के अलग-अलग हिस्से प्लास्टिक के बनाए जा सकते हैं। और जब एक हिस्सा खराब हो जाए, तुम्हारा फेफड़ा खराब हो गया, उसको निकाल कर प्लास्टिक का बिठा दिया। चले गए गैरेज में, चढ़ा दिए गए मशीनों पर, लगा दिया प्लास्टिक का। अब प्लास्टिक का फेफड़ा कभी खराब नहीं होगा। धीरे-धीरे यह हालत हो जाएगी कि सभी प्लास्टिक का हो जाएगा। क्योंकि प्लास्टिक की एक खूबी है कि खराब नहीं होता। और फिर बदला जा सकता है आसानी से। और सस्ता है।
अगर तुम्हारी जिंदगी ऐसी प्लास्टिक की जिंदगी हो गई, चाहे तुम हजारों साल रहो और तुम्हारी जिंदगी में कोई दुख भी नहीं होगा। अगर हृदय तक प्लास्टिक का होगा तो पीड़ा कहां? दुख कहां? तुम एक सुंदर मशीन हो जाओगे। फिर परमात्मा की याद कोई करेगा? फिर कोई पूजा करेगा? फिर कोई जरूरत न रह जाएगी।
लेकिन वह दिन कोई सौभाग्य का दिन न होगा। अभी आदमी पशु है, तब आदमी पशु
से भी नीचे गिर जाएगा--मशीन हो जाएगा। उठना है पशु से ऊपर। विज्ञान मनुष्य को पशु से नीचे गिराए दे रहा है। धर्म की अभीप्सा है मनुष्य को पशु के ऊपर उठाने की। आगे के सूत्र इसी की बात कर रहे हैं।
भेद अभेद भरम का भांडा, चौड़े पड़-पड़ फूटै।
खुले मैदान में सब भेद-अभेद गिर जाएंगे, न कोई हिंदू रहेगा, न कोई मुसलमान रहेगा। जरा प्रेम का साबुन घिसो और जरा राम के जल से उसे धोओ।

नींद भर हम सो न पाए जिंदगी भर में।
इस फिकर में, दाग न लग जाए चादर में।
इस कदर कमरा सजाया है उसूलों से।
पांव फैलाना मना अब हो गया घर में।
हाथ अपना, कलम अपनी, किस्मतें अपनी।

लिख लिया जैसा बना हमने मुकद्दर में।
खुद सजाई हैं अदब की महफिलें हमने।
जोश की बातें जहां होतीं दबे स्वर में।
खोल कर कुछ कह न पाने का नतीजा है।
आग, पानी से निकलती है समंदर में।
इस कदर कमरा सजाया है उसूलों से।
पांव फैलाना मना अब हो गया घर में।
और!
नींद भर हम सो न पाए जिंदगी भर में।
इस फिकर में, दाग न लग जाए चादर में।

लोग सिद्धांतों को सम्हाल रहे हैं, जिंदगी को नहीं! कोई जैन है, कोई हिंदू है, कोई बौद्ध है, कोई मुसलमान है। लोग सिद्धांतों को सम्हाल रहे हैं, जैसे आदमी सिद्धांतों को जीने के लिए पैदा हुआ है।
नहीं-नहीं; ठीक बात उलटी है--सब सिद्धांत तुम्हारे काम के लिए हैं, तुम किसी सिद्धांत के लिए नहीं हो। सब शास्त्र साधन हैं, तुम साध्य हो। चंडीदास का, एक अदभुत फकीर का और कवि का यह वचन प्रीतिकर है। साबार ऊपर मानुस सत्य, ताहार ऊपर नाहिं! मनुष्य का सत्य सबसे ऊपर है, उसके ऊपर कोई सत्य, कोई शास्त्र, कोई सिद्धांत नहीं।
सब तुम्हारे लिए है, यह याद रहे। कभी भूल कर भी यह मत सोचना कि तुम किसी और चीज के लिए हो। जिस दिन तुमने ऐसा सोचा, उसी दिन तुम गुलाम हुए, उसी दिन तुम्हारी आत्मा पतित हुई।
गुरुमुख सब्द गहै उर अंतर, सकल भरम से छूटै।
इस सारे जाल से छूटना हो, तो जहां कोई ज्योतिर्मय पुरुष हो, उसके शब्द
को मौन से अपने हृदय में पी लेना।
गुरुमुख सब्द गहै उर अंतर...
बुद्धि से मत सुनना। बुद्धि से सुनना तो सुनने का धोखा है। हृदय से सुनना। बुद्धि को तो सरका कर रख देना एक तरफ। बुद्धि से ही हल होता होता तो तुमने हल कभी का कर लिया होता। नहीं होता बुद्धि से हल, अब तो इसे सरका कर रख दो। अब तो हृदय से सुन लो! अब तो प्रीति भरी आंखों से सुन लो! अब तो प्रार्थना भरे भाव से सुन लो!
गुरुमुख सब्द गहै उर अंतर, सकल भरम से छूटै।
साध-संगत बैठ जाए, मतवालों से मिलना हो जाए, कोई जो जाग गया है उसके हाथ में तुम्हारा हाथ पड़ जाए, तो इससे बड़ा और कोई सौभाग्य नहीं है। हाथ को छुड़ा कर भागना मत।
राम का ध्यान तू धर रे प्रानी, अमृत का मेंह बूटै।
बरसेगा अमृत, जरूर बरसेगा!
राम का ध्यान तू धर रे प्रानी, अमृत का मेंह बूटै।
खूब बरसेगा, घनघोर बरसेगा। मगर राम का ध्यान! राम का ध्यान उन्हीं से मिल सकता है जिन्हें राम का ध्यान हुआ हो। वही तो हम दे सकते हैं जो हमारे पास हो। मैं तुम्हें वही दे सकता हूं जो मेरे पास है; वह तो नहीं जो मेरे पास नहीं है। जिसके भीतर राम प्रकट हुआ हो, उससे ही तुम्हारे भीतर सोए हुए राम को पुलक जागने की आ सकती है।
जन दरियाव अरप दे आपा, जरा मरन तब टूटै।
और अगर मिल जाए कोई गुरु तो बस एक काम तुम्हें करना है, अपने आपे को सौंप देना, समर्पित कर देना, अर्पित कर देना।
जन दरियाव अरप दे आपा, जरा मरन तब टूटै।
उसी क्षण में, जिस क्षण तुम किसी सदगुरु को अपना सारा आपा सौंप दोगे, अपना अहंकार सौंप दोगे, जन्म-मरण छूट गया! फिर न दुबारा पैदा होना है, फिर न दुबारा मरना है। फिर तुम शाश्वत के मालिक हुए। फिर शाश्वत का साम्राज्य तुम्हारा है।

जब नयनों में बदली छाई,
गीतों में सावन घिर आया।

शूलों से बिंध गए फूल के, आंचल की कसकन जब हारी।
मौन व्यथाओं की झंझा में, उपवन की जड़ता थी भारी।
दबी आग जब सुलग उठी फिर,
उपवन को पतझर मन भाया।

विरह वेदना छलक पड़ी तो,
अधरों को छू लय तरुणाई।
नयन मरुस्थल से सूखे पर,
भरे सिंधु को लाज न आई।
घाव किसी ने मसल दिए जब,
सोया उत्पीड़न बौराया।

छलने लगीं महाछलना सी,
घूंघट पट की मृदु मुस्कानें।
खिली सुधाकर स्मित लेकिन, केवल दो पल को बहलाने।
मूक हुई जब मन की वंशी,
तभी कोकिला ने दोहराया।

बहक उठीं उर तरल तरंगें,
उमस भरी आई अंगड़ाई।
शुष्क कल्पना मचल उठी जब, उलझन की आंधी बौराई।
अपनी ही सांसों ने छल से, अपना कह कर फिर ठुकराया।

छूट गए हाथों के बंधन,
मेंहदी सूखी नहीं सुखाए।
चाहें तो लूट गईं अजाने,
मांग रही सिंदूर सजाए।
दूर बजी जब भी शहनाई,
दर्पण ने फिर पास बुलाया।

मूक हुई जब मन की वंशी,
तभी कोकिला ने दोहराया।
कोकिल तो गा रही है, मगर तुम्हारे मन का शोरगुल इतना है कि सुनाई नहीं पड़ता। तुम जरा चुप हो जाओ, शांत हो जाओ, मौन हो जाओ--और कोकिल की आवाज तुम्हें भर दे। सदगुरु तो बोलते रहे हैं, बोलते रहेंगे, मगर तुम चुप हो जाओ जरा, तुम चुप होकर सुन लो जरा!
दूर बजी जब भी शहनाई,
दर्पण ने फिर पास बुलाया।
शहनाई तो बजती रही है। ऐसा कभी नहीं हुआ कि पृथ्वी पर कहीं न कहीं कोई दीया न जला हो, कोई कमल न खिला हो। इसलिए जिनके मन में सच में ही खोज है, वे पा ही लेते हैं। वे अनंत-अनंत यात्रा करके पा लेते हैं, वे दूर-दूर देशों से यात्रा करके पा लेते हैं। खोज है तो सरोवर मिल कर रहेगा, क्योंकि इस जगत का एक आत्यंतिक नियम है कि प्यास के पहले ही जल बना दिया जाता है।
तुम देखते हो, अभी-अभी चारों तरफ बगीचे में चिड़ियों ने घोंसले बनाने शुरू कर दिए। दिन करीब आ रहे हैं। अभी चिड़ियों को कुछ पता नहीं; लेकिन दिन करीब आ रहे हैं जब अंडे होंगे, जब बच्चे होंगे। घोंसले बनने शुरू हो गए! अभी बच्चों का आगमन नहीं हुआ है। अभी चिड़ियों को कुछ पता भी नहीं कि क्या होने वाला है। मगर घोंसले बनने शुरू हो गए।

ऐसा ही है जगत का आत्यंतिक नियम। तुम्हारे भीतर प्यास है, उसके पहले
जल निर्मित है। बस तुम अपनी प्यास को जगा लो। सरोवर कहीं पास ही पा लोगे।
अगर गहन प्यास होगी तो सरोवर खुद तुम्हें खोजता हुआ चला आएगा। अगर प्रगाढ़ होगी प्यास तो जलधार तुम्हें खोज लेगी।
राम नाम नहिं हिरदे धरा। जैसा पसुवा तैसा नरा।।
दरिया कहते हैंः अगर राम-नाम हृदय में नहीं है तो पशु में और मनुष्य में फिर कोई भेद नहीं है।
बहुत भेद किए गए हैं, बहुत सी परिभाषाएं की गई हैं। अरस्तू ने परिभाषा
की है कि मनुष्य बुद्धिमान प्राणी है। भेद है बुद्धि का। वह परिभाषा अब गलत हो गई, क्योंकि वैज्ञानिकों ने बहुत खोज की है और पाया कि पशुओं में भी बुद्धि है। पशुओं की तो बात छोड़ दो, पौधों में भी बुद्धि है। और अगर कोई अंतर है तो मात्रा का है, गुण का नहीं है। और मात्रा का अंतर कोई अंतर होता है कि किसी में पाव भर है और किसी में डेढ़ पाव है! मात्रा का अंतर कोई अंतर नहीं होता।
और अभी तो बड़े संदेह पैदा कर दिए हैं एक वैज्ञानिक ने। जॉन लिली ने डॉल्फिन नाम की मछलियों पर वर्षों तक काम किया है और उसका कहना है कि डॉल्फिन के पास मनुष्य से ज्यादा बड़ा मस्तिष्क है। कई अर्थों में बात सही है। मनुष्य के पास सबसे ज्यादा बड़ा मस्तिष्क है पशुओं में। हाथी बहुत बड़ा है, लेकिन उसके पास भी मस्तिष्क इतना बड़ा नहीं है, देह ही बड़ी है। मगर डॉल्फिन के पास मनुष्य से ज्यादा बड़ा मस्तिष्क है। जॉन लिली की खोजें यह कहती हैं कि इस बात की संभावना है कि कुछ बातें डॉल्फिन को पता हैं जो हमको पता नहीं हैं, जो हमको पता हो ही नहीं सकतीं, क्योंकि उसके पास बहुत बड़ा मस्तिष्क है। अभी तो यह परिकल्पना है, मगर मस्तिष्क का बड़ा होना तो प्रामाणिक है। और अगर बड़े मस्तिष्क से कुछ तय होता है तो हो सकता है कि डॉल्फिन को कुछ बातें पता हों जो हमें पता नहीं हैं। डॉल्फिन अकेली मछली है जो हंसती है। और डॉल्फिन अकेली मछली है जिसको भाषा सिखाई जा सकती है; जिससे संकेतों में बातचीत की जा सकती है।
फिर यह तो एक छोटी सी पृथ्वी है। ऐसी, वैज्ञानिक कहते हैं, कम से कम पचास हजार पृथ्वियों पर जीवन है। पता नहीं कैसा-कैसा विकास हुआ होगा! कितनी भिन्न-भिन्न बुद्धि की अभिव्यक्तियां हुई होंगी।
नहीं; अरस्तू का मापदंड पुराना पड़ गया, काम नहीं आता अब। पशुओं में भी बुद्धि है, कम होगी। वृक्षों में भी बुद्धि है। और कौन तय करे कि कम है? क्योंकि अभी हम वृक्षों की पूरी बुद्धि को जानते भी नहीं हैं, हमारे पास उपाय भी नहीं हैं। अभी नई-नई खोजें दो-चार वर्षों के भीतर हुई हैं, जिन्होंने चौंका दिया है; जिन्होंने पहली दफे महावीर जैसे व्यक्ति की वाणी को वैज्ञानिक आधार दे दिए।
तुम बैठे हो, कोई आदमी छुरा लेकर तुम्हारे पास आता है, छुरा छिपाए हुए है। ऐसे जयराम जी करता है--मुख में राम, बगल में छुरी! तुम्हें पता भी नहीं चलता कि यह आदमी मारने आया है। लेकिन तुम जान कर हैरान हो जाओगे कि वृक्ष को पता चल जाता है। वृक्ष को तुम धोखा नहीं दे सकते--मुख में राम, बगल में छुरी! वृक्ष को धोखा नहीं दे सकते। वृक्षों पर जो प्रयोग हुए हैं, वे बड़े हैरानी के हैं। अगर कोई आदमी वृक्ष काटने की इच्छा लेकर जंगल में आता है तो सारे वृक्षों को खबर हो जाती है। इच्छा से! उसने चाहे अपनी कुल्हाड़ी छिपा रखी हो, सिर्फ भाव और विचार उसके तरंगित हो जाते हैं और वृक्ष पकड़ लेते हैं। इतना ही नहीं, और एक हैरानी का वैज्ञानिकों ने प्रयोग किया है, कि वृक्षों की तो बात छोड़ दो, जब तुम जंगल में शिकार करने जाते हो, वृक्षों को काटते ही नहीं, कोई सिंह को मारता है, कोई हिरन को मारता है, तब भी वृक्ष उदास और दुखी हो जाते हैं, पीड़ित हो जाते हैं। तो कौन कहे कि आदमी के पास ज्यादा बुद्धि है? कैसे कहे? आदमी तो मार रहा है, पशु-पक्षी काट रहा है। भोजन के लिए इंतजाम बना रहा है। और वृक्ष रो रहे हैं और वृक्ष कंप रहे हैं और पीड़ित हो रहे हैं। किसके पास ज्यादा बुद्धि है?
और वृक्ष तुम्हारे भाव की तरंग को पकड़ लेते हैं। तुम खुद नहीं पकड़ पाते मनुष्यों की भाव-तरंगों को। कोई भी तुम्हें धोखा दे जाता है। अगर भाव-तरंगें पकड़ सको तो धोखा कैसे देगा?

फ्रायड ने कहीं कहा हैः अगर दुनिया के लोग चौबीस घंटे के लिए एक बात
तय कर लें कि चौबीस घंटे में झूठ बोलेंगे ही नहीं, तो उसका कुल परिणाम इतना होगा कि दुनिया में सब दोस्तियां टूट जाएंगी, सब तलाक हो जाएंगे।
और यह बात सच है, चौबीस घंटे अगर तुम झूठ बोलो ही नहीं, बिल्कुल सच-सच
ही बोल दो जैसा तुम्हारे हृदय में है... कि पत्नी को कह दो कि माता जी, तुम्हें देख कर मुझे भय लगता है! कि अब मुझे बख्शो, कि अब मुझे छुट्टी दो! कि बेटा बाप से कह दे कि अब नाहक क्यों जीए जा रहे हो? किस काम के हो? कि पत्नी पति से कह दे कि यह सब बकवास है कि पति परमेश्वर है, तुम जैसा बेहूदा और फूहड़ आदमी मैंने देखा ही नहीं! लंपट हो तुम, परमात्मा नहीं! उच्चके हो! ... अगर हर व्यक्ति हरेक से वही कह दे जो उसके भाव में है, तो यह बात सच मालूम पड़ती है कि शायद ही कोई दोस्ती टिके।
मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन मुझसे कह रहा था। मैंने कहाः बहुत दिन से तुम्हारे दोस्त फरीद दिखाई नहीं पड़ते!
उसने कहाः नौ साल हो गए, बोलचाल बंद है।
हुआ क्या?
कहा कि नौ साल पहले एक दिन हमने तय किया कि हम इतने गहरे दोस्त हैं, अब एक-दूसरे के साथ ईमानदारी बरतेंगे, सच-सच कहेंगे। बस उसी दिन से बोलचाल जो बंद हुआ है सो नौ साल हो गए, हम शक्ल नहीं देखते एक-दूसरे की। उसने भी सच बोल दिया, मैंने भी सच बोल दिया।
यहां सारा जगत झूठ पर चल रहा है। झूठ पर दोस्ती है। झूठ पर विवाह है। झूठ पर प्रेम है। झूठ पर सारे संबंध हैं। सब झूठ का फैलाव है। काश, मनुष्य में इतनी प्रतिभा हो कि दूसरे के भाव पढ़ ले, फिर क्या होगा? तो तुम जब कह रहे हो मेहमान से कि आइए, विराजिए, पलक-पांवड़े बिछाता हूं! और भीतर कह रहे हो कि कमबख्त, तुम्हें आज का दिन सूझा आने के लिए! अगर वह भाव पढ़ ले! वृक्ष पढ़ लेते हैं। कौन ज्यादा बुद्धिमान है?
नहीं; अरस्तू की परिभाषा तो गई। अब उसका कोई मूल्य नहीं है। अब तो दरिया की परिभाषा ज्यादा महत्वपूर्ण मालूम पड़ती है। और संतों ने सदा यही परिभाषा की है कि पशु में और मनुष्य में एक ही फर्क हैः राम-नाम का स्मरण। भक्ति कहो, ध्यान कहो। कोई पशु ध्यान नहीं करता और कोई पशु भक्ति नहीं करता। बस इतना ही फर्क है। मनुष्य भक्ति करता है, ध्यान करता है। मनुष्य अपना अतिक्रमण करने की अभीप्सा रखता है। ऊपर जाना चाहता है। दृश्य के पार अदृश्य को छूना चाहता है। सारे रहस्यों के अवगुंठन खोलना चाहता है, घूंघट उठाना चाहता है प्रकृति के मुंह पर से--ताकि देख ले कि भीतर कौन छिपा है! कौन है असली मालिक! उस मालिक से दोस्ती बांधना चाहता है।
राम नाम नहिं हिरदे धरा। जैसा पसुवा तैसा नरा।।
पसुवा नर उद्यम कर खावै। पसुवा तो जंगल चर आवै।।
तो आदमी और जंगली पशु में, जंगल जाने वाले पशु में, जंगल में चर कर लौट आने वाले पशु में भेद क्या है?
पसुवा नर उद्यम कर खावै।
इतना ही फर्क कर सकते हो बहुत कि आदमी ऐसा पशु है जो उद्यम करके खाता है, और पशु ऐसे पशु हैं जो जंगल से चर कर आ जाते हैं। यह कोई बड़ी गुणवत्ता नहीं हुई आदमी की। यह तो ऐसे ही लगा कि इससे तो पशु ही बेहतर हैं। तुमको मेहनत करके खानी पड़ती है, वे बिना मेहनत खा लेते हैं। तुम्हें खुद ही चिंता उठानी पड़ती है, वे निश्चिंत हैं। यह तो कोई बड़ी महत्ता न हुई, कोई उपलब्धि न हुई।
पसुवा आवै पसुवा जाए।
पशु पैदा होते हैं, पशु मर जाते हैं। ऐसे ही तुम पैदा होते हो, तुम मर जाते हो। तुम्हारे जन्मने और मरने के बीच में ऐसा क्या घटता है जिसको तुम कह सको कि जो पशु के जीवन में नहीं घटा और मेरे जीवन में घटा?
हां, कोई बुद्ध कह सकता है कि मैं ऐसे ही आया और ऐसे ही नहीं गया। आया कुछ था, जाता कुछ हूं। जो आया था, वह जाता नहीं हूं। जो जाता है, वह आया नहीं था। ऐसा तो कोई बुद्धपुरुष कह सकता है कि मैं जाग कर जा रहा हूं; सोया आया था, मुर्दा आया था, जीवंत होकर जा रहा हूं। नया जीवन, शाश्वत जीवन लेकर जा रहा हूं! अमी झरत, बिगसत कंवल! झर गया अमृत, मेरा कमल खिल गया है। आया था तो

कमल का भी पता नहीं था, कीचड़ ही कीचड़ था। जाता हूं तो कमल जाता हूं। आया था तो अमृत की कौन कहे, जहर ही जहर से लबालब था। अब अमृत का झरना होकर जाता हूं।
कह सकोगे तुम ऐसा जाते वक्त कि जैसे आए थे वैसे ही जा रहे हो या जैसे
आए थे उससे कुछ नये होकर जा रहे हो? इतना ही फर्क है। नहीं तो पशु भी आए, पशु भी गए।
पसुवा चरै व पसुवा खाए।
पशु भी खाता है, पशु भी पचाता है। पशु भी जवान होता है, बूढ़ा होता है; प्रेम भी करता, विवाह भी करता; बच्चे भी पैदा करता। तुम भी सब वही करते हो। लड़ता भी, झगड़ता भी, ईर्ष्या भी करता, वैमनस्य भी करता, दोस्ती-दुश्मनी सब करता; फर्क क्या है?
दरिया ठीक कहते हैंः फर्क एक है। पशु राम का स्मरण नहीं करता। उसके हृदय में कभी आकाश की अभीप्सा पैदा नहीं होती। वह पृथ्वी पर ही सरकता रहता है। तारों को छूने की आकांक्षा नहीं जगती। उसके भीतर अतिक्रमण की अभीप्सा नहीं है।
रामध्यान ध्याया नहिं माईं।
जिसने अपने भीतर राम का ध्यान नहीं जगाया--
जनम गया पसुवा की नाईं।
वह समझ ले कि वह कुत्ते की मौत जीया, कुत्ते की मौत मरा। उसकी जिंदगी
भी मौत है, इसलिए मैं कह रहा हूंः कुत्ते की मौत जीया और कुत्ते की मौत मरा।
कहा मैंने "कितना है गुल का सबात?"
कली ने यह सुन कर तबस्सुम किया।
देर रहने की जा नहीं यह चमन,
बूए-गुल हो, सफीरे-बुलबुल हो।
कहा मैंने "कितना है गुल का सबात?"
मैंने पूछा कि फूल कितनी देर टिकेगा? इसका स्थायित्व कितना है? कहा मैंने "कितना है गुल का सबात?"
इसका जीवन कितना है?
कली ने यह सुन कर तबस्सुम किया।
कली यह सुनी और हंसी और मुस्कुराई।
देर रहने की जा नहीं यह चमन,
और कली ने कहाः यहां कोई देर टिकता नहीं।
देर रहने की जा नहीं यह चमन,
यह बगीचा कोई स्थान नहीं कि जहां ठहर जाओ। यह सराय है, निवास नहीं।
बूए-गुल हो, सफीरे-बुलबुल हो।
फिर चाहे फूल होओ तुम और चाहे बुलबुल का गीत होओ, कुछ फर्क नहीं पड़ता।
यहां सब क्षणभंगुर है। अगर क्षणभंगुर में ही जीए तो पशु की तरह जीए। अगर शाश्वत की तलाश शुरू हुई तो तुम्हारे भीतर मनुष्यत्व का जन्म हुआ। इसलिए सच्चे मनुष्य को हमने द्विज कहा है, दुबारा जन्मा।
जीसस ने निकोडेमस से कहा थाः जब तक तेरा फिर से जन्म न हो जाए, इसी जन्म में, तब तक तू मेरे प्रभु के राज्य में प्रवेश न पा सकेगा।
हम तो ब्राह्मण को द्विज कहते हैं। सभी द्विज ब्राह्मण होते हैं, लेकिन सभी ब्राह्मण द्विज नहीं होते। यह ख्याल रखना। सभी द्विज ब्राह्मण होते हैं। मोहम्मद ब्राह्मण हैं, क्योंकि द्विज हैं। और क्राइस्ट ब्राह्मण हैं, क्योंकि द्विज हैं। और महावीर ब्राह्मण हैं, क्योंकि द्विज हैं। और बुद्ध ब्राह्मण हैं, क्योंकि द्विज हैं। लेकिन सभी ब्राह्मण द्विज नहीं हैं। वे तो नाममात्र के ब्राह्मण हैं। ब्राह्मण घर में जन्म होने से कोई ब्राह्मण नहीं होता। जब तक ब्रह्म में जन्म न हो जाए, तब तक कोई ब्राह्मण नहीं होता।
रामध्यान ध्याया नहिं माईं। जनम गया पसुवा की नाईं।।
रामनाम से नाहिं प्रीत। यह सब ही पशुओं की रीत।।

जागो! कब तक पशुओं की तरह जीए चले जाओगे? खा लिया, पी लिया, सो गए, उठ आए; फिर खा लिया, फिर पी लिया, फिर सो गए, फिर उठ आए--यह कोल्हू के बैल की तरह कब तक चलते रहोगे? कोल्हू के बैल भी कभी-कभी सोचते होंगे।
मैंने सुना है, एक दार्शनिक तेली की दुकान पर तेल खरीदने गया। चौंका! दार्शनिक था। हर चीज से विचार उठ आते हैं दार्शनिक को। दार्शनिक वह जो हर चीज से प्रश्न उठा ले। प्रश्न में से प्रश्न उठा ले। उत्तर भी हों तो उसमें से भी दस प्रश्न निकल आएं। तेली तो तेल तौल रहा था, दार्शनिक ने कहाः ठहर भाई, एक पहले प्रश्न का उत्तर दे। तू तो तेल तौल रहा है, तू तो पीठ किए बैठा है और कोल्हू बैल चला रहा है! बैल को कोई हांक भी नहीं रहा है और बैल कोल्हू खुद ही चला रहा है, गजब का धार्मिक बैल तूने खोज लिया है! ऐसे श्रद्धालु बैल आजकल मिलते कहां! हड़ताल करें, घिराव करें, मुर्दाबाद के नारे लगाएं! यह कोल्हू का बैल तुझे मिल कहां गया इस जमाने में? और भारत में! न कोई हांक रहा, न कोई चला रहा और कोल्हू का बैल चला जा रहा है! मुस्कुराया तेली। उसने कहाः तुमने मुझे क्या समझा है? अरे यह बैल की खूबी नहीं, यह खूबी मेरी है। देखते नहीं, उसकी आंखों पर पट्टियां बांध दी हैं।
जैसे तांगे के घोड़े की आंख पर पट्टी बांध देते हैं, किसलिए बांध देते हैं? ताकि उसको चारों तरफ दिखाई न पड़े। नहीं तो पास में ही लगी हरी झाड़ी और दिल हो जाए चरने का, चला छोड़ कर रास्ता! कि पास में ही खड़ी है उसकी प्रेयसी कोई घोड़ी, मारे छलांग, फेंके यात्रियों को और पहुंच जाए! तो उसको देखने नहीं देते इधर-उधर, दोनों तरफ आंख पर पट्टी बांध दी, उसको बस सामने ही दिखाई पड़ता है। उतना ही दिखाई पड़ता है जितना उसको चलाने वाला उसको दिखाना चाहता है।
ऐसे ही उसने कोल्हू के बैल पर भी पट्टियां बांध दीं। उसने कहाः देखते नहीं, पट्टियां बांध दी हैं। उसको दिखाई नहीं पड़ता। उसको पता ही नहीं चलता कि कोई पीछे चलाने वाला है या नहीं।
दार्शनिक भी ऐसे राजी तो न हो जाए। उसने कहाः यह मैं समझ गया। लेकिन कभी-कभी कोल्हू का बैल रुक कर देख तो सकता है कि कोई चला रहा है कि नहीं? कभी जरा रुक कर देख ले, जांच कर ले कि पीछे कोई है भी फटकारने वाला, कोड़ा मारने वाला?
तेली और भी मुस्कुराया, और भी लंबी मुस्कान। उसने कहाः तुम समझे नहीं। तुमने क्या मुझे बिल्कुल बुद्धू समझा है? अगर ऐसा होता तो हम बैल होते और बैल तेली होता। तुमने हमें समझा क्या है? कोई धंधा ऐसे ही कर रहे हैं! देखते नहीं, बैल के गले में घंटी बांध दी है। घंटी बजती रहती है जब तक बैल चलता है। जैसे ही रुके बच्चू कि मैं उचका। और दिया एक फटकारा और हांका। उसको पता ही नहीं चल पाता कि मैं नहीं था। घंटी सुनता रहता हूं। जब तक बजती रहती है, तब तक मैं भी निश्चिंत। जैसे ही घंटी रुकी, इधर घंटी रुकी नहीं कि मैंने आवाज दी नहीं, कि मैंने हांका नहीं। तो भेद नहीं पड़ता, उसे कभी पता नहीं चलता।
मगर दार्शनिक भी दार्शनिक! बस, उसने कहा, एक प्रश्न औरः बैल कभी यह भी
तो कर सकता है कि खड़ा हो जाए और सिर को हिला-हिला कर घंटी बजाए?
अब थोड़ा तेली चिंतित हुआ। उसने कहाः जरा धीरे महाराज, कहीं बैल न सुन ले! और आगे से तेल और कहीं ले लिया करना। दो पैसे का तो तेल ले रहे हो और जिंदगी मेरी खराब किए दे रहे हो। ऐसी बातें खतरनाक हैं। नक्सलवादी मालूम होते हो या क्या बात है? कम्युनिस्ट हो? बैलों को भड़काते हो! शर्म नहीं आती कि मेरा ही तेल पीते हो और मुझ ही से दगा कर रहे?
बैल भी कभी-कभी सोच सकते हैं। तेली ठीक कह रहा है। अगर ऐसे तुम कम्युनिस्ट मेनीफेस्टो पढ़ते ही रहो बैल के सामने, तो बैल को भी आखिर सोच आ सकता है कि बात तो जंचती है। लेकिन आदमी सोचता ही नहीं, विचारता ही नहीं, जीए चला जाता है बस कोल्हू के बैल की तरह। और न किसी ने तुम्हारी आंख पर पट्टियां बांधी हैं, सिवाय इसके कि तुमने स्वयं बांध ली हैं। और न तुम्हारे गले में किसी ने घंटी बांधी है, सिवाय इसके कि तुमने खुद लटका ली है। क्योंकि और लोग भी लटकाए हैं; घंटी बजती है, अच्छी लगती है। और और लोग भी आंखों पर पट्टियां बांधे हैं तो तुमने भी बांध ली हैं, क्योंकि बिना

पट्टियां बांधे ठीक नहीं। पट्टियां सुरक्षा है। अजीब-अजीब बातें लोगों में चलती हैं।
कल मैं एक इतिहास की किताब पढ़ रहा था। आज से सौ साल पहले, जब पहली दफा बॉथ-टब बना अमरीका में, तो अमरीका के एक राज्य ने कानूनन पाबंदी लगा दी कि कोई बॉथ-टब अपने घर में नहीं रख सकता, क्योंकि इसमें नहाने से हजारों तरह की बीमारियां पैदा होंगी, लोग मर जाएंगे, ठंड से सिकुड़ जाएंगे। यह शैतान की ईजाद है! और जो लोग बॉथ-टब घर में लगाएंगे उनको सजाएं हो जाएंगी। बॉथ-टब जैसी निर्दोष चीज, मगर नई थी तो शैतान की थी। पुराने को पकड़ने
का मन होता है। और तुम देखते हो, आज हम हंस सकते हैं, जिन पार्लियामेंट के सदस्यों ने बैठ कर यह निर्णय किया होगा, बड़ी गंभीरता से किया होगा। बॉथ-टब पर कानूनी रोक कि कोई नहा नहीं सकता बॉथ-टब में। उस राज्य में कुछ बिगड़े दिल लोग रहे, वे चोरी से बॉथ-टब लाते थे, स्मगल करके, और घरों में छिपा कर रखते थे। उनमें से कई पकड़े भी गए और उनको सजाएं भी हुईं। क्योंकि तुमने एक जघन्य अपराध किया। अगर बॉथ-टब बनाना ही था तो भगवान ने क्यों नहीं बनाया? बात भी ठीक है! सब चीजों का उल्लेख है बाइबिल में कि क्या-क्या बनाया। बॉथ-टब का कहीं उल्लेख नहीं है। यह शैतान की तरकीब है। इससे गठिया लगेगा। इससे तुम बीमार पड़ोगे। इससे तुम मर जाओगे। इससे हृदय की धकधकी बंद हो जाएगी, हार्ट अटैक होगा। न मालूम कितनी बातें! डाक्टरों ने भी सहायता दी, कानूनविदों ने भी सहायता दी। अजीब लोग हैं! हर नई चीज का विरोध करते हैं, पुराने को पकड़ते हैं।
तुम भी देखते हो कि सब लोग आंखों पर पट्टियां बांधे हैं, तुम भी जल्दी
से बांध लेते हो पट्टियां कि कहीं आंखें खराब न हो जाएं। जब इतने लोग बांधे हैं तो ठीक ही बांधे होंगे। हां, लेबल अलग-अलग हैं। किसी ने हिंदुओं की पट्टियां बांधी हैं, किसी ने मुसलमानों की, किसी ने ईसाइयों की; मगर पट्टी तो होनी ही चाहिए। मंदिर जाओ कि मस्जिद कि गुरुद्वारा, मगर कहीं न कहीं जाना चाहिए। कुरान पढ़ो कि बाइबिल कि गीता, मगर कोई न कोई तोते की तरह रटना चाहिए।
पट्टियां तुमने बांध ली हैं। इस जिम्मेवारी को समझो, क्योंकि इस जिम्मेवारी में ही तुम्हारी स्वतंत्रता छिपी है। अगर यह तुम्हें समझ में आ जाए कि पट्टियां मैंने बांधी हैं, किसी और तेली ने नहीं, तो तुम आज इन पट्टियों को गिरा दे सकते हो। और यह घंटी तुमने बांधी है, इस घंटी को तुम आज काट दे सकते हो।
मेरे देखे, प्रतिभाशाली व्यक्ति एक क्षण में समाज की सारी झंझटों और जालों से मुक्त हो सकता है। यही प्रतिभा का लक्षण भी है। देर न लगे, दिखाई पड़ जाए बात और तत्क्षण टूट जाए--जो भी गलत है, जो भी असार है।
रामनाम से नाहिं प्रीत। यह सब ही पसुवों की रीत।।
पशुओं की तरह जी रहे हो। मनुष्य का तुम्हारे भीतर आविर्भाव नहीं हुआ।
अभी मनन ही पैदा नहीं हुआ तो मनुष्य कैसे पैदा हो?
जीवत सुख दुख में दिन भरै। मुवा पछे चौरासी परै।।
और तुम्हारा जीवन क्या है? किसी तरह सुख-दुख में दिन को भरते रहो। हजारों लोगों के जीवन में झांकने के बाद मेरा भी यह निष्कर्ष है कि लोग कुछ एक ही काम में लगे हैं--किसी तरह व्यस्त रहो, आक्युपाइड रहो! एक काम छूटे तो दूसरा पकड़ो, दूसरा छूटे तो तीसरा पकड़ो! दफ्तर से आए तो चले क्रिकेट देखने। रविवार को छुट्टी हो गई तो चले गोल्फ खेलने। कुछ न हो, चलो मछलियां ही मार आओ। मगर कुछ न कुछ करो।
रविवार के दिन पत्नियां चिंतित रहती हैं, क्योंकि पति घर आएगा तो कुछ
न कुछ करेगा। छह दिन बच्चे भी स्कूल रहते हैं तो पत्नियां थोड़ी निश्चिंत रहती हैं; पति भी दफ्तर में रहता है तो निश्चिंत रहती हैं। सातवें दिन उपद्रव आता है। सारे बच्चे भी घर में, सब तरह के उपद्रव; और पति भी घर में, वह भी खाली नहीं बैठ सकता। ठीक-ठाक चलती घड़ी को खोल कर बैठ जाएगा कि इसको ठीक कर रहे हैं; कि ठीक-ठाक चलती कार को ही बॉनिट उघाड़ कर बैठ जाएगा कि इसकी सफाई कर रहे हैं! और कुछ न कुछ गड़बड़ किए बिना नहीं मानेगा। उसकी भी तकलीफ है। व्यस्त न रहो तो एकदम से याद आती है कि जिंदगी बेकार जा रही है। तो टेलीविजन के सामने बैठे रहो, कि रेडियो खोल लो, कि अखबार पढ़ते रहो। वही

अखबार, जिसको सुबह से तुम तीन बार पढ़ चुके, फिर-फिर पढ़ो, शायद कोई चीज चूक गई हो! किसी भी कारण से, किसी भी निमित्त से व्यस्तता चाहिए। दो लोग शांत नहीं बैठ सकते, बातचीत में लग जाएंगे। ट्रेन में आते से ही आदमी पूछेगाः कहिए, आप कहां जा रहे हैं? अपनी बताने लगेगा कि मैं कहां जा रहा हूं। लोग सफर में अजनबी यात्रियों से ऐसी बातें कह देते हैं, जो उन्होंने कभी अपने मित्रों से भी नहीं कहीं। क्या करें खाली बैठे-बैठे, कुछ तो कहना ही होगा! किसी बात को गुप्त रखना बड़ा कठिन होता है। किसी से कह दो कि जरा इस बात
को गुप्त रखना। फिर तुम पक्का समझो कि पूरा गांव जान लेगा। बस कह भर दो किसी से कि इसको गुप्त रखना। किसी बात का प्रचार करवाना हो तो सबसे सरल बात यह है कि कान में कह देनाः भैया, जरा इसको गुप्त रखना, खतरनाक है। फिर उसको चैन ही नहीं। वह तुमसे कहेगाः अच्छा, अब चलें!
कहां जा रहे?
और भी काम हैं।
अब काम कुछ नहीं है, अब आदमी खोजना हैं जिनको यह बताना है कि भैया, जरा गुप्त रखना। यह बात बड़ी कठिन है। यह बड़ी खतरनाक बात है। तुमसे तो कह दी, अपने वाले हो, मगर तुम किसी और से मत कहना। और यही वह दूसरों से कहेगा! तुम सांझ तक पाओगे कि बात पूरे गांव में पहुंच गई। हर आदमी जानता है। और हर आदमी मानता है कि वही गुप्त रखने की कोशिश कर रहा है।
क्यों आदमी किसी बात को गुप्त नहीं रख पाता? कोई भी चीज व्यस्तता के लिए चाहिए। तुम भी वही अखबार पढ़ते हो, पड़ोसी भी वही अखबार पढ़ता है। तुम भी उससे वही बातें कहते हो, वह भी तुमसे वही बातें कहता है। तुम भी उनको सुन चुके बहुत बार, वह भी तुम को सुन चुका बहुत बार। फिर क्या जारी है? फिर क्यों बातचीत में लगे हो?
मैंने सुना है, चीन में एक बार प्रतियोगिता हुई कि जो सबसे बड़ा झूठ बोलेगा, उसे सबसे बड़ा पुरस्कार दिया जाएगा। बड़े-बड़े झूठ बोलने वाले इकट्ठे हुए! और जिसको पुरस्कार मिला वह चौंकाने वाली बात है। बड़े-बड़े झूठ बोले गए। एक आदमी ने कहाः मैंने इतनी बड़ी मछली देखी कि उसकी पूंछ देखो तो सिर न दिखाई पड़े, सिर देखो तो पूंछ न दिखाई पड़े!
किसी ने कहा कि मैंने एक मछली मारी... । मछलीमार अक्सर बकवासी हो जाते हैं, क्योंकि और तो कुछ रहता नहीं, मछली मारते हैं! ... जब मैंने मछली काटी तो उसमें मुझे एक लालटेन मिली, जो मछली निगल गई होगी। मगर औरों ने कहाः यह कोई खास बात नहीं। उसने कहाः पहले पूरी बात सुन लो। लालटेन नेपोलियन की थी, उस पर दस्तखत थे। लोगों ने कहाः यह भी कोई बात नहीं। अरे, उसने कहाः पहले पूरी बात तो सुन लो। लालटेन अभी जल रही थी।
इसको भी प्रथम पुरस्कार न मिला। प्रथम पुरस्कार मिला एक आदमी को, उसने कहाः मैं एक बगीचे में गया, दो औरतें एक बेंच पर बैठी थीं और चुप बैठी रहीं घंटे भर। एक शब्द न बोला गया, न सुना गया।
उसको प्रथम पुरस्कार मिला। यह हो सकता है कि नेपोलियन की लालटेन अभी
भी किसी मछली के पेट में जल रही हो; मगर दो स्त्रियों के पेट में बातें जलती रहें, असंभव है। दो स्त्रियां और चुपचाप बैठी रहें!
एक सभा में एक उपदेशक व्याख्यान दे रहा था। नारी-समाज की सभा थी और जो होना था हो रहा था। उपदेशक बोल रहा था और सारी नारियां भी बोल रही थीं। चर्चा चल रही थी गहन। उपदेशक बड़ा परेशान हो रहा था कि करना क्या? आखिर उसने जोर से चिल्ला कर कहा कि सुनो, एक बात बड़ी गहरी, स्त्रियों के काम की! सुंदर स्त्रियां कम बोलने वाली होती हैं।
एकदम सन्नाटा हो गया। अब कौन बोले!
लोग व्यस्तता खोज रहे हैं, तरह-तरह की व्यस्तता खोज रहे हैं।
जीवत सुख दुख में दिन भरै।
बस किसी तरह दिन भर लेना है, जिंदगी भर लेनी है। लोग काट रहे हैं जिंदगी। बड़ा मजा है! एक तरफ चाहते हैं कि लंबी उम्र। बुजुर्गों से प्रार्थना करते हैं--आशीर्वाद दो, लंबी उम्र मिले। और उनसे खुद पूछोः करोगे क्या लंबी उम्र का? ताश खेल रहे हैं! क्या कर रहे हो? समय काट रहे हैं। समय काट रहे हैं मतलब उम्र काट रहे हैं। सिनेमा जा रहे हैं। किसलिए जा रहे हो? समय काटना है।

मैं एक सज्जन को जानता हूं जो एक ही फिल्म को... छोटा गांव है, तीन-चार दिन एक फिल्म चलती है वहां, दो शो होते हैं फिल्म के... एक ही फिल्म के दोनों शो देखते हैं, चारों दिन देखते हैं। मैंने उनसे पूछाः तुम भी गजब के आदमी हो!
उसने कहाः और करें क्या? समय कटता नहीं। बैठे-बैठे क्या करें? ऐसे समय
कट जाता है।
जिंदगी चाहिए लंबी, और करोगे क्या? समय काटोगे! बड़ी आकांक्षाओं, वासनाओं, कामनाओं से इसीलिए लोग भरे हुए हैं, बड़ी महत्वाकांक्षाओं से लोग भरे हुए हैं। और मिलता क्या है सुख के नाम पर? धोखे, वंचनाएं।
मुख्तसर अपनी हदीसे-जीस्त ये है इश्क में
पहले थोड़ा सा हंसे, फिर उम्र भर रोया किए
बस जरा सी मुस्कुराहट और फिर पीछे रोना। यह तुम्हारी जिंदगी का प्रेम है। इस जिंदगी के प्रेम में तुम्हें बस इतना मिलता हैः
मुख्तसर अपनी हदीसे-जीस्त ये है इश्क में
जीवन की यह कुल गाथा!
पहले थोड़ा सा हंसे, फिर उम्र भर रोया किए
मगर लोग रोना पसंद करेंगे खाली बैठने की बजाय, यह ख्याल रखना। कुछ भी पसंद करेंगे ना-कुछ की बजाय, यह ख्याल रखना। दुख आ जाए, यह पसंद करेंगे, बजाय इसके कि कुछ न आए। दुश्मन मिल जाए, यह पसंद करेंगे, बजाय इसके कि कोई न मिले, सन्नाटा रहे। बस भरना है किसी तरह।
क्यों? क्यों इतनी विक्षिप्तता है भरने की? क्योंकि डर लगता है--कहीं भीतर का शून्य प्रकट न हो जाए! कहीं जीवन का असली प्रश्न खड़ा न हो जाए कि मैं कौन हूं? कहां से हूं? किसलिए हूं? क्या कर रहा हूं? कहीं यह असली प्रश्न आमने-सामने न आ जाए! क्योंकि इस प्रश्न के उठ जाने के बाद जीवन में क्रांति अनिवार्य हो जाती है, अपरिहार्य हो जाती है। इस प्रश्न के बाद धर्म की शुरुआत है। और इस तरह जिंदगी काट-काट कर लोग जाते कहां हैं? बस चौरासी के चक्कर में भटकते रहते हैं। इस जिंदगी से दूसरी जिंदगी, दूसरी से तीसरी जिंदगी। घबड़ा भी जाते हैं जिंदगी से। मरना भी चाहते हैं।
बहुत लोग आत्महत्याएं करते हैं! लाखों लोग आत्महत्याएं करते हैं। करोड़ों लोग प्रयास करते हैं। प्रयास करने वाले भी बड़े मजेदार प्रयास करते हैं। शायद मन में पक्का नहीं होता कि करना कि नहीं करना। जैसा मन की आदत है, किसी चीज में पक्का नहीं होता। तो करते भी हैं और बचाव भी रखते हैं। लोग नींद की गोलियां खा लेते हैं, मगर हमेशा इतनी खाते हैं जितने में बच जाएं। हां, शोरगुल मच जाता है मोहल्ले में, घर वाले लोग परेशान हो जाते हैं, डाक्टर आ जाता है। मगर इतनी खाते हैं जितने में बच जाएं। दस आदमी आत्महत्या के प्रयास करते हैं, उनमें एक ही मरता है। तो नौ जरूर इंतजाम करके प्रयास करते हैं। तो करते ही काहे को हो? लेकिन यही मनुष्य का मन है-- डांवाडोल, अनिश्चित, करना कि नहीं करना। एक पैर इधर, एक पैर उधर। जिंदगी से ऊब जाते हैं तो मरने को राजी हैं, मगर जागने को राजी नहीं हैं।
जिंदगी दरियाए-बेसाहिल है और किश्ती खराब,
मैं तो घबड़ा कर दुआ करता हूं तूफां के लिए।
तूफानों की बाढ़ में फंसी है नाव। जिंदगी क्या है--एक तूफान है, एक आंधी है, अंधड़ है!
जिंदगी दरियाए-बेसाहिल है और किश्ती खराब,
और नाव है बड़ी जराजीर्ण।
मैं तो घबड़ा कर दुआ करता हूं तूफां के लिए।
और मैं तो प्रार्थना करता हूं कि अब तूफान आ ही जाए।
मगर ये प्रार्थनाएं ही हैं।
मैंने सुनी है एक सूफी कहानी। एक लकड़हारा, सत्तर साल की उम्र का, ढोता
है अपनी लकड़ियों को। ले आ रहा है शहर की तरफ। कई बार उसने प्रार्थना की कि हे परमात्मा! अब उठा ही ले। किसलिए यह दुख दिलवा रहा है? बुढ़ापा, बीमारी, कमर झुक गई, अब भी लकड़ियां काटो, अब भी बेचो। किसलिए? किसके लिए? कभी बीमार हो जाता हूं तो भूखा मरता हूं। जैसे ही बीमारी थोड़ी ठीक हुई, फिर चला लकड़ी

काटने। लकड़ी काटने की भी सामर्थ्य नहीं रही। बहुत बार प्रार्थना की कि परमात्मा, अब उठा ले! अब कोई सार नहीं। मगर प्रार्थना कभी सुनी नहीं गई। बड़ी कृपा है परमात्मा की कि तुम्हारी सब प्रार्थनाएं सुनी नहीं जातीं, नहीं तो तुम बड़ी मुश्किल में पड़ जाओ। उस दिन, संयोग की बात, मौत करीब से गुजरती थी और लकड़हारे ने कहाः हे मौत! अब और कब तक? जवान उठ गए मेरे सामने। मेरे देखते-देखते मेरे पीछे आए हुए लोग उठ गए। और मुझे कब उठाएगी? क्या मुझे सदा-सदा यह बोझ ढोना पड़ेगा?
मौत को भी कहते हैं दया आ गई। मौत आकर सामने खड़ी हो गई, उसने कहाः मैं मौजूद हूं। बोलो, क्या इरादा है?
बूढ़े ने दुख में और पीड़ा में अपनी लकड़ी का गट्ठर नीचे डाल दिया था। मौत को देखा, होश आया। कहा कि और कुछ नहीं, जरा यह गट्ठर मैंने नीचे गिरा दिया है, इसे उठा कर मेरे सिर पर रख दे। यहां कोई और दिखाई पड़ता नहीं, तो मैंने तुझे पुकारा। और अब ऐसी प्रार्थना कभी न करूंगा।
लोग कहते हैं कि मर ही जाएं तो अच्छा, मरना कोई चाहता नहीं! यह भी भर लेने का बहाना है अपने को। जो सच में ही मरना चाहता है, उसके लिए तो मरने का एक ही उपाय है--वह ध्यान है। क्योंकि ध्यान में जो मरा, फिर वह पैदा नहीं होता। मरौ हे जोगी मरौ! एक ऐसा भी मरना है कि उसके बाद फिर कोई जन्म नहीं। मरौ हे जोगी मरौ, मरौ मरण है मीठा!
तिस मरणी मरौ जिस मरणी मरि गोरख दीठा।।
उस तरह मरो जिस तरह से गोरख ने मर कर और देखा। जिन्होंने भी देखा है,
मर कर देखा है। जो मरे हैं, उन्होंने देखा है, उन्हीं को दर्शन हुआ है। अहंकार को मरने दो, चित्त को मरने दो, मैं-भाव को मरने दो। शून्य में लीन हो जाओ। और उसी शून्य में बजेगा नाद राम के नाम का, उठेगा ओंकार!
जन दरिया जिन राम न ध्याया। पसुवा ही ज्यों जनम गंवाया।।
मत गंवाओ जीवन को! मत गंवाओ जनम को! उपयोग कर लो। और क्या है उपयोग? मरौ हे जोगी मरौ! उपयोग एक ही है कि जीते जी तुम्हारे भीतर जो अहंकार है वह मर जाए, तो दृष्टि खुल जाए, आंख खुल जाए, द्वार मिल जाए। अमी झरत, बिगसत कंवल!
आज इतना ही।

अमी झरत, बिगसत कंवल
चौदहवां प्रवचन

अंतर-जगत की फाग

पहला प्रश्नः आधुनिक मनुष्य की सबसे बड़ी कठिनाई क्या है?

राकेश! पुरानी सारी कठिनाइयां तो मौजूद हैं ही, कुछ नई कठिनाइयां भी मौजूद हो गई हैं। पुरानी कठिनाइयां कटी नहीं हैं। बुद्ध के समय में या कृष्ण के समय में आदमी के लिए जो समस्याएं थीं, वे आज भी हैं। उतनी ही हैं। उनमें से एक भी समस्या विदा नहीं हुई। क्योंकि हमने समस्याओं के जो समाधान किए वे समाधान नहीं सिद्ध हुए। हमारे समाधान थोथे थे, ऊपरी थे। समस्याओं की जड़ को उन्होंने नहीं काटा। हम केवल ऊपर ही लीपापोती करते रहे।
क्रोध था किसी के भीतर, तो हमने क्रोध का दमन सिखाया। लेकिन दमित क्रोध नष्ट नहीं होता। दमित क्रोध और भी प्रज्वलित होकर भीतर जलने लगता है। साधारण आदमी जो कभी-कभी क्रोध कर लेता है, बेहतर है उस आदमी से जो क्रोध को दबा कर बैठ रहता है। क्योंकि साधारण आदमी का क्रोध रोज-रोज बह जाता है, संगृहीत नहीं होता। जिसने दमन किया हो, उसके भीतर बहुत संग्रह हो जाता है। और जब उसका विस्फोट होगा तो भयंकर होगा।
हमने दमन सिखाया सदियों तक; इससे आदमी रूपांतरित नहीं हुआ, सड़ गया। इससे आदमी आत्मवान नहीं हुआ, विकृत हुआ, विक्षिप्त हुआ। विमुक्ति के नाम पर हमने जो बातें लोगों को सिखाईं, उन्होंने उन्हें केवल पाखंडी बनाया। बाहर कुछ, भीतर कुछ। दिखाने के दांत और, खाने के दांत और। ऐसे हमने आदमी के जीवन में द्वैत पैदा कर दिया।
वे सारी समस्याएं वैसी की वैसी खड़ी हैं। और वे सारी समस्याएं समाधान मांगती हैं। नई समस्याएं भी खड़ी हो गई हैं; जिनका अतीत के मनुष्य को कुछ भी पता न था। जैसे एक नई समस्या खड़ी हो गई है कि मनुष्य का संबंध निसर्ग से टूटने लगा है, टूट गया है। जितना आधुनिक मनुष्य हो, उतना ही निसर्ग से विपन्न हो गया है। जैसे किसी वृक्ष की कोई जड़ें उखाड़ ले, फिर वृक्ष कुम्हलाने लगे, फूल झड़ने लगें, पत्ते हरे न रह जाएं--ऐसे मनुष्य को हमने प्रकृति से तोड़ लिया है।
और जो मनुष्य प्रकृति से टूट गया, उसका परमात्मा से जुड़ने का उपाय ही नहीं रह जाता। क्योंकि प्रकृति में ही परमात्मा की पहली झलक मिलती है। आदमी की बनाई हुई चीजों के बीच आधुनिक आदमी रह रहा है। सीमेंट के विशाल रास्ते हैं। इन्हें देख कर परमात्मा की याद नहीं आ सकती। कैसे आएगी? घास का एक तिनका भी उसकी याद दिलाता है और सीमेंट के विशाल राजपथ भी उसकी याद नहीं दिलाते। ये तो आदमी के बनाए हैं, उसकी याद दिलाएं तो दिलाएं कैसे? एक छोटा सा फूल भी राह के किनारे खिल जाता है, तो अज्ञात की खबर लाता है, संदेश लाता है। परमात्मा की प्रेम-पाती है वह। और तुम मकान बनाओ जो आकाश को छूने लगें, गगनचुंबी हों, तो भी उसकी याद नहीं दिलाते; सिर्फ आदमी की कारीगरी, आदमी की तकनीक, आदमी की होशियारी, इन सबका स्मरण दिलाते हैं। और इनके स्मरण से अहंकार मजबूत होता है।
आदमी की बनाई हुई कोई भी चीज बढ़ती नहीं; ठहरी रहती है, क्योंकि मुर्दा है। परमात्मा की बनाई सारी चीजें बढ़ती हैं, क्योंकि जीवंत हैं। पौधा बड़ा होगा, वृक्ष होगा। नदी सागर होगी। सब गतिमान है। आदमी की बनाई चीजें सब ठहरी हुई हैं; उनमें कोई विकास नहीं होता। वे जैसी हैं, वैसी ही हैं। वस्तुएं हैं। उनमें प्राण नहीं हैं। और जिनमें प्राण नहीं हैं, उनसे महाप्राण की कैसे स्मृति आएगी?
तो मनुष्य के जीवन का जो सब से बड़ा अभिशाप है आज--पुरानी सारी बीमारियां मौजूद हैं और एक नई बीमारी खड़ी हो गई है--कि हमने एक कृत्रिम वातावरण बना लिया है। और कृत्रिम वातावरण बड़ा-बड़ा होता जा रहा है।
लंदन में एक सर्वे किया गया, दस लाख बच्चों ने गाय नहीं देखी और लाखों बच्चों ने खेत नहीं देखे। जिन बच्चों ने खेत नहीं देखे और पवन के झकोरों

में डोलती हुई गेहूं की बालें और बाजरे और ज्वार को नहीं देखा, उन बच्चों के जीवन में कुछ चीज की कमी रह जाएगी। कुछ बड़ी मौलिक कमी रह जाएगी। उन्होंने कारें देखी हैं, बसें देखी हैं, रेलगाड़ियां देखी हैं।
मैंने सुना है, एक चर्च में एक पादरी बच्चों को समझा रहा था। रविवार
का धार्मिक स्कूल लगा था। बाइबिल में एक वचन आता है कि सब सरकती हुई चीजें उसी ने बनाईं--अर्थात सांप इत्यादि। एक छोटे बच्चे ने खड़े होकर कहा कि उदाहरण दीजिए।
पादरी भी थोड़ा चौंका, क्योंकि सांप उस बच्चे ने देखा नहीं; और कोई सरकती चीज देखी नहीं; तो उसने कहा कि रेलगाड़ी। जैसे रेलगाड़ी। तो वह बच्चा निश्चिंत हो गया।
पादरी भी करे तो क्या करे? सरकती हुई चीज के लिए रेलगाड़ी का उदाहरण!
यह भी परमात्मा ने बनाई है! हमारे पास उदाहरण भी खोते जाते हैं। जितना आधुनिक मनुष्य है, उतना ही ज्यादा कम प्राकृतिक, उतना ही ज्यादा कृत्रिम, उतना ही ज्यादा प्लास्टिक; असली नहीं, नकली। उसकी गंध नकली, उसका रंग नकली, उसका सब नकली! ओंठ रंग लिए हैं लिपस्टिक से, वह उसका रंग है ओंठों का। असली ओंठों का तो पता ही चलना मुश्किल हो गया है। कपड़े पहन लिए हैं इस ढंग से कि असली शरीर का पता चलना मुश्किल हो गया है। जिनकी छातियां नहीं हैं, उन्होंने कोटों में रुई भरवा ली है। हम सब तरफ से कृत्रिम में जी रहे हैं। और यंत्र बढ़ते जा रहे हैं। और मनुष्य की सबसे बड़ी कठिनाई सदा से यह रही कि मनुष्य मूर्च्छित है। यंत्रों के बीच और भी मूर्च्छित हो गया है, और भी यांत्रिक हो गया है।
तुम मुझसे पूछते होः "आधुनिक मनुष्य की सबसे बड़ी कठिनाई क्या है?" यांत्रिकता। यंत्रों के साथ रहोगे तो यांत्रिक हो ही जाना पड़ेगा। यदि बहुत जागरूक न रहे, तो सुबह सात बजे की गाड़ी पकड़नी है तो उसी ढंग से भागना होगा। कोई गाड़ी तुम्हारे लिए रुकी नहीं रहेगी। तुम अपनी निश्चिंतता की चाल नहीं चल सकते। तुम पक्षियों के गीत सुनते हुए नहीं जा सकते। आपाधापी है, भागमभाग है।
विद्यासागर ने लिखा है, एक सांझ वे घूम कर लौट रहे थे और उनके सामने ही
एक मुसलमान सज्जन अपनी सुंदर छड़ी लिए हुए, टहलते हुए वे भी आ रहे थे। मुसलमान सज्जन का नौकर भागा हुआ आया और उसने कहाः मीर साहब, जल्दी चलिए! घर में आग लग गई है।
लेकिन मीर साहब वैसे ही चलते रहे। नौकर ने कहाः आप समझे या नहीं समझे? आपने सुना या नहीं सुना? घर जल रहा है, धू-धू कर जल रहा है! तेजी से चलिए! यह समय टहलने का नहीं है। दौड़ कर चलिए!
लेकिन मीर साहब ने कहाः घर तो जल ही रहा है, मेरे दौड़ने से कुछ आग बुझ न जाएगी। और यहां तो सभी कुछ जल रहा है और सभी को जल जाना है। जीवन भर की अपनी मस्ती की चाल इतने सस्ते में नहीं छोड़ सकता।
विद्यासागर तो बहुत हैरान हुए। मीर साहब उसी चाल से चलते रहे! वही छड़ी
की टेक। वही मस्त चाल। वही लखनवी ढंग और शैली। विद्यासागर के जीवन में इससे एक क्रांति घटित हो गई। क्योंकि विद्यासागर को दूसरे दिन वाइसराय की कौंसिल में महापंडित होने का सम्मान मिलने वाला था। और मित्रों ने कहा कि इन्हीं अपने साधारण, सीधे-सादे, फटे-पुराने वस्त्रों में जाओगे, अच्छा नहीं लगेगा। तो हम ढंग के कपड़े बनवाए देते हैं, जैसे दरबार में चाहिए। तो वे राजी हो गए थे। तो चूड़ीदार पाजामा, और अचकन, और सब, ढंग की टोपी और जूते और छड़ी, सब तैयार करवा दिया था मित्रों ने। लेकिन इस मुसलमान, अजनबी आदमी की चाल, घर में लगी आग, और यह कहता है कि क्या जिंदगी भर की अपनी चाल को, अपनी मस्ती को, एक दिन घर में आग लग गई तो बदल दूं?
दूसरे दिन उन्होंने फिर वे बनाए गए कपड़े नहीं पहने। वाइसराय की दुनिया में पहुंच गए वैसे ही अपने सीधे-सादे कपड़े पहने।
मित्र बहुत चकित हुए। उन्होंने कहाः कपड़े बनवाए, उनका क्या हुआ? उन्होंने कहाः वह एक मुसलमान ने गड़बड़ कर दिया। अगर वह मकान में आग लग जाने पर अपनी जिंदगी भर की चाल नहीं छोड़ता, तो मैं भी क्यों अपने जीवन के ढंग और शैली छोडूं जरा सी बात के लिए कि दरबार जाना है? देना हो पदवी, दे दें; न देना हो, न दें। लेकिन जाऊंगा अब अपनी ही शैली से।

मगर आज सब तरफ यंत्र कसे हुए है। यहां शैली नहीं बच सकती, व्यक्तित्व नहीं बच सकता, निजता नहीं बच सकती। यदि तुम अत्यधिक होश से न जीओ, तो यंत्र तुम पर हावी हो जाएगा, तुम पर छा जाएगा। तुम घड़ी के कांटे की तरह चलने लगोगे और मशीन के पहियों की तरह घूमने लगोगे। और धीरे-धीरे तुम्हें भूल ही जाएगा कि तुम्हारे भीतर कोई आत्मा भी है! एक तो प्रकृति से संबंध टूट जाना और दूसरा यंत्र से संबंध जुड़ जाना, दोनों बातें महंगी पड़ी जा रही हैं।

मुकुर के लोचन खुले हैं।
बंद हैं आधार के दृग;
जड़ हुआ आधार का अस्तित्व,
छाया चल रही है!
मात्र दर्पण है, न दर्शन;
पूजता पाषाण चेतन!
चेतना खो चुका जीवन;
आंजते दृगहीन अंजन,
तिमिर-माया छल रही है।
मान धन मन के निधन को;
खोजता जीवन मरण को--
अन्न-कण, क्षयग्रस्त क्षण को! दिया तज रवि ने गगन को,
आयु दिन की ढल रही है!
मंत्र का दीपक बुझा कर,
तंत्र-बल को बाहु में भर,
पौढ़ कर मोहित धरा पर,
यंत्र की माया निरंतर
फूलती है, फल रही है!

और सब तो गया--मंत्र गया, तंत्र गया--यंत्र सिंहासन पर आरूढ़ हो गया है। यंत्र की माया निरंतर
फूलती है, फल रही है!
और मनुष्य भी धीरे-धीरे यांत्रिक होता जा रहा है। वैज्ञानिक तो मानते
भी नहीं कि मनुष्य यंत्र से कुछ ज्यादा है। और विज्ञान की छाप लोगों के हृदय पर बैठती जा रही है, क्योंकि विज्ञान का शिक्षण दिया जा रहा है। हृदय का तो कहीं कोई शिक्षण नहीं है। प्रेम के गीत तो कहीं सिखाए नहीं जा रहे हैं। हृदय की वीणा तो कहीं कोई बजाई नहीं जा रही है। तर्क सिखाया जा रहा है, गणित सिखाया जा रहा है। यंत्र को कैसे कुशलता से काम में लाया जाए, यह सिखाया जा रहा है। और धीरे-धीरे इस सबसे घिरा हुआ आधुनिक मनुष्य, प्रकृति से टूट गया, परमात्मा से टूट गया, अपने से टूट रहा है। सारे संबंध जीवन के विराट से उखड़े जा रहे हैं।
यह आज की सबसे बड़ी कठिनाई है। और इसलिए आज के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण और जरूरी हो गई है एक बात कि ध्यान का जितनी दूर-दूर तक प्रचार हो सके, जितने लोगों तक, करना जरूरी है। क्योंकि ध्यान ही अब एकमात्र उपाय है कि तुम्हें फिर याद दिला सके अपनी आत्मा की। और ध्यान ही एकमात्र उपाय है कि फिर तुम्हें वृक्षों में, चांद-तारों में परमात्मा की झलक मिल सके। ध्यान ही एकमात्र उपाय है जो तुम्हें वापस प्रकृति की तरफ ले चले। और ध्यान ही एकमात्र उपाय है कि यंत्रों के बीच रहते हुए भी, तुम्हें यंत्रों का मालिक बनाए रखे, यंत्रों का गुलाम न हो जाने दे।
मैंने एक झक्की नवाब के संबंध में सुना है। बीमार था। लेकिन पुरानी आदतें, रात दो-तीन बजे तक तो नाच-गाना चलता। फिर सोता। तो उठता सुबह दस बजे, ग्यारह बजे, बारह बजे। चिकित्सकों ने कहाः यह अब न चलेगा। अब इस योग्य स्वास्थ्य न रहा। अब तो सुबह ब्रह्ममुहूर्त में उठना पड़ेगा, छह बजे उठना पड़ेगा। तो ही तुम स्वस्थ हो सकते हो।
तो उसने कहाः यह कौन अड़चन की बात है, छह बजे उठेंगे।

भरोसा चिकित्सकों को नहीं आया, क्योंकि वह आदमी कभी जीवन में छह बजे नहीं उठा था। इतनी जल्दी राजी हो जाएगा! ना-नुच भी न करेगा! आना-कानी नहीं करेगा! सौदा नहीं करेगा, कि भई दस बजे नहीं तो आठ बजे, सात बजे। और सीधा बोला कि छह बजे तो छह बजे। उसके घर के लोग भी हैरान हुए। बेगम भी हैरान हुई, वजीर भी हैरान हुआ।
लेकिन बाद में राज खुल गया। राज यह था कि नवाब ने कहाः ऐसा करो कि जब
भी मैं उठूं तब तुम घड़ी में छह बजा देना, बात खतम हो गई। बारह बजे उठूं कि दस बजे उठूं, जब भी उठूं, मगर घड़ी में छह बजने चाहिए। जैसे ही मैं करवट लूं, जल्दी से घड़ी में छह बजा देना।
ऐसे तो वह झक्की था, लेकिन एक बड़ी महत्वपूर्ण बात है उसके इस झक्कीपन में कि घड़ी को मालिक नहीं होने दिया, मालिक खुद ही रहा। उसने कहाः घड़ी मालिक है कि मैं मालिक हूं? घड़ी के हिसाब से मैं चलूंगा कि मेरे हिसाब से घड़ी चलेगी? घड़ी ने मुझको खरीदा है कि मैंने घड़ी को खरीदा है? मेरे हिसाब से घड़ी चलेगी!
यंत्र तुम्हारे हिसाब से चलने चाहिए। यंत्र तुम्हें गुलाम न बना लें। तुम्हारी मालकियत बनी रहे। यह अब केवल ध्यान से ही संभव हो सकता है। राकेश! आधुनिक मनुष्य की सबसे बड़ी पीड़ा और सबसे बड़ी चुनौती, सबसे बड़ा खतरा, सबसे बड़ी समस्या एक ही हैः प्रकृति से टूट जाना और यंत्रों से जुड़ जाना। ध्यान इतना जरूरी कभी भी नहीं था जितना आज है, क्योंकि ध्यान के बिना भी परमात्मा की याद आ जाती थी। प्रकृति चारों तरफ लहलहा रही थी। कब तक बचते? कैसे बचते? पपीहा पी-पी पुकारता और तुम्हें अपने पिया की याद न आती? और कोयल कुहू-कुहू की धुन मचाती और तुम्हारे प्राणों में कोई कुहू- कुहू की प्रतिध्वनि पैदा न होती? फूलों पर फूल खिलते, ऋतुएं घूमतीं, ऋतुओं का चक्र चलता--और तुम्हें यह याद न आती कि जगत सुनियोजित है, अराजक नहीं है? चांद-तारे समय पर आते हैं। वर्षा आती है। गर्मी आती है। शीत आती है। क्या इस सारे वर्तुलाकार प्रकृति को घूमते देख कर तुम्हें यह याद न आता कि कोई रहस्यपूर्ण छिपे हुए हाथ इसके पीछे होने चाहिए? बचना मुश्किल था। चारों तरफ उसकी गंध थी।
हमने धीरे-धीरे उसकी गंध बिल्कुल बंद कर दी है। जितना आधुनिक मनुष्य है, उतना ही हटता चला गया है दूर। दिन भर मशीनों के साथ जीता है। घर आ जाए तो भी रेडियो खोल लेता है, कि टेलीविजन के सामने बैठ जाता है। फुरसत हो तो सिनेमा हो आता है। समय ही नहीं कि कभी तारों से भी गुफ्तगू हो। अवसर ही नहीं कि कभी नदियों के साथ भी दो बातें हो जाएं। आकांक्षा ही नहीं कि कभी पहाड़ों से भी मिलन हो। और इतने आवरण ओढ़ रखे हैं कि जब दो आदमी मिलते हैं तो भी मिलना नहीं हो पाता।
मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि एक बिस्तर पर जब पति और पत्नी सोते हैं, तो तुम यह मत समझना कि दो आदमी वहां सो रहे हैं। वहां चार भी सो सकते हैं; छह भी सो सकते हैं--क्योंकि एक तो पति वह है जो वह है; और एक पति वह है जैसा वह पत्नी को दिखलाता है; और एक पति वह है जैसा वह दिखलाता तो है लेकिन दिखला नहीं पाता, दिखलाना चाहता है। तो तीन पति हो गए, तीन पत्नियां हो गईं, छह आदमी सो रहे हैं। छोटा बिस्तर, वैसे ही भीड़-भाड़ हो जाती है।
तुम जो कहना चाहते हो, कहते हो? कुछ और ही कहते हो! और जो तुम कहते हो, उससे तुम्हारा कोई भी नाता नहीं होता। उसकी जड़ें तुम्हारे प्राणों में नहीं होतीं, तुम्हारे स्वरों का उसके साथ संबंध नहीं होता। तुम जरा लोगों के चेहरों पर गौर करो। तुम जरा लोगों के शरीर की भाषा सीखो। और तुम चकित हो जाओगे, उनके ओंठ कुछ कहते हैं, उनकी आंखें कुछ कहती हैं। उनके ओंठ कहते हैंः स्वागत! उनकी आंखें कहती हैं कि कहां सुबह-सुबह ये शनीचरी चेहरे के दर्शन हो गए। ओंठ कुछ कह रहे हैं, आंखें कुछ कह रही हैं। लोग कहते हैं कि बड़ा आनंद हुआ आपके आने से। लेकिन पूरा शरीर कुछ और कह रहा है।
शरीर की भाषा पर बड़ी शोध-बीन हो रही है। छोटे-छोटे इशारे शरीर कहता है, जिनका तुम्हें भी पता नहीं होता। जब तुम किसी आदमी से मिलना चाहते हो तो तुम उसके पास झुक कर खड़े होते हो; तुम उसकी तरफ झुके हुए होते हो। और जब तुम उससे नहीं मिलना चाहते तो तुम पीछे की तरफ खिंचे हुए खड़े होते हो। तुम जरा लोगों को गौर से देखना। जो स्त्री तुममें उत्सुक है, वह तुम्हारी तरफ झुकी

हुई होगी। जो स्त्री तुमसे बचना चाहती है, वह तुम्हारे से दूसरी तरफ तनी हुई होगी। जो स्त्री तुममें उत्सुक है, वह तुम्हारे पास सरक कर बैठेगी; जो तुममें उत्सुक नहीं है, वह जिस तरह बच सके, जितनी बच सके, उतनी दूर तुमसे सरक कर बैठेगी। शायद उसे भी साफ न हो। लेकिन शरीर की भाषाएं हैं। ओंठ कुछ कहते हैं, शरीर कुछ कहता है। शरीर ज्यादा सच कहता है, क्योंकि अभी शरीर को झुठलाने की कला हमने नहीं सीखी। आंखें कुछ और कहती हैं, तुम कुछ भी कहो। मनोवैज्ञानिकों ने एक प्रयोग किया आंखों के ऊपर। कुछ नंगी तस्वीरें
और कुछ साधारण तस्वीरों में मिला दीं। और कुछ लोगों को उन तस्वीरों का अध्ययन करने के लिए कहा। सिर्फ देखने के लिए, एक नजर देखते जाना है। और उनकी आंखों पर यंत्र लगाए गए हैं। उनकी आंखों की जांच की जा रही है। उनसे कुछ... वे क्या कहते हैं, यह नहीं पूछा जा रहा है, सिर्फ उनकी आंखों की जांच की जा रही है। और एक बड़ी हैरानी का अनुभव हुआ। साधारण तस्वीर एक ढंग से देखती है आंख। अगर नग्न स्त्री की तस्वीर हो तो आंख की पुतलियां एकदम बड़ी हो जाती हैं। तो जो यंत्र से आंखें देख रहा है, उसे तस्वीरों का पता नहीं है, लेकिन वह आंखें देख कर यंत्र से कह सकता है कि यह आदमी अभी नंगी तस्वीर देख रहा है।
यह तो बड़ी खतरनाक चीज है। तुम अपने साधु-संतों की जांच कर सकते हो। और आंख पर बस नहीं है तुम्हारा स्वेच्छा से, कि तुम जब चाहो फैला लो, जब चाहो सिकुड़ा लो। ख्याल भी नहीं है तुम्हें। जिस चीज को तुम देखना चाहते हो, उस आकांक्षा के कारण ही, वह दबी आकांक्षा ही कितनी ही क्यों न हो, तुम्हारी आंखों की पुतलियां बड़ी हो जाती हैं। क्यों? तुम उसे पूरा आत्मसात कर लेना चाहते हो।
फिल्म देखने तुम बैठे हो जाकर सिनेमागृह में। जब कोई ऐसी घटना घटती
है जिसमें तुम उत्सुक हो, तुम कुर्सी छोड़ देते हो, एकदम तुम्हारी रीढ़ सीधी हो जाती है। तुम एकदम सजग होकर देखने लगते हो। जब कोई चीज ऐसी ही चल रही है तो तुम आराम से कुर्सी पर बैठ जाते हो; चूक भी गए तो कुछ हर्ज नहीं। तुम्हारे शरीर की भाषा है। तुम कहते कुछ हो, तुम्हारा शरीर कुछ और ही कहता है। अक्सर उलटा कहता है। तुम्हारे ओंठ कुछ बोलते हैं और ओंठों का ढंग कुछ और बोलता है। ओंठ कुछ बोलते हैं, नाक कुछ बोलती है, आंख कुछ बोलती है। ऐसे खंड-खंड हो गया है आदमी। और यह खंडन बढ़ता जा रहा है, टुकड़े-टुकड़े होता जा रहा है। इसी टुकड़े-टुकड़े में फंसा हुआ है।
ध्यान का अर्थ होता है--अखंड हो जाओ; एक चैतन्य हो जाओ। और उस एक चैतन्य के लिए जरूरी है कि तुम अपने जीवन से यांत्रिकता छोड़ो। यंत्र तो नहीं छोड़े जा सकते, यह पक्का है। अब कोई उपाय नहीं है। अब लौटने की कोई जगह नहीं है। अब तुम चाहो लाख कि हवाई जहाज न हो, लोग फिर बैलगाड़ी में चलें--यह नहीं होगा। अब तुम लाख चाहो कि रेडियो न हो, यह नहीं होगा। अब तुम लाख चाहो कि बिजली न हो, यह नहीं होगा। होना भी नहीं चाहिए। लेकिन मनुष्य यांत्रिक न हो, यह हो सकता है। और अब तक तो खतरा न था, अब खतरा पैदा हुआ है। यंत्रों से बुद्ध के जमाने का आदमी नहीं घिरा था, तो भी बुद्ध ने अमूर्च्छा सिखाई है, विवेक सिखाया है, जागृति सिखाई है, होश सिखाया है। और आज तो और अड़चन बहुत हो गई है। आज तो एक ही बात सिखाई जानी चाहिए--मूर्च्छा छोड़ो! होशपूर्वक जीओ! जो भी करो, इतनी सजगता से करो कि तुम्हारा कृत्य मशीन का कृत्य न हो। तुममें और मशीन में इतना ही फर्क है अब कि तुम होशपूर्वक करोगे, मशीन को किसी होश की जरूरत नहीं है। अगर तुममें भी होश नहीं है तो तुम भी मशीन हो।
पुराने समय के ज्ञानियों ने मनुष्य को चौंकाया था, बार-बार एक बात कही थी, कल दरिया ने भी कही--कि देखो, आदमी रहना, पशु मत हो जाना! आज खतरा और बड़ा हो गया है। आज खतरा यह है कि देखो, आदमी रहना, यंत्र मत हो जाना! यह पशुओं से भी ज्यादा बड़ा पतन है। क्योंकि पशु फिर भी जीवंत है। पशु फिर भी यंत्र नहीं है। बुद्धों ने नहीं कहा है कि यंत्र मत हो जाना, क्योंकि यंत्र नहीं थे। लेकिन मैं तुमसे कहना चाहता हूं कि खतरा बहुत बढ़ गया है। खाई और गहरी हो गई है। पहले पुराने जमाने में गिरते तुम तो बहुत से बहुत पशु हो जाते, लेकिन अब गिरोगे तो यंत्र हो जाओगे। और यंत्र से नीचे गिरने का और कोई उपाय नहीं है। और यंत्र से बचने की एक ही औषधि हैः जागे हुए जीओ। चलो तो

होशपूर्वक, बैठो तो होशपूर्वक, सुनो तो होशपूर्वक, बोलो तो होशपूर्वक, चौबीस घंटे जितना बन सके उतना होश साधो। हर काम होशपूर्वक करो। छोटे-छोटे काम, क्योंकि सवाल काम का नहीं है, सवाल तो होश के लिए नये-नये अवसर खोजने का है। स्नान कर रहे हो, और तो कुछ काम नहीं है, होशपूर्वक ही करो। फव्वारे के नीचे बैठे हो, होशपूर्वक, जागे हुए, एक-एक बूंद को अनुभव करते हुए बैठो। भोजन कर रहे हो, जागे हुए।
लोग कहां भोजन कर रहे हैं जागे हुए! गटके जाते हैं। न स्वाद का पता है,
न चबाने का पता है, न पचाने का पता है--गटके जाते हैं। पानी भी पीते हैं तो गटक गए। उसकी शीतलता भी अनुभव करो। तृप्त होती हुई प्यास भी अनुभव करो। तो तुम्हारे भीतर यह अनुभव करने वाला धीरे-धीरे सघन होगा, केंद्रीभूत होगा। और तुम जाग कर जीने लगो, तो फिर हो जाए जगत, यंत्र से भर जाए कितना ही, तुम्हारा परमात्मा से संबंध नहीं टूटेगा।
जागरण या ध्यान परमात्मा और तुम्हारे बीच सेतु है। और जितना तुम्हारे जीवन में ध्यान होगा, उतना ही तुम्हारे जीवन में प्रेम होगा। क्योंकि प्रेम ध्यान का परिणाम है। या इससे उलटा भी हो सकता हैः जितना तुम्हारे जीवन में प्रेम होगा, उतना ध्यान होगा।
यंत्र दो काम नहीं कर सकते--ध्यान नहीं कर सकते और प्रेम नहीं कर सकते। बस इन दो बातों में ही मनुष्य की गरिमा है, महिमा है, महत्ता है, उसकी भगवत्ता है। इन दो को साध लो, सब सध जाएगा। और दोनों को इकट्ठा साधने की भी जरूरत नहीं है; इनमें से एक साध लो, दूसरा अपने आप सध जाएगा।

दूसरा प्रश्नः साधु-संतों को देख कर ही मुझे चिढ़ होती है और क्रोध भी आता है। मैं तो उनमें सिवाय पाखंड के और कुछ भी नहीं देखता हूं। पर आपने न मालूम क्या कर दिया है कि श्रद्धा उमड़ती है! आपके प्रभाव का रहस्य क्या है?

सतीश! बात सीधी-सादी हैः मैं कोई साधु-संत नहीं हूं। और ठीक ही है कि साधु-संतों पर तुम्हें चिढ़ होती है। चिढ़ होनी चाहिए अब। हजारों साल हो गए! इन मुर्दों से कब छुटकारा पाओगे? इन लाशों को कब तक ढोओगे? अगर तुममें थोड़ी भी बुद्धि है, तो चिढ़ होगी ही। तोतों की तरह ये तुम्हारे तथाकथित साधु-संत दोहराए जा रहे हैं--राम की कथा, उपनिषद, वेद, सत्यनारायण की कथा। न इनके जीवन में सत्य का कोई पता है, न नारायण का कोई पता है। न इनके जीवन में राम की कोई झलक है, न कृष्ण का कोई रस बहता है। न तो बांसुरी बजती है इनके जीवन में कृष्ण की, न मीरा के घुंघरुओं की आवाज है। इनके जीवन में कोई उत्सव नहीं है, कोई फाग नहीं है, कोई दीवाली नहीं है। इनके जीवन में कुछ भी नहीं है। इन्होंने तो सिर्फ धर्म के नाम पर तुम्हारा शोषण करने की एक कला सीख ली है। ये पारंगत हो गए हैं। और ये उन बातों का उपयोग करते हैं, जिन बातों से सहज ही तुम्हारा शोषण हो सकता है।
भिखमंगे भी इस देश में ज्ञान की बातें करते हैं, मगर उनका प्रयोजन कुछ ज्ञान से नहीं है। भिखमंगे भी कहते हैं कि दान से बड़ा पुण्य नहीं है। कोई न उन्हें पुण्य से मतलब है, न दान से मतलब है। मतलब तुम्हारी जेब से है। वे तुम्हारे अहंकार को फुसला रहे हैं कि दान से बड़ा पुण्य नहीं है, कहां जा रहे हो? दान करो! और लोभ पाप का बाप बखाना! वे तुमसे कह रहे हैं कि लोभ पाप का बाप है, बचो इससे! दे दो, हम तुम्हें हलका किए देते हैं। और मांग रहे हैं। भिखमंगे हैं। और मांगना लोभ से हो रहा है, लेकिन शिक्षा वे अलोभ की दे रहे हैं!
तुम्हारे भिखमंगों में और तुम्हारे साधु-संतों में कुछ बहुत फर्क नहीं है। तुम्हारे भिखमंगों में और तुम्हारे साधु-संतों में इतना ही फर्क है कि भिखमंगे गरीब और साधु-संत थोड़े सुशिक्षित, थोड़े सुसंस्कृत। भिखमंगे थोड़े दीन-हीन और तुम्हारे साधु-संत तुम्हारा शोषण करने में ज्यादा कुशल। कल ही मैं एक कविता पढ़ता था--

दीवाली के दिन
एक साधु बाबा बोलेः

हम त्रिकालदर्शी हैं
वेदांती हैं
देख! हमारे मुंह में एक भी दांत नहीं बच्चा, हंसने की बात नहीं
लोग इस जमाने में
कपड़े पहन कर भी नंगे हैं
हम एक लंगोटी में नंगापन ढांक रहे हैं संतों के देश में धूल फांक रहे हैं। खाली कमंडल हाथ में लेकर
घर-घर अलख जगाते हैं
और लोग हमें चोर समझ कर भगाते हैं सूरदास को चैन नहीं मिला
तो नैन फोड़ लिए
हमें अन्न नहीं मिला
तो दांत तोड़ लिए
वे सूरदास
हम पोपलदास
वे अतीत के गौरव
हम वर्तमान के संत्रास!"
हमने कहाः "बाबाजी!
आप तो साहित्यकारों को मात कर रहे हैं साधु होकर संत्रास की बात कर रहे हैं।" वे बोलेः "तू हमें नहीं पहचानता हमारा वर्तमान देख रहा है
भूतकाल नहीं जानता
आज से दस बरस पूर्व
हम अखिल भारतीय कवि थे
लोग हमारी बकवास को अनुप्रास
और अश्लीलता को अलंकार कहते थे बड़े-बड़े संयोजक हमारी अंटी में रहते थे हमने शब्दों से अर्थ कमाया है
कविता को मंच पर नंगा नाच नचाया है उसी का फल चर रहे हैं
तन पर भभूत मल रहे हैं
खाली कमंडल लिए फिर रहे हैं।"
हमने कहाः "दुखी मत होओ बाबा!
आपका कमंडल खाली
हमारी जेब खाली
भाड़ में जाए होली
और चूल्हे में जाए दीवाली।"

नाराजगी स्वाभाविक है। चिढ़ होती होगी सतीश, चिढ़ होनी चाहिए। क्रोध भी आता होगा, आना चाहिए। न तो सभी चिढ़ व्यर्थ होती हैं, न सभी क्रोध व्यर्थ होते हैं। कभी तो क्रोध की भी सार्थकता होती है। इस देश को थोड़ा क्रोध भी आने लगे, तो भी सौभाग्य है। यह देश तो भूल ही गया है सारी तेजस्विता। यह तो गुलामी में ऐसा पक गया है, ऐसा रंग गया है, कि घिसता जाता है, कहीं भी जोत दो, किसी भी कोल्हू में जोत दो, और इस देश का आदमी चलने को राजी हो जाता है। सदियों से भाग्य सिखाया गया है, नियति सिखाई गई है। सदियों से एक ही बात सिखाई गई है कि सब किस्मत में लिखा है। जो होना है वही होना है। तो अगर कोल्हू में बंधना है तो कोल्हू में बंधना है! और साधु-संतों का ऐसा सम्मान सिखाया है... । सिखाया किसने? उन्हीं ने सिखाया है। वही तुम्हारे शिक्षक रहे हैं। वही तुम्हें बताते रहे हैं।
मुल्ला नसरुद्दीन ने एक दिन जाकर बाजार में कहा कि मेरी स्त्री से ज्यादा सुंदर और कोई स्त्री दुनिया में नहीं है। नूरजहां भी कुछ नहीं थी।

मुमताजमहल भी कुछ नहीं थी। और ये आजकल की हेमामालिनी इत्यादि का तो कोई मूल्य ही नहीं है।
किसी ने पूछाः मगर मुल्ला नसरुद्दीन, अचानक तुम्हें इस बात का पता कैसे चला?
उसने कहाः पता कैसे चला? मेरी ही पत्नी ने मुझसे कहा है!
कौन तुम्हें समझाता रहा कि साधु-संतों को सम्मान दो, सत्कार दो, सेवा करो? यही साधु-संत तुम्हें समझाते रहे। सदियों-सदियों का संस्कार उन्होंने डाला है। तुम उन्हें देख कर झुक जाते हो। झुकना यांत्रिक है, औपचारिक है। तुम्हारे बाप भी झुकते रहे, बाप के बाप भी झुकते रहे, सदियां झुकती रहीं; तुम भी झुक जाते हो। उसीशृंखला में बंधे, कड़ियों में बंधे, झुक जाते हो।
अच्छा है सतीश कि चिढ़ होती है। इस देश के जवान में थोड़ी चिढ़ पैदा होनी चाहिए। तो कुछ टूटे, कुछ नया बने! नहीं तो तथाकथित बड़ी-बड़ी क्रांतियां हो जाती हैं। देखा अभी, समग्र क्रांति समग्र रूप से असफल गई! क्रांति बकवास है यहां, क्योंकि लोगों के प्राणों में क्रांति का भाव नहीं है। क्रांति ऊपर-ऊपर लीपा-पोती है! एक आदमी को हटाओ, दूसरे को बिठा दो। मगर वह दूसरा आदमी पहले से भी बदतर हो सकता है; या पहले ही जैसा होगा। बहन जी नहीं होंगी तो भाई जी होंगे, कुछ खास फर्क नहीं पड़ेगा। कोई अंतर नहीं होगा। एक लाश हटेगी, दूसरी लाश विराजमान कर दी जाएगी। नाम क्रांति का होगा। लेकिन क्रांति की भाषा नहीं हमें आती। क्रांति का हमारे पास बोध नहीं है। क्रांति का पहला बोध यह है कि हम देखना तो शुरू करें कि हम कितनी सदियों से कितनी गलत धारणाओं में आबद्ध हैं।
संत कौन है? हमारी परिभाषा क्या है संत की? अगर हिंदू से पूछो तो उसकी
एक परिभाषा है--कि भभूत रमाए बैठा हो, धूनी लगाए बैठा हो, तो संत हो गया। अब भभूत लगाने से और धूनी रमाने से कोई संत होता है? सर्कस में भर्ती
हो जाना था; संत क्यों?
जैन से पूछो, उसकी यह परिभाषा नहीं है। वह तो जो भभूत लगाए है और धूनी जलाए है, उसको संत तो मान ही नहीं सकता, असंत मानेगा। क्योंकि आग जलाने से तो हिंसा होती है। कीड़े मरेंगे; आग पैदा होगी। आग जलाना तो जैन मुनि कर ही नहीं सकता। तो उसकी और परिभाषा है--उपवास करे कोई। लंबे-लंबे उपवास करे, भूखा मरे! खुद को सताए, तरह-तरह से सताए, तो मुनि है।
मगर यह श्वेतांबर जैन की परिभाषा है। दिगंबर से पूछो, तो जब तक वह नग्न न हो तब तक मुनि नहीं है, चाहे कितने ही लाख उपवास करे। मुनि तो वह तभी होगा, जब नग्न खड़ा हो जाए, जब वस्त्रों का त्याग कर दे।
ईसाइयों से पूछो, तो उनकी कुछ और परिभाषा है, मुसलमानों से कुछ और, और बौद्धों से कुछ और। दुनिया में तीन सौ धर्म हैं और तीन हजार परिभाषाएं हैं। क्योंकि तीन सौ धर्मों के कम से कम तीन हजार संप्रदाय हैं।
संत कौन है? इन परिभाषाओं से तय होने वाला नहीं है। ये परिभाषाएं काम
न पड़ेंगी। संत तो मैं उसे कहता हूं जिसने सत्य को जाना। संत शब्द ही सत्य को जानने से बनता है। जिसने अनुभव किया, पीया सत्य को। जिसकी मौजूदगी में, जिसकी सन्निधि में तुम्हारे भीतर भी सत्य की हवाएं बहने लगें, सत्य की रोशनी होने लगे। जिसकी मौजूदगी में, जिसके संग-साथ में तुम्हारा बुझा दीया जल उठे। संत वही है।
जब तक तुम्हारा दीया न जल जाए, तब तक किसी को संत कहने का कोई कारण नहीं है। हां, तुम्हारा दीया कहीं जल जाए और तुम्हारे भीतर आनंद का प्रकाश हो और तुम्हें परमात्मा की सुध आने लगे, तो जिसके पास आ जाए वही संत है। फिर वह नग्न हो कि कपड़े पहने हो, महल में हो कि झोपड़े में हो, उपवास कर रहा हो कि सुस्वादु भोजन कर रहा हो, कुछ फर्क नहीं पड़ता। इन सारी बातों से कोई संबंध नहीं है। फिर वह हिंदू हो कि मुसलमान कि ईसाई; स्त्री हो कि पुरुष; कोई फर्क नहीं पड़ता। एक ही बात निर्णायक है कि जिसकी सन्निधि में, तुम्हारे भीतर सोया हुआ जो परमात्मा है, वह करवट लेने लगे। तुम्हारे भीतर धुन बजने लगे कोई, जो कभी नहीं बजी थी! तुम्हारी आंखें गीली हो जाएं किसी नये आनंद से--अपरिचित, अछूते आनंद से! तुम्हारे पैर थिरकने लगें एक नये

उल्लास से! तुम्हारा हृदय धड़कने लगे एक नये संगीत से! तुम आतुर हो जाओ अपना अतिक्रमण करने को! वही संत है।
और सतीश, जब भी ऐसा कोई संत मिलेगा तो चिढ़ कैसे होगी? जब ऐसा कोई संत मिलेगा तो श्रद्धा होगी। तो झुक जाने का मन होगा। नहीं कि झुकाओगे तुम अपने को; अचानक पाओगे कि झुक गए हो। नहीं कि चेष्टा करनी पड़ेगी झुकने की; नहीं-नहीं, जरा भी नहीं। झुका हुआ अनुभव करोगे! झुका हुआ पाओगे! अचानक पाओगे कि तुम्हारा अहंकार गया, बह गया, बाढ़ में बह गया।
मेरे पास तो केवल वे ही लोग आ सकते हैं जो तुम्हारे जैसे हैं। जिन्हें अभी पुराने, सड़े-गले धर्म में भरोसा है, वे तो यहां आ भी नहीं सकते। मेरे पास तो वे ही आने की हिम्मत जुटा सकते हैं, जिन्होंने देख लिया पुराने धर्म का सड़ा-गलापन; जिन्होंने देख ली उसकी असलियत और जो तलाश पर निकल पड़े हैं; जो खोज में निकल पड़े हैं। जो कहते हैं कि अब लीक पर चलने से कुछ भी न होगा; हम तलाश करेंगे, अपनी पगडंडी तोड़ेंगे, खोजेंगे--कहीं तो होगा परमात्मा का कोई प्रकाश! कहीं तो अभी भी किसी एकाध रंध्र से उसकी रोशनी आती होगी पृथ्वी तक, हम उस रंध्र को खोजेंगे। सदियों-सदियों पूजे गए पाखंड व्यर्थ हो गए हैं। सदियों-सदियों बनाए गए मंदिर खाली पड़े हैं। अब हम चलेंगे खुद ही तलाश पर। अब भीड़-भाड़ की न मानेंगे। अब तो निज का ही अनुभव होगा तो स्वीकार करेंगे।
मेरे पास, तुम कहते हो कि तुम्हें श्रद्धा अनुभव होती है। तो मेरे रहस्य का, मेरे राज का कारण पूछा है।
न कोई रहस्य है, न कोई राज है। बात सीधी-साफ है; दो और दो चार जैसी साफ है। मैं कोई बंधी-बंधाई परंपरा का प्रतिनिधि नहीं हूं। मैं किसी का साधु नहीं हूं, किसी का संत नहीं हूं। मैं अपनी निजता में जी रहा हूं। जो मेरा आनंद है, वैसे जी रहा हूं। रत्ती भर मुझे किसी और की परवाह नहीं है। जिन्हें औरों की परवाह है, उनसे मेरा नाता नहीं बनेगा। मुझसे तो नाता उनका बनेगा जिन्हें किसी की परवाह नहीं है; जिन्हें सिर्फ एक बात की चिंता है कि सत्य को जानना है, चाहे दांव पर कुछ भी लगाना पड़े। संस्कृति लगे दांव पर तो लगा देंगे। धर्म लगे दांव पर तो लगा देंगे। प्रतिष्ठा लगे दांव पर तो लगा देंगे। प्राण लग जाएं दांव पर तो लगा देंगे। सहेंगे अपमान। सहेंगे असम्मान। सहेंगे निंदा। लोग पागल कहेंगे तो सहेंगे, लेकिन सत्य को खोज कर रहेंगे! ऐसे जो लोग हैं, वे अचानक ही पाएंगे कि मेरे हृदय और उनके बीच एक स्वर बजने लगा। वे मेरे लोग हैं। मैं उनका हूं। मैं उन थोड़े से लोगों के लिए हूं जिनका ऐसा दुस्साहस है।
लेकिन सत्य की खोज के लिए दुस्साहस चाहिए ही। भीड़ के पास झूठ होता है, क्योंकि भीड़ को सत्य से कुछ लेना नहीं है। सांत्वना चाहिए। सांत्वना झूठ से मिलती है। सत्य से तो सब सांत्वनाएं टूट जाती हैं। सत्य तो आता है तलवार की धार की तरह और काट जाता है तुम्हें। सत्य तो मिटा देता है तुम्हें। और जब तुम मिट जाते हो तब जो शेष रह जाता है, वही परमात्मा है। अहंकार जहां नहीं है, वहीं परमात्म-अनुभव है।
लेकिन, सत्य को खोजो, पर अकारण साधु-संतों के प्रति चिढ़ को ही अपने जीवन की शैली मत बना लेना। उससे क्या लेना-देना? उनकी वे जानें। अगर किसी को पाखंडी होना है, तो उसे हक है पाखंडी होने का। और किसी को अगर झूठ में ही जीना है, तो यह भी उसकी आत्मा की स्वतंत्रता है कि वह झूठ में जीए। किसी को दोहरी जिंदगी जीनी है, उसकी मर्जी। तुम अपने को इसी पर आरोपित मत कर देना। नहीं तो तुम्हारा समय इसी में नष्ट होगा--इसको घृणा करो, उसको घृणा करो; इससे चिढ़ करो, उससे क्रोध करो, इससे लड़ो-झगड़ो। तुम अपनी तलाश कब करोगे?
और उन सौ साधु-संन्यासियों में कभी एकाध ऐसा भी हो सकता है जो सच्चा हो। तो कहीं ऐसा न हो कि कूड़ा-कर्कट के साथ तुम हीरे को भी फेंक दो।
इसलिए तुम इसकी चिंता छोड़ो। तुम तो सत्य की तलाश में ही अपनी सारी शक्ति को नियोजित कर दो। शक्ति को बांटो मत। इस भेद को ख्याल में रख लो। नहीं तो तुम प्रतिक्रियावादी हो जाओगे, क्रांतिकारी नहीं। कुछ लोग हैं जो गलत को तोड़ने में ही जिंदगी गंवा देते हैं। मगर गलत को तोड़ने से ही ठीक थोड़े ही बनता है। तुम अगर उठा लो कुदाली और गांव में जितने भी गलत मकान हों, सब गिरा दो, तो भी इससे मकान तो नहीं बन जाएगा। गिराने से तो मकान नहीं

बन जाएगा। अच्छा तो यही हो कि तुम पहले मकान बनाओ, सम्यक मकान बनाओ, मंदिर बनाओ, ताकि गलत अपने आप गलत दिखाई पड़ने लगे। फिर गिराना भी आसान होगा। और फिर इस भूल की भी संभावना नहीं है कि कहीं गलत की चपेट में तुम ठीक को भी गिरा जाओ। अक्सर ऐसा हो जाता है।
अंग्रेजी में कहावत है न कि टब के गंदे पानी के साथ कहीं बच्चे को न फेंक देना! अक्सर ऐसा हो जाता है कि जब लोग क्रोध में आ जाते हैं, तो कचरा तो फेंकते ही फेंकते हैं, हीरे भी फेंक देते हैं। हीरे भी पड़े हैं। सौ में एक ही होगा हीरा।

तब तुमको पहचान न पाया!

पाले की ठंडी अंधियाली
निशि में जब तुम एक ठिठुरते
भिखमंगे का रूप बना कर
आए मेरे गृह पर डरते
मैंने तुमको शरण नहीं दी, उलटे जी भर कर धमकाया! तब तुमको पहचान न पाया!

अंगारे नभ उगल रहा था
बने पथिक तुम प्यासे पथ पर
पानी थोड़ा मांग रहे थे
राह किनारे बैठे थक कर
पानी मेरे पास बहुत था, फिर भी था तुमको तरसाया!
तब तुमको पहचान न पाया!

भूखा बालक बन कर उस दिन
खंडहर में तुम बिलख रहे थे
मेरे पास अनाजों के जाने
कितने भंडार भरे थे
तब भी मैंने उठा प्रेम से नहीं तुम्हें निज कंठ लगाया! तब तुमको पहचान न पाया!

आज तुम्हारे द्वार खड़ा मैं
जाने ले कितनी आशाएं
बेशर्मी की भी तो हद है
कैसे ये दृग पलक उठाएं
मैं लघु पर तुम तो महान, विश्वास यही मुझको ले आया!
तब तुमको पहचान न पाया!

कौन जाने परमात्मा किस रूप में आ जाए! कौन जाने परमात्मा किस रूप में मिल जाए! इसलिए किसी रूप से कोई जिद मत बांध लेना। आग्रह मत कर लेना। फिर वह रूप चाहे साधु-संत का ही क्यों न हो। तुम्हें क्या पड़ी? तुम अपने सत्य की तलाश में लगो। तुम्हारा सत्य प्रकट हो जाए, उसी घड़ी तुम्हें पता चल जाएगा कि कहां-कहां सत्य है और कहां-कहां सत्य नहीं है। उसके पहले पता भी नहीं चल सकता।
तोड़ने का भी एक मजा होता है। विरोध का भी एक मजा होता है। निंदा का भी
एक रस होता है। उसमें मत पड़ जाना। नहीं तो कई बार, द्वार के करीब आते-आते भी चूक जा सकते हो। सत्य के तलाशी को पक्षपात-शून्य होना चाहिए। सत्य के खोजी को धारणा-शून्य होना चाहिए। पूर्व-धारणाएं लेकर तुम जहां भी जाओगे, वहां तुम वही नहीं देख पाओगे जो है; वही देख लोगे जो तुम देखने गए थे।
और जीवन सच में ही बड़ा रहस्यपूर्ण है। यहां कभी-कभी ऐसी अनहोनी घटनाएं घटती हैं जिनकी तुम कल्पना भी नहीं कर सकते थे। यहां इस-इस रूप में सत्य की उपलब्धि हो जाती है जिसकी तुम स्वप्न में भी धारणा नहीं कर सकते थे। इसलिए मन को जिद में मत बांधो सतीश! न क्रोध में बांधो।

बात तो तुम्हारी ठीक है। बहुत धोखा हुआ है, बहुत पाखंड हुआ है। धर्म
के नाम पर बहुत उपद्रव चला है, बहुत शोषण चला है। मगर यह शोषण ऐसे ही नहीं चलता रहा है। इस शोषण की जिम्मेवारी शोषण करने वालों पर ही नहीं है। इसकी बड़ी जिम्मेवारी तो उन पर है जो इसे चलने देते हैं। शायद उनकी जरूरत है। शायद इसके बिना वे जी नहीं सकते।
सिगमंड फ्रायड ने कुछ महत्वपूर्ण बातों में एक महत्वपूर्ण बात यह भी कही है कि चालीस वर्षों के मनुष्य के मनोविज्ञान के अध्ययन के बाद, अनेक-अनेक लोगों के निरीक्षण के बाद, मेरा निष्कर्ष है कि आदमी, कम से कम अधिकतम आदमी, बिना झूठ के नहीं जी सकते। अधिकतम लोगों के लिए भ्रमों के जाल चाहिए ही चाहिए। क्योंकि सत्य की चोट झेलने की क्षमता कितने लोगों की है? फ्रेड्रिक नीत्शे ने भी बड़ी गहरी बात कही है, ठीक-ठीक ऐसी ही ऐसी। फ्रेड्रिक नीत्शे ने कहा है कि कृपा करो, लोगों के भ्रम मत छीनो! क्योंकि लोग बिना भ्रम के मर जाएंगे। भ्रम उनके जीवन का आधार है।
तो शोषण यूं ही नहीं चलता है। कोई है जो शोषण के बिना जी नहीं सकता है, इसलिए शोषण चलता है। अर्थशास्त्र का एक नियम है, अब हालांकि वह नियम उतना काम नहीं आता। अब तो अर्थशास्त्र भी शीर्षासन कर रहा है। लेकिन पुराना नियम यही है कि जहां-जहां मांग होती है, वहां-वहां पूर्ति होती है। जब तक किसी चीज की मांग न हो, तब तक पूर्ति नहीं होती। अगर पाखंडी सिर पर बैठे हैं, तो जरूर तुम चाहते होओगे कि तुम्हारे सिर पर कोई बैठे। बिना तुम्हारी मांग के तुम क्यों उन्हें सिर पर बिठाओगे? तुम्हारे भीतर जरूर उनके कारण कुछ सहारा मिलता होगा; कोई सांत्वना मिलती होगी, कोई सुरक्षा मिलती होगी। तुम्हारे भीतर कुछ जरूर उनके कारण तृप्त होता होगा। तुम्हारी कोई न कोई जरूरत वे जरूर पूरी कर रहे हैं।
हालांकि अब अर्थशास्त्र का नियम थोड़ा बदला है। बदला है अब ऐसा, और बदलना पड़ा है विज्ञापन के कारण। यह जब नियम बना था तब विज्ञापन इतना विकसित नहीं हुआ था। अब विज्ञापन ने हालत बदल दी है। अब विज्ञापन कहता हैः पहले पूर्ति करो, फिर मांग तो पैदा हो ही जाएगी। अब विज्ञापन की दुनिया ने क्रांति कर दी एक। पहले तो ऐसा था--लोगों की जरूरत होती तो लोग मांग करते थे; मांग होती तो कोई खोज करता, पूर्ति करता। समझो कि लोगों को ठंड लग रही है, कंबल की जरूरत है, तो कंबल बाजार में आ जाते। अब हालत उलटी है। अब पहले कंबल बाजार में ले आओ। खूब प्रचार करो कि कंबल पहनने से शरीर सुंदर होता है, कंबल ओढ़ने से ऐसे-ऐसे लाभ होते हैं, उम्र लंबी होती है, आदमी ज्यादा देर तक जवान रहता है। खूब जो-जो प्रचार करना हो करो। कि जिसके पास यह कंबल होगा, उसके पास सुंदरियां आती हैं! कि इस कंबल को देख कर सुंदरियां एकदम मोहित हो जाती हैं! इस कंबल को देखते ही जादू छा जाता है! बस फिर चाहे सर्दी हो या न; फिर गर्मी में लोगों को तुम देखोगे कि कंबल ओढ़े बैठे हैं। पसीने से तरबतर हो रहे हैं, लेकिन सुंदरियों की प्रतीक्षा कर रहे हैं। अब हालत बदल गई है।
तुमने कहावत सुनी है अंग्रेजी की, कि आवश्यकता आविष्कार की जननी है।
अब उसको बदल दो। अब कहावत कर लोः आवश्यकता आविष्कार की जननी नहीं; आविष्कार आवश्यकता का पिता है। पहले आविष्कार कर लो, फिर फिकर करना; विज्ञापन करना जोर से। इसलिए अमरीका में तो ऐसा है कि कोई भी चीज बाजार में आती है, उसके दो साल, तीन साल पहले विज्ञापन शुरू हो जाता है। अब तो लोग विज्ञापन से जीते हैं! जिन बातों की लोगों को कभी खबर ही नहीं थी, जिनकी उन्हें कभी जरूरत नहीं थी, विज्ञापन उनको जरूरत सिखा देता है। बस ठीक से प्रचार करो। लोगों को जंचा दो कि इसके बिना चलेगा नहीं। लोग खरीदने लगेंगे।
तो पहले तो पुरोहित आदमी की जरूरत से पैदा हुआ। जरूरत क्या थी आदमी की? जरूरत थी कि आदमी डरा हुआ था, भयभीत था। मौत थी सामने। मौत के पार क्या है? यह प्रश्न था सामने। जिंदगी में हजार-हजार मुसीबतें थीं, बीमारियां थीं। क्यों हैं ये बीमारियां, इनके उत्तर चाहिए थे। तो साधु-संत पैदा हो गए। उन्होंने उत्तर दे दिए। किसी ने उत्तर दे दिया कि तुमने पिछले जन्मों में पाप-कर्म किए थे। पिछले जन्म का पक्का ही नहीं है अभी; लेकिन पिछले जन्म में पाप-कर्म किए थे, उनका फल भोग रहे हो! और वह जो धन लिए बैठा है और

मजा कर रहा है, उसने पिछले जन्म में पुण्य किए थे, इसलिए वह पुण्य का फल भोग रहा है! उत्तर मिल गया। सांत्वना मिली। थोड़ी राहत मिली। थोड़ी बेचैनी कटी-- बड़ी बेचैनी कटी! अहंकार को बड़ा सहारा मिला। नहीं तो ऐसा लगता है कि हम भी मेहनत कर रहे हैं, दूसरा भी मेहनत कर रहा है; वह सफल होता है, हम असफल होते हैं। तो जरूर हमारे पास बुद्धि की कमी है। लेकिन अब बुद्धि क्या करे? बुद्धि तो हमारे पास उससे भी अच्छी है। मगर अब पिछले जन्मों के कर्मों के कारण अड़चन आ रही है। राहत मिल गई!
मृत्यु के बाद, घबड़ाओ मत, आत्मा अमर है। यही तो हम चाहते थे सुनना कि कोई कह दे, किसी तरह समझा दे कि आत्मा अमर है। हमें मरना न पड़े। कोई मरना नहीं चाहता। कोई समझा दे यह भी कि मरने के बाद जो दुनिया है, वह बड़े स्वर्ग की है, सुख की है।
थोड़ी सी शर्तें लगाईं साधु-संतों ने, वह भी ठीक, कि जो हमारी सेवा करेगा वह मेवा पाएगा। ठीक भी है। आखिर वे तुम्हारी सेवा कर रहे थे, थोड़ी तुमसे सेवा ली, तो दुनिया तो लेन-देन का मामला है। कुछ तुमने दिया, कुछ उन्होंने लिया। कुछ उन्होंने दिया, कुछ तुमने लिया। सौदा जम गया। उन्होंने कहाः तुम हमारी यहां सेवा करो, हम तुम्हें पक्का भरोसा दिलाते हैं कि स्वर्ग में तुम्हारी अप्सराएं सेवा करेंगी। तब एक अदृश्य का धंधा शुरू हुआ। तुम्हें जो चाहिए वह स्वर्ग में मिलेगा। यहां दो, वहां लो।
मगर यह बात जरा गड़बड़ की तो थी। क्योंकि यहां देना पड़े प्रकट और मरने
के बाद मिलेगा कि नहीं मिलेगा! तो साधु-संतों ने कहाः एक पैसा यहां दो, वहां एक करोड़ गुना लो। देखते हो लोभ कितना दिया! पंडे-पुजारी तीर्थों में बैठ कर लोगों को समझाते हैं कि तुम एक दो, एक करोड़ गुना मिलेगा। कौन नहीं इस लोभ में आ जाएगा? एक पैसा दान दे दिया और एक करोड़ मिलेगा, यह तो सरकारी लाटरी से भी बेहतर हुआ! यह है लाटरी, असली आध्यात्मिक लाटरी! एक पैसा दे दिया और करोड़ गुना! एक रुपया दे दिया और करोड़ गुना! यह कमाई कौन छोड़ेगा? और अगर गया भी तो एक ही रुपया गया, कोई बहुत बड़ा चला नहीं गया। और अगर मिला... कौन जाने मिले ही! तो इतना लोभ दिया! उस लोभ ने तुम्हें राहत दी।
स्वर्ग के कैसे-कैसे सुखों के वर्णन हैं! और फिर तुम्हें डरवाया भी। क्योंकि जो उनकी न मानेगा, वे नरक में सड़ेंगे। और नरक में फिर कैसे-कैसे सड़ाने के वर्णन हैं! जिन्होंने किए हैं, बड़े कल्पना-जीवी लोग रहे होंगे। किस-किस प्रकार की ईजादें की हैं नरक में सड़ाने की, परेशान करने की! और स्वर्ग में सब सुख। और भेद कितना? जो मानेगा इन साधु-संतों को!
अब बड़ी अड़चन खड़ी हो गई, क्योंकि दुनिया में बहुत तरह के साधु-संत हैं, बहुत तरह के संप्रदाय हैं। सबके दावे हैं। ईसाई कहते हैंः जो ईसा को मानेगा, बस वही जाएगा स्वर्ग, शेष सब नरक में पड़ेंगे। जब तक पता नहीं था एक धर्म का दूसरे धर्मों को, तब तक तो ये दुकानें चलती थीं आसानी से। अब बड़ी बिगूचना हो गई, बड़ी विडंबना हो गई। अब बड़ी घबड़ाहट पैदा होती है लोगों को कि करना क्या है! पता नहीं कौन सच्चा हो! कहीं ऐसा न हो कि वहां पहुंचें और जीसस इनकार कर दें, क्योंकि ईसाई कहते हैं कि जीसस पहचानते हैं, कौन उनका है। वे अपनों-अपनों को चुन लेंगे। वे अपनी भेड़ों को चुन लेंगे। वे रखवाले हैं, गड़रिए हैं; वे अपनी भेड़ों को चुन लेंगे, बाकी भेड़ें जाएं भाड़ में।
तो लोगों को खूब डरवाने के उपाय किए गए।
मैंने सुना है, एक आदिवासी गांव में... आदिवासियों को तो, सीधे-सादे, भोले-भाले लोग, उनको बदलने के लिए भी भोली-भाली, सीधी-सादी कोई तरकीबें खोजनी पड़ती हैं, जो उनके काम आ सकें। बड़े तर्क तो वे समझ नहीं सकते। बाइबिल और वेद का तो उन्हें पता नहीं। तो पादरी ने पूरा गांव बदलने की तैयारी कर ली थी। ईसाई होने को गांव तैयार था। और तरकीब क्या थी? तरकीब बड़ी सीधी-सरल थी। मगर तुम्हारी तरकीबें भी बहुत भिन्न नहीं हैं। कितनी ही जटिल हों, उनका मौलिक ढंग वही है।
तरकीब यह थी कि उसने एक दिन सारे गांव को इकट्ठा किया। आग जलाई एक तरफ
और पानी से भरा हुआ एक मटका रखा दूसरी तरफ। और उसने कहा कि देखो, कौन सच्चा है? किससे परख की जाए? आदिवासी कहते हैंः भवसागर कहा है संसार को, तो सच्चा वही जो तिरा दे। तो पानी में जो डूब जाए वह झूठा और जो बच जाए वह सच्चा। उसने दो मूर्तियां बना रखी थीं। एक राम की मूर्ति, वह लोहे की; और एक जीसस

की मूर्ति, वह लकड़ी की। और उसने एक दूसरा सेट भी अपने झोले में तैयार रखा था। अगर आग से परीक्षा करनी हो, तो उलटा। वहां जीसस लोहे के और राम लकड़ी के। मटके में उसने डाल दीं दोनों मूर्तियां। राम जी तत्काल डूब गए। लोहे के थे तो बचते कैसे? जीसस तैरने लगे। तालियां बज गईं। गांव के लोगों ने कहा कि अब इससे ज्यादा प्रत्यक्ष प्रमाण और क्या? संसार भवसागर है! ये राम जी के साथ गए तो खुद भी डूबे। आप डूबन्ते, ले डूबे जिजमान! खुद तो डूबेंगे ही डूबेंगे महाराज, हमें भी डुबाएंगे। जीसस ही बचावनहार! देखो क्या तैर रहे हैं! तुम्हें भी तिरा देंगे।
वह तो सब गड़बड़ हो गई एक आदमी की वजह से। एक हिंदू संन्यासी भी गांव में ठहरा हुआ था। उसको यह खबर लगी। वह भी भागा हुआ पहुंचा। उसने यह सब हालत देखी; सब समझ गया राज। उसने कहाः भाई, परीक्षा तो अग्नि से होगी, क्योंकि अग्नि-परीक्षा ही हिंदुस्तान में चलती रही है। राम जी भी जब सीता जी को लेकर आए थे तो अग्नि-परीक्षा ली थी। जल-परीक्षा सुनी कभी?
गांव के लोगों ने कहाः यह बात तो ठीक है। जल-परीक्षा सुनी ही नहीं। अग्नि-परीक्षा!
पादरी थोड़ा डरा। उसने कोशिश तो की कि किसी तरह झोले में छिपी दूसरी मूर्तियां निकाल ले, लेकिन अब इस संन्यासी को धोखा देना मुश्किल था। उसने तो मटके में डली हुई मूर्तियां बाहर निकाल लीं और उसने कहा कि अब असली परीक्षा होती है देखो। डाल दिया दोनों को आग में। राम जी तो मजे से खड़े रहे, जीसस महाराज भभक कर जल गए। उस संन्यासी ने कहाः देखा, अग्नि-परीक्षा होगी, उसमें जो पार उतरेगा, वही तुम्हें पार उतारेगा।
आदमी के साथ यही खिलवाड़ चलता रहा है। उसे ऐसे ही तर्क दिए जाते रहे हैं। उसे इसी तरह के गणित समझाए जाते रहे हैं। आदमी भयभीत है; बचना चाहता है। मौत सामने खड़ी है। साधु-संतों ने यह मौका नहीं छोड़ा। उन्होंने इसका शोषण कर लिया है। उन्होंने हजार-हजार सिद्धांत खड़े कर लिए हैं।
लेकिन आज अड़चन खड़ी हो गई है, क्योंकि दुनिया के सारे धर्म, पहली बार एक-दूसरे से परिचित हुए हैं। इसके पहले तो सब अपने-अपने कुएं में बंद थे। विज्ञान ने कुएं तोड़ दिए, सीमाएं तोड़ दीं। संसार छोटा हो गया; एकदम छोटे गांव जैसा हो गया। आज न्यूयार्क में और पूना में अंतर ही क्या है? घंटों का फासला रह गया। इतने करीब हो गया है सब कि न्यूयार्क में नाश्ता लो, लंदन में भोजन करो और पूना में बदहजमी झेलो! सब इतना करीब हो गया है। एकदम जुड़ गया है। इतनी दुनिया करीब आ गई। इस करीब दुनिया में अब मन बहुत विभ्रांत है कि कौन सही, कौन गलत?
मैं तुमसे कहना चाहता हूंः ये सारी धारणाएं ही व्यर्थ। इनमें सही और गलत चुनना ही मत। इनमें कुछ गलत नहीं, कुछ सही नहीं। ये अलग-अलग दुकानों के अलग-अलग इश्तहार थे। ये दुकानें ही गलत थीं। धर्म का कोई संबंध परलोक से नहीं है। धर्म का संबंध वर्तमान से है। धर्म का कोई संबंध मृत्यु के पार से नहीं है, धर्म का मौलिक संबंध जीवन के निखार से है। धर्म का कोई संबंध पाप और पुण्य से नहीं है, धर्म का संबंध है मूर्च्छा और जागरण से।
तुम जागो! और जागोगे तो अभी ही जाग सकते हो, कल नहीं। इस क्षण को जागरण
का क्षण बना लो। इस क्षण को निखार लो। इस क्षण को उत्सव, रसमय कर लो। फिर सब शेष अपने आप ठीक हो जाएगा। क्योंकि दूसरा क्षण इसी क्षण से पैदा होगा। वह और भी रसपूर्ण होगा। और अगर कोई जन्म है... और मैं जानता हूं कि मृत्यु के बाद जन्म है, जीवन है। लेकिन तुमसे कहता नहीं कि मेरी बात पर भरोसा करो। मेरा जानना मेरा जानना है; उस पर तुम्हें कोई अपने आधार खड़े नहीं करने हैं। लेकिन अगर यह जीवन तुम्हारा सुंदर हुआ, तो आने वाला जीवन इसी जीवन से तो उमगेगा, और भी सुंदर होगा।
और तुम पाप-पुण्य में चुनने की बजाय जागृति और मूर्च्छा में चुनो। क्योंकि पाप और पुण्य तो सभी धर्मों के अलग-अलग हैं, लेकिन जागृति और मूर्च्छा सभी धर्मों की अलग-अलग नहीं हो सकतीं। ईसाई जागे तो भी जागे और हिंदू जागे तो भी जागे और जैन जागे तो भी जागे। जागरण हिंदू नहीं होता और न मुसलमान होता है। जागरण तो बस जागरण है और मूर्च्छा मूर्च्छा है।
हां, पाप-पुण्य में बड़े भेद हैं। अगर मांसाहार करो तो मुसलमान के लिए पाप नहीं है, ईसाई के लिए पाप नहीं है। और ईसाई अपनी किताब के उद्धरण देने

को तैयार है कि ईश्वर ने सारे पशु-पक्षी बनाए मनुष्य के उपयोग के लिए। वह तो ईश्वर का वक्तव्य बाइबिल में दिया हुआ है कि मनुष्य के उपयोग के लिए सारे पशु-पक्षी बनाए; और तो इनका कोई उपयोग ही नहीं है।
अगर जैनों से पूछो तो मांसाहार महापाप है। उससे बड़ा कोई पाप नहीं। लेकिन रामकृष्ण मछली खाते रहे और मुक्त हो गए। जैनों के हिसाब से नहीं हो सकते। जैनों के हिसाब से रामकृष्ण को परमहंस नहीं कहना चाहिए। हंसा तो मोती चुगै। और ये मछली चुग रहे हैं! और परमहंस हो गए मछली चुग-चुग कर। और बंगाली मछली न चुगे तो चले नहीं काम।
कठिनाई है बहुत, पाप कौन तय करे? पुण्य कौन तय करे?
ईसाइयों का एक समूह है रूस में, अब तो समाप्त होने के करीब हो गया, लेकिन उसकी मान्यता यह थी कि जिस पशु-पक्षी को तुम खा लेते हो, उसकी आत्मा को तुम मुक्त कर देते हो बंधन से। न केवल पाप तो कर ही नहीं रहे, पुण्य कर रहे हो। उसकी आत्मा को मुक्त कर रहे हो। जैसे कोई पक्षी बंद है, तोता बंद है पिंजड़े में, तुमने पिंजड़ा खोल दिया और तोते को उड़ा दिया। इसको तुम पाप कहोगे? उस संप्रदाय की यह मान्यता थी कि तुमने एक तोते को खा लिया, तो वह जो शरीर था तोते का, वह पिंजड़ा था, वह तुम पचा गए। पिंजड़ा ही पचाओगे, आत्मा तो मुक्त हो गई। तो तुमने कृपा की तोते पर! तुमने तोते का बड़ा कल्याण किया। अब उसकी आत्मा बंधन से मुक्त हो गई। और चूंकि मनुष्य ने उसे पचा लिया, अगला जन्म उसका अच्छा जन्म होगा।
इसी आशा में तो हिंदू भी नरबलि देते रहे; आज भी देते हैं! आज भी मूढ़ों
की कमी नहीं है। इस देश में अश्वमेध यज्ञ हुए। अश्वमेध! और गऊ माता की पूजा करने वाले गो-मेध भी करते रहे। वे ही ऋषि-मुनि! गो-मेध की तो बात छोड़ दो, नर-मेध भी करते रहे। लेकिन यज्ञ की वेदी पर चढ़ाई गई गऊ सीधी स्वर्ग जाती है! बुद्ध ने मजाक किया है। एक गांव में यज्ञ हो रहा है, भेड़-बकरियां काटी
जा रही हैं, और बुद्ध आ गए, बस ठीक समय पर आ गए। उन्होंने पूछा उस पंडित को, पुरोहित को, जो यह कर रहा है हत्या का कार्य। खास पंडित-पुरोहित होते थे, जो यही काम करते थे। तुम जान कर चकित होओगे, तुममें कोई शर्मा यहां मौजूद हों तो नाराज न हों। शर्मा उन्हीं पंडित-पुरोहितों का नाम है। शर्मा का अर्थ होता है शर्मन करने वाला, काटने वाला। जो यज्ञ में पशु-पक्षियों को काटता था, वह शर्मा कहा जाता था। अब तो लोग भूल-भाल गए हैं। अब तो शर्मा बड़ा समादृत शब्द है। इतना समादृत कि वर्मा इत्यादि भी अपने को छोड़ कर शर्मा लिखते हैं। शर्मा का मतलब होता है हत्यारा। लेकिन हत्यारा साधारण नहीं, असाधारण हत्यारा! आत्माओं को स्वर्ग पहुंचाने वाला।
तो बुद्ध ने कहा कि यह तुम क्या कर रहे हो? तो उन्होंने कहा कि यह कोई हत्या नहीं है, हिंसा नहीं है। ये जो पशु-पक्षी काटे जाएंगे, इन सबकी आत्माएं स्वर्ग चली जाएंगी। तो बुद्ध ने बड़ा मजाक किया है! और बुद्ध ने कहाः तो फिर अपने माता-पिता को क्यों नहीं काटते? स्वर्ग ही भेज दो। यह अवसर मिला, स्वर्ग भेजने का द्वार खुला और तुम इन पशु-पक्षियों को भेज रहे हो? माता-पिता को भेज दो! पत्नी-बच्चों को भेज दो! फिर सबको भेज कर खुद भी चले जाना! मगर इन पशु-पक्षियों को तो न भेजो। ये तो जाना भी नहीं चाहते। ये तो तड़प रहे हैं। ये तो भागना चाहते हैं। ये तो कहते हैं कि क्षमा करो! बोल नहीं सकते। जरा इनकी आंखें तो देखो, गिड़गिड़ा रही हैं। मिमिया रहे हैं; ये कह रहे हैं कि हमें जाने दो। ये तो स्वर्ग जाना नहीं चाहते, इनको तुम भेज रहे हो। और जो जाना चाहते हैं... । जिस यजमान ने यह करवाया है यज्ञ, वह स्वर्ग जाना चाहता है, उसी को भेज दो।
खूब चालबाज लोग दुनिया में थे। चालबाजियां चलती रहीं। चालबाजियां हम सहते रहे। पाप और पुण्य का निर्णय करना मुश्किल है। एक तरफ हैं अमेजान नदी के किनारे बसे हुए लोग, जो आदमियों को भी खा जाते हैं, और इसमें कोई पाप नहीं। मनुष्य का आहार कर जाते हैं, भक्षण कर जाते हैं, और इसमें जरा भी कोई पाप नहीं है। और एक तरफ क्वेकर हैं, जो दूध भी नहीं पीते। क्योंकि दूध भी आता तो शरीर से है। खून से छन-छन कर आता है। रक्त का ही हिस्सा है। देह का अंग है। चाहे हाथ को काट कर खाओ और चाहे मां के स्तन से दूध को लेकर पी लो, है तो इसमें हिंसा ही।

और गाय का तुम दूध पीते हो; वह तुम्हारे लिए बनाया नहीं गया है। वह तो गाय के बछड़े के लिए बनाया गया है। बछड़े को छीन कर तुम पी रहे हो, तो तुम पाप ही कर रहे हो। फिर दूध सिवाय आदमी को छोड़ कर कोई पशु एक उम्र के बाद नहीं पीता, इसलिए यह अप्राकृतिक भी है। छोटे बच्चे दूध पीए मां से, ठीक है। लेकिन जैसे ही उनके दांत ऊग आए और वे पचाने लगे, फिर दूध छूट जाना चाहिए। तो एक तरफ क्वेकर हैं, जो दूध भी नहीं पीते। एक क्वेकर मेहमान मेरे घर रुके। सुबह मैंने उनसे पूछाः आप चाय लेंगे, कॉफी लेंगे, दूध लेंगे? उन्होंने मुझे ऐसे चौंक कर देखा, जैसे किसी जैन मुनि से तुम पूछो कि अंडा लेंगे, कि मछली लेंगे, कि गऊ-मांस, क्या विचार है? ऐसे मुझे चौंक कर देखा, कहाः आप और इस तरह की बात पूछते हैं!
मैंने कहाः कुछ भूल हुई?
उन्होंने कहा कि क्वेकर और दूध, चाय, कॉफी। दूध तो हम छू नहीं सकते। दूध तो पाप है। दूध तो हिंसा है, मांसाहार का हिस्सा है।
बड़ी अजीब दुनिया है। हिंदुस्तान में तो लोग समझते हैं कि दूध सबसे ज्यादा शुद्ध आहार, सात्विक आहार। अगर कोई आदमी सिर्फ दूध ही दूध पीकर रहे, दुग्धाधारी हो जाए, तो उसको लोग महात्मा मानते हैं। और क्वेकर की दृष्टि में इस आदमी से बड़ा पापी नहीं। दूध ही दूध पी रहा है, शुद्ध मांसाहारी है! तो क्या पाप है, क्या पुण्य है?
मेरी दृष्टि में, ये सब पाप-पुण्य सामाजिक व्यवस्थाएं हैं। ये पाप-पुण्य वस्तुतः मूल्यवान नहीं हैं। ये ऐसे ही हैं जैसे रास्ते के नियम-- बाएं चलो कि दाएं चलो। बाएं चलो तो भी ठीक है और दाएं चलो तो भी ठीक है। हिंदुस्तान में लिखा होता है--बाएं चलो। अमरीका में लिखा होता है--दाएं चलो। नियम कुछ न कुछ चाहिए। रास्ते पर सभी तरफ लोग चलें तो दुर्घटनाएं हो जाएंगी, बहुत दुर्घटनाएं हो जाएंगी। शायद कोई भी अपने घर नहीं पहुंच पाएगा। ट्रैफिक जाम हो जाएंगे। तो नियम बनाना पड़ता है, नियम उपयोगी हैं, लेकिन नियम की कोई शाश्वतता नहीं है।
ऐसे ही ये तुम्हारे पाप-पुण्य के नियम हैं। जिन लोगों के साथ रहते हो, जिनकी सड़क पर चलते हो, बाएं चलो कि दाएं चलो, वैसा मान कर चल लेना। मगर इनका कोई वास्तविक मूल्य नहीं है। फिर वास्तविक मूल्य किस बात का है? दो ही बातों का। मूर्च्छा से जीओ तो पाप और होश से जीओ तो पुण्य। और मेरे देखे यह समझ में आया है कि जो आदमी जितना होश से जीएगा, चकित हो जाएगा। जो-जो गलत है, वह अपने आप छूटता चला जाता है! अपने आप! जो-जो गलत है, छोड़ना नहीं पड़ता, छूट जाता है। क्योंकि होश से भरा हुआ आदमी कैसे कर सकता है गलत को? जैसे अंधा आदमी तो शायद कभी दीवाल से निकलने की भी कोशिश करे, आंख वाला कैसे दीवाल से निकलने की कोशिश करेगा? आंख वाला तो दरवाजे से निकलता है। ऐसे ही जिसके पास जागरण के च्रु हैं, ध्यान की आंख है, वह जो भी करता है, ठीक करता है।
मुझसे जब लोग पूछते हैं कि ठीक क्या है, तो उनको मैं कहता हूं कि ब्योरे में मत जाओ। क्योंकि ब्योरे का तो तय करना बहुत मुश्किल है। एक तरफ ईसाई हैं, जो कहते हैंः सेवा करो; जितनी सेवा करोगे, उतना ही स्वर्ग निकट है। अस्पताल खोलो, कोढ़ियों के हाथ-पैर दबाओ, स्कूल चलाओ। और एक तरफ तेरापंथी जैन हैं, जो कहते हैं कि रास्ते के किनारे कोई प्यासा भी मरता हो तो तुम चुपचाप अपने रास्ते पर चले जाना, उसको पानी भी न पिलाना। क्यों? उनका भी हिसाब है। वे कहते हैंः वह आदमी रास्ते के किनारे तड़प कर मर रहा है, जरूर किसी पिछले जन्म के पाप का फल भोग रहा है। अब तुम उसको पानी पिला दो, तो पाप का फल भोगने से वंचित कर दिया। वंचित करने का मतलब यह है कि फिर कभी भोगना पड़ेगा। तुमने उसकी और यात्रा बढ़ा दी। उनका गणित समझो। उसको फल भोग लेने दो बेचारे को तो झंझट खत्म हो जाए। एक पाप कटे। कटा जा रहा था पाप, आप पानी लेकर आ गए! कटते-कटते पिंजड़े के बाहर हो रहा था पक्षी, फिर तुमने दरवाजे पर सांकल लगा दी, फिर पानी पिला दिया। फिर उसको कष्ट से बचा दिया। फिर और दूसरा खतरा भी है। वह जो और भी बड़ा है। वह यह कि इसको तुमने पानी पिला कर बचा दिया। अब पता नहीं यह आदमी कौन हो, डाकू हो, हत्यारा हो, चोर हो, बेईमान हो, राजनेता हो, लुच्चा-लफंगा, कौन हो क्या पता! और कल जाकर यह किसी की हत्या कर दे, तो फिर तुम भी पाप के भागीदार होओगे। न तुम पिलाते

पानी, न यह बचता, न हत्या होती। तो तुमशृंखला के हिस्से हो गए। सावधान! यह कल राजनेता हो जाए! कोई भी हो सकता है।
जब मैं स्कूल में पढ़ता था, तो जो मुझे नागरिक शास्त्र पढ़ाते थे अध्यापक, उनसे मेरा बड़ा विवाद हो गया था। विवाद इस बात पर हो गया था कि वे कहते थे कि स्वतंत्र लोकतंत्र में कोई भी व्यक्ति देश का प्रधानमंत्री हो सकता है। और मैं उनसे कहता थाः यह कैसे हो सकता है कोई भी व्यक्ति? कोई योग्यता चाहिए। कोई भी कैसे हो सकता है? कोई कुशलता चाहिए। फिर वे तो चल बसे। लेकिन जब मोरारजी देसाई प्रधानमंत्री हुए, तो मैंने उनकी चल बसी आत्मा से क्षमा मांगी। मैंने कहाः माफ करो, हे मेरे नागरिक शास्त्र को पढ़ाने वाले शिक्षक! तुम ठीक ही कहते थे। जब मोरारजी देसाई भी हो सकते हैं तो कोई भी हो सकता है। मेरी गलती थी। तुमने ठीक ही कहा था। मेरा विवाद करना उचित न था।
अब क्या पता, इसको पानी पिला दो और कल देश का प्रधानमंत्री हो जाए और फिर हजारों तरह के उपद्रव करे, हजारों तरह के उपद्रव करवाए! सबका पाप किस पर लगेगा?
तो तेरापंथ मानता है कि राह में पड़े हुए प्यासे आदमी को पानी भी मत पिलाना। और एक तरफ ईसाई हैं, वे मानते हैं कि हमेशा डोर और बाल्टी साथ में रखो, कि कहीं कोई प्यासा मिल जाए, जल्दी से कुएं में डालो डोर, निकालो पानी, पिलाओ। सब इंतजाम पास में रखो।
मैंने सुनी है चीन की एक कहानी। एक मेला भरा है। और एक आदमी गिर पड़ा कुएं में। शोरगुल बहुत है। बहुत चिल्लाता है, मगर कोई सुनता नहीं। तब एक बौद्ध भिक्षु उसके पास आकर रुका। उसने नीचे नजर डाली। वह आदमी चिल्लाया कि बचाओ महाराज! हे भिक्षु महाराज, मुझे बचाओ! मैं मरा जा रहा हूं। भिक्षु ने कहाः भगवान ने कहा है कि जीवन तो जरा है, मरण है। मरना तो होगा ही। मरना तो सभी को है। यहां जो भी आए, सभी को मरना है।
उस आदमी ने कहाः वह सब ठीक है, मगर अभी, अभी फिलहाल तो निकालो! फिर जब मरना है तब मरेंगे।
मगर बौद्ध भिक्षु भी ज्ञानी था, उसने कहा कि क्या समय से भेद पड़ता है,
आज मरे कि कल मरे! अरे जब मरना ही है तो मर ही जाओ। और यह जीवन की आशा छोड़ कर मरोगे, तो फिर पुनर्जन्म नहीं होगा। और यह जीवन की आशा लेकर मरे, फिर सड़ोगे। चौरासी का चक्कर है!
वह आदमी वैसे ही तो मरा जा रहा है, उसको और चौरासी का चक्कर! बौद्ध भिक्षु तो आगे बढ़ गया। ज्ञान की बात कह दी, मतलब की बात कह दी; सुनो सुनो, समझो समझो, न समझो न समझो।
उसके पीछे एक कनफ्यूशियन भिक्षु आकर रुका। उसने भी देखा नीचे। वह आदमी चिल्लाया कि महाराज, तुम बचाओ!
कनफ्यूशियस को मानने वाले ने कहाः घबड़ा मत! कनफ्यूशियस ने अपनी किताब में लिखा है कि हर कुएं पर पाट होनी चाहिए, आज यह प्रमाण हो गया। इस कुएं पर पाट नहीं है, इसलिए तू गिरा। अगर पाट होती, कभी न गिरता। हम सारे देश में आंदोलन चलाएंगे कि हर कुएं पर पाट होनी चाहिए।
उसने कहाः यह सब तुम करना पीछे। मैं मर जाऊंगा। और अब पाट भी बन जाएगी
तो क्या होगा? मैं तो गिर ही चुका हूं।
उसने कहाः तू तो फिकर मत कर; यह सवाल व्यक्तियों का नहीं है। व्यक्ति
तो आते रहते हैं, जाते रहते हैं; सवाल समाज का है।
वह गया और मंच पर खड़ा हो गया और मेले में लोगों को समझाने लगा कि भाइयो! हर कुएं पर पाट होनी चाहिए।
तब एक ईसाई पादरी आकर रुका। उसने जल्दी से अपने झोले में से बाल्टी निकाली, रस्सी निकाली। बाल्टी डाली, रस्सी डाली। आदमी को कहा कि पकड़ ले रस्सी, बैठ जा बाल्टी में। खींच लिया उसे बाहर। वह आदमी पैरों पर गिर पड़ा और उसने कहा कि तुम्हीं सच्चे धार्मिक आदमी हो। बौद्ध भिक्षु आया, वह मुझे धम्मपद की गाथाएं सुनाने लगा। कनफ्यूशियसी आया, वह मुझे कहने लगा कि सब कुओं पर पाट बनवा देंगे, तू मत घबड़ा। तेरे बच्चे कभी भी नहीं गिरेंगे। एक तुम्हीं सच्चे, जो तुमने मुझे बचाया। मगर एक बात मेरे मन में उठती है कि एकदम से बाल्टी-रस्सी कहां से ले आए?

उसने कहाः मैं ईसाई हूं। हम सब इंतजाम पहले ही करके चलते हैं। सेवा हमारा धर्म है। और हमारी तुमसे इतनी ही प्रार्थना है, न तो जरूरत है कुओं पर पाट बनाने की, न जरूरत है धम्मपद की गाथाओं को याद करने की। ऐसे ही गिरते रहना, ताकि हम भी बचाएं, हमारे बच्चे भी बचाएं। अपने बच्चों को भी समझा जाना कि गिरते रहना। क्योंकि न तुम गिरोगे, न हम बचाएंगे, तो फिर स्वर्ग कैसे जाएंगे?
यहां सबके अपने हिसाब हैं। यहां किसी को किसी और से प्रयोजन नहीं है। यहां क्या पुण्य, क्या पाप! मेरे हिसाब में एक ही पाप है--मूर्च्छित जीना। ऐसे जीना जैसे तुम शराब पीकर जी रहे हो। और ऐसे ही लोग जी रहे हैं। दरिया कहते हैंः जागे में जागना है। और हम तो जागे में सोए हैं! सोए में तो सोए ही हैं, जागे में सोए हैं। हमें जागे में जागना है और फिर सोए में भी जागना है।
कृष्ण ने कहा हैः या निशा सर्वभूतायां तस्यां जागर्ति संयमी। जब सारे लोग सोए होते हैं, तब भी जो वस्तुतः योगी है, ध्यानी है, जागा होता है। गहरी से गहरी नींद में भी उसके ध्यान का दीया नहीं बुझता, उसका ध्यान का दीया जलता रहता है।
तो मैं तुमसे कहता हूंः जागो! होश को सम्हालो! फिर तुम जो भी करोगे, वह ठीक होगा। ठीक करने से होश नहीं सम्हलता; होश सम्हलने से ठीक होता है। गलत छोड़ने से होश नहीं सम्हलता, होश सम्हलने से गलत छूटता है। मैं अपने सारे धर्म को एक ही शब्द में तुमसे कह देना चाहता हूं--वह ध्यान है। और ध्यान का अर्थ--होश, प्रज्ञा, जागरण।

तीसरा प्रश्नः बुरे कामों के प्रति जागरण से बुरे काम छूट जाते हैं।
तो फिर अच्छे काम जैसे प्रेम, भक्ति आदि के भी प्रति जागरण हो तो क्या होता है? कृपया इसे स्पष्ट करें।

रामछवि प्रसाद! जागरण की तीन सीढ़ियां हैं। पहली सीढ़ी--प्राथमिक जागरण--बुरे का अंत हो जाता है और शुभ की बढ़ती होती है। अशुभ विदा होता है, शुभ घना होता है। द्वितीय चरण--शुभ विदा होने गलता है, शून्य घना होता है। और तृतीय चरण--शून्य भी विदा हो जाता है। तब जो सहज... तब जो सहज अवस्था रह जाती है, जो शुद्ध चैतन्य रह जाता है, बोधमात्र, वही बुद्धावस्था है, वही निर्वाण है।
शुरू करो जागना, तो पहले तुम पाओगे--जो गलत है, छूटने लगा। जाग कर सिगरेट पीओ, तुम न पी सकोगे। इसलिए नहीं कि सिगरेट पीना पाप है। सिगरेट पीने में क्या पाप हो सकता है? कोई आदमी धुआं बाहर ले जाता है, भीतर ले आता है; बाहर ले जाता है, भीतर ले आता है। इसमें क्या पाप है? किसी का क्या बिगाड़ रहा है? सिगरेट पीने में पाप नहीं है। बुद्धूपन जरूर है, मगर पाप नहीं है। मूढ़ता जरूर है, लेकिन पाप नहीं है। मूढ़ता इसलिए है कि शुद्ध हवा ले जा सकता था और प्राणायाम कर लेता। प्राणायाम ही कर रहा है। लेकिन नाहक हवा को गंदी करके कर रहा है। धूम्रपान एक तरह का मूढ़तापूर्ण प्राणायाम है। योग साध रहे हैं, मगर वह भी खराब करके। शुद्ध पानी था, उसमें पहले कीचड़ मिला ली, फिर उसको पी गए। अगर तुम जरा होशपूर्वक सिगरेट पीओगे, सिगरेट पीना मुश्किल हो जाएगा। क्योंकि तुम्हें मूढ़ता दिखाई पड़ेगी। इतनी प्रकटता से दिखाई पड़ेगी कि हाथ की सिगरेट हाथ में रह जाएगी।
पहले ऐसी व्यर्थ की चीजें छूटनी शुरू होंगी। फिर धीरे-धीरे, तुम जो गलत करते थे, जरा-जरा सी बात पर क्रुद्ध हो जाते थे, नाराज हो जाते थे, वह छूटना शुरू हो जाएगा। क्योंकि बुद्ध ने कहा हैः किसी दूसरे की भूल पर तुम्हारा क्रुद्ध होना ऐसे ही है जैसे किसी दूसरे की भूल पर अपने को दंड देना। जब जरा बोध जगेगा तो तुम यह देखोगे कि गाली तो उसने दी और मैं भुनभुनाया जा रहा हूं! और मैं जला जा रहा हूं! और मैं विदग्ध हुआ जा रहा हूं! यह तो पागलपन है! गाली जिसने दी, वह भोगे। न मैंने दी, न मैंने ली। जैसे ही तुम जागोगे, गाली का लेना-देना बंद हो गया। अब तुम्हारे भीतर क्रोध नहीं उठेगा, दया उठेगी, क्षमा-भाव उठेगा--बेचारा! अभी भी गाली देने

में पड़ा है। वे ही शब्द जो गीत बन सकते थे, अभी गाली बन रहे हैं। वही जीवन-ऊर्जा जो कमल बन सकती थी, अभी कीचड़ है।
तो पहले तो बुरा छूटना शुरू हो जाएगा। और जैसे-जैसे ही बुरा छूटेगा,
तो जो ऊर्जा बुरे में नियोजित थी, वह भले में संलग्न होने लगेगी। गाली छूटेगी तो गीत जन्मेगा। क्रोध छूटेगा, करुणा पैदा होगी। यह पहला चरण है। घृणा छूटेगी, प्रेम बढ़ेगा।
फिर दूसरा चरण--भले की भी समाप्ति होने लगेगी। क्योंकि प्रेम भी बिना घृणा के नहीं जी सकता। वह घृणा का ही दूसरा पहलू है। इसीलिए तो कभी भी तुम चाहो तो घृणा प्रेम बन सकती है और प्रेम घृणा बन सकता है। क्रोध करुणा बन सकती है, करुणा क्रोध बन सकता है, वह परिवर्तनीय है। वे एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।
तो पहले बुरा गया, एक सिक्के का पहलू विदा हुआ; फिर दूसरा पहलू भी विदा
हो जाएगा, फिर भला भी विदा हो जाएगा। और शून्य की बढ़ती होगी। तुम्हारे भीतर शांति की बढ़ती होगी। न शुभ, न अशुभ। तुम निर्विषय होने लगोगे, निर्विकार होने लगोगे।
और तीसरे चरण में, अंतिम चरण में, यह भी बोध न रह जाएगा कि मैं शून्य हो गया हूं। क्योंकि जब तक यह बोध है कि मैं शून्य हूं, तब तक एक विचार अभी शेष है--मैं शून्य हूं, यह विचार शेष है। यह विचार भी जाना चाहिए। यह भी चला जाएगा। तब तुम रह गए निर्विचार, निर्विकल्प। उसको ही पतंजलि ने कहा है निर्बीज समाधि; बुद्ध ने कहा है निर्वाण; महावीर ने कहा है कैवल्य की अवस्था। जो नाम तुम्हें प्रीतिकर हो, वह नाम तुम दे सकते हो।

अंतिम प्रश्नः प्रभु-मिलन में वस्तुतः क्या होता है? पूछते डरता हूं,
पर जिज्ञासा बिना पूछे मानती भी नहीं। भूल हो तो क्षमा करें!

रामदुलारे! भूल जरा भी नहीं है। जिज्ञासा स्वाभाविक है। जिसे खोजने चले हैं, उसे खोज कर क्या होगा? जिसकी तलाश पर निकले हैं, उसे मिलने से क्या होगा? यह सहज भाव है मन में उठने वाला। जब कमल खिलेंगे तो कैसी सुवास होगी? कैसा रंग होगा? कैसा रूप होगा?
अमी झरत, बिगसत कंवल!
जब अमृत बरसेगा, नहा-नहा जाएंगे, तो कैसी अनुभूति होगी? कैसी गदगद अवस्था होगी? यह जिज्ञासा बिल्कुल स्वाभाविक है। नहीं कोई भूल है।
फिर भी इस जिज्ञासा को शांत करने का कोई उपाय नहीं है। बिना अनुभव के
यह शांत नहीं होगी। मैं कितना ही कुछ कहूं, वह तो गूंगे का गुड़ है--जिसे होता है, बस वही जानता है। हां, तुम्हें खूब तड़पा सकता हूं। तुम्हें खूब प्यासा कर सकता हूं। मगर यह नहीं कह सकता कि जब तुम सरोवर पर पहुंच जाओगे और अंजुलि भर-भर कर पीओगे, तो जो तृप्ति होगी वह कैसी होती है!
वह तृप्ति हुई मुझे। वह तृप्ति तुम्हें भी हो सकती है। मगर उस तृप्ति
को शब्दों में प्रकट करने का कोई उपाय नहीं है। तुम्हारी जिज्ञासा ठीक। जरा भी भूल नहीं। क्षमा मांगने का कोई कारण नहीं। लेकिन मेरी असमर्थता भी समझो, मेरी विवशता भी समझो। और वह मेरी ही असमर्थता नहीं है, समस्त बुद्धों की है। कौन उसे आज तक कह पाया कि प्रभु-मिलन में वस्तुतः क्या होता है? और जो भी कहा गया है, वह बहुत दूर पड़ जाता है, बहुत ओछा पड़ जाता है। जो भी कहो, छोटा पड़ जाता है। मुट्ठी में आसमान को बांधो, तो कैसे बांधो? साधारण से कामचलाऊ शब्दों में निःशब्द को कैसे प्रकट करो? बहुत कठिनाई है। असंभावना है।

लपटों का अंशुक ओढ़ यामिनी आई।

धुन कर तारे कर लिए तूल से झीने,
फिर बुने तार सितश्याम चांदनी भीने,
चंदन बूंदों से सजा सुरमई चूनर,
पिघली ज्वाला के रंगों में रंगवाई।

घन अगरू धूमलेखा से लहरे कुंतल,
उजली चितवन में उड़े बलाकों के दल, सांसों में वासित रह-रह सिहर-सिहर कर, सरसर बहती है आभा की पुरवाई।

आंधियां पीत पल्लव सी झर बिछ जातीं, तम की हिलोर संदेश दिवस का लातीं, पिस गईं बिजलियां पथ में रथ चक्रों से, उड़-उड़ कर पीली रेणु क्षितिज पर छाई।

नभ का कदंब दीपक-फूलों में फूला,
दुख का विहंग भू के नीड़ों को भूला, आतप तन दिन की सप्तरंगिणी छाया,
निशि बन, कण-कण-प्राणों में आज समाई।

जल उठे नयन में स्वप्न, भाल पर श्रम-कण, दीपित प्रभात की सुधि में जलता है मन, जीवन मेरा निष्कंप शिखा दीपक की,
लौ से मिल लौ ने अब असीमता पाई।
लपटों का ओढ़ दुकूल निशा मुस्काई।

इतना ही कहा जा सकता है--
जीवन मेरा निष्कंप शिखा दीपक की,
लौ से मिल लौ ने अब असीमता पाई।
बूंद सागर में मिल जाती है और असीम हो जाती है। छोटी सी लौ अनंत रोशनी में एक हो जाती है। लहर सागर हो जाती है। सीमा टूटती है, असीम प्रकट होता है। मृत्यु मिटती है, अमृत का अनुभव होता है। खूब रंग बरसता है। खूब फाग खेली जाती है--ऐसे रंगों की जो मिटते नहीं। खूब गुलाल उड़ती है--ऐसी गुलाल जो न देखी, जो न सुनी--जो इस जगत की नहीं है!
पिचकारी ने खिला दिया है
नई प्रीति का रंग
कि फागुन के दिन आए रे!
किसने मला गुलाल
लाल गोरी के सारे अंग
कि फागुन के दिन आए रे!

ताल दे रही मन की धड़कन
ठुमक रहे हैं पांव
झूम रहा है सारा मौसम
नाच रहा है गांव,
घुंघरू, कंगन, ढोल-मंजीरे बजने लगा मृदंग
कि फागुन के दिन आए रे!
हाव-भाव चलने-फिरने के
बदल गए सब ढंग
कि फागुन के दिन आए रे!

उड़ा अबीर, कबीर गूंजता
हाल हुआ बेहाल
सरसों सी पीली चूनर
यौवन टेसू सा लाल,
गंध भरी सांसें, जीवन में-- उठती नई उमंग
कि फागुन के दिन आए रे!

यादों के उन्मुक्त गगन में
उड़ता हृदय विहंग
कि फागुन के दिन आए रे!

एक अंतर-जगत की फाग! एक अंतर-जगत में रंगों का विस्फोट! अमी झरत, बिगसत कंवल!
आज इतना ही।